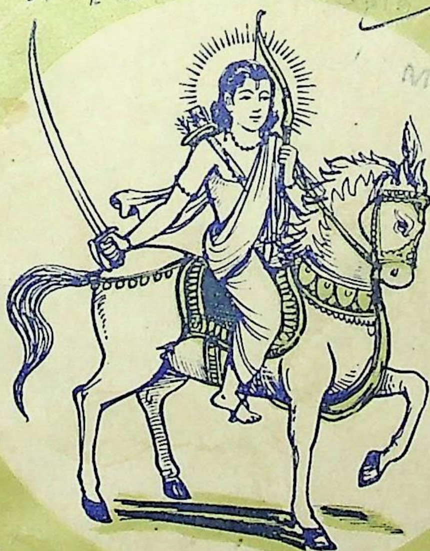
कल्कि पुराण

207/H
29.11.73

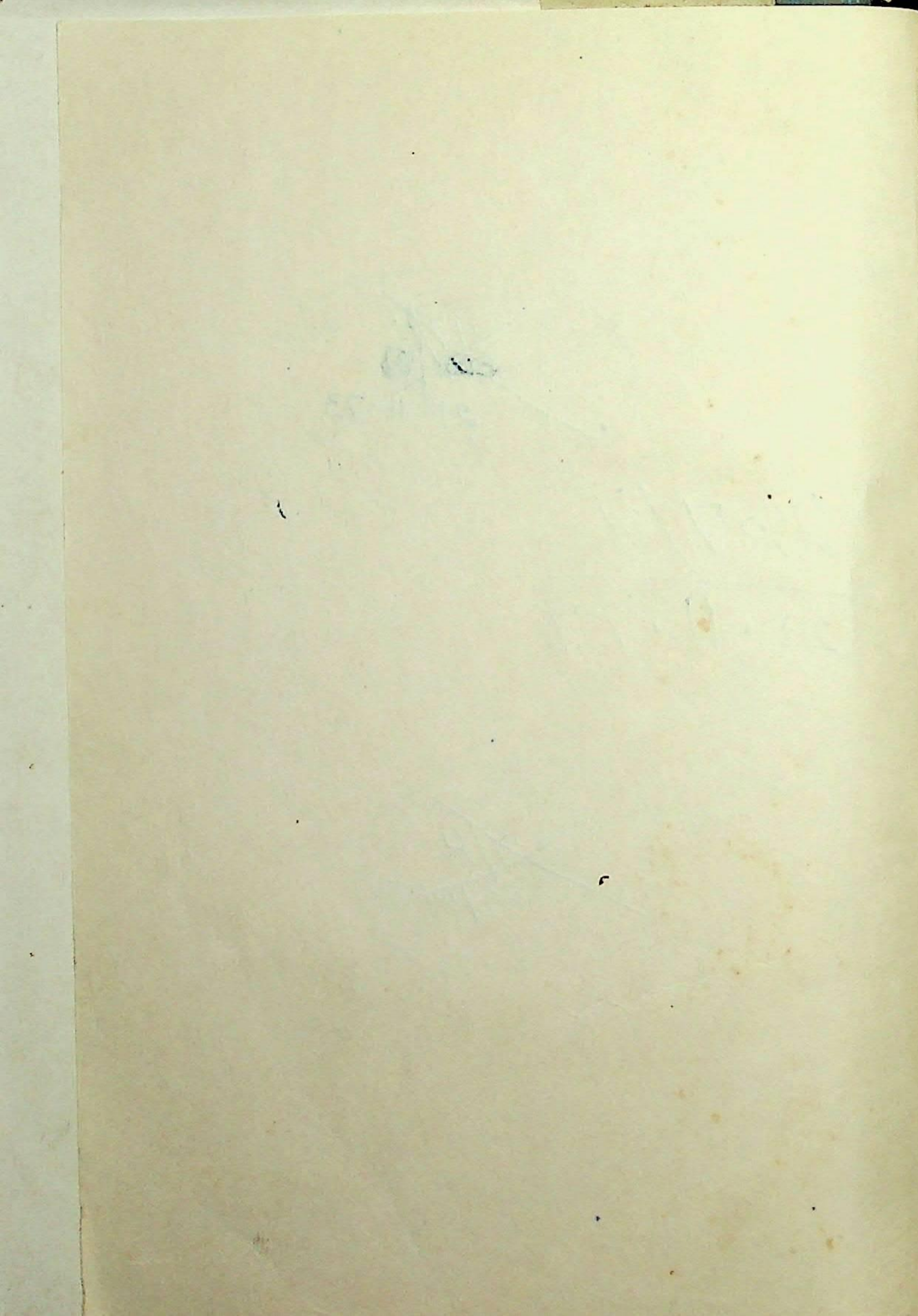
217/H
29/11/73



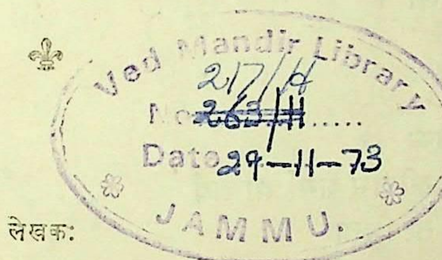

Ved Mandir Library
No.
Date 29-11-73
JAMMU.

207/H
29·11·73


Ved Mandir Library
No. 217/H
Date 29/11/73
JAMMU.



श्रीकल्कि-पुराण



लेखक:

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्-दर्शन, २० स्मृतियों
एवं १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार



प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)

बरेली [उ०प्र०]

प्रकाशक:
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब,
बरेली ।

लेखक:
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
श्री सत्यभक्त

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण:
१९७०

मुद्रक:
शेखर प्रिण्टलैंड,
वृन्दावन दर्वाजा,

मूल्य:
सात रुपए पिचहत्तर पैसे (रु० ७. ७५)

Ved Mandir Library
No. 263 | H.....
Date 29-11-73

दो शब्द

'कल्किपुराण' का महत्व वर्तमान समय में विशेष बढ़ गया है। यह मुख्यत: 'युग-परिवर्तन' सेसम्बन्ध रखता है और इस समय परिवर्तन की भावना संसारव्यापी होरही है। लोग यह नहीं समझ पाते कि एक तरफ मनुष्य ज्ञान-विज्ञान में आशातीत उन्नति करके प्रकृति का स्वामी बन रहा है और दूसरी तरफ वह जीवन-निर्वाह के साधनों को आपस में आवश्कतानुसार बाँट कर व्यवहार में भी नहीं ला सकता। इस परस्पर विरोधी दृश्य को देख कर यही प्रतीत होता है कि हमारी 'सभ्यता' के जड़मूल में ही कोई खराबी है। यह तो सब कोई अच्छी तरह जानते हैं कि जब तक संसार में न्याय और सत्य की स्थापना न होगी और प्रत्येक मनुष्य को उसका न्यायोचित भाग प्रदान न किया जायगा तब तक असंतोष और अशान्ति की अग्नि किसी रूप में धधकती ही रहेगी।

'कल्कि' की विशेषता इसी बात में है कि वे इस ज्वाला को शान्त करके संसार में 'सत्युग' की स्थापना करेंगे इसमें तो सन्देह नहीं कि दैवी-शक्ति के अतिरिक्त और किसी उपाय से काम लेकर वर्तमान भ्रष्ट और स्वार्थपरता की भावना से ओत-प्रोत दुनिया का सुधार नहीं किया जा सकता। क्योंकि इस समय संसार में, राष्ट्रों में, समाज में, व्यक्ति में जो दोष उत्पन्न हो गये हैं, उनको कोई समझता न हो ऐसी बात नहीं है। इस समय विद्या, शिक्षा और प्रचार-कार्य की इतनी अधिकता हो गई है कि छोटी आयु के लड़के भी सार्वजनिक-जीवन और संसारव्यापी परिवर्तनों की बातों को इतना जान लेते हैं जितना सौ, दोसौ पूर्व परिपक्व आयु के पढ़े-लिखे व्यक्ति भी नहीं जान पाते थे। इस समय समाचार पत्र रेडियो, टेली-विजन, दूरवर्ती देशों के भ्रमण की सुविधा आदि की इतनी भरमार हो गई है कि राह चलता व्यक्ति भी इधर-उधर से सुनकर संसार की राजनैतिक और सामाजिक प्रगति का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

पर यह जान कर भी कि इस समय मनुष्य मात्र की एकता, पारस्परिक सहयोग और सामूहिक प्रयत्नों के बिना मनुष्य का जीवन

निर्वाह अच्छी तरह नहीं हो सकता अधिकांश व्यक्ति अपने संकीर्ण-स्वार्थ से ऊपर नहीं उठ पाते। हम मानते हैं, कि संसार के अधिकाँश व्यक्ति अभी भारतीय ऋषि-मुनियों द्वारा निर्धारित त्याग-परमार्थ के आदर्श को नहीं अपना सकते, और न अभी पूर्ण साम्यवाद की परिस्थितियाँ ही परिपक्व हो चुकी हैं, तो भी अपने ही स्वार्थ की निगाह से भी मनुष्य को अपने लाभ के साथ दूसरों की हानि और अनहित का ध्यान रखना आवश्यक है। अगर वह ऐसा नहीं करता तो प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे के साथ विपरीत व्यवहार करेगा और संसार की सुख-शान्ति स्वप्नवत् हो जायगी। भूखों मरता हुआ, निराश और हताश व्यक्ति चाहे स्वयं लाभ न उठा सके पर वह दूसरों के लिये बाधा-विघ्न स्वरूप तो बन ही सकता है। इस लिये जो व्यक्ति देश या समाज के कल्याण का ध्यान नहीं रखता वह दूसरों के साथ अपने लिये भी काँटे बोता है।

यदि गहराई के साथ विचार किया जाय तो वर्तमान पश्चिमी सभ्यता की सबसे बड़ी बुराई यही है कि उसने निजी स्वार्थ को बहुत अधिक प्रधानता दे डाली है और त्याग की भावना को नगण्य कर दिया है। वर्तमान समय में संसार भर में जो युद्ध की विभीषिका फैली हुई है उससे मानव सभ्यता के ही विध्वंस हो जाने का भय उत्पन्न हो गया है। इसका मूल कारण उपर्युक्त दूषित मनोवृत्ति ही है। जब मनुष्य अपने पड़ोसी के प्रति आत्मीयता का भाव रखने के बजाय उसको अपना भक्ष्य मानता है और जब मौका लगे तभी उसका सर्वस्व अपहरण करने को तैयार बैठा रहता है, तो सुरक्षा और स्थायी हित की बात ही खत्म हो जाती है तब दुनिया में जंगल का कानून प्रचलित हो जाता है कि जो कोई जबर्दस्त या चालाक हो वह अपने से कमजोर को खा जाये।

मानव का यह स्वभाव पशु-प्रकृति या 'पाशविकता' कही जाती है। विचार किया जाय तो यह उससे भी कहीं अधिक भयंकर और निकृष्ट है। इसमें ईर्षा, द्वेष, घृणा की मनोवृत्तियाँ सम्मिलित होकर मानव को दानव बना देती हैं और तब वह नाश और संहार के नये-

नये उपाय निकालने लगता है, जिनमें से कुछ तो ऐसे क्रूरतापूर्ण होते हैं कि जिनका वर्णन कर सकना भी संभव नहीं।

'कल्कि' की वास्तविकता का आशय हम वर्तमान हिंसक-भावना युक्त मानवीय सभ्यता के स्थान पर एक ऐसी नई सभ्यता की स्थापना समझते हैं जिसमें मनुष्य किसी अन्य मनुष्य को मारने, काटने, लूटने का विचार भी मनमें न ला सकेगा। आज हम प्राय: 'आध्यात्मिकता' का नाम लेते हैं, पर वह कभी सार्वजनिक व्यवहार में लाई गई या नहीं इसका कह सकना कठिन है। शायद प्राचीन ऋषि-मुनियोंमें से थोड़े बहुत ऐसे हुये हों कि जिन्होंने ने हिंसा का सर्वथा त्याग कर प्रेम के सिद्धान्त के आधार पर व्यवहार किया हो। एतिहासिक युग में महावीर, बुद्ध और ईसा ने इसका उदाहरण उपस्थित करके नई सभ्यता की स्थापना की चेष्ट की, पर उनको बहुत थोड़ी और अस्थायी सफलता ही मिली। आज ईसा और बुद्ध के 'अनुयायी' कहे जाने वाले ही हिंसा और युद्ध के सब से बड़े समर्थक और संचालक बने हुये हैं।

'कल्कि' को यद्यपि हाथ में तलवार लिये चित्रित किया गया है, पर उसका आशय 'ज्ञान की तलवार' से है। अनेक 'कल्कि-भक्तों' का अब भी यह मत है कि भावी अवतार को 'निष्कलंक' नाम से पुकारने का कारण यही है कि वह संसार में हिंसा, द्वेष, रक्तपात आदि का कोई ऐसा काम न करेंगे, जिसमें किसी प्रकार का कलंक लगने की संभावना हो। 'कल्कि पुराण' आदि में भावी अवतार द्वारा समस्त दुष्टों के संहार का वर्णन है, पर वास्तव में वे आपस में ही लड़-भिड़ कर नष्ट होंगे। जब इस प्रकार 'हिंसा' की अति हो जायगी और मानव जाति अपने ही बनाये अस्त्र-शस्त्रों से अपना सर्वनाश करने को उद्यत होगी तब इस भयंकर हत्या काण्ड को रोकने और हिंसा की मनोवृत्ति की हानि और अमानुषिकता को समझा कर मनुष्यों को सहयोग और प्रेम के मार्ग पर चलने की शिक्षा देने के लिये ही 'अवतार' का आविर्भाव होगा। वह 'अवतार' मनुष्य रूपमें होगा, या किसी संस्था या संगठन के रूप में होगा या भाव रूप होगा, इस सम्बन्ध में विवाद उठाना अनावश्यक है। वास्तव

हैं ऐसे सभी परिवर्तन आरम्भ में विचारमूलक और भाव रूप ही होते हैं पर आगे चल कर वे किसी व्यक्ति या संगठन में 'मूर्त रूप' भी ग्रहण कर लेते हैं। सामान्य बुद्धि की जनता, जो विचार-शक्ति के स्वरूप और और प्रभाव को अनुभव करने में असमर्थ होती है व्यक्ति को ही प्रधान रूप से 'अवतार' मानने लग जाती है।

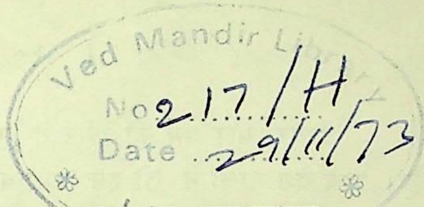
'कल्कि पुराण' में भावी अवतार की जो कथा वर्णन की गई हैं और भावी अवतार को एक राजा के रूप में चित्रित करके उनकी बहु संख्यक रानियों और पुत्रों का वर्णन किया गया है, तथा अनेक युद्धों में दोनों पक्षों की अद्भुत वीरता दिखलाई गई है, उसका मुख्य उद्देश्य इसको अन्य पुराणों के समान आकर्षक और 'पाँच अंगो' से युक्त बनाना ही है। पर सामान्य पाठकों में उसे पढ़ कर प्रायः यही भावना उत्पन्न होता है कि 'कल्कि' कोई महा भीषण युद्ध प्रिय क्रूर योद्धा होगा जो अपना अधिकाँश जीवन संसार में रक्त की नदियों के बहाने में ही व्यतीत करेगा। पर यह धारणा सर्वथा भ्रम है। जो व्यक्ति अवतारों के वास्तविक रहस्य को नहीं समझते और कवियों की रचना में से अलंकार, रूपक, उपमा आदि को समझ कर, उसका वास्तविक आशय हृदयंगम करने में समर्थ नहीं होते वे ही ऐसे भ्रम में पड़ते है।

शास्त्रों और अन्य महापुरुषों ने 'कल्कि' भगवान का क्या स्वरूप बतलाया है, उनकी लीलाओं (कार्यों) का वास्तविक अर्थ क्या है, और वे किस नवीन मार्ग का अनुसरण करके नये जगत का निर्माण करेंगे इन सब प्रश्नों का विवेचन और व्याख्या करने के लिये ग्रन्थ के आरम्भ में श्री सत्यभक्तजी द्वारा लिखित 'कल्कि अवतार रहस्य' शीर्षक निबन्ध दिया जा रहा है, जिससे पाठकों की सब शंकाओं का निराकरण हो जायगा और यह भी विदित हो जायगा कि 'अवतार' किन महान् उद्देश्यों की पूर्ति के लिये कैसे-कैसे रूप में प्रकट होते हैं।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

कल्कि पुराण की विषय-सूची

(कल्कि अवतार-रहस्य)


Ved Mandir Library
No 217/H
Date 29/11/73

कल्कि अवतार-रहस्य

प्रथम अध्याय

ईश्वरीय शक्ति का प्राकट्य

समस्त धर्मों का मूल ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखना है। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो 'धर्म' की भावना तभी जन्म लेती है, जब मनुष्य समग्र जगत की समस्या का मनन करते हुए उसके आदि स्रोत को ढ़ूंढ़ने का प्रयत्न करता है। यों खाना, पीना और प्रजनन सभी प्राणियों के लिये एक स्वाभाविक नियम है, पर मनुष्य जैसे विवेक-युक्त प्राणी का प्रधान लक्षण यही है कि वह जो कार्य करे, जिन नियमों और परम्पराओं को ग्रहण करे उनकी युक्तियुक्तता तथा मूल आधार पर भी विचार करले। इसी महान आवश्यकता की पूर्ति के लिये पिछले हजारों वर्षों से सब देशों और जातियों के विद्वान् ईश्वर के अस्तित्व और मानव-कर्तव्यों पर विचार-विमर्ष करते आये हैं। उनमें से किसी ने उसको आकाश स्थित किसी सर्वोच्च स्थान में विराजमान, सर्वाधिक शक्तिशाली देवता के रूप में माना और किसी ने समस्त विश्व में व्याप्त एक महाशक्ति के रूप में। ईश्वर सम्बन्धी यही विचारणा और उससे उत्पन्न होने वाले अनगिनती प्रश्न तथा उनके समाधानों का संग्रह ही 'मजहब या धर्म' कहलाया। यों सामान्य दृष्टि से लोग सामाजिक रीति-रिवाजों परम्पराओं, आचार–विचार सम्बन्धी नियमों को भी 'धर्म' कहने लगते हैं, पर जब तक उनका सम्बन्ध ईश्वर से नहीं जोड़ा जाता है, उनको ईश्वरीय आदेश के अनुकूल सिद्ध नहीं किया जाता है, तब तक उनका महत्त्व सामयिक ही रहता है, उन्हें 'स्थायी धर्म' का दर्जा प्राप्त नहीं हो सकता।

ईश्वर और धर्म की दृष्टि से हमारे देश का स्थान विशिष्ट है। अन्य देश वालों ने तो इस सम्बन्ध में थोड़ा-सा विचार करके ईश्वर को एक महान शासक की तरह दण्ड और पुरुस्कार का कर्ता मान लिया और अपने समाज में प्रचलित नियमों तथा ईश–प्रार्थना के विधि-विधानों को ही 'धर्म' का नाम दे दिया। पर भारतीय मनीषियों ने अपना समस्त जीवन ही इस समस्या का निर्णय करने में लगा दिया और इस सम्बन्ध में सूक्ष्म से सूक्ष्म खोज करके धर्म-कलेवर को इतना विशाल रूप दे डाला कि संसार की कोई समस्या, जीवन का कोई क्षेत्र तथा समाज और व्यक्ति का कोई व्यवहार उससे पृथक न रह सका। यदि यह कहा जाता है कि 'एक हिन्दू का सारा जीवन ही धर्ममय है' तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं। यहाँ के अपढ़ से अपढ़ व्यक्ति भी प्रत्येक छोटे-बड़े कार्य में 'धर्म' का नाम ले लेते हैं और 'अधर्म' से सदा बचने की चेष्टा करते हैं। यह बात दूसरी है कि विद्या और ज्ञान के अभाव से अथवा समय के प्रभाव से वे धर्म के वास्तविक रूप को भूल गये हों और कितनी ही विपरीत बातों को भी भ्रमवश 'धर्म' मान बैठे हों।

ईश्वर का स्वरूप और उसके कार्य—

यद्यपि यहूदी, ईसाई, मुसलमान जैसे प्राचीन और प्रचलित धर्मों के अनुयायिओं ने ईश्वर को एक निश्चित साकार रूप देकर उसके आदेशों का पालन अपना कर्तव्य मान लिया हैं और अभी तक अधिकाँश में वे तदनुसार आचरण भी करते आये हैं। उन्होंने अपने धार्मिक नियम भी अपनी लौकिक परिस्थिति की दृष्टि से प्रत्यक्षत: उपयोगी और लाभदायक निश्चित किये हैं, जिनमें शीघ्र ही अधिक मतभेद होने की गुंजायश नहीं रहती। पर हिन्दू-धर्म की स्थिति इस सम्बन्धं में बड़ी द्विविधापूर्ण है। यदि यह कहा जाय कि यहाँ के समाज में जितने स्तर के व्यक्ति मिलते हैं, उनके लिये उसी स्तर की धर्म-प्रणाली का निर्माण कर दिया गया है, तो यह अधिकांश में

सत्य ही ठहरेगा। यहाँ पर ऐसे भी व्यक्ति हैं जो सड़क पर पड़े पत्थर को सेंदुर लगा कर देवता के रूप में पूज लेते हैं और ऐसे 'ब्रह्मज्ञानी' भी मौजूद हैं जो समस्त धर्म व्यवहारों को 'माया' बतलाते हैं और ईश्वर को एक भाव-रूप शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते। वे लोग निस्संकोच भाव से 'अहं ब्रह्मास्मि' का उद्घोष करके स्वयं ही 'ईश्वर' होने का दावा करते हैं और सब लोगों से उसी प्रकार का व्यवहार किये जाने की माँग करते हैं।

वास्तव में हिन्दू-धर्म शास्त्रों का इतना अधिक विस्तार हो गया है कि उससे एक निश्चित मत या तथ्य का निकाल लेना और सब लोगों को तदनुसार आचरण-व्यवहार करने की प्रेरणा दे सकना बड़ा कठिन कार्य है। जब तक इस शास्त्र रूपी सागर का भली प्रकार मंथन न किया जाय तब तक सत्य-तत्त्व रूपी नवनीत का प्राप्त हो सकना संभव नहीं हो सकता।

जहाँ संसार के प्राय: सभी धर्मों ने ईश्वर के निराकार या साकार—दो रूपों में से किसी एक को स्वीकार कर लिया है और उसी प्रकार वे उसकी पूजा उपासना करते रहते हैं, वहाँ हमारे शास्त्रों में एक ही स्थान पर ईश्वर को "निर्गुण और सगुण" दोनों बतलाया गया है और कह दिया गया है कि—

सगुणहि अगुणहि नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा॥
अगुन अरूप अलख अज सोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥

वास्तव में जिसने धर्म-तत्त्व का गहन अध्ययन करके उसके सार-तत्त्व को ग्रहण किया है उसकी व्यापक दृष्टि में साकार-निराकार या सगुण-निर्गुण का भेद अधिक देर तक नहीं ठहर सकता। वह जानता है कि स्थूल-जगत में भी सब वस्तुयें आद्यावस्था में इतने छोटे रूप में रहती हैं कि उनको किसी प्रकार नहीं देखा जा

सकता और फिर वे ही क्रमशः स्थूल बनते हुये दिखाई पड़ने योग्य हो जाती हैं। इसी प्रकार प्रत्येक प्रकार की शक्ति भी जब तक निष्क्रिय अवस्था में रहती है तब तक ऐसी अव्यक्त होती है जिसका कोई प्रमाण नहीं दिया जा सकता। पर जब वही किसी व्यवहार में आने लगती है जो उसका अस्तित्व सब पर प्रकट हो जाता है और सबको उस पर विश्वास करना पड़ता है।

अवतारवाद का सिद्धान्त—

सभी आस्तिक धर्मों के अनुयायी ईश्वर को जगत का कर्ता और संचालक मानते हैं और साथ ही यह भी स्वीकार करते हैं कि उसकी तरफ से समय-समय पर ऐसे दैवीदूत (पैगम्बर) या ज्ञानी-महात्मा (जीवन्मुक्त) भेजे जाते हैं, जो सर्वसाधारण का मार्ग-दर्शन करके समयानुकूल और यथार्थ धार्मिक नियमों के पालन की शिक्षा देते हैं। पर हिन्दू-धर्म में इससे भी बढ़ कर यह प्रतिपादित किया गया है कि संसार में व्यवस्था कायम रखने और विशेष विकृतियों को दूर करने के लिये भगवान स्वयं मानव-रूप में अवतीर्ण होते हैं। भगवान सर्व-शक्तिमान हैं और वे जैसी परिस्थिति देखते हैं वैसी ही व्यवस्था कर सकने में समर्थ हैं। उनका उद्देश्य, जिसकी पूर्ति के लिये उन्होंने सृष्टि-रचना करके जीवात्मा को संसार में भेजा है, यही है कि उसका क्रमशः विकास और उत्थान हो और वह निरन्तर प्रगति करता हुआ ज्ञानपूर्वक उनका सान्निध्य प्राप्त कर ले। इस लिये संसार में जब किन्हीं मार्गच्युत व्यक्तियों या किसी समुदाय द्वारा इस प्रगति-पथ में बाधा डाली जाने लगती है—विकास की गति में रोड़ा अटकाया जाने लगता है, तभी वे उस अवरोध को मिटाने के लिये स्वयं आते हैं अथवा प्रेरणा देकर किसी जीवनमुक्त महात्मा को इसकी पूर्ति में लगा देते हैं। इसी भावना के आधार पर भारतवर्ष में राम, कृष्ण, बुद्ध आदि को अवतार और विदेशों में जरदुश्त, मूसा, ईसा, कनफ्युशस, मोहम्मद आदि को ईश्वर के प्रतिनिधि (पैगम्बर) माना गया है।

भारतीय धर्मशास्त्रों की मान्यता है कि सभी मुख्य अवतारों का एक विशेष उद्देश्य किसी संसार व्यापी आवश्यकता को पूरा करने का रहता है। अथवा गीता के शब्दों में यों कहना चाहिये कि "जब संसार में अधर्म की वृद्धि और धर्म की हानि होने लगती है और इस कारण मानव-प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और दुष्ट स्वभाव के लोग उसे मनमाने ढंग से चलाना चाहते हैं, तब भगवान उस गति-रोध को समाप्त करने के लिये और साथ ही मनुष्यों को यह शिक्षा देने के लिये आते हैं कि वे भविष्य में वैसा अनुचित काम करके अपने और अन्य लोगों के ऊपर संकट न बुलायें।" हिन्दू शास्त्रों के अनुसार अब तक जो नौ अवतार हो चुके हैं उनमें से जन्तु-जगत से सम्बन्धित तीन—मत्स्य, कच्छप और बाराह को छोड़ कर शेष छः विश्व की किसी महती आवश्यकता अथवा संकट के निवारणार्थ ही अवतरित हुए थे, उनके प्राकट्य का उद्देश्य क्या था इसकी जो व्याख्या विभिन्न दृष्टिकोणों से की जाती है उसमें कुछ अन्तर होने पर भी मूल तथ्य में समता ही देखने में आती है।

सबसे पहला स्थान हमारे पुराणों का है, क्योंकि उन्होंने अवतारों की जीवन-घटनाओं को अधिक से अधिक विस्तार देकर रोचक कथाओं की प्रणाली प्रचलित की है। उन कथानकों का संकेत बंगाल के महाकवि जयदेव ने अपने 'गीत गोविन्द' काव्य ग्रन्थ में निम्न श्लोकों में दिया है—

तव कर कमल वरे नखमद्‌भुत शृङ्गम्
दलित हिरण्यकशिपु तनु भृङ्गम्।
केशव धृत नरिहरि रूप जय जगदीश हरे॥

"हे नृसिंह देव! आपने अत्यन्त विशाल हाथों के तीव्र नखों से महादैत्य हिरण्यकशिपु के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। हे भगवान आपकी सदा जय हो।"

छलयसि विक्रमणे वलिमद्भुत वामन
पद नख नीरज नित जन पावन।
केशव धृत वामनरूप जय जगदीश हरे ।।

"हे वामन भगवान ! आपने राजा वलि को भ्रम में डाल कर उससे तीनों लोकों का राज छीन लिया। आप ही अपने पैर के नाखून से लोक पवित्रकारी गंगा की धारा को प्रवाहित करने वाले हैं। हे भगवान आपकी जय विजय हो।"

क्षत्रिय रुधिरमये जगदप गत पापं,
स्नपयसि पयसि शमित भव तापं।
केशव धृत भृगुपति रूप जय जगदीश हरे।"

हे भृगुपति परशुराम ! आपने अनेक बार क्षत्रियों की रुधिर धारा बहाकर उनके पापों को धो डाला और संसार के ताप को शान्त कर दिया। हे भगवान आपकी जय-जय हो।"

वितरसि दिक्षुरणे दिक्पति कमनीयम
दशमुख मौलि वलिं रमणीयम्
केशव धृत रघुपति रूप जय जगदीश हरे ।।

हे भगवान राम ! आपने संसार के त्रासरूप राक्षसराज रावण के दश सिरों को काट कर दशों दिशाओं के दिक्पालों को भेट स्वरूप दे दिया। सब कालों में और सब देशों में आपकी जय हो।"

इसी तरह भगवान कृष्ण. बुद्ध और कल्कि की भी स्तुति की गई है। उन्होंने दस, पाँच शब्दों में ही कल्कि की महाशक्ति और पराक्रम का जो चित्र खींचा है वह साहित्यिक दृष्टि से भी अनुपम है। श्री जयदेव ने कल्कि की जय जयकार करते हुए कहा है—

म्लेच्छनि वहनिधने कलियसि करवालम्
धूमकेतुमिव किमपि करालम्।
केशव धृत कल्कि शरीर जय जगदीश हरे ।।

"जिन्होंने म्लेच्छों का संहार करने के लिये हाथ में करवाल ग्रहण की है और जो दुष्टों के लिये धूमकेतु की तरह भीषण दिखाई पड़ते हैं, उन भगवान कल्कि की जय हो—सदैव जय होती रहे।"

मध्य-काल में 'दशावतार' की भावना ने ऐसा जोर पकड़ा था कि शंकराचार्य जैसे 'महामानव' ने भी उनके सम्बन्ध में दस भक्ति पूर्ण श्लोक लिखे हैं। इसी प्रकार काश्मीर के प्रसिद्ध कवि क्षेमेन्द्र का 'दशावतार चरित्र' काव्य भी बहुत विद्वतापूर्ण माना गया है। इतना ही क्यों प्राकृत-भाषा में, जो मुख्यत: जैन और बौद्धों के धर्म ग्रंथों में व्यवहार में लाई गई है, दश अवतारों के सम्बन्ध में एक रचना हमारे देखने में आई है, जिसमें चार चरणों में ही दशों अवतारों की स्तुति कर दी गई है—

जिण वेअ धरिज्जे महिअल लिज्जे पिट्ठहि दन्तहि ठाउँ धरा।
रिउ वच्छ विआरे छलतनु धारे बंधिअ सत्तु पआल धरा॥
कुल खत्तिय कम्पे दसमुँह कट्टे केसिअ कंस विनास करा।
करुणा पअले म्लेच्छहिं बअले सो देउ नरायण हमहि वरा॥

कोई कवि किसी श्रेष्ठ दानी पुरुष को आशीर्वाद देता हुआ कहता है कि "जिन भगवान ने मत्स्य रूप में वेदों की रक्षा की, कच्छप और वाराह अवतार लेकर अपनी पीठ तथा दाँत पर पृथ्वी को रखा, जिन्होंने शत्रु (हिरनाकुश) के वक्षस्थल को विदीर्ण कर दिया, जिन्होंने बलि को बहकाने के लिये बौना शरीर बना कर उसे पाताल में बाँध दिया, जिन्होंने क्षत्रिय जाति को नष्ट कर डाला, जिन्होंने रावण को काट डाला, जिन्होंने केशी और कंस को विनष्ट किया, जिन्होंने बुद्ध रूप से करुणा की धारा प्रवाहित की और जो कल्कि रूप में म्लेच्छों का मूलोच्छेद करेंगे वे भगवान नारायण आपको श्रेष्ठ फल प्रदान करें।"

इस प्रकार न जाने कितने लेखकों और कवियों ने तरह-तरह के भावों से युक्त अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ दशावतारों को चढ़ाई हैं

ग्रौर ग्रलंकारिक भाषा में उनकी महिमा ग्रौर गुणों का गान किया है, जिससे सर्व साधारण में ग्रास्तिकता ग्रौर भगवद्भक्ति की वृद्धि हो।

मनुष्य-जीवन की विभिन्न ग्रवस्थाएँ ग्रौर अवतार—

जिन विद्वानों ने ग्रवतारों की कथाग्रों पर बुद्धिवाद की दृष्टि से विचार किया है उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि इनका वास्तविक ग्राशय मानव-जीवन की क्रमोन्नति से है। यह तो सभी मानते हैं कि मनुष्य के ग्राविर्भाव से पहले 'जीव' की गति पशु-विभाग तक ही सीमित थी। पशु ग्रौर मनुष्य में मुख्य ग्रन्तर यह है कि पशु में 'ग्रहंकार' ग्रर्थात् व्यक्तित्त्व का भाव नहीं होता। उनमें केवल समष्टि-भाव होता है जिससे सामूहिक भावना उन्हें जन्म से ही प्राप्त हो जाती है। साथ ही उनमें लघु मानसिक शरीर का भी विकास होता जाता है जिससे कुछ समय पश्चात् वह ग्रहं-भाव (व्यक्तिगत जीवात्मा) को ग्रहण करने योग्य बन जाता है। इसी के पश्चात् मानव-युग ग्रारम्भ हो सकता है।

'धर्म ज्योति' के लेखक के मतानुसार मनुष्य का ''यह जीवन-काल प्रधानतः दो भागों में बँटा हुग्रा है—प्रवृत्तिकाल ग्रौर निवृत्ति-काल। प्रवृत्तिकाल में मनुष्यों में ग्रहण करने की भावना ही ग्रधिक पाई जाती है। इस लिये वह ग्रपने लिये तरह-तरह के कर्म बन्धन उत्पन्न कर लेता है। निवृत्ति-काल में मनुष्य धीरे-धीरे प्रवृत्ति के ऋणों को कम करता हुग्रा, ग्रन्य प्राणियों से लेने के बजाय उन्हें कुछ देने का प्रयत्न करता रहता है। इस प्रकार प्रवृत्ति-ग्रवस्था का स्वाभाविक नियम ग्रहण करना ग्रौर निवृत्ति ग्रवस्था का स्वाभाविक नियम त्याग करना है। इन दोनों के बीच एक मध्यम ग्रवस्था भी होती है, जिसमें मनुष्य कभी भोग की ग्रोर ज्यादा झुक जाता है ग्रौर कभी त्याग की ग्रोर। उस ग्रवस्था में उसके भीतर दोनों वृत्तियों का झगड़ा होता रहता है। पर ग्रन्त में मनुय को ऊपर

ले जाने वाली शक्ति नीचे ले जाने वाली शक्ति को दवा देती है और तब मनुष्य निवृत्ति पथ पर आरूढ़ हो जाता है।"

इस वर्णन से यह कभी नहीं समझ लेना चाहिये कि तीनों प्रकार की अवस्थाओं का परिवर्तन एक ही साँसारिक-जीवन में हो जाता है। वास्तव में इनमें से एक-एक अवस्था को पार करके दूसरी में पहुँचने तक सैकड़ों हजारों वर्ष लग जाते हैं। इसमें कोई बात असम्भव या अस्वाभाविक भी नहीं है। आत्म-विकास के लिये जीवात्मा को प्रत्येक अवस्था में से गुजर कर उसका अनुभव प्राप्त करना पड़ता है, तभी वह अग्रसर हो सकती है। संसार में स्थूल, सूक्ष्म, छायामय वासना-मय अनेक क्षेत्र हैं, जिनमें मनुष्य को रहना पड़ता है। यदि वह इनकी क्रम से जानकारी प्राप्त नहीं करेगा तो उसकी जीवात्मा को बीच में ही कहीं भी रुक जाना पड़ेगा और उसका बहुत समय के लिये पतन हो जायगा।

प्रवृति और निवृति के दो विभागों के नियम का ही यह परिणाम होता है कि अभी जो मनुष्य प्रवृत्ति-मार्ग पर चल रहा है उस पर निवृत्ति की बातें प्रायः असर नहीं करतीं। पर इसका अर्थ यह भी नहीं समझ लेना चाहिये कि विषयों में लिप्त रहना मनुष्य के लिये कोई श्रेष्ठ बात है। कुछ भी हो, है तो वह निम्न अवस्था ही। इस लिये हमको यही उचित है कि ईश्वरीय विधान को शिरोधार्य करते हुये प्रवृत्ति-मार्ग का अनुभव प्राप्त करके यथा संभव शीघ्र उससे छुटकारे की कोशिश करें। हाँ, ऐसी जल्दी भी काम की नहीं कि जिससे पुनः वापस लौट कर नीचे की गति में पड़ना हो। जैसे बहुत से व्यक्ति सामर्थ और योग्यता न होने पर भी किसी के बहकाने से अथवा स्वयं ही किसी उमंग में आकर गृहस्थ को भोगे बिना ही युवावस्था में साधु-संन्यासी बन जाते हैं, पर कुछ समय बाद प्रवृत्ति के संस्कार जोर मारते हैं और वे उसी वेश में कंचन और कामिनी के फेर में पड़ कर गृहस्थों से भी निम्न दशा में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार के ढोंग से उनका इतना आत्म-

पतन होता है कि उन्हें जो गति प्राप्त होती है, उसे नर्कवास के अति-रिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता।

अवतारों का उदाहरण—

इस लिए जीवात्मा का क्रम-विकास होकर मुक्ति अवस्था तक पहुँचने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति की सभी अवस्थाओं को भोगता हुआ उनसे अनुभव और शिक्षा ग्रहण करें और आगे बढ़कर ऊँचे दर्जे में प्रविष्ट हो। भगवान के जिन छः अवतारों का मानव रूप में होना वर्णन किया गया है उनका आशय उन छः मुख्य अवस्थाओं से है जिनमें होकर वर्तमान मन्वन्तर की मानव जाति को गुजरना पड़ा है। इनका विवेचन करते हुए इस विषय के ज्ञाताओं ने जो मत प्रकट किया है उसका सारांश नीचे दिया जाता है।

मानव-अवस्थाओं की दृष्टि से पहला अवतार नरसिंह भगवान का है। यह जीव की उस अवस्था का सूचक है जब यह पशु-विभाग को पार करके मानव विभाग में प्रविष्ट ही हुआ था। पर मनुष्य होते हुये भी उसकी बहुत सी वृत्तियाँ और आचरण पशुओं जैसे ही थे। यह जंगली अथवा आदिम मनुष्यों की अवस्था है। इस पाशविक अवस्था में एक मनुष्य दूसरे को मार कर खा भी जाता था। पर धीरे-धीरे इस प्रवृत्ति का निरोध होने लगता है और वह अपनी जाति वालों अर्थात् मनुष्यों को छोड़कर अन्य प्राणियों को ही मारने लगता है ऐसे जंगली मनुष्यों की निन्दा करने या उनसे घृणा करने का कोई कारण नहीं। प्रत्येक मनुष्य को आरम्भिक-काल में इसी अवस्था में होकर गुजरना पड़ा था। इसको मानवता का शैशवकाल कह सकते हैं। इसको जीव की 'शूद्रावस्था' भी कहा जा सकता है।

दूसरा वामन अवतार हुआ। यह उस अवस्था की सूचना देता है जब जीव जंगली अवस्था से सुधर कर आगे बढ़ता है और उसमें मानवता के कुछ लक्षण चाहे वे अपूर्ण ही हों—दिखलाई देने लगते हैं। इस अवस्था में मनुष्य समाज में रहने लगता है और सामाजिक नियमों

का कुछ पालन भी करने लगता है, तो भी उसमें आपाधापी की प्रवृत्ति ऐसी प्रबल होती है कि वह चाहता है कि संसार के समस्त पदार्थ उसी को मिल जायें। 'वामन भगवान' देखने में तो छोटे से थे, पर दान में पृथ्वी को नापा तो तीन ही चरणों में तीनों लोकों को ग्रहण कर लिया। इसे प्रवृत्ति-मार्ग का कुछ उन्नत रूप माना गया है। इसे जीव की 'वैश्यावस्था' भी कह सकते हैं।

तीसरा अवतार परशुराम जी का हुआ। यह जीव की उस अवस्था की सूचना देता है। जब मनुष्य स्थूल पदार्थों को जमा करते-करते उनसे थक जाता है, उसे मानसिक शाँति नहीं मिलती तो वह प्रवृत्ति-मार्ग से हटकर निवृत्ति की तरफ ध्यान देने लगता है। वह एक साथ तो प्रवृत्ति को नहीं त्याग सकता. पर स्थूल पदार्थों के बजाय शक्ति और अधिकार की लालसा करने लगता है। परशुराम कुछ अंशों में त्यागी थे पर बड़े क्रोधी और शक्ति के उपासक थे। यह जीव की मध्यम अवस्था (प्रवृत्ति-निवृत्ति का संयोग) का प्रथम स्वरूप है। इसे 'क्षत्रिय-अवस्था' का पूर्व भाग भी कह सकते हैं।

फिर रामावतार का वर्णन आता है। भगवान राम के जीवन में प्रवृत्ति और निवृत्ति का काफी संघर्ष दिखलाई पड़ता है। चाहे उनके पारिवारिक जीवन को देखा जाय और चाहे राजनैतिक-जीवन पर दृष्टि डाली जाय उनको सदा दोनों ओर खींचने वाली शक्तियों के बीच में चलकर प्रयत्नपूर्वक ही अपना मार्ग निकालना पड़ा। वन-गमन और सीता-परित्याग की घटनायें इसी की उदाहरण हैं। इस तरह का जीवन ऊपर से तो कठिनाइयों से भरा और कष्ट-पूर्ण जान पड़ता है, पर कर्तव्य-पालन की उच्च मनोवृत्ति का पालन करने से उसमें मनुष्य को बड़ा आन्तरिक आनन्द प्राप्त होता रहता है। यह जीव की 'क्षत्रिय अवस्था' का उच्च आदर्श-युक्त जीवन कहा जा सकता है।

कृष्णावतार मनुष्य की क्रमोन्नति में उस अवस्था का सूचक है जब मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति के संघर्ष में से गुजर कर निवृत्ति की

श्रेष्ठता को जान लेता है और उस मार्ग पर दृढ़ता-पूर्वक चलने का प्रयत्न करने लगता है। इसमें स्वार्थ-भाव की कमी होने लगती है और मनुष्य दूसरों के साथ निःस्वार्थ भाव से प्रेम करना सीखने लगता है। बृन्दावन के बाल कृष्ण की वंशी की ध्वनि किस प्रकार स्त्री-पुरुष, पशु, पक्षी, वृक्ष-लता, नदी, पर्वत आदि सबको मोह लेती थी, यह इस बात का सूचक है कि निवृत्ति मार्ग पर चलने वाला इसी प्रकार विश्व-व्यापी प्रेम का स्रोत बनने लग जाता है। इसमें व्यक्तिगत स्वार्थ बहुत कुछ जाता रहता है और वह सब प्राणियों के हित के लिये चेष्टा करने में आनन्द अनुभव करने लगता है। इसको जीव की 'ब्राह्मण-अवस्था' का पूर्व भाग कहा जा सकता है।

बौद्धावतार में जीव की जिस अवस्था का दिग्दर्शन कराया गया है उसे 'ब्राह्मण-अवस्था' का उत्तर भाग कह सकते हैं। पहले भाग में जीवात्मा को सामाजिक प्रेम, सेवा, निःस्वार्थता आदि गुणों का अभ्यास हो जाता है। अब छठी अवस्था आने पर आत्मा गुप्त आभ्यन्तरिक शक्तियों को विकसित करके सामूहिक रूप से समस्त विश्व की कल्याण भावना को परिपक्व करने लगती है। इस जीवन में भी मनुष्य को अनेक विघ्नों का सामना करना पड़ता है, तरह-तरह के आकर्षक प्रलोभनों से अपने को बचाना पड़ता है। जो जीव उनकी तरफ ध्यान न देकर आत्मोन्नति का लक्ष्य ही सम्मुख रखता है वह सब कष्टों और विपत्तियों को सह कर पूर्ण मनुष्यता प्राप्त करके महा-मानव की श्रेणी में पदार्पण करता है। निवृत्ति की अवस्था का यह अन्तिम लक्ष्य होता है।

इस विवेचन से यह परिणाम नहीं निकालना चाहिये कि परशु-राम, भगवान राम, कृष्ण आदि केवल भावनात्मक या काल्पनिक ही हैं, वास्तविक रूप में वे कभी नहीं हुए। वरन हम यह कह सकते हैं कि ये अवतार अपने समय के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति—परमात्मा के अंश स्वरूप थे, इस लिए विद्वानों ने उस युग का आदर्श (युग-पुरुष) अथवा प्रतिनिधि

उन्हीं को माना और उनके गुणों का वर्णन करके लोगों को उससे लाभ उठाने की प्रेरणा दी। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि सब जीवात्मा एक साथ किसी भी नीच या उच्च अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकते। यदि ऐसा हो तो भगवान की बनाई इस बहुरंगी दुनिया की विशेषता और आकर्षण ही समाप्त हो जाय। इस लिए अब भी संसार में जंगली से लेकर योगियों और महात्माओं तक छ: श्रेणियों में से प्रत्येक के व्यक्ति मौजूद हैं। और सच पूछा जाय तो अभी नीची श्रेणी के व्यक्तियों की ही भरमार है। ऊँची श्रेणी के नि:स्वार्थ भावना वाले तो सौ में से दो-चार और विश्व-कल्याण के व्रतधारी हजारों-लाखों में से एक मिल सकते हैं।

इस लिये जब हम अवतारों की प्रत्यक्ष लीलाओं का वर्णन या अभिनय करते हैं और उनको भगवान के स्वरूप में पूजते हैं तो साथ ही हमको उनकी आन्तरिक विशेषताओं पर भी ध्यान देना चाहिये। उनके उदाहरण से हमको समझना चाहिये कि संसार में बाधाओं अथवा कठिनाइयों से घबराना और भागना ठीक नहीं, वरन् छोटा-बड़ा घटिया-बढ़िया जो कुछ दिखाईपड़ता है वह सब भगवानके विधानके अनुसार ही है भगवान ने जीव को प्रयत्न करने की शक्ति अवश्य दी है जिससे वह चाहे तो प्रयत्न करके किसी भी दर्जे को अन्य लोगों की अपेक्षा शीघ्र पार कर सकता है, पर नियमित विकास के लिए सब जीवात्माओं को उपरोक्त सभी अवस्थाओं में से गुजर कर उनका अनुभव प्राप्त करना अनिवार्य है।

अवतारों के जीवन पर विचार करने का यह एक बुद्धिसंगत और लाभदायक तरीका है। इसको ठीक प्रकार समझ लेने से हम किसी भी अवस्था में रहने पर उसका उत्तमता-पूर्वक उपयोग कर सकते हैं और क्रमानुसार आगे बढ़ते चले जा सकते हैं। अवतार एक प्रकार से हम सबके, मानव-जाति के आदर्श स्वरूप हैं और वे ही प्राचीन काल से हमारा मार्ग-दर्शन करते आये हैं। उनकी भक्ति और पूजा करने के लिये

आवश्यक है कि हम केवल उनकी मूर्तियों के आगे भेंट पूजा रख कर ही संतुष्ट न हो जायें वरन् उनको गुणों को भी अपने भीतर न्यूनाधिक परिणाम में ग्रहण करने की चेष्टा करें। भगवान इन सब रूपों में, मनुष्यों को अपना कर्तव्य-पालन करते हुए लौकिक और पारलौकिक क्षेत्र में अग्रसर होने की शिक्षा देने के लिऐ ही अवतरित हुए थे।

भौतिकवादी दृष्टिकोण—

जो लोग धार्मिक प्रश्नों पर भौतिकवादी, सामाजिक या, राजनैतिक दृष्टिकोण से विचार करते हैं, उन्होंने भी जीवन के भौतिक विकास तथा अवतार सिद्धान्त में समन्वय ढ़ूंढ़ने की चेष्टा की है। उनका कहना है कि प्रथम चारों अवतार वैज्ञानिक विकास-सिद्धान्त के पूर्णतया अनुकूल हैं। वैज्ञानिक यह स्वीकार करते हैं कि पहले समस्त पृथ्वी जलमयी थी, इससे सबसे पहले जलचर जीव, जिनको सामान्य रूप से मछली ही कहा जा सकता है; उत्पन्न हुये। शास्त्रों ने भी जीव का प्रथम अवतार 'मत्स्य' ही बतलाया है। फिर कालक्रम से जब जल के भीतर से पृथ्वी के छोटे-छोटे टुकड़े निकलने आरम्भ हो गये यो वातावरण में परिवर्तन होने के प्रभाव से 'कच्छप' (कछुआ) श्रेणी के जीवों का आविर्भाव हुआ जो इच्छानुसार जल-स्थल दोनों में रह सकता है। शास्त्रकारों ने भी दूसरा अवतार 'कूर्म' या कछुआ को ही बतलाया है।

इसके पश्चात् जब भूमि के बड़े-बड़े टुकड़े बाहर निकल आये और वातावरण में परिवर्तन होने से उनमें कुछ वानस्पतिक खाद्य-सामग्री (घास-फूस झाड़ी आदि) उत्पन्न हो गई तो ऐसे जीवों की उत्पत्ति हुई, जो इन पदार्थों पर निर्वाह कर सकते हैं, पर जल और कीचड़ से भी नहीं डरते थे। क्योंकि उस समय जल से निकली हुई पृथ्वी का पूर्ण रूप से शुष्क होना सम्भव न था, उसमें जगह-जगह जल से भरे गड्ढे और दल-दल का होना अनिवार्य था। ऐसे वातावरण

में जिस पशु का निर्वाह होना सम्भव था वही उस समय उत्पन्न हुआ। अतः तीसरा अवतार 'वाराह' कहलाया इसमें कोई आश्चर्य नहीं। अन्य जीव जहाँ कीचड़ में फँस जाने से घबड़ाते हैं, अधिक गहरे चले जाने पर मर भी जाते हैं, वहाँ 'बाराह' अपने शक्तिशाली दाँत के प्रहार से कीचड़ को दूर-दूर तक फेंक कर उसे सुखा ही डालता है।

'नरसिंह' 'भगवान' का वर्णन स्पष्ट रूप से प्राणी विकास के उस युग का सूचक है जब पशु-जगत में हाथी, गैंड़े, सिंह, शार्दूल जैसे पशु उत्पन्न होकर पृथ्वी तल को हलचल पूर्ण बना चुके थे, उनका लघु-मानसिक विकास भी एक विशेष सीमा तक हो चुका था, तब परिवर्तन-चक्र के अनुसार ऐसे जीवों का आविर्भाव हुआ जिनमें पाशविक वृत्तियों के साथ कुछ मानवीय गुणों का भी समावेश था। विज्ञान में ऐसे जीवों को 'वनमानुष' कहा गया है और भू-गर्भ में से उनकी ठठरियाँ निकाल कर उनकी शारीरिक विशेषताओं का एक हद तक पता लगा लिया गया है। 'नरसिंह' उसी युग के प्रतिनिधि हैं और एक दृष्टि से विचार किया जाय तो उनको पशु और मानव की शृंखलाओं को जोड़ने वाली कड़ी कहा जा सकता है।

'वामन-भगवान' से मानव-जाति का आरम्भ स्वीकार किया जा सकता है। उनका आविर्भाव उस समय हुआ जब वन-मानुष सैकड़ों पीढियों तक प्रगति करता हुआ सहयोग पूर्वक रहना सीख गया। उसे अनुभव हो गया कि वन्य-प्रदेश के अन्य विशाल-काय और शक्तिशाली जीवों के मुकाबले में वह तभी ठहर सकता है जब संघबद्ध होकर कार्य करने की विधि से काम लेने लगे। पर उनकी यह सहयोग-भावना आत्मरक्षा और आक्रमण तक ही सीमित थी। जीवन-निर्वाह की सामग्रियों के लिये वे आपस में लड़ने-झगड़ने लग जाते थे। धीरे-धीरे उनमें परिवारों और वर्गों का संगठन होने लगा और वे समझौते से काम करने के लाभ समझने लगे। वामन-भगवान का कथानक उसी युग के मानवों से सम्बन्ध रखता है जब कि उनमें मानवता की अनेक

प्रवृतियाँ उत्पन्न हो गई थीं पर बौद्धिक दृष्टि से अभी उनका विकास वहुत कम हुआ था और इस लिए पूर्ण बुद्धिमान मनुष्य के मुकाबले में वे 'वामन' या 'बौना' ही कहे जा सकते थे ।

मनुष्य का बौद्धिक और सामाजिक विकास आरम्भ में धीरे-धीरे ही होता रहा, पर जब संगठित हो जाने से और कृषि कार्य आरम्भ कर देने से उनको जीवन-निर्वाह की सामग्री की सुविधा हो गई तो शारीरिक शक्ति की वृद्धि शीघ्रता पूर्वक होने लगी और उनमें से कितने ही व्यक्ति अपनी शक्ति के मद से कम शक्ति वालों के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार करने लगे । वे स्वयं परिश्रम करके उपार्जन करने के बजाय दूसरों की सामग्री को लूट-मारकर अपहरण कर लेनेमें वड़प्पन और लाभ अनुभव करने लगे जब यह प्रवृत्ति वहुत अधिक बढ़ गई और इसके कारण समाज का विघटन होने लग गया तब कुछ शक्ति और बुद्धि सम्पन्न पुरुषों ने इसका अन्त करने का निश्चय किया । इनमें श्री परशुराम जी अग्रगण्य थे और उन्होंने अपनी शक्ति की वृद्धि और सुदृढ़ संगठन करके लूटने की प्रवृत्ति वाले लोगों के मूलोच्छेद का अभियान आरम्भ किया और उनको दण्ड के रूप में इतनी शिक्षा दी कि वे अनाचार और अत्याचार करना भूल गये । तब समाज में एक नये युग का श्री गणेश हुआ ।

राम-चरित्र तो वर्तमान समय तक समाज के लिए एक आदर्श माना जाता है । यद्यपि उस समय व्यावसायिक अथवा औद्योगिक दृष्टि से समाज बहुत आरम्भिक दशा में था और वर्तमान अर्थों में सभ्यता का उद्भव भी बहुत कम हो पाया था, पर भगवान राम ने उस समय भी जिस सामाजिक-मर्यादा की स्थापना की वह न्याय, सरलता और सचाई के नियमों पर आधारित थी । इस लिए जीवन-निर्वाह की सामग्री बहुत सीमित और पुराने ढंग की होने पर भी लोगों का जीवन सुखी बन गया था । भगवान राम के समय में ही साम्राज्यवादी योजनाओं का प्रमुख प्रसारकर्ता रावण उत्पन्न हुआ जिसने अपनी सैनिक शक्ति

बढ़ाकर समस्त आर्यावर्त पर एकतंत्रीय अधिकार जमाने की चेष्टा की। पर भगवान राम ने उसे अपनी दृढ़ता और त्याग-तपस्या के बल पर असफल कर दिया, जिसके उपलक्ष्य में वे आज तक भारतवासियों की दृष्टि में परमात्मा के एक विशेष अवतार के रूप में पूज्य और उपास्य बने हुये हैं।

भगवान कृष्ण भी साम्राज्यों और साम्राज्याभिलाषियों के विध्वंसक थे। कंस के साथ तो जन्मकाल से ही उनका विरोध था और युवावस्था में पदार्पण करते ही जरासन्ध से भी-जो उस समय एक बड़े भूभाग की सम्राट पदवी को प्राप्त कर चुका था—उनकी शत्रुता हो गई। इसके सिवाय उस समय दुर्योधन, शिशुपाल, पौण्ड्रक, हंस-डिम्भक आदि और भी अनेक राजा सम्राट बनने की चिन्ता में व्यस्त थे और अपनी प्रजा का शोषण करके सैन्य शक्ति को वढ़ाने में जुटे हुये थे। भगवान कृष्ण ने अपनी नीतिज्ञता और दूरदर्शिता से इन स्वार्थपर एकतन्त्र शासकों का अन्त करके ऐसी परिस्थिति लादी जिसमें हजारों वर्ष तक देश में गण-तंत्र शासन प्रचलित रह सका। देश की राजनैतिक स्थिति का परिवर्तन करने के साथ ही भगवान कृष्ण समाज में सेवा, सहयोग, प्रेम-भाव और कला की प्रवृत्तियों के प्रवर्तक और वृद्धि करने वाले भी हुये। उन्होंने लोगों को आत्म-भावना का उपदेश दिया और समाज तथा धर्म की रक्षा के लिये मनुष्य को किस प्रकार नि:स्वार्थ और निर्भय भाव से उद्यत रहना चाहिये इसका सर्वश्रेष्ठ उपदेश गीता द्वारा उपस्थित किया। उनका यही एक महान दैवी कार्य ऐसा है जिससे आज हम भारतवासी ही नहीं संसार के अन्य देशों के भी बहुसंख्यक व्यक्ति उनको संसार की सबसे महान ईश्वरीय विभूति स्वीकार करते हैं।

भगवान बुद्ध का आविर्भाव समाज में उत्पन्न हो गई कितनी ही भयंकर सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन के लिए हुआ। उस समय यज्ञों में पशुहिंसा की अत्यधिक वृद्धि के कारण अनेक प्रकार

से समाज का पतन होता जा रहा था और व्यक्तियों में दोष-दुर्गुण बढ़ते जाते थे। बुद्ध ने स्वयं त्याग और तपस्या का उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित करके लोगों को झूँठे अन्धविश्वासों को त्याग कर सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा के मार्ग पर चलने की शिक्षा दी। इसका परिणाम यह हुआ कि धर्म में से ढोंग का बहुत कुछ निराकरण हो गया और शूद्र तथा स्त्रियों की स्थिति में सुधार होकर वे समाज के उपयोगी अंग बना लिये गये। इससे भारतीय समाज की शक्ति में वृद्धि हुई और लगभग एक डेढ़ हजार वर्ष तक यहाँ काफी प्रगति-शील शासन-संस्थायें स्थित रह कर जनता में सुख-सुविधा का वातावरण बनाये रही। भगवान बुद्धका समस्त समाजके लिये इतना प्रतिदान सामान्य बात नहीं थी उसने देश की काया पलट ही कर दी और आज २५०० वर्ष बीत जाने पर भी उनके कारण भारत का समस्त जगत में सम्मान किया जाता है। ऐसी ही अलौकिक आत्माओं को जीवन्मुक्त अथवा अवतार कहा जाता है। चाहे भौतिकतावादी अलौकिकता पर विश्वास न करें, पर महात्मा बुद्ध की विशेषता और श्रेष्ठता के सम्मुख उनको भी नतमस्तक होना पड़ता है।

इस बात का कोई महत्व नहीं कि ऐसे महामानवों को किस नाम से पुकारा जाय। अवतार, जीवन-मुक्त, पैगम्बर, जगत त्राता उद्धारकर्ता, अतिशानव आदि शब्द एक ही भाव को प्रकाशित करते हैं। जिस समय समस्त संसार अथवा कोई महा-जाति भीषण संकट में ग्रस्त हो जाती है और उसे चारों ओर नाश-सर्वनाश की विभीषिका के दर्शन होने लगते हैं, जब संकट से बचने के लिये किये गये उनके समस्त प्रयत्न निष्फल सिद्ध होते हैं और अनुभव होता है कि कोई व्यक्ति परिस्थिति का सुधार नहीं कर सकता, तब छोटे-बड़े सभी व्यक्तियों के हृदय में यह भावना उठने लगती है कि कोई ऐसी अलौकिक शक्ति प्रकट हो जो इस 'असम्भव' जान पड़ने वाले कार्य को सम्भव कर दे। हमारे देश में राम, कृष्ण, बुद्ध, शंकर, चैतन्य और विदेशों

में जरदुश्त, कनफ्यूशस, मूसा, ईसा, मुहम्मद आदि का आविर्भाव ऐसे ही अवसरों पर हुआ था। देखने में वे भी अन्य लोगों की तरह चार हाथ-पाँव और पाँच इन्द्रियों से युक्त मनुष्य ही थे, पर उनके अन्तर में विश्व-ब्रह्माण्ड का संचालन करने वाली उस महान चैतन्य-सत्ता का प्रकाश इस प्रकार जगमगा रहा था कि उनको उस निराशा के अन्धकार में सत्य-मार्ग दिखलाई पड़ गया और उन्होंने उसके द्वारा संसार में एक नई क्रांति उपस्थित करके मानव-समाज को नष्ट होने से बचा लिया। तब सर्व साधारण ने उनकी पूजा की और उनकी असाधारण शक्ति को देखकर उनको 'अलौकिक पुरुष' मान लिया। इसी भाव को हम 'अवतार' के द्वारा प्रकट करते हैं।

ऊपर 'अवतार' का जो विवेचन मनुष्य के मानसिक-विकास और सामाजिक-विकास ही दृष्टि से किया गया है, उसका आशय यह नहीं कि 'भारत के अवतार' कल्पित हैं अथवा वे सामान्य व्यक्ति ही थे इस बात को सभी समझदार लोगभी स्वीकार करते हैं कि अवतारके रूप में प्रसिद्ध ये महामानव, एक नवीन युग के स्थापनकर्ता हुएहैं और उन्होंनें' किसी महासंकट से मानवता की रक्षा करके उसे प्रगति मार्ग पर अग्रसर होने की शक्ति प्रदान की है। कुछ लोग, जिनको हम'ज्ञानमार्गी कह सकते हैं, इस युग-परिवर्तन' की घटना को प्रधान रूप से भावनात्मक मानते हैं और उसनें किसी व्यक्ति विशेष के भाग को गौण ही बतलाते हैं। दूसरे लोग जिनको 'भक्ति-मार्गी' कहा जा सकता है, इसमें भगवान के 'साकार अवतार' की महिमा का ही दर्शन करते हैं। इन दोनों विचार-धाराओं का विवेचन आगामी अध्याय में किया जायगा।

———

दूसरा अध्याय

अवतार--भावनात्मक और मानव रूप में

बौद्ध-धर्म के अनुयाइयों में, विशेषत: तिब्बत के बौद्ध लामाओं और साधारण जनता में भी यह किम्वदन्ती प्रचलित है कि 'यद्यपि गौतम बुद्ध' ने मानव शरीर को त्याग दिया और उनकी अस्थियाँ अभी तक स्मारक-स्वरूप रखी हैं, तो भी उन्होंने वास्तव में इस पृथ्वी का त्याग कभी नहीं किया।" इससे हम यह तात्पर्य समझ सकते हैं कि यद्यपि बुद्ध भगवान का पार्थिव-शरीर नष्ट हो गया, पर उनका भावनात्मक देह निरन्तर पृथ्वी-मंडल में विद्यमान रह कर अब भी अगणित मनुष्यों को प्रभावित कर रहा है।

अवतार के सम्बन्ध में ये दोनों दृष्टिकोण प्राचीन काल से प्रचलित हैं। आधुनिक युग के विद्वान अधिकाँश में भावनात्मक अवतार के समर्थक हैं, क्योंकि किसी स्थूल-देहधारी व्यक्ति को ईश्वर मानकर उसकी बन्दना या उसके प्रति देव-भाव से श्रद्धा प्रकट करना उनकी रुचि के अनुकूल नहीं है। दूसरा कारण यह हो सकता है कि वर्तमान समय में हमारे देश में बहुसंख्यक व्यक्तियों ने स्वयम् अवतार होने की घोषणा करना आरम्भ कर दिया है। अन्य देशों में भी इस प्रकार के कुछ लोग पाये जाते हैं, जो दैवी-प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं। इन लोगों की स्थिति और कार्यों को देखकर समझदार व्यक्तियों की अवतार-सम्बन्धी धारणा और भी खराब हो जाती है, और वे अवतार सिद्धान्त का ही विरोध करने लग जाते हैं। पहले हम पाठकों के समक्ष भावनात्मक अवतार में विश्वास रखने वाले सज्जनों का दृष्टिकोण उपस्थित करते हैं, जिससे विदित हो सकेगा कि वर्तमान समय के अधिकांश शिक्षित व्यक्ति अवतार को किस रूप में मान रहे हैं।

भावनात्मक दृष्टिकोण--

इस दृष्टिकोंण के धार्मिक व्यक्ति जो संसार की वर्तमान दुर्दशा को ध्यानपूर्वक देख रहे हैं, उनको इसके सुधार और परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव होती है। वे मानते हैं कि कपड़ा मैला हो जाता है तो उसे धोकर साफ करना पड़ता है। इमारत सड़क, मशीन, मोटर सबको उपयुक्त दशा में रखने के निमित्त समय-समय पर मरम्मत करनी पड़ती है। जराजीर्ण सामाजिक-व्यवस्था की सफाई और मरम्मत भी समयानुसार होती रहनी चाहिये। इसके लिये सुधारकों का आना-जाना बना रहता है। धर्मोपदेशक, समाज-सुधरक, मार्गदर्शक, देवदूत, सन्त, ऋषि, मुनि समय-समय पर आते-जाते रहते हैं और अपने काल की सामाजिक परिस्थितियों को देखकर उन्हें सँभालने, सुधारने का अपने अपने ढंग से प्रयत्न करते हैं।

"पर जब परिस्थिति अधिक विषम हो जाती है तो विश्व-संचालिका शक्ति-'महाकाल' को अपने शस्त्र सँभालने पड़ते है। मामूली गड़बड़ी का उपाय सामान्य सुधारकों द्वारा सम्पन्न हो सकता है, पर जब पाप सीमा को उल्लंघन कर जाता है, मर्यादायें टूट जाती हैं जन-मानस किसी शुभ प्रेरणा और सत् प्रभावसे प्रभावित होने की क्षमता खो बैठता है, तब 'महा सुधारक' की जरूरत पड़ती है इस कार्य को विश्व-संचालक (महाकाल) स्वयं पूरा करते हैं। इन दिनों जन-जीवन जिस अनैतिक स्तर पर पहुँच गया है, उसमें अब छोटे सुधारकों से काम चलता नहीं दीखता। अब उसके लिये बहुत बड़ी उलट-पुलट की-- उथल-पथल की आवश्यकता अनिवार्य हो गई है। इस प्रयोजन की पूर्ति अनादि काल से 'महाकाल' ही करते रहे हैं। अब भी वे ही करने जा रहे हैं।"

आगामी कुछ ही वर्षों में जिस उथल-पुथल की संभावना स्पष्ट दिखाई पड़ रही है, उसे भावनात्मक दृष्टिकोण वाले विचारक" भली प्रकार अनुभव करते हैं। वे कहते हैं कि अब ऐसी परिस्थितियाँ

उत्पन्न होने जा रही हैं कि जिनसे मनुष्य-जाति के कष्टों में वृद्धि हो और उसकी ऐसी प्रताड़ना हो जिससे विवश होकर वह अपनी भूल को अनुभव करें और आगे लिये सावधान हों। अनीति अन्ततः हानिकारक होती है, इतनी सी शिक्षा यदि लोग अपना सके होते तो आज प्रकृति को कुपित होकर रुद्र रूप नहीं धारण करना पड़ता और असंख्यों व्यक्तियों को निरर्थक कष्ट नहीं भोगना पड़ता।''

यह परिस्थिति किसी दृष्टि से हितकारी नहीं कही जा सकती और भगवान को तो इस तरह लोगों को दण्ड देना पसन्द हो ही नहीं सकता। पर उनको यह सब कुछ बाध्य होकर करना पड़ता है। आज मानव-समाज जहरवाद (फोड़े) का रोगी बन गया है और जब तक उसका आपरेशन करके दूषित मवाद को बाहर न निकाल दिया जायगा तब तक वह स्वस्थ्य नहीं हो सकता। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये भगवान का 'अवतार' शीघ्र होने की आशा की जा रही है।

''अवतारों का सदा यही प्रयोजन रहा है कि किसी प्रकार अशान्ति का अन्त होकर शान्ति की स्थापना हो। महाकाल इस उद्देश्य से एक भावनात्मक प्रवाह उत्पन्न करते हैं। इस प्रवाह से जन-मानस उद्वेलित होता है और उसमें से ऐसे कितने ही 'योद्धा' निकल पड़ते हैं जो इस दैवी पुण्य-प्रयोजन की पूर्ति के लिये असाधारण पुरुषार्थ कर दिखाते हैं। भले ही उस अभियान के नेताओं में से किसी एक को विशेष ख्याति मिल जाय, पर वस्तुतः होता वह भावनात्मक प्रवाह ही है, जो सहज ही अनेक साथी-सहयोगी बनाकर खड़े कर देता है। आश्चर्य-चकित लोग प्रभु प्रेरित सूक्ष्म जगत की विधि व्यवस्था को तो देख नहीं पाते, बाहर से जो सबसे प्रमुख व्यक्ति दीखता है, उसी के सिर पर श्रेय का सेहरा बाँध देते हैं।''

''अवतार या विजेता कोई एक घोषित किया जाता है—यह मनुष्यों की भूल भरी परख है। तत्वदर्शी जानते हैं कि एक व्यक्ति कितना ही बड़ा या समर्थ क्यों न हो, वह अनेक मनुष्यों के सहयोग के

बिना कुछ नहीं कर सकता। यह सामूहिक संघर्ष की प्रवृत्ति अदृश्य अवतार (महाकाल) ही समय-समय पर भड़काते हैं। वे निराकार हैं, इस लिए उनका कार्य-क्षेत्र भी सूक्ष्म जगत ही होता है। वे भाव-स्वरूप-चैतन्या हैं, इस लिये विश्वव्यापी चैतन्य-तत्व में ही उनकी इच्छा सक्रिय होती है। उन्हीं की स्फुरणा से प्रबुद्ध व्यक्ति बड़े-बड़े काम करने लगते हैं। उन्हें सहयोग, श्रेय,साफल्य उपलब्ध होता है। इस लिये उन्हीं को कर्ता, विजयी, उद्धारक, अवतार मानते हैं। पर वास्तविकता कुछ और ही होती है। उनको प्रेरणा देने वाला सूत्रधार पर्दे के पीछे छिपा बैठा रहता है, उसे चर्म-चक्षु कब देख सकते हैं।

अनीति को हटाकर उसके स्थान पर औचित्य एवं विवेक को प्रतिष्ठापित करने का दैवी प्रयोजन अनेक व्यक्ति पूर्ण करते हैं और उनको यश भी प्राप्त होता है। महत्व-पूर्ण अवसरों पर यह अवतरण प्रक्रिया अनादि काल से उपस्थित होती आई है। अब फिर वैसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाने पर उसी प्रकार की पुनरायवत्ति होने वाली है।

भावनात्मक अवतरण के उदाहरण—

"प्राचीन काल में एक बार उत्पादन और वैभव ठप्प हो गया। सभी देव और असुर आलस में ग्रसित होकर बैठ गये तब "महाकाल" ने समुद्र-मन्थन की प्रेरणा की। देवता और असुरों का सम्मिलित सहयोग संभव हो गया और समुद्र से ऐसे १४ 'रत्न' निकले जिन्हें पा कर संसार की समृद्धि अनेक गुनी बढ़ गई। पर समुद्र-मंथन का कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए इस बात की आवश्यकता पड़ी कि इतनी भारी मथानी (पर्वत) को कहाँ रखा जाय ? उसका भार कौन सम्भालेगा ? तव कच्छप-अवतार आगे आया। उसने आधार बनना स्वीकार किया। उसी की पीठ पर समुद्र-मन्थन हो सका। कच्छप-अवतार की जय बोली गई, क्योंकि उसने एक बड़ा उत्तरदायित्व सँभाला था।

फिर भी वे समुद्र-मंथन की सारी प्रक्रिया करने वाले नहीं कहे जा सकते हैं। जिस वासुकि सर्प की रस्सी बनाई गई, जिन देवता और असुरों ने लम्बी अवधि तक अपार श्रम किया, जिस समुद्र ने अपने गर्भ से निकाल कर वे रत्न दिये, उन सभी का सहयोग महत्वपूर्ण था। वस्तुतः यह सभी की सम्मिलित विजय थी। तात्विक दृष्टि से देखा जाय तो इसका श्रेय भगवान द्वारा प्रेरित उस भावनात्मक प्रवाह को है, जिसने जन-मानस में एक विशिष्ट हलचल और उत्साह उत्पन्न किया और इतने विशाल साधन जुटाने के कार्य को संभव बना दिया। तो भी घटना का वर्णन करने वाले लेखक उसका श्रेय कच्छप अवतार को देते हैं। इसमें कोई बड़ा दोष भी नहीं है। पूरी न सही एक महत्वपूर्ण भूमिका तो आखिर उनकी भी थी ही।"

हर अवतार में इसी तथ्य की पुनरावृत्ति होती रही है। मत्स्य कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध के चरित्रों पर व्यापक दृष्टि डालने से यही तथ्य उनमें अन्तर्निहित जान पड़ता है। अवतारी युग-पुरुष बड़े-बड़े अद्भुत काम कर दिखाते हैं। पर दो बातें हर 'अवतार' में एक सी होती हैं—एक यह कि उनका उद्देश्य तत्कालीन अवांछनीय स्थितियों को बदलना होता है और दूसरा यह कि इस प्रयोजन में जन-सहयोग की पर्याप्त मात्रा सम्मिलित होती है। इतना ही नहीं 'अवतार तभी होता है जब सारा जन-मानस क्षुब्ध और असन्तोष युक्त हो जाता है। इसी को अवतार के कथानकों में पृथ्वी का पीड़ित और भारग्रस्त होकर देवताओं और भगवान की शरण में जाने के रूपक की भाँति वर्णन किया गया है।

"अब दसवाँ 'निष्कलंक' अवतार इन दिनों हो रहा है अथवा यों कहना चाहिये कि हो चुका है। यह एक ऐसा भावना-प्रवाह है जिसका उद्देश्य हजारों वर्षों की कलंककालिमा को धोकर मानवता का मुख उज्ज्वल करना है।" दसवें निष्कलंक अवतार के नाम पर अन्ततः उस अभियान की सफलता का सेहरा किसके सिर पर बाँधा जायगा, इसमें

साधारण लोगों को भले ही दिलचस्पी हो, पर तत्त्वदर्शियों की दृष्टि उसका कुछ भी मूल्य नहीं। वे जानते हैं कि इतने बड़े प्रयोजन की पूर्ति कोई एक व्यक्ति नहीं कर सकता। भगवान अपने विशेष प्रतिनिधि संसार में भेजते रहते हैं। पर वे अंश-अवतार ही होते हैं। 'अवतार' की वेला में अनेक प्रबुद्ध आत्मायें एक साथ अवतरित होती हैं और वे मिल-जुलकर ही दैवी प्रयोजन की पूर्ति संभव करती हैं।

इस तथ्य को समझने वाले विचारक ऐसी युग-परिवर्तन की घटनाओं में व्यक्तियों को कम महत्व देते हैं, वे भावना-स्रोत को ही पहिचानने का प्रयत्न करते हैं। इस समय इस प्रकार का जो प्रवाह समस्त विश्व को उद्वेलित कर रहा है, उसके पीछे एक ही लक्ष्य है -मानवता के अतीत कालीन उज्ज्वल गौरव की पुनः प्रतिष्ठापना। लम्बी अवधि तक विधर्मी शासन के नीचे पड़े रहने और आवश्यक संघर्ष से बचते रहने की भीरुता का कलंक हमारे मस्तक पर एक कालिमा की तरह लगा हुआ है। हम अवांछनीय स्थिति को इसलिये सहन करते रहे कि संघर्ष में पड़ने से हमें कष्ट उठाने पड़ेंगे, त्याग करने पड़ेंगे। यह कलंक एक साहसी, शूरवीर और आत्मा को अमर मानने वालों के लिये निःसन्देह बहुत घृणित है। अब जन-मानस में यही भावना-प्रवाह उत्पन्न होकर हलचल मचा रहा है कि स्वाभिमानी, सत्यनिष्ठ, विवेकशील मनुष्यों की तरह जियेंगे और हमारे जीवनों पर पिछली शताब्दियों में जो कलंक लगा है, उन्हें प्रायश्चित्तपूर्वक धो डालेंगे। इस भावना-प्रवाह को 'निष्कलंक अवतार' ही कहा जायगा।

दशम अवतार हो चुका है—वह पढ़-बढ़ और परिपुष्ट हो रहा है। पौराणिक-भाषा में उसका नाम है निष्कलंक' क्योंकि वह हमारी पिछली तथा वर्तमान दुष्प्रवृत्तियों, कलंकों को धोने आ रहा है। उसके द्वारा ऐसा भावनात्मक-प्रवाह उत्पन्न किया जा रहा है, जिससे लोग अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा समस्याओं में ही उलझे रहने की बजाय खुशी से लोक-मंगल सम्बन्धी कार्यों के लिये कटिबद्ध होंगे।

इसके लिये बड़े-बड़े तप-त्याग करने में भी संकोच न करेंगे। 'कल्कि-अवतार' का यह प्रत्यक्ष प्रेरणा-प्रवाह हम अपने चारों ओर प्रवाहित होते हुए इस समय भी आसानी से देख और अनुभव कर सकते हैं।

पर इस संक्रान्ति-काल (युग-संध्या) में कुछ ऐसे व्यक्ति भी निकल पड़ते हैं जो इस महान उत्तरदायित्व का विचार न करके अवतार होने का दावा करने लगते हैं और संसार को भीषण परिस्थितियों से मुक्ति दिलाने का वायदा करते हैं। इससे अनेक सीधे-साधे व्यक्ति मार्ग च्युत हो जाते हैं और 'अवतार' के वास्तविक कार्य में सहयोग देने के बजाय उल्टी-सीधी बातें करने लगते हैं, जिससे इस महान-उद्देश्य को हानि पहुँचती है। ऐसे तथाकथित 'अवतार' उन घुस-पैठ करने वाले व्यक्तियों की तरह हैं, जो जहाँ कहीं लाभकारी स्थिति देखते हैं वहीं वैसा ही रूप बनाकर उपस्थित हो जाते हैं। जिस प्रकार वर्तमान समय में शासनाधिकार पा जाने पर हजारों चलते-पुर्जा व्यक्ति शुद्ध खद्दर की पोशाक पहिन कर 'गाँधी जी के अनुयायी' बन बैठे और अन्त में काँग्रेस का पतन कराने वाले सिद्ध हुए, इसी प्रकार ये 'अवतार' नामधारी भी 'निष्कलंक अवतार' के कार्यक्रम में सहायता पहुँचाने के बजाय स्वार्थ-पूर्ति की कार्यवाहियों से बाधक ही सिद्ध होंगे।

"इस समय इतिहास की पुनरावृत्ति हो रही है। अवांछनीय अन्याय और अविवेक का उन्मूलन करके, सद्भावनाओं एवं सत्-वृत्तियों का अभिवर्धन करने के लिए दसवाँ 'निष्कलंक अवतार' फिर हो रहा है। आँख वाले उसका दर्शन कर सकते हैं और बुद्धि वाले ईश्वरीय-योजना में सहयोग देकर अनन्त सौभाग्य के भागीदार बन सकते हैं।"

यहाँ तक अवतार के प्रयोजन और स्वरूप के सम्बन्ध में भावनात्मकतावादी दृष्टिकोण का वर्णन किया गया। भगवान की सत्ता और संसार के लिये उनकी व्यवस्था को वे भी स्वीकार करते हैं और उनकी सर्वशक्तिमानता में भी विश्वास रखते है, पर उनका विचार

है कि इस कार्य के लिये साक्षात् भगवान को मनुष्य शरीर धारण करने की आवश्यकता नहीं, वे किसी भी एक या अनेक व्यक्तियों को प्रेरणा, साहस, शक्ति प्रदान करके इस उद्देश्य को पूरा करा सकते हैं। यदि शास्त्रों का गम्भीर भाव से मनन किया जाय तो यह विचार-धारा भी उनमें पाई जाती है। इसे 'आधुनिक' ही समझा जाय यह कोई जरूरी बात नहीं। प्राचीन ऋषि-मुनियों में से भी कितनों ने ही 'अवतार' की इसी रूप में व्याख्या की है। उनका अभिमत है कि संसार की दशा का सुधार और परिवर्तन करने के लिए भगवान किसी उपयुक्त मानव के अन्तर में अपनी विशेष शक्ति का प्रवेश करा देते हैं और जब वह प्रयोजन पूरा हो जाता है तो वह शक्ति भी निकल कर जहाँ की तहाँ पहुँच जाती है। विशेष उद्देश्य की पूर्ति भगवान की विशेष शक्ति से ही होती है पर संसार के देखने लिये एक या कुछ अधिक व्यक्ति उसके निमित्त बन जाते हैं।

प्रत्यक्ष अवतार के समर्थक—

दूसरा पक्ष उन भक्ति-भाव प्रधान विद्वानों का है जो भगवान के साकार रूप में विशेष आस्था रखते हैं और कहते हैं कि मानव-समाज को शिक्षा और प्रेरणा देने के लिए भगवान को मानव-देह धारण करके अपनी लीला करनी चाहिये। ऐसा होने पर ही सामान्य मानव उसे हृदयंगम कर सकता है और उसका अनुकरण करके सफल होने का विश्वास कर सकता है। यदि भगवान अपनी शक्ति का अतीन्द्रिय रूप से प्रयोग करके किसी महान प्रयोजन को पूरा कर दें, अथवा असंभव बना दें, अथवा असंभव को संभव बना दें, तो इससे साधारण मनुष्य का मानसिक बल नहीं बढ़ सकता। वह यही कहता रहेगा कि "यह तो भगवान की महिमा है, हम साँसारिक प्राणी उसकी समता किस प्रकार कर सकते हैं।" मानव-जीवन में इस प्रकार के प्रत्यक्ष ईश्वरीय सहयोग की कितनी अधिक आवश्यकता है इस सम्बन्ध में 'कमिङ्ग आफ वर्ल्ड सेवियर' (जगत-त्राता का आगमन) पुस्तक में कहा गया है—

"ईश्वर के बिना मानव-जीवन एक दुर्वह भार और न सुलझ सकने वाली समस्या है। भगवान से पृथक होते ही हमारा जीवन अपने मूल स्रोत, आनन्द, प्रसन्नता से पृथक हो जाता है। अपने आरम्भिक स्रोत से कटी हुई नदी की तरह वह थोड़े ही समय में सूख जाता है। इसके बिना किसी श्रेष्ठ और महान लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। बिना भगवान के जीवन का यथार्थ रूप में जी सकना असम्भव है। आज मनुष्य भगवान को भूल गया है। वह सोचता है कि मैं स्वयं ही अपना स्वामी हूँ और साँसारिक विषयों की जिस प्रकार चाहूँ व्यवस्था कर सकता हूँ। इसमें ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं। उसकी इसी मिथ्या अहम्मन्यता का परिणामहै कि आज मनुष्य अपने ही आविष्कारों के परिणाम स्वरूप मृत्यु के सामने खड़ा हैं और भयंकर दुर्घटना होकर उसके सर्वनाश की संभावना पैदा हो गई है।

"आज संसार की सबसे बड़ी आवश्यकता 'भगवान' ही है। समस्त मानव-जाति को भगवान के समझने और मानने की आवश्यकता है। मनुष्य को ईश्वर के सम्बन्ध में विचार करना चाहिये, ईश्वर के सम्बन्ध में वार्तालाप करना चाहिये, ईश्वर को जीवन का मूल-आधार स्वीकार करना चाहिये और स्वेच्छापूर्वक जीवन के समस्त व्यापारों में भगवान को पिता और सब मनुष्यों को भ्राता मानकर आचरण करना चाहिये। वर्तमान समय का समाज संगठन बिना किसी निश्चित योजना के अस्तव्यस्त हो गया है, उसमें अनेक प्रकार के अन्याय और असमानता का समावेश हो गया है। उसमें भगवान के पितृत्त्व और मनुष्यों के भ्रातृत्त्व का खण्डन कर दिया गया है और यही कारण है कि आज मानव जाति आत्महत्या करके जड़मूल से नष्ट हो जाने की स्थिति में पहुँचती जाती है।"

भगवान ही संसार का संचालक है--

बिना भगवान के मनुष्य सर्वथा अशक्त है। पर यदि मनुष्य असहाय है तो भगवान करुणासिन्धु है। आज मनुष्य को बहुत अधिक

मात्रा में आध्यात्मिक सहायता की आवश्यकता है। इस समय मनुष्य के ऊपर भौतिकता का नशा, जिस प्रकार चढ़ गया है, उसे देखते हुए आवश्यकता है कि वह भगवान को फिर से समझे उनके लिये भगवान को फिर से सिद्ध करने की आवश्यकता है। उन्होंने 'एटम बम' और 'हायड्रोजन बम' की शक्ति को देख लिया है, अब आवश्यकता है कि वे दुष्टता पर विजय पाने की ईश्वरीय-शक्ति को भी देखें। मनुष्य के सम्मुख यह प्रकट हो जाना चाहिये कि ईश्वर की महिमा कोई कहानी किस्सा है अथवा एक वास्तविक तथ्य ? इस समय बहुत आवश्यक है कि कोई इस बात का सबूत लोगों के सामने उपस्थित करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये मनुष्य तो ईश्वर की ऊँचाई तक पहुँच नहीं सकता इस कारण करुणा-सागर भगवान को ही मनुष्य-लोक में अवतीर्ण होना पड़ेगा।

दैवी अवतरण—

जैसा कि इस समय देखने में आ रहा है, मनुष्य भगवान को उसी समय ठीक तरह से समझ सकता है जब वह मानव-शरीर में उसके सामने खड़ा हो, चले-फिरे और उसके साथ मिलकर विविध प्रकार की लीलायें करे। संसार को भगवान की पूर्ण रूप से आवश्यकता है, वह भी केवल भावना रूप में नहीं वरन् स्थूल दृष्टि में भी।" वे ऐसा भगवान चाहते हैं जो उन्हीं में से एक जान पड़े, उनकी चिन्ता करें, उनको प्रेम करें, उनके लिये परिश्रम करें, उनके लिए कष्ट सहन करें। वे चाहते हैं कि भगवान उनके पास आकर उनको शिक्षा दें, उनको नई दैवी-सम्पदा का मार्ग-दर्शन करायें और यह सब काम वह उन पर विशेष भार डाले बिना स्वयं ही पूरा करें।"

मानव-जाति का इतिहास इस प्रकार के उदाहरणों से भरा हुआ है, जब दयालु भगवान ने पृथ्वी पर प्रकट होकर मानवता की रक्षा की। मनुष्य इस बात को जानते हैं, पर 'दैवी माया' के प्रभाव से फिर भूल जाते हैं। इस समय तो वे इस बात को स्वीकार करने

का साहस भी नहीं कर सकते कि वर्तमान समय में भगवान मनुष्य रूप में अवतार लेंगे। वे जानते हैं कि प्राचीन समय में भगवान ने कितनी ही बार अवतार लिया है, पर इस समय रक्त-माँस से बनी देह में जन्म लेकर वैसे कार्य कर सकते हैं, यह बात उनके मन में नहीं बैठती। इसे आत्म-ज्ञान सम्बन्धी मूढ़ता के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है।"

भगवान कृष्ण ने आज से ५००० वर्ष पहले स्पष्ट रूप में कहा था—"जब कभी धर्म-न्याय का पतन होता है और अधर्म प्रधानता प्राप्त कर लेता है; तो मैं जन्म लेता हूँ।" अगर उनके ये शब्द सत्य हैं, तो वे इस समय भी आ सकते हैं। हम इस बात को पढ़ते और समझते भी हैं, पर इस पर हमारा दृढ़ विश्वास नहीं होता। इसमें लोगों का ज्यादा दोष भी नहीं हैं। भगवान की माया बड़ी प्रबल है और उसी ने इस समय मनुष्य की बुद्धि पर पर्दा डाल रखा है।

हम ऐसे सज्जनों से पूछना चाहते हैं कि क्या अब शक्तिकी निगाह से भगवान दिवालिया हो गया है? क्या भगवान ने मनुष्यों से प्रेम करना छोड़ दिया है। क्या दैवी-अवतारों का युग समाप्त हो गया है। क्या संसार में तर्क विज्ञान और 'बुद्धिमानी' की वृद्धि हो जाने से भगवान का आना रुक गया है? क्या भगवान 'एटम' और 'हायड्रोजन' बमों का आविष्कार हो जाने से भयभीत हो गया है? नहीं, इनमें से कोई बात ठीक नहीं है। तब उसके अवतार को रोकने वाली कौन-सी बात है? इसका एक मात्र उत्तर यही दिया जा सकता है कि 'कुछ भी नहीं'।

सब से खास बात याद रखने की यह है कि जगत-त्राता का काम केवल कुछ सद्गुणों की शिक्षा देना नहीं होता, वह केवल कुछ दार्शनिक तत्व या आर्थिक सिद्धान्त सिखलाने को नहीं आयेगा। जगत-उद्धारक आयेगा मानव जाति को बचाने के लिये, दुष्टता को मिटाने के लिये मनुष्यों के हृदय को बदलने के लिए, उनमें एक नवीन भावना

भरने के लिए, एक नवीन सभ्यता का श्रीगणेश करने के लिए और पृथ्वी पर सुख-शान्ति-समृद्धि को लाने के लिए। यही जगत-त्राता का कार्य हो सकता है। इसके लिये शक्ति की आवश्यकता होगी, और वह जगत उद्धारक इतनी आध्यात्मिक शक्ति लेकर आयेगा जिसकी मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकते। वे केवल परिणाम—फल को देखकर ही उसका निर्णय कर सकेंगे।

वर्तमान जगत और उसकी समस्या—

आज की दुनिया भगवान कृष्ण, या बुद्ध देव, अथवा ईसामसीह मुहम्मद आदि के सामने की दुनिया से सर्वथा भिन्न है। उस समय संसार छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटा था, जो एक दूसरे से अनजान थे और कभी अवसर पड़ने पर बड़ी कठिनाई से एक दूसरे के निकट पहुँच पाते थे। पर आज समस्त पृथ्वी एक साधारण देश की तरह बन गई, है, जिसके निवासी प्रति दिन परस्पर मिलते-जुलते रहते हैं और जिनके स्वार्थ भी अधिकांश में एक ही होते हैं। यद्यपि इस समय समस्त संसार की समस्यायें—भोजन, वस्त्र, मकान, शान्ति, प्रसन्नता सम्बन्धी एक ही हैं, पर उनको विभिन्न दृष्टि-कोण से देखा जाता है। इससे बड़ी उलझनें पैदा हो गई हैं, जिन्हें सुलझा सकना मानव-बुद्धि के लिये असम्भव सिद्ध हो रहा है।

आज की सबसे बड़ी समस्या पृथ्वी पर मानव-जाति का अस्तित्व स्थिर रह सकने की है। यह प्रश्न किया जाता है कि मनुष्य पृथ्वी तल पर जीवित रहेंगे या अपने ही अविष्कारों के फल स्वरूप मर मिटेंगे? आज की सबसे बड़ी समस्या है 'एटम बम' और 'हाय-ड्रोजन बम' का अन्त करने की। आज की बड़ी समस्या है सदा के लिये युद्ध का अन्त करने की और पूर्ण निःशस्त्रीकरण करने की और उनके मूल कारणों का भी अन्त कर देने की। आज की समस्या है मानसिक और नैतिक दृष्टि से शस्त्रों का सर्वथा त्याग करके मानव-जाति के आध्यात्मिक पुनर्जन्म होने की। आज की आवश्यकता है एक

विश्व-राज्य की स्थापना करके मानव-मात्र में सहयोगात्मक, रचनात्मक और न्यायानुकूल प्रवृत्तियों का प्रचार करने की।

"ये सब महान परिवर्तन अनिवार्य रूप से अन्तरात्मा, हृदय और मस्तिष्क से ही प्रकट होंगे। सड़े-गले विचारों वाले मनुष्यों से नये जगत का निर्माण नहीं हो सकता। केवल आध्यात्मिक दृष्टि से पुनर्जन्म ग्रहण की हुई जाति ही शान्ति, समृद्धि, आनन्द से युक्त संसार की रचना में समर्थ हो सकती है। इसका तात्पर्य है एक नवीन जगत और नये स्वर्ग की रचना करना। निश्चय ही इसके लिये आवश्यकता होगी सर्वोच्च आध्यात्मिक शक्ति और अभिरुचि की। ये सब कार्य मानसिक प्रयत्नों द्वारा ही पूर्ण किए जायेंगे। पर इस समय मनुष्य तो अनेक दोषों के शिकार बने हुये, इस कार्य के अयोग्य दिखलाई पड़ रहे हैं। मनुष्यों की सामर्थ्य इस कार्य के लिये सर्वथा अपर्याप्त है, क्योंकि इसके लिये मुख्यतया आध्यात्मिक प्रवृत्ति और आध्यात्मिक शक्ति की ही आवश्यकता होती हैं, जिनकी इस समय मनुष्यों में बड़ी कमी देखने में आ रही है। इस समय अगर मानव-जाति की रक्षा होनी है तो उसके लिये सर्वोच्च नैतिकता वाले व्यक्तियों के सामने आने और निःस्वार्थ भावना से काम करने की जरूरत है। सामान्य श्रेणी के नर नारियों के लिये यह कार्य कल्पना से बाहर है। इसके लिए इस दृष्टि से पूर्णतः उपयुक्त नेतृत्त्व की आवश्यकता पड़ेगी।

इसके लिये आवश्यकता है मनुष्यों के एक 'नये नेता' की—एक सच्चे मार्ग दर्शक की। उसमें ऐसी शक्ति होनी चाहिये कि वह मानवता को इच्छित लक्ष्य तक पहुँचा सके और मनुष्य मात्र के हृदय, मस्तिष्क, अन्तरातमा पर नियंत्रण रख सके। इस महान कार्य के लिये जिसकी आवश्यकता है, वह सिवाय भगवान के और कोई नहीं हो सकता। इसके लिये किसी भी दैवी प्रतिनिधि या 'दूत' (पैगम्बर) से काम नहीं चलेगा। सिवाय भगवद्-शक्ति के और कोई इस अवसर पर संसार की समस्या को नहीं सुलझा सकता।

"इस लिए अगर संसार में कभी इस बात की आवश्यकता थी कि पृथ्वी पर 'भगवद्-शक्ति' का अवतरण हो और वह मानवीय रूप और मानवीय प्रणाली से संसार का उद्धार-कार्य करे तो वह अवसर इस समय उपस्थित है। अगर किसी जमाने में कृष्ण, बुद्ध, ईसा और अन्य दिव्य आत्माओं के आने की आवश्यकता थी, तो वह आवश्यकता इस समय सैकड़ों गुने बड़े रूप में मौजूद है। यह स्थिति किसी उपयुक्त साधनों से युक्त 'महान शक्ति' के आविर्भाव की राह देख रही है। इस समय अगर ईश्वरीय हस्तक्षेप न हुआ तो संसार नष्ट हो जायगा और मानव जाति मर जायगी। अतः इस समय संसार के प्रत्येक नर, नारी और बालक के लिये जगत्-उद्धारक का आगमन जीवन और मरण का प्रश्न है।"

"इस बार अवतार लेने पर भगवान संसार के लोगों को एक ईश्वर, एक धर्म, एक राष्ट्र की शिक्षा देंगे, जिससे मनुष्य-मात्र एक परिवार की तरह रहने लगे। यह भगवान का विशाल परिवार होगा। इससे कम में संसार की समस्या सुलझ नहीं सकती। जब तक किसी प्रकार का भेद भाव रहेगा तब तक पारस्परिक कलह का बीज बना ही रहेगा जो किसी समय अवसर पाकर पनप सकता है। इस प्रकार का परिवर्तन आज असम्भव जान पड़ता है पर जब काल चक्र के प्रभाव से कट्टरपंथी लोगों का अन्त हो जायगा और शेष लोगों का आध्यात्मिक पुनर्जन्म होगा तो वे जगतोद्धारक अवतार के आदेशों को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करेंगे, क्योंकि इसी में उनको अपनी रक्षा और मुक्ति दिखलाई पड़ेगी।"

'जगत-त्राता' के लेखक का कथन है कि "इस परिवर्तन के लिये 'अवतार' एक-एक व्यक्ति को समझाते नहीं फिरेंगे। वरन् इसके लिये वे अपनी प्रबल विचार शक्ति से मानसिक जगत को प्रभावित करेंगे, जिससे सब श्रेणी के व्यक्ति स्वयं ही नवीन आदर्शों, सिद्धान्तों की तरफ आकर्षित होंगे। अवतार के सभी कार्य सूक्ष्म जगत (ऐथेरिक-

प्लेन) के द्वारा प्रेरित होंगे, जिससे अदृश्य होने के कारण कोई उनका विरोध न कर सकेगा और धीरे-धीरे उनके सम्मुख आत्म समर्पण कर देगा। आज कल विज्ञान में भी बड़े पेचीदा यंत्रों को दूर से ही नियंत्रण में रखा जाता है। भावी अवतार भी अपनी सर्वोपरि आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा सब लोगों की अन्तरात्मा को उसी प्रकार वश में कर लेंगे।''

यदि विज्ञान की आधुनिकतम खोजों और प्रत्यक्ष क्रियाकलापों पर ध्यान दिया जाय तब तो दूर से अदृश्य शक्ति द्वारा अनेक प्रकार के विलक्षण कार्यों के होने में कोई सन्देह ही नहीं रह जाता। पृथ्वी से चन्द्रमा पर भेजे गये यन्त्र द्वारा फोटो लेकर पृथ्वी तक भेजना वहाँ मिट्टी को खोदकर उसके तत्वों की जानकारी अमरीका और रूस की प्रयोग-शालाओं में बैठे हुए वैज्ञानिकों को दे देना, अन्तरिक्ष में हजारों मील ऊपर उड़ते हुए बीमार व्यक्ति की डाक्टरी परीक्षा पृथ्वी के अस्पताल से ही कर सकना और उसके लिए औषधि निर्देश करके सूचित कर देना, ऐसी बातें हैं कि यदि इनका भेद किसी को न बतलाया गया होता तो दुनियाँ इन्हें निश्चय ही 'जादू' या 'दैवी कृत्य' मान लेती। इस लिये यह मनोवृत्ति कि जिस बात को हम अभी नहीं समझ पाते उसे असत्य अथवा असंभव घोषित कर दिया जाय, कोई बड़ी बुद्धिमानी अथवा 'ज्ञान' का लक्षण नहीं मानी जा सकती। विश्व-ब्रह्माण्ड के निर्माण और उसके संचालन के नियमों के विषय में हम अभी बहुत कम जानते हैं। इस लिये संसार का नियंत्रण करने वाली चैतन्य शक्ति किस-किस रूप में काम करती है इस सम्बन्ध में हठधर्मी से काम न लेकर अधिकाधिक अध्ययन, मनन और विचार का आश्रय लेकर उसका निर्णय करना ही उचित है।

तीसरा अध्याय

अवतार के सम्बन्ध में शास्त्रों और महात्माओं का अभिमत

गत अध्यायों में पाठकों ने अवतार के सम्बन्ध में सामान्य विवेचन तथा तर्क और बुद्धि-वादियों के मन्तव्य पढ़े। अब हम इस विषय पर हिन्दू शास्त्रों तथा विभिन्न देशों के महापुरुषों के कथनों का विवेचन करेंगे। क्योंकि अवतार सम्बन्धी विचारों के उद्भव कर्ता हमारे पौराणिक-ग्रन्थ ही हैं। दश अथवा चौवीस अवतारों का वर्णन सर्व प्रथम पुराणों में ही किया गया है। इस लिये यदि इस विषय को ठीक तरह से समझना हो हमको पुराणों में पाये जाने वाले अवतार सम्बन्धी अंशों को ध्यान पूर्वक पढ़ना और मनन करना चाहिये जिससे इस सम्बन्ध में ठीक निर्णय कर सकना संभव हो सके।

यों तो अवतारों का न्यूनाधिक वर्णन सभी पुराणों में पाया जाता है, और एक-एक अवतार के नाम पर कितने ही पुराणों की रचना भी की गई है, पर इस सम्बन्ध में सवसे अधिक गम्भीरता पूर्ण विवेचन 'श्री मद्भागवत्' का है। उसमें अवतार का जो रहस्य और तत्त्व प्रकट किया गया है, उसी को भिन्न रूप और शब्दों में अन्य सब लोगों ने भी कथन किया है। 'भागवत' के प्रथम स्कन्द के तीसरे अध्याय में श्री सूत जी कहते हैं—

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः।
सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ।। १ ।।
यस्याम्भसि शयानस्य योग निद्रां वितन्वतः।
नाभिहृदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पति ।। २ ।।

यस्यावयवसंस्थानैः कल्पिता लोकविस्तरः
तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्वमूर्जितम् ॥
पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ।
सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यम्बर कुण्डलोल्लसत्
एतान्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ।
यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देव तिर्यङ्नरादयः ॥

अर्थात्—"सृष्टि के आदि में भगवान् ने लोकों के निर्माण की इच्छा की। इच्छा होते ही उन्होंने महतत्त्व आदि से निष्पन्न पुरुष रूप ग्रहण किया। उसमें दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच भूत--ये सोलह कलायें थीं। उन्होंने 'कारण-जल' में शयन करते हुए जब योग निद्रा का विस्तार किया, तब उनके नाभि सरोवर में से एक कमल प्रकट हुआ और उस कमल से प्रजापतियों के अधिपति ब्रह्माजी उत्पन्न हुये। भगवान के उस विराट रूप के अंग प्रत्यंग में समस्त लोकों की कल्पना की गई है और वही भगवान का विशुद्ध, सत्त्वमय श्रेष्ठ रूप हजारों पैर, जांघें, भुजायें और मुखों के कारण अत्यन्त विलक्षण है। उसमें हजारों सिर, हजारों कान, हजारों आँखें और हजारों नासिकायें हैं। हजकुट, वस्त्र, कुण्डल आदि आभूषणों से वह उल्लिसित रहता है। भगवान का यही सगुण रूप अनेक अवतारों का बीज है जो अक्षय रहता है। इसी रूप के छोटे से अंश से देवता, पशु-पक्षी और मनुष्यादि समस्त प्राणियों की सृष्टि होती है।"

भगवान के इस विराट स्वरूप की कल्पना और उसी से समस्त अवतारों के प्रकट होने का वर्णन ही एक मात्र ऐसा सिद्धान्त जो इस समस्या का ठीक समाधान कर सकता है। इसके पश्चात् जितने भी और तर्कवादी विद्वानों ने इस विषय का विवेचन किया है वह घुमा-फिरा कर 'भागवत' की इसी व्याख्या के अन्तर्गत आ जाता है। यद्यपि पौराणिक शैली के अनुसार उसमें रूपक और अकार भरे पड़े हैं, पर उसका आशय शब्दों में यही है कि जगत का संचालन

करने वाली चैतन्य सत्ता तीन दर्जों में बँटी हुई है। उसका पहला रूप निर्गुण निराकार और अव्यक्त है। उसकी व्याख्या करने की चेष्टा निरर्थक है। क्योंकि वह संसार की किसी भली-बुरी बात से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखती, सब प्रकार से निर्लिप्त है। इस लिये वेद और शास्त्रों ने उसका जिक्र आने पर 'नेति-नेति' कह कर ही समस्या को समाप्त कर दिया है।

पर जब सृष्टि रचना का अवसर आता है तो उसका एक अंश सक्रिय होकर सगुण रूप में परिवर्तित हो जाता है जिसको ब्रह्मा विष्णु, महेश दुर्गा सूर्य, इन्द्र आदि किसी भी नाम से पुकारा जा सकता हैं। ये सब नाम देश, काल अथवा सम्प्रदाय आदि से सम्बन्ध रखते हैं, पर वास्तव में यह विश्वव्यापी चैतन्य शक्ति का दूसरा दर्जा या रूप हैं जिससे सृष्टि-रचना, लोक-निर्माण आदि का कार्य सम्पन्न होता है। पर यह दैवी शक्ति, जिसे अवसर और प्रयोजन के अनुसार विभिन्न नामों से पुकारा जाता है सूक्ष्म होती है, और वास्तव में उसका कोई आकार नहीं होता। इसी का तीसरा दर्जा अवतार है जो स्थूल रूप में देखा जा सकता है और विश्व-संचालन की प्रक्रिया में प्रत्यक्षत: भाग लेता है। यों सिद्धान्त रूप से सभी जीव, प्रत्येक मनुष्य ईश्वर का अवतार है, पर शास्त्रों में विश्व-संचालन की प्रक्रिया को समझाने के लिये उन्हीं व्यक्तियों अथवा विभूतियों को 'अवतार' नाम दिया गया जिन्होंने इस जगद्व्यापी कार्यक्रम की किसी विशेष आवश्यकता की पूर्ति की है।

ऐसे दश अवतारों का वर्णन हम पीछे कर चुके हैं, पर 'भागवत' में उनकी संख्या बढ़ाकर चौबीस कर दी है। इनमें से जितने अवतार मानव देह-धारी हैं वे सब भारतवर्ष से ही सम्बन्धित हैं। पर संसार के अन्य देशों में भी समाज-व्यवस्था के कार्य में समय-समय पर ऐसे ही विशेष अवसर आये हैं और वहाँ भी लोकोत्तर पुरुषों ने प्रकट होकर उनका समाधान किया है। उनका उद्गम स्थल भी वही

एक 'भगवान' या दैवी शक्ति है, क्योंकि प्रत्येक देश या मजहब के लिये एक-एक प्रथक दैवी-शक्ति या भगवान को मानना तो मूढ़ता का लक्षण होगा। इसका अर्थ तो यह होगा कि जब काल-प्रभाव से किसी मजहब का अन्त हो जाय तो उसका 'भगवान' भी समाप्त हो गया और जब किसी नये मजहब का आरम्भ हो तो उसका नया 'भगवान' उत्पन्न हो गया! ये सब बाल बुद्धि वाले लोगों की बातें हैं, जिनको कोई विद्वान का बुद्धिमान महत्व नहीं दे सकता।

इस प्रकार हम 'अवतारों' की संख्या जिनका पता पुराणों और इतिहासों से लगाया जा सकता है, चौबीस ही नहीं कई सौ तो मान ही सकते हैं। इनमें दस-पाँच का उल्लेख स्थान-स्थान पर किया भी गया है, पर यहाँ हमारा उद्देश्य उन्हीं अवतारों का वर्णन करना है। जिनका भारतीय शास्त्रों में उल्लेख है और जिनमें से अनेकों का नाम हम प्राय: सुनते भी रहते हैं। 'भागवत' में २४ अवतारों का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्ग मास्थितः।
चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥ ६ ॥
द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम्।
उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥ ७ ॥
तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुयेत्य सः।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ॥ ८ ॥
तुर्ये धर्मकलासर्गे नर नारायणवृषी।
भूत्वाऽऽत्मोयशमोपेतमकरोद्द दुश्चरं तपः ॥ ९ ॥
पंचमों कपिलौ नाम सिद्धेशकालाविप्लुतम्।
प्रोवाचा सुखे सांख्ये तत्वग्राम विनिर्णयम् ॥ १० ॥

"भगवान ने आरम्भ में सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—चार ब्रह्मकुमारों के रूप में अवतार लेकर अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया। दूसरी बार उन्होंने यज्ञ वाराह का रूप धारण

करके पृथ्वी को जल के भीतर से निकाला। तीसरी बार 'ऋषियों' की सृष्टि में वे देवर्षि नारद के रूप में प्रकट हुये और निष्काम कर्म द्वारा मुक्ति का मार्ग दिखलाया। धर्म की पत्नी मूर्ति के गर्भ से उन्होंने नर-नारायण के रूप में अवतार लिया और बड़ी कठिन तपस्या की। पाँचवें अवतार के समय वे सिद्धों के स्वामी कपिल देव के रूप में प्रकट हुये और आसुरि ऋषि को तत्त्वों के निर्णय करने वाले 'सांख्य-शास्त्र' का उपदेश दिया।

षष्ठे अत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया।
आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान्॥ ११॥
ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत।
स यामाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायम्भुवान्तरम्॥ १२॥
अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः।
दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्वाश्रम नमस्कृतम्॥ १३॥
ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः।
दुग्धे मामोषधीर्विप्रास्तेनायं स उशत्तमः॥ १४॥
रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसम्प्लवे।
ना व्यारोप्य महीमय्यामयद्वैवस्वतं मनुम्॥ १५॥

'अनुसूया के वर माँगने पर वे छठे अवतार में अत्रि ऋषि के पुत्र रूप में—दत्तात्रेय हुए और अलर्क, प्रह्लाद आदि को ज्ञानोपदेश दिया। सातवीं बार उन्होंने रुचि प्रजापति की पत्नी आकूति के 'यज्ञ के रूप में अवतार लिया और अपने पुत्र 'याम' आदि के साथ स्वायम्भुव मन्वन्तर की रक्षा की। आठवीं बार राजा नाभि की पत्नी मेरुदेवी के गर्भ से ऋषभदेव के रूप में प्रकट हुये, और परम हंसों का वह मार्ग प्रचलित किया जो सबके लिये वन्दनीय है। नवीं बार ऋषियों की प्रार्थना पर वे राजा पृथु के रूप में अवतीर्ण हुए और मनुष्यों के निर्वाह के लिये पृथ्वी से समस्त वनस्पतियों का दोहन किया। दसवीं बार चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में जब समस्त पृथ्वी-मंडल जल

में डूब गया तो उन्होंने मत्स्यावतार के रूप में वैवस्वत मनु की रक्षा की।"

सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम्।
दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः॥ १६॥
धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च।
अपाययत्सुरान्यान्मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया॥ १७॥
चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रद्दैत्येन्द्र मूर्जितम्।
ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा॥ १८॥
पञ्चदशं वामनकं कृत्वागादध्ववं वलेः।
पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टयम्॥ १९॥
अवतारे षोडशमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहों नपान्।
त्रिसप्त कृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम्॥ २०॥

"जिस समय देवता और दैत्य मिलकर समुद्र मन्थन करने लगे तो भगवान् ने कच्छप रूप धारण करके ग्यारहवाँ अवतार लिया और मन्दराचल को अपनी पीठ पर धारण किया। बारहवाँ अवतार धन्वन्तरि के रूप में अमृत लेकर हुआ तेरहवाँ मोहिनी रूप में प्रकट हुआ जिसने दैत्यों को मोहित करके देवताओं को अमृत प्रदान किया। चौदहवाँ अवतार नृसिंह भगवान् के रूप में हुआ और उन्होंने महाबलशाली दैत्यराज हिरण्यकशिपु की छाती को इस प्रकार विदीर्ण कर दिया, जैसे चटाई बनाने वाला सींकों को चीर देता है। पन्द्रहवाँ अवतार वामन का हुआ, जिसमें उन्होंने बलि के यज्ञ में जाकर तीन पैर पृथ्वी माँगी और तीनों लोक नाप लिये। सोलहवाँ अवतार परशुराम का हुआ जिन्होंने राजाओं को ब्राह्मणों का द्रोही देखकर क्रोध पूर्वक इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन कर दिया।"

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्।
चक्रे वेदतरो शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः॥ २१॥

नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्य चिकीर्षया ।
समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥ २२ ॥
एकोनविंशे विंशतमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ।
रामकृष्णाविति भुवो भगवान हरद्भरम् ॥ २३ ॥
ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
बुद्धो नाम्नाजिनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥ २४ ॥
अथासौ युग संध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु ।
जनिता विष्णुयशो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥ २५ ॥

"सत्रहवें अवतार में सत्यवती के गर्भ से पाराशर द्वारा व्यास के रूप में अवतीर्ण हुये और लोगों की मेधा-शक्ति को क्षीण होता देखकर वेद रूपी वृक्ष को कई शाखाएँ बनाकर सुव्यवस्थित कर दिया। अठारहवीं बार देवताओं का कार्य सम्पन्न करने के उद्देश्य से रामचन्द्र के रूप में अवतार धारण किया तथा समुद्र पर सेतु बाँधना और रावण वध आदि की वीरतापूर्ण लीलाएँ कीं। उन्नीसवें और और बीसवें अवतारों में यदुवंश में कृष्ण और बलराम के रूप में प्रकट हुये और पृथ्वी के भार को हलका किया। इक्कीसवीं बार कलियुग आ जाने पर वे मगध देश में देवताओं के द्वेषी दैत्यों को मोहग्रस्त बनाने के लिये जिन-पुत्र बुद्ध अवतार के रूप में प्रकट हुये। इसके पश्चात् जब कलियुग समाप्त होने लगेगा और शासक वर्ग प्रजा को लूटने लगेगा तो जगत की रक्षा के लिये भगवान् विष्णुयश के घर में कल्कि रूप में प्रकट होंगे।"

इन बाईस अवतारों के अतिरिक्त दो अवतार 'हयग्रीव' और 'हंस' के और हैं जिनका वर्णन द्वितीय स्कन्द के सातवें अध्याय में ब्रह्माजी ने नारद को इस प्रकार सुनाया था—

सत्रे ममास भगवान हयशीरषाथो
साक्षात् स यज्ञपुरुषस्तपनीय वर्णः ।
छन्दोमयो मखमयोऽखिल देवतात्मा
वाचो बभूवुरुशतीः श्वसतोऽस्य नस्तः ॥

"तत्पश्चात् उन्हीं यज्ञ पुरुष ने यज्ञ में स्वर्ण की कान्ति वाले 'हयग्रीव' के रूप में अवतार ग्रहण किया था। भगवान् का वह विग्रह वेदमय, यज्ञमय और सर्व देवमय हैं। उन्हीं की नासिका से श्वास के रूप में वेदवाणी प्रकट हुई।"

तुभ्यं च नारद भृशं भगवान् विवृद्ध-
भावेन साधुपरितुष्ट उवाच योगम्।
ज्ञानं च भागवतमात्मसतत्वदीपं
यद्वासुदेवशरणा विदुरञ्जसैव ॥

"हे नारद! तुम्हारे प्रेम-भाव से अत्यन्त प्रसन्न होकर हंस के रूप में भगवान् ने तुम्हें योग, ज्ञान और आत्म तत्त्व को प्रकाशित करने वाले वैष्णव धर्म का उपदेश दिया। वह श्रेष्ठ ज्ञान भगवान् के शरणागत भक्तों को ही सुगमता से प्राप्त हो सकता है"

भगवान के अवतार असंख्य है—

इन चौबीस अवतारों का वर्णन करके भागवतकार ने अन्त में स्वयं ही यह कह दिया है कि भगवान् के अवतारों की तो कोई संख्या ही नहीं है, क्योंकि संसार में जो कुछ विभूति-युक्त पदार्थ हैं वे सब भगवान् के विशेष अंश रूप हैं और इसलिये उनके अवतार ही हैं—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥
ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः।
कलः सर्वे हरेरेव स प्रजायतस्तथा ॥

"जैसे अगाध सरोवर से हजारों छोटे-छोटे नाले निकलते हैं वैसे ही सत्त्वनिधि भगवान् श्रीहरि के असंख्यों अवतार हुआ करते हैं। ऋषि-मुनि देवता प्रजापति, मनु पुत्र और जितने भी महान् शक्तिशाली हैं, वे सब भगवान् के ही अंश हैं।"

'भागवत' के ही अध्याय २-६ में इस बात को और भी स्पष्ट रूप में विस्तार के साथ कहा गया है--

आद्योऽवतार: पुरुष: परस्य काल:
स्वभाव: सदसन्मनश्च ।
द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि
विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्न: ॥
अहं भवो यज्ञ दमे प्रजेशा
दक्षादयो मे भवदादयश्च ।
स्वर्लोकपाला: ख़गलोकपाला:
नृलोकपालास्तल लोकपाला: ॥
यत्किंच लोके भगवन्महस्वदोज:
सहसद्व बलवत् क्षमावत् ।
श्रीह्री विभूत्यात्मवदद्भुतार्ण
तत्त्वं परं रूपवदस्वरूपम् ॥

"परमात्मा के सर्व प्रथम अवतार तो विराट् पुरुष ही है। उसके सिवा काल, स्वभाव कार्य, कारण, मन, पंचभूत, अहङ्कार, तीनों गुण, इन्द्रियाँ, ब्रह्माण्ड-शरीर, उसका अभिमानी स्थावर और जंगम जीव, सबके सब उस अनन्त भगवान् के रूप हैं। मैं (ब्रह्मा) शङ्कर, विष्णु, दक्ष आदि सब प्रजापति, तुम और तुम्हारे जैसे अन्य भक्तजन, स्वर्ग-लोक के पालक, पक्षियों के राजा, मनुष्य-लोक के पालक नीचे के लोकों के राजा आदि संसार में जितनी वस्तुएँ ऐश्वर्य, तेज, इन्द्रिय-बल, मनोबल, शरीर बल या क्षमा से युक्त हैं अथवा जो भी विशेष सौन्दर्य, लज्जा, वैभव तथा विभूति से युक्त हैं अथवा जितनी भी वस्तुएँ अद्भुत वर्ण वाली रूप या अरूप हैं, वे सब परम तत्त्वमय भगवद् स्वरूप ही हैं।"

पुराणकार के इतने साफ शब्दों में अवतार की वास्तविकता और व्यापकता प्रकठ कर देने पर भी जो मनुष्य वाराह आदि अवतारों के दोष दर्शन में ही अपनी शक्ति खर्च करते रहते हैं, उनकी बुद्धि उन्हीं सामान्य जीव-जन्तुओं की भाँति निम्न श्रेणी की ही समझना चाहिये। वे सार वस्तु को त्याग कर निस्सार पर ही दृष्टि डालते रहते हैं अथवा

अपने मस्तिष्क को 'सत्य' से अवरुद्ध रखकर निरर्थक दलीलोंमें ही आनन्द का अनुभव किया करते हैं। उनको उन कथाओं में वर्णित अद्‌भुत प्राणियों की विशालता, आहार, भोग और अन्य चमत्कार आदि बातें तो याद रहती हैं, पर उनमें निहित सृष्टि और प्राणिजगत का उद्‌भव और मानव की बुद्धि, शक्ति, सभ्यता का क्रमशः विकास समझ में नहीं आता। ऐसे लोग पौराणिक-शैली की विशेषताओं और उद्देश्य पर कुछ ध्यान न देकर केवल उनके कहानी वाले अंशों की आलोचना, खण्डन-मंडन करने में ही अपनी योग्यता समझा करते हैं। पर ऐसा करने से वे उन कथाओं में छिपे ज्ञानवर्द्धक तथ्यों से वंचित रह जाते हैं, उसका उन्हें कुछ ख्याल नहीं होता।

'भागवत' और अन्य अनेक पुराणों में अवतार सिद्धान्त पर जो कुछ कहा गया है उससे प्रत्येक विचारक यह समझ सकता है कि वे संसार के प्रत्येक पदार्थ प्राणी और कार्य को भगवान के रूप और लीला की दृष्टि से देखते हैं, जब कि एक वैज्ञानिक इनका संसार के 'मूलत्व' और 'क्रम विकास' के रूप में वर्णन करता है। पुराणकार का उद्देश्य करोड़ों अल्पशिक्षित और आशीर्वाद और अशिक्षित व्यक्तियों को कथा-कहानी के रूप में ईश्वर और विश्व-ब्रह्माण्ड की असीमता और अनन्तता का परिचय कराके धर्म, नीति, चरित्र तथा कर्तव्य पालन की शिक्षा देना होता है, जब कि वैज्ञानिक उसका वर्णन गूढ़ और गम्भीर शैली से करता है, जिसे विद्वान ही समझ पाते हैं। पुराणों की कथाओं को सुनकर चाहे सब लोग धार्मिक और पवित्र न बन जाते हों तो भी बहुसंख्यक लोगों के हृदय में भक्ति और शुद्ध-आचरण की भावना विकसित होती है और आज तक उनके प्रभाव से करोड़ों व्यक्ति कुमार्ग से हटकर सुमार्गगामी बन चुके हों और आत्मोद्धार कर चुके हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। पर वैज्ञानिकों का वर्णन किसी को धार्मिक, सच्चरित्र, परोपकारी बनाता हो यह अभी तक देखने में नहीं आया। इस दृष्टि से विचार करने पर सर्व-

साधारण की दृष्टि से पुराणों की कथाओं का यदि समयानुकूल रूप में प्रचार किया जाय तो इससे जन-साधारण का हित साधन ही हो सकता है। अधिक विशालकाय पुराणों का पढ़ना-सुनना वर्तमान परिस्थितियों में अवश्य ही कठिन जान पड़ेगा। इसके लिए उनके सरल और संक्षिप्त संस्करण प्रस्तुत किये जा सकते हैं और यही कार्य आज कल हमारी संस्था द्वारा किया जा रहा है।

महाभारत में अवतार-महिमा कथन—

भारतीय धर्म-साहित्य के यदि प्रमुख ग्रन्थों की भी गणना की जाय तो उनकी संख्या सैकड़ों तक पहुँचती है। पर उन सबमें 'महाभारत' की महिमा को कोई नही पहुँचता। वैसे किसी एक विशेष दृष्टि से किन्हीं एक दो-दो ग्रन्थों को श्रेष्ठ माना जा सकता है पर सर्वाङ्ग रूपसे विचार करने पर महाभारत ही भारतीय संस्कृति का 'महासागर' प्रतीत होता है। महाभारत के आधार अन्य कितने ग्रन्थों की रचना की गई है, इसकी गिनती नहीं। फिर आपेक्षिक दृष्टि से विचार किया जाय तो महाभारत की वर्णन शैली अधिक प्रामाणिक भी जान पड़ती हैं। अवतार के सम्बन्ध में भी 'महाभारत' का विवेचन विशेष रूप से स्वाभाविक और गम्भीर है। उसमें बहुत स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित किया गया है कि समस्त जगत भगवत् स्वरूप ही है। प्रत्येक प्राणी, प्रतयेक पदार्थ और प्रत्येक लोक उनका एक अंग ही है। इस दृष्टि से 'अवतार' भी उनके अतिरिक्त अन्य किसी स्रोत से प्रकट नहीं हो सकते 'सभापर्व' के ३८ वें अध्याय में युधिष्ठिर के प्रश्न करने पर भगवान कृष्ण के विश्व-स्वरूप का वर्णन करते हुए महाज्ञानी भीष्म पितामह ने कहा—

सहस्रशीर्ष: पुरुषो ध्रुवोऽव्यक्त: सनातन: :
सहस्राक्ष: सहस्रास्य: सहस्रचरणो विभु: ।।

सहस्रबाहु: साहस्रो देवो नामसहस्रवान् ।
अप्सृजत् सलिलं पूर्वं स च नारायण: प्रभु: ।

ततस्तु भगवांस्तोये ब्रह्माणमसृजत् स्वयम् ।
ब्रह्मा चतुर्मुखो लोकान् सर्वांस्तानसृजत् स्वयम् ।।
आदिकाले पुरा ह्येवं सर्वलोकस्य चोद्भवः ।
पुराथ प्रलये प्राप्ते नष्टे स्थावर जंगमे ।
ब्रह्मादिषु प्रलीनेषु नष्टे लोके चराचरे ।।

"ये ही ध्रुव अव्यक्त एवं सनातन परम पुरुष हैं । इनके सहस्रों मस्तक, सहस्रों नेत्र, सहस्रों मुख, सहस्रों चरण, सहस्रों भुजायें हैं । ये सहस्रों रूपों और सहस्रों नामों से युक्त हैं । इन्हीं सामर्थ्यवान भगवान नारायण ने सबसे पहले जल (मूलतत्व) की सृष्टि की और फिर उस जल में शयन करके स्वयं ही ब्रह्माजी को उत्पन्न किया । ब्रह्माजी ने, जिनके चार मुख हैं, सम्पूर्ण लोकों की रचना की है । आदि काल में इसी रीति से समस्त जगत और उसके पदार्थों की उत्पत्ति हुई थी । फिर प्रलय काल आने पर जैसा कि सदा का नियम है, समस्त स्थावर जंगम सृष्टि का नाश हो जाता है एवं चराचर जगत का नाश होने के पश्चात् ब्रह्मा आदि देवता भी अपने कारण तत्व में लीन हो जाते हैं ।"

इस प्रकार महाभारतकार ने बहुत स्पष्ट रूप से यह बतलाया है कि यह समस्त जगत एक ही तत्व (जिसको 'परमात्मा' कहना उचित ही है) से उत्पन्न, विकसित हुआ है और अरबों-खरबों वर्ष बीत जाने पर अन्त में उन्हीं में लीन हो जाता है । विश्व की उत्पत्ति और अन्त होने की ठीक यही व्याख्या आज विज्ञान भी कर रहा है । यही बात वेदों के 'एकोऽहम् बहुस्यामि' वाले सिद्धान्त से प्रकट होती है । भगवान के इस 'विराट् रूप' का वर्णन करते हुए भीष्म पितामह कहते हैं—

नारायणस्य चाङ्गानि सर्व दैवानि भारत ।
शिरस्तस्य दिवं राजन् नाभि खं चरणौ मही ।।
अश्विनौ घ्राणयोर्देवौ चक्षुषी शशिभास्करौ ।

इन्द्र वैश्वानरौ देवौ मुखे तस्य महात्मनः ।
अन्यानि सर्व देवानि तस्याङ्गानि महात्मनः ॥
सर्व व्याप्य हरिस्तस्थौ सूत्रं मणिगणानिबः ।
सोऽध्यक्षः सर्वभूतानां प्रभूतः प्रभवोऽच्युतः
सनत्कुमारं रुद्रं च मनु चैव तपाधनान्
सर्वमेवासृजत ब्रह्मा ततो लोकान् प्रजास्त था

"हे युधिष्ठिर ! भगवान नारायण के सब अंग सर्व देवमय हैं। द्यु लोक उनका मस्तक, अन्तरिक्ष उनकी नाभि और पृथ्वी चरण हैं। दोनों अश्विनीकुमार उनके नासिका के स्थान में हैं, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र हैं, एवं इन्द्र और अग्निदेव उन परमात्मा के मुख स्वरूप हैं। इसी प्रकार अन्य सब देवता (देव-शक्तियाँ) भी उन महात्मा के विभिन्न अवयव हैं। जैसे गुथी हुई माला की सभी मणियों में एक ही सूत्र व्याप्त रहता है, उसी प्रकार भगवान श्रीहरि समस्त जगत को व्याप्त करके स्थित हैं। इस प्रकार अपनी महिमा से कभी च्युत न होने वाले, सब की उत्पत्ति के कारणभूत और सम्पूर्ण भूतों के अध्यक्ष श्रीहरि ने ब्रह्म रूप से प्रकट होकर सनत्कुमार रुद्र मनु तथा तपस्वी ऋषि-मुनिमों को उत्पन्न किया। सबकी सृष्टि उन्हींने की है। उन्हीं से सम्पूर्ण लोकों और प्रजाओं की उत्पत्ति हुई।'

यद्यपि इनमें से प्रत्येक देवता के सम्बन्ध में बिभिन्न प्रकार की अनेक अद्भुत कथायें लिखी गई हैं, पर वे सब ऐसे पाठकों या श्रोताओ के कौतूहल को शान्त करने के लिए रची गई हैं, जो 'परमात्मा' जैसे अज्ञेय तत्त्व की कल्पना नहीं कर सकते और न किसी निराकार वस्तु से लाखों प्रकार की साकार वस्तुओं का उत्पन्न होना जिनकी समझ में आ सकता है। बुद्धिमान व्यक्ति पहले भी सृष्टि, देवी-देवता और अवतर आदि की वास्तविकता को जानते थे और आज भी जानते हैं। पर अल्प विकसित बुद्धि के व्यक्तियों को सदैव इसी प्रकार उपमा, रूपक, दृष्टान्त, उदाहरण द्वारा समझाया जाता रहा है। इस प्रकट

तथ्य को समझकर अथवा न समझने का बहाना करके जो लोग पुराणों में वर्णित अवतारों के चरित्रों का 'खण्डन' करने लग जाते हैं उनकी बुद्धिमत्ता को हम संदिग्ध ही कह सकते हैं। अन्यथा एक बार नहीं अनेक बार विभिन्न शब्दों में इस बात को कहा गया है जिससे पाठक के हृदय में शंका न रहे—

अव्यक्तो व्यक्त लिङ्गस्थो य एष भगवान् प्रभुः।
नारायणो जगच्चक्रे प्रभभवाप्यय संहितः॥

"जो अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त शरीरों में स्थित है, सृष्टि और प्रलयकाल में भी स्थिर रहते हैं, उन्हीं सर्व शक्तिमान भगवान् नारायण ने इस जगत की रचना की है।"

आगे चल कर जहाँ विभिन्न अवतारों की चर्चा की गई है वहाँ वाराहवतार के शरीर का जो वर्णन किया गया है उसमें पूर्ण रूप से सम्पूर्ण विश्व रूपी यज्ञ और उसके प्रमुख पदार्थों को ही चित्रित कर दिया गया है—

वाराहस्तु श्रुतिमुखः प्रादुभावो महात्मनः।
यत्र विष्णु सुरश्रेष्ठो वाराह रूपभगस्थितः॥
उज्जहार महीं तोयात् सशैल वन काननाम।
वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः॥
अग्नि जिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपः।
अहोरात्रोक्षणो दिव्यो वेदाङ्ग श्रुतिमूषणः।
आज्य नासः स्रुवतुण्डः सामघोषस्वनो महान्॥
धर्म सत्यमयः श्रीमान् कर्मविक्रमसत्कृतः।
प्रायश्चित्तनखो धीरः पशुजानुर्महावृष॥

"भगवान श्रीहरि का जो 'वाराह' नामक अवतार है, उसमें भी प्रधानतः वैदिक श्रुतिही प्रमाण है। भगवान ने वाराह रूप धारण करके पर्वतों और वनों सहित सारी पृथ्वी को जल से बाहर निकाला था। उस समय चारों वेद ही अवतार के चार पैर थे, यूप ही उनकी दाढ़ थे। क्रतु (यज्ञ) ही दाँत और 'चिति' (इष्टकायव)-ही मुख

है। अग्नि उनकी जिह्वा, दर्भ रोम है, ब्रह्म मस्तक है, दिन और रात्रि ही आखें हैं और वेदाङ्ग कानों के आभूषण है। घी उनकी नासिका, स्रुवा उनकी थूथुन और सामवेद का स्वर ही उनकी भीषण गर्जना थी। धर्म और सत्य उनका स्वरूप था, वे अलौकिक तेज से सम्पन्न थे। वे विभिन्न कर्मरूपी विक्रम से सुशोभित हो रहे थे। प्रायश्चित्त उनके नख थे, वे धीर स्वभाव से युक्त थे, पशु उनके घुटनों के स्थान में थे और महान वृषभ (धर्म) उनका श्री विग्रह था।"

इसी प्रकार वामन-भगवान के स्वरूप का वर्णन करते हुये कहा है--

तस्य गात्रे जगत् सर्वमानीतमिव दृश्यते।
न किंचिदस्ति लोकेषु यद व्याप्तं महात्मन ॥
तद्धि रूपं महेशस्य देव दानव मानवाः।
दृष्ट्वा तं मुमुहु: सर्वे विष्णु तेजोभि पीड़िता ॥

"भगवान वामन के शरीर में सारा संसार इस प्रकार दिखाई देता था, मानो उसमें लाकर रख दिया गया हो। संसार में कोई एसी वस्तु नहीं है, जो उन परमात्मा में व्याप्त न हो। परमेश्वर भगवान विष्णु के उस रूप को देखकर उनके तेज से दब कर देवता, दानव और मानव सब हतप्रभ हो गये।"

भगवान राम के सम्बन्ध में लिखा है--

लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः।
प्रसादनार्थं लोकस्य विष्णुस्तस्य सनातनः ॥
धमार्थमेव कौन्तेय जज्ञे तत्र महायशः।
तमप्याहुर्मनुष्येन्द्रं सर्वभूतेस्तनुम् ॥

"वे भगवान सूर्य के समान तेजस्वी राजकुमार जगत में 'श्रीराम' के नाम से विख्यात हुये। हे युधिष्ठिर! जगत को प्रसन्न करने तथा धर्म की स्थापना के लिये ही महायशस्वी सनातन भगवान विष्णु वहाँ

प्रकट हुये थे। मनुष्यों के स्वामी श्रीराम को साक्षात सर्वभूतपति श्रीहरि का ही स्वरूप बतलाया जाता है।"

उपरोक्त अवतार—वर्णन के अन्त में भगवान 'कल्कि' का भी परिचय दिया गया है—

कल्की विष्णुयशा नाम भूयश्चोत्पत्स्यते हरिः।
कलेर्युगान्ते सम्प्राप्ते धर्मे शिथिलतां गते॥
पाखण्डिनां गणानां हि वधार्थं भरतर्षभः।
धर्मस्य च विवृद्धचर्थं विप्राणां हितकाम्यया॥

"कलियुग के अन्त में जब धर्म में अधिक शिथिलता आने लगेगी तो उस समय भगवान श्रीहरि पाखंडियों के निर्मूल करने, धर्म की वृद्धि और सच्चे ब्राह्मणों की हित-कामना से पुनः अवतार लेंगे। उनके उस अवतार को 'कल्कि विष्णु यशा' कहा जायगा।"

इस प्रकार अवतारों के वर्णन को समाप्त करके महाभारतकार ने फिर इस बात को स्मरण करा दिया है कि केवल जिन थोड़े से अवतारों का यहाँ वर्णन किया गया है, वे ही सब नहीं है। संसार की रक्षा के लिये प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसर पर भगवान किसी न किसी रूप में उपस्थित रहते ही हैं—

एते चान्ये च बहवो दिव्या देवगणैर्युताः।
प्रादुर्भावाः पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मवादिभि॥

"भगवान के ये तथा और भी बहुत से दिव्य अवतार देवताओं के साथ होते हैं, जिनका ब्रह्मपरायण महापुरुष पुराणों में वर्णन करते हैं।"

महाभारत में अवतार-सिद्धान्त और उनके स्वरूप के सम्बन्ध में जो विवेचन किया गया है, उससे इस विषय की सभी शंकाओं तथा प्रश्नों का समाधान हो जाता है। चाहे इसको सृष्टि का नियम कहा जाय और चाहे भगवान की लीला माना जाय, दैवी-शक्ति समय

समय पर विभिन्न रूपों में प्रकट होकर संसार की रक्षा और मार्ग-दर्शन के कार्य में सहयोग देती रहती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। ऐसी घटना भूतकाल में अनेक वार हो चुकी है और भविष्य में भी होगी। 'कल्कि अवतार' जिनका रूपक और अलंकार युक्त वर्णन इस पुराण में किया गया है, इसी शंखला के एक अंग माने जाते हैं।

अवतार

पिछले कुछ सौ वर्षों में जिस रचना ने अवतारवाद का सबसे अधिक प्रचार किया है और इसकी महिमा का विस्तार किया है, वह 'रामायण' ही है। पहले तो वाल्मीकि-रामायण ने ही राम-चरित्र तो बहुत ऊँचा उठाकर उन्हें श्रद्धा, भक्ति और प्रेम का पात्र बनाया, फिर गोस्वामी तुलसीदासजी ने उसी के आधार पर तथा अन्य अनेक पुराणों की कथाओं का भी सार लेकर जिस रामचरित मानस की रचना की उसने तो भारतवर्ष की, विशेषतया उत्तर भारत की सन्मान्य जनता में 'राम-भक्ति' को इतना लोकप्रिय बना दिया जिसका अनुमान कर सकना भी कठिन है। यदि यह कहा जाय कि आज तुलसीदासजी की यह अमर-रचना झोंपड़ों से लेकर राज-महलों तक में व्याप्त है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। संस्कृत और हिन्दी के अतिरिक्त बगाली, गुजराती, तामिल तेलुगू आदि भाषाओं में भी वहाँ के महाकवियों ने 'कृतिवास रामायण' 'गिरधरकृत गुजराती रामायण' 'कम्ब रामायण' 'रङ्गनाथ रामायण' के नाम से रामचरित्र सम्बन्धी विशाल ग्रन्थों की रचना की है, और उन प्रदेशों में उनका पर्याप्त प्रचार है। फिर 'रामायण से प्रेरणा लेकर संस्कृत, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में 'रघुवंश' 'उत्तर रामचरित्र' 'हनुमन्नाटक' 'प्रसन्नराघव' 'अध्यात्म रामायण' 'आनन्द रामायण' 'चम्पू रामायण' 'सेतुबन्धम्, 'रामचन्द्रिका' 'रामरसायन आदि जो रामचरित्र पर अन्य सैकड़ों उच्च-कोटि के ग्रन्थ रचे गये हैं उनका प्रभाव भी विद्वानों तथा सामान्य

जनता पर कम नहीं पड़ा है । तुलसीकृत रामायण का तो बहुत वर्षों पहले रूसी और अँगरेजी भाषाओं में अविकल अनुवाद हो चुका है, जिससे उसकी अपूर्व लोकप्रियता पर प्रकाश पड़ता है ।

'रामायण' में भगवान् राम का ईश्वरीय अवतार होना इतने साङ्गोपाङ्ग रूप में वर्णन किया गया है, कि उससे पाठक के नेत्रों के सम्मुख समस्त घटना एक चित्र की तरह उपस्थित हो जाती है । 'रामायण' के लेखक भगवान् के साकार रूप के अनुयायी हैं, इसलिये उन्होंने भगवान के श्रीरामचन्द्र के रूप में अवतार लेने का ऐसा विशद वर्णन किया है जैसे वह हमारे नर-लोक की ही किसी सभा-समिति में हो रहा हो । जब राक्षसराज रावण के आतंक से पीड़ित होकर समस्त देवता पृथ्वी के साथ ब्रह्मलोक में पहुँचे और ब्रह्माजी ने इस विषय में अपने तो असमर्थ पाया, तो उन सबने सहायता के लिये जगतपिता परमात्मा की प्रार्थना की । ससार की कठिन समस्या और मानव-जाति की दुरवस्था से द्रवित होकर वह महाशक्ति साकार रूप में उनके सम्मुख उपस्थित हो गई—

एतास्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः ।
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः ।।
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा ।
तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः ।।
ब्रह्मणा च समागत्य तत्र तस्थौ समाहितः ।
तम ब्रुवन सुराः सर्वे समभिष्टूय संनताः ।।

(बाल० १५।१५।१८)

"उसी समय भगवान विष्णु शंख, चक्र, गदा को हाथों में लिये, पीताम्बर धारण किये, गरुण पर आरुढ़ होकर वहाँ इस प्रकार आ गये जैसे किसी मेघ के ऊपर सूर्य का दर्शन होता है । उनकी भुजाओं में तप्त सुवर्ण के केयूर शोभित थे । सम्पूर्ण देवताओं ने उनकी वन्दना

की ओर जब वे अपने स्थान पर विराजमान हो गये तो देवगण ने विनीत भाव से प्रार्थना की—

त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया ।
राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो ॥
धर्मज्ञस्य वदानस्य महर्षिसमतेजसः ।
अस्य भार्यासु तिष्टषु ह्रीश्रीकीर्त्युपमासु च ॥
विष्णो पुत्र त्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम् ।
तत्रत्वं मानुषोभूत्वा प्रवृद्धं लोक कंटकम् ॥
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम् ॥

"हे भगवन् ! हम तीनो लोकों के हित की दृष्टि से आपके ऊपर एक महान् कार्य का भार डाल रहे हैं । प्रभो ! अयोध्या के राजा दशरथ धर्मज्ञ, उदार और महान् तेजस्वी हैं । उनकी तीन रानियाँ ह्री, श्री और कीर्ति—इन तीन देवियों के सदृश्य हैं । हे भगवन् ! आप अपने चार स्वरूप बनाकर उन रानियों के गर्भ से दशरथ के पुत्ररूप में अवतार ग्रहण कीजिये । इस प्रकार मनुष्य रूप में प्रकट होकर आप समस्त जगत के लिये कष्टकारक रावण का, जो, देवताओं के लिये अवध्य है, संहार कर डालिये ।"

एवं स्तुतस्तु देवेशो विष्णुस्त्रिदश पुंगवः ।
पितामहपुरोगांस्तान् सर्वलोकनमस्कृतः ।
अब्रवीत त्रिदशान् सर्वान् समेतान् धर्मसंहितान् ॥
भयंत्यजग भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम् ।
सपुत्रपौत्रं समात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम् ॥
सत्वाक्रूरंदुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम् ।

"देवताओं द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर सर्वलोक वन्दित देवधिदेव भगवान् विष्णु ने वहाँ पर समवेत ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं से कहा—'देवगण ! अब तुम भय त्याग दो । मैं

तुम्हारे हितार्थ रावण से संग्राम करके पुत्र, पौत्र, अमात्य, मंत्री, और जाति बन्धुओं सहित नष्ट कर दूँगा ।"

इस विषय में यह विवाद उठाना कि क्या वास्तव में ऐसी कोई 'कांफरेंस' ब्रह्मलोक में हुई थी या नहीं, और देवताओं ने भगवान विष्णु के दरबार में रावण के विरुद्ध सचमुच कोई शिकायत की थी या नहीं, हमारी सम्मति में बेकार है, और हम इस प्रकार के तर्क-वितर्क करने वालों की स्पष्ट रूप से उपेक्षा करते हैं । हम तो एकबार कह चुके कि कथा-उपाख्यानों में, वह भी कविता में लिखे गये ग्रन्थों में गणित के समान प्रमाण ढ़ूँढ़ना, अपनी हठधर्मी अथवा अल्पज्ञता को प्रमाणित करना है । प्रत्येक कवि न्यूनाधिक मात्रा में कल्पना से काम लेता है और काव्य के विभिन्न रसों का उद्दीपन करने के लिये साधारण बातों को बढ़ा-चढ़ाकर लिखता है । जैसे युद्ध का वर्णन करते हुए प्राय: लिख दिया जाता है कि 'रक्त की नदी बह चली जिसमें मरे हुये सैनिक और घोड़े जलजन्तुओं के समान बहते दिखाई पड़ते थे ।' जहाँ तक हम जानते हैं आज तक संसार की किसी लड़ाई में इस प्रकार रक्त की नदी नहीं बही, जिसमें लाशें तैर सकें, पर कविगण युद्ध के वातावरण को वीभत्स रूप देने के लिये ऐसे रूपक बाँधा ही करते हैं । अब यदि कोई आलोचक सज्जन इस वर्णन को अक्षरश: सत्य सिद्ध करने की माँग करें तो यह कैसे सम्भव होगा ? पुराणोंमें देवासुर संग्राम और दुर्गा के युद्धों का वर्णन इसी प्रकार बहुत अधिक बढ़ा-चढ़ाकर लिखा गया है । उस सबको समझदार पाठक कवि की कल्पना का ध्यान रखकर ही पढ़ता और समझता है । यही बात अन्य पौराणिक कथाओं में भी ध्यान में रखनी चाहिए ।

अनेक लोग कहा करते हैं कि बाल्मीकि रामायण में श्रीरामचन्द्रजी को एक आदर्श नरेश मानकर ही उनका गुणानुवाद किया गया है, उनको भगवान का अवतार नहीं कहा है । उपरोक्त वर्णन

से उनकी शंका का निवारण हो सकता है। यहाँ तो कथा के रूप में देवताओं के कथन द्वारा उनको ईश्वरावतार बतलाया गया है, पर कुछ आगे चलकर वाल्मीकिजी ने स्वयं भी इस तथ्य को स्वीकार किया है—

सर्वे एव तु तस्येष्टाश्चत्वारः पुरुषर्षभाः।
स्वशरीराद् विनिवृत्तःश्चत्वार इव बाहवः॥
तेषामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः।
स्वयम्भूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तरः॥
स हिं देवैरुदोर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।
अर्थितोमानुषे लोके जज्ञे विष्णु सनातनः॥

"महाराज दशरथ को चारों पुत्रों अपनी भुजाओं के समान ही अत्यन्त प्रिय थे। परन्तु उनमें भी महातेजस्वी श्रीराम सबसे अधिक प्रिय जान पड़ते थे। इसका एक कारण यह भी था कि वे साक्षात् सनातन विष्णु हैं और परम प्रचण्ड रावण ने वध के उद्देश्य से देवताओं की प्रार्थना पर मनुष्य-लोक में अवतीर्ण हुये हैं।"

तुलसीकृत रामायण में तो यह बात और भी प्रभावशाली रूप में कही गई है। वनवास होने पर चित्रकूट की ओर जाते हुये जब भगवान राम वाल्मीकिजी के आश्रम में पहुँचे तो महर्षि ने उनसे कहा—

जग पेखन तुम देखनि हारे।
विधि हरि संभु नचावन हारे॥
तेउ न जानहिं मरमु तिहारा।
औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥

राम सरूप तुम्हार वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥

"हे भगवान् ! तुम्हीं इस समस्त जगत को जानने और प्रेरित करने वाले हो और ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन देवताओं को भी इच्छानुसार चलाते हो। पर वे भी तुम्हारे रहस्य को पूर्ण तरह नहीं जानते, तब अन्य कोई तुमको कैसे जान सकता है ? हे राम ! तुम्हारा सरूप वाणी और बुद्धि से वर्णन नहीं किया जा सकता। वह ऐसा अव्यक्त अकथनीय और अपार है कि वेदों ने भी उसका कथन 'नेति-नेति' कहकर ही किया है।"

बाल्मीकिजी के अतिरिक्त अन्य सब महाज्ञानी ऋषियों ने भी भगवान राम को ईश्वरावतार बतलाया है। इनमें से कोई साकारवादी हैं और कोई निराकारवादी भी, पर अवतार के सिद्धान्त की सचाई और उसकी महिमा सबने अनुभव की थी। भगवान राम का अवतार हुये थोड़ा ही समय बीता था कि महामुनि विश्वामित्र को उनकी आवश्यकता पड़ गई और उन्होने विचार किया—

गाधितनय मन चिंता व्यापी।
हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी॥
तब मुनिबर मन कीन्ह विचारा।
प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा॥
एहूँ मिस देखौं पद जाई।
करि विनती आनौं दोऊ भाई॥
ग्यान विराग सकल गुन अयना।
सो प्रभु मैं देखव भरि नयना॥

"गाधि नरेश के पुत्र (विश्वामित्रजी) के मनमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि हमारे धर्मकार्य में विघ्न डालने वाले पापी राक्षसों को श्री हरि के अतिरिक्त और कोई नहीं मार सकता। फिर उनको यह विचार आया कि पृथ्वी का भार मिटाने के लिये भगवान का अवतार तो हो चुका है, अब क्यों न उनके पास जाकर दर्शन करूँ और विनय

करके उनको यज्ञ-रक्षार्थ साथ में ले आऊँ। अब मैं अवश्य वहाँ चल कर ज्ञान और विराग के भंडार उन प्रभु को मन भर के देखूँगा।"

परशुराम जी ने भी धनुष यज्ञ के अवसर पर बड़ा रोष प्रकट किया, पर जब रामचन्द्र जी से वार्तालाप हुआ और उनकी शक्ति का अनुमान किया तो उन्होंने यही कहा—

न चेयं तव काकुत्स्थ व्रीडा भवितुमर्हति।
त्वया त्रैलोक्य नाथेन यदहं विमुखीकृतः॥
(वा० रा० बाल० ७६।१०)

"हे काकुत्स्थकुल भूषण श्रीराम! आपके सामने मेरी जो असमर्थता प्रकट हुई, वह मेरे लिये लज्जाजनक नहीं हो सकती, क्योंकि आप त्रिलोकीनाथ श्रीहरि ने मुझे पराजित किया है।"

वसिष्ठ जी ने भी भगवान् राम के सिंहासनासीन हो जाने पर एक बार कहा था कि मैं इस पुरोहित कर्म को निन्दित समझता हूँ, पर मैंने इसको ब्रह्माजी के यह कहने पर स्वीकार कर लिया कि इस वंश में आगे चलकर साक्षात् परमात्मा का अवतार होगा जिसकी कृपा से समस्त भोग, यज्ञ, जप, दान आदि धर्मों का फल अनायास ही प्राप्त हो जायगा—

परमात्मा ब्रह्म नर रूपा। होइहिं रघुकुल भूषन भूपा॥
तब मैं हृदय विचार किय, योग यज्ञ जप दान।
जेहि हित करिय सो पाइये, धर्म न दूसर आन।

इसी प्रकार बाल्मीकि, तुलसीदास तथा अन्यान्य महात्मा कवियों की रचनाओं में श्रीरामचन्द्र के अवतार होने के वक्तव्य भरे पड़े हैं। यह सत्य है कि इनमें जो शब्द प्रयुक्त किये गये हैं वे कवियों के ही हैं, पर तो भी इससे इतना अवश्य प्रकट होता है कि उन्होंने जो कुछ लिखा उसके मूल विचार और उस प्रकार की भावनाएँ उस समय बहुसंख्यक लोगों में पाये जाते थे। जैसा कि कहा गया है कवि अपने

जमाने के लोकमत का दर्पण होता है, बाल्मीकि, तुलसी तथा अन्य विद्वानों की रचनाओं से यह सिद्ध होता है कि मध्य-काल में भी राम-कृष्ण के सम्बन्ध में लोगों की अवतार-भावना काफी बढ़ी-चढ़ी थी और विश्व के रक्षक तथा दुष्ट-तत्वों के संहारक के रूप में उनका सम्मान किया जाता था।

रामायण में और भी अनेक अवसरों सभी देवताओं और ऋषि-मुनियों के कथनों द्वारा श्रीराम के ईश्वरावतार होने का समर्थन किया गया है और अवतार के स्वरूप तथा महत्व पर भी प्रकाश डाला गया है। सर्व प्रथम तो इसके समर्थक शिवजी हैं जो सदा भगवान राम का ध्यान करते रहते हैं।

जासु कृपा सब भ्रम मिट जाई।
गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई।
आदि अंत कोउ-जासु न पावा।
मति अनुमान निगम जस गावा।
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करे विधि नाना।
असि सब भाँति अलौकिक करनी।
महिमा जासु जाइहिं बरनी॥

जब भगवान राम वन में चलते हुये महर्षि अगस्त के आश्रम में में पहुँचे तो उनने भी यही कहा–

ऊमरि तरु विशाल तब माया।
फल ब्रह्माण्ड अनेक निकाया।
जद्यपि ब्रह्म अखंड अनन्ता।
अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता।
अस तव रूप बखानउँ जानउँ।
फिर फिर सगुन ब्रह्म रति मानउँ।

सीता की खोज करते समय जब समुद्र को बाँधे जाने का अवसर आया और वन्दरों को इससे घबड़ाते देखा तो जामवन्त ने उनको समझाया—

तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुण ब्रह्म अजित भज जानहु॥
हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥

जब भगवान राम सैनिक तैयारी करके लंका पर आक्रमण करने को समुद्र के किनारे आ पहुँचे तब विभीषण ने युद्ध द्वारा राक्षस कुल के नाश की संभावना देखकर रावण को श्रीराम की अलौकिकता को समझा कर समझौता करने की सलाह दी और कहा—

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। व्यापक अजित अनादि अनन्तः॥

जब भगवान लंका के निकट पहुँच गये और युद्धारम्भ होने का अवसर आ पहुँचा तो मन्दोदरी ने रावण को उनसे सुलह करने को समझाया और कहा कि श्रीराम ही जगत का संचालन करने वाली सर्वव्यापी शक्ति के अवतार हैं, उनसे कोई किसी प्रकार नहीं जीत सकता। उसने भगवान राम के विराट् रूप को बतलाते हुये कहा—

विश्व रूप रघुवंस मनि, करहु वचन विस्वासु।
लोक कल्पना वेद कर, अंग-अंग प्रति जासु॥

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोग अँग-अँग विश्रामा॥
भृकुटि विलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घनमाला॥
जासु घ्रान अश्विनी कुमारा। निसि और दिवस निमेष अपारा॥
श्रवन दिसा दस वेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज वानी॥
अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिग्पाला॥
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा॥
रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि शैल सरिता नस जारा॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु की बहुत कल्पना॥

अहंकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान।।

अर्थात् "इस बात को खूब अच्छी तरह समझ लो कि श्रीराम उस परब्रह्म के अवतार हैं, जिसके समस्त अंगों में वेदों ने विभिन्न लोकों की कल्पना की है। उनके पैर ही पाताल हैं और सिर वैकुन्ठ लोक है। इसी प्रकार अन्य लोकों का समावेश अन्य-अन्य अंगों में है। उनकी भृकुटि का चलना ही भयंकर काल स्वरूप है, नेत्र सूर्य रूप हैं और केश बादलों के रूप में हैं। उनकी घ्राण अश्विनी कुमार है और पलकों का चलना दिन रात का होना है। दशों दिशायें उनके कानों के रूप में हैं, उनकी स्वांस ही वायु है और वाणी ही वेद रुप है। उनके अधर सबको ग्रहण करने वाले और दाँत ही यम है, हँसना माया रूप और भुजायें दिक्पाल हैं। मुख अग्नि स्वरूप है, जीभ, वरुण है, और संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय ही उनकी चेष्टा क्रिया है। अठारह प्रकार की असंख्यों वनस्पतियाँ रोमावलि हैं, पर्वत उनके अस्थि-रूप और नदिया नस-नाड़ियों के तुल्य है। उनका उदर ही समुद्र रूप और अधोभाग नर्क स्वरूप है। इस प्रकार प्रभु के विश्व रूप को बहुत तरह से वर्णन किया गया है। उनका अहंकार का भाव ही शिव है बुद्धि ब्रह्मा है और मन चन्द्रमा रूप है। इस प्रकार भगवान राम मनुष्य के रूप में समस्त चराचर जगत के आश्रयस्थल परमात्मा हैं।"

इस प्रकार रामायण में सभी पात्रों के मुख से यही कहलाया गया है कि श्री रामचन्द्र पृथ्वी का भार हरण करने के लिये ही पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं और उनके 'अवतारी स्वरूप' को समझ कर मनुष्य सद्गति का अधिकारी बन सकता है। और तो क्या स्वयम् रावण भी, जिसके संहार करने को श्री रामचन्द्रजी का आविर्भाव हुआ था, इस सत्य को अनुभव करता था। सीता हरण का विचार करते हुए उसने कहा था—

खरदूषण मो सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता।।

सुर रंजन भंजन महि भारा। जो भगवंत लीन्ह अवतारा।।
तो मैं जाइ बैरु हठ करिऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ।।

अर्थात्---"खर और दूषण तो मेरे समान ही बलवान थे, उनको सिवाय भगवान के और कौन मार सकता है? इसलिए देवताओं की प्रसन्नतार्थ पृथ्वी का भार हरण करने के निमित्त यदि भगवान ने अवतार लिया है तो मैं जान बूझ-कर उनसे वैर करूँगा, जिससे उनके द्वारा मारा जाकर मेरी मुक्ति हो सके।"

इस प्रकार जिसकी जैसी भावना और परिस्थिति थी उसने उसी दृष्टि से श्री रामचन्द्र के अवतारत्त्व को समझा और स्वीकार किया। उन सबके विचारों का आधार यही है कि संसार पर जब कोई बहुत बड़ी आपत्ति आती है और मानवता कष्टों से पीड़ित होकर कराहने लगती है तो उसके उद्धार के लिए किसी रूप में ईश्वरीय शक्ति का विशेष रूप से प्राकट्य होता है। श्री रामचन्द्रजी में उनके सम्पर्क में आने वाले सब व्यक्तियों को वैसे ही लक्षण दिखाई पड़ते थे, इसलिए सब ने अपनी-अपनी भावना के अनुसार उनके दैवी रूप को अनुभव किया।

'पद्म-पुराण' के 'पातालखण्ड' में भी रामचरित्र विस्तार पूर्वक दिया गया है। उसमें राज्याभिषेक के अवसर पर देवताओं द्वारा श्री रामचन्द्रजी की स्तुति करते हुए कहा गया है--

तत्र यद्दनुजेन्द्रनाशनं कवयो वर्णयितुं समुत्सुकाः।
प्रलये जगतां ततीः पुनर्ग्रसते त्वं भुवनेश लीलया।।
जय जन्म जरादि दुःखकैः परिमुक्ता प्रवलोद्धरोद्धर।
जय धर्मकरान्वयाम्बुधौ कृतजन्म जरामराच्युत।।
यदा यदा नो दनुजा हि दुःखदास्तदा तदा त्वं भुवि
अजोऽव्ययोऽपीश वरोऽपि सन्विभो स्वभावमाणास्थाय
निजं निजार्चितः।।

"आपके द्वारा जो दनुजेन्द्र (रावण) का विनाश हुआ है, उस अद्भुत कथा का समस्त कविगण सदैव उत्कण्ठा पूर्वक वर्णन करते रहेंगे। हे भुवनेश्वर ! प्रलय काल में आप ही सम्पूर्ण लोकों को लीलापूर्वक ग्रस लेते हैं। प्रभो ! आप जन्म और जरा आदि से सदा मुक्त हैं। आप सर्वोपरि शक्ति सम्पन्न हैं। हे परमात्मन् ! आपकी जय हो, आप हमारा उद्धार करें। हे नाथ ! जब-जब दानवी (दुष्टतापूर्ण) शक्तियाँ हमें दु:ख देने लगें तब तब आप इस पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करें। हे प्रभो ! यद्यपि आप सब से श्रेष्ठ, अपने भक्तों द्वारा पूजित अजन्मा तथा सबके स्वामी हैं, तो भी अपनी माया का आश्रय लेकर भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होते रहते हैं।"

"अध्यात्म रामायण" में भी भगवान राम का अनादित्व और और सच्चिदानन्द स्वरूप अनेक स्थानों पर वर्णन किया गया है--

रामः परात्मा प्रकृतेरनादिरा नन्द एकः पुरुषोत्तमो हि ।
रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्द मद्वयम् ।
सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं सत्तामात्र मगोचरम् ।।

"श्रीराम प्रकृति से परे, परमात्मा, अनादि, आनन्दघन, अद्वितीय एवं पुरुषोत्तम हैं। वे ही सच्चिदानन्द समस्त उपाधियों से रहित, सत्तामात्र, वाणी और मनसे अगोचर परमब्रह्म हैं।"

'आनन्द रामायण' में कहा गया है कि श्री रामचन्द्र के दैवी चरित्रों का देखकर महाराज दशरथ ने उनसे एकान्त में कहा–राम! तुम साक्षात् नारायण हो। तुमने भूमि का भार मिटाने के लिए मेरे यहाँ अवतार लिया है, ऐसा सब लोग कहते हैं। मैं भी तुम्हारी माया से मोहित हो रहा हूँ, अत: मुझे ज्ञानोपदेश देकर मेरे अज्ञान को दूर करो।' तब भगवान राम ने उनको संसार की मृग मरीचिका का रहस्य समझाते हुए अन्त में कहा—

पूर्वंत्वया तपस्तप्तं पुत्रत्वं याचितं मम ।
तस्माज्जातोऽस्मि त्वत्तोऽहं कौसल्यायां नृपोत्तम ।।

'आपने पूर्वकाल में तप करके मुझे पुत्र रूप में माँगा था।

इसी कारण मैं आपके यहाँ कौशल्या माता के गर्भ से पुत्र रूप से प्रगट हुआ हूँ।"

इस प्रकार भगवान राम ने तथा अन्य ऋषि-मुनियों ने समय समय पर 'रामावतार' के स्वरूप और उद्देश्य को प्रकट किया है।

कृष्णावतार की महानता—

शास्त्रों में जितने अवतारों का वर्णन किया गया है उनमें प्रथम स्थान भगवान कृष्ण को मिला है और इस लिये 'कलाओं' का हिसाव वतलाया गया है। भगवान की समस्त कलाओं की संख्या १६ मानी गई है। अवतारों में से कोई ८ कला का कोई १० का, १२ का कहा गया है; पर भगवान कृष्ण 'षोडशकलावतार' के नाम से प्रसिद्ध हैं। भगवान राम का भी महत्त्व बहुत अधिक है और समस्त जगत उनका सम्मान करता है; पर भगवान कृष्ण ने जितनी अधिक पेचीदा समस्याओं को सुलझाया उससे उनका महत्व बहुत बढ़ जाता है। श्री रामचन्द्रजी को मुख्यत: रावण का ही सामना करना पड़ा और उसका आतंक समाप्त कर देने पर वे जीवन के अन्त तक शांतिपूर्वक राज्य-संचालन करके प्रजा को धर्ममार्ग पर चलाते रहे। पर भगवान कृष्ण आजीवन अन्याय और दुष्टता का दमन करते रहे। एक के बाद एक पाशविक शक्ति पर विश्वास रखने वालों का सामना करके लोककल्याण साधन करने में उनको अपनी समस्त शक्ति और समय लगाना पड़ा, उसका पूरा वर्णन कर सकना भी कठिन है। जन्म लेते ही कंस की क्रूरता के लक्ष्य बने और बाल्यावस्था से ही उसके भयंकर-कर्मा दूतों से संघर्ष करना पड़ा। किशोरावस्था में वे सब तरह से इतने शक्तिशाली बन गये कि थोड़े से अनुयाइयों के सहयोग से कंस का अन्त कर दिया। फिर वे उसके ससुर जरासंध से भिड़े जो समस्त देश का सम्राट बनने की योजना कर रहा था। शिशुपाल जैसे उच्छृंखल राजा को उन्होंने भरी सभा में यमलोक पहुँचा दिया और वाणासुर की अहम्मन्यता को नीचा दिखा दिया। जब देखाकि इस प्रकार एक-एक को

खत्म करते तो सारी आयु बीत जायगी तब भी काम पूरा न होगा, तो 'महाभारत' रचा दिया और शक्ति के मतवाले राजाओं को परस्पर में ही नष्ट कराके प्रजा को उनके असह्य भार से मुक्त किया।

भगवान कृष्ण की इस लोक-कल्याण वृत्ति का समस्त जनता पर अपूर्व प्रभाव पड़ा और उसके अन्त:करण में स्वत: यह भावना भर गई कि वे वास्तवमें लोक रक्षक थे और उन्होंने इसी हेतु जन्म ग्रहण किया था। किसी को यह विश्वास नहीं होता था कि कोई एक व्यक्ति ऐसे अनेक असम्भव कामों को सिद्ध करके दिखा सकता है, इसलिए सबको ही निश्चय हो गया कि वे वास्तव जगतपति भगवान ही थे, जो संसार की रक्षार्थ प्रकट हुये थे और इस उद्देश्य की पूर्ति करके अस्तंगत हो गये।

महाराज युधिष्ठिर के ईश्वर भक्ति और अवतार आदि के सम्बन्ध में अत्यन्त विनयपूर्वक पूछने पर एक बार भगवान कृष्ण ने अपने प्राकट्य का रहस्य इस प्रकार बतलाया था–

इदं मे मानुषं जन्म कृतमात्मनि मायया।
धर्म संस्थापनार्थाय दुष्टानां नाशनायच ॥
मानुष्यं भावमापन्नं ये मामुग्रहणात्यवज्ञय।
संसारार्तहि ते मूढास्तिर्यग्योनिष्वनेकश: ॥
ये च मां सर्वभूतस्थं पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा।
मद्भक्तांस्तान् सदा युक्तान् मत्समीपं नयाम्यहम् ॥
स्थित्युत्पत्त्य व्ययंकर यो मां ज्ञात्वा प्रपद्यते।
अनुग्रहणाम्यहं तं वै संसारान्मोचयामि च ॥

"इस समय धर्म की स्थापना और दुष्टों का विनाश करने के लिये ही मैंने अपनी माया से मानव रूप में अवतार लिया है। जो लोग मुझे केवल मनुष्य ही समझकर अवज्ञा का भाव रखेंगे, वे मूर्ख हैं और संसार के भीतर बारम्बार तियक् योनियों में भटकते फिरगे। इसके विपरीत जो ज्ञानदृष्टि से मुझे सब भूतों में स्थित देखते हैं, वे

सदा मेरे भक्त बने रहते हैं और अन्त में मेरे पास ही आ जाते हैं। जो मनुष्य मुझे जगत की उत्पत्ति, स्थिति और संहार का कारण समझकर कर मेरी शरण लेता है, उसको मैं भवबन्धन से छुड़ा देता हूँ।"

अहमादिर्हि देवानां सृष्ट ब्रह्मादयो मया।
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य जगत् सर्वं सृजाम्यहम्॥
तमोमूलोऽहमव्यक्तो रजोमध्ये प्रतिष्ठितः।
ऊर्ध्वं सत्वं विना लोभं ब्रह्मादिस्तम्ब पर्यंतः॥
धृतोर्वीं सर्वतः सम्पगत्यतिष्ठं दशांगुलम्।
सर्वभूतात्म भूतस्थः सर्वव्यापी ततोऽस्म्यहम्॥

"मैं ही देवताओं का आदि हूँ। ब्रह्मा आदि देवताओं की मैंने ही सृष्टि की है। मैं ही अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर जगत की सृष्टि करता हूँ। मैं अव्यक्त परमेश्वर ही तमोगुण का आधार, रजो-गुण के भीतर स्थिति और उत्कृष्ट सत्वगुण में भी व्याप्त हूँ। मुझे कोई आकांक्षा नहीं है पर मैं ब्रह्मा से लेकर छोटे से कीट में भी व्याप्त हूँ। मैं पृथ्वी को सब ओर से धारण करके, नाभि से दश अंगुल ऊपर सब के हृदय में विराजमान हूँ। सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मरूप से स्थिति हूँ, इसलिए सर्वव्यापी कहलाता हूँ।"

कंस का शासन समाप्त होने के पश्चात् एक दिन कृष्ण-बलराम जब अक्रूरजी के पास गये तो उनकी महिमा को समझकर वयोवृद्ध होते हुए भी उन्होंने उनकी पूजा की और स्तुति करते हुए उनकी दैवी सत्ता के विषय में कहा—

युवां प्रधान पुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ।
भवद्भ्यां न बिना किञ्चित् परमास्ति न चापरम्॥
आत्म सृष्टिमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः।
ईयते बहुधा ब्रह्मन् श्रुत प्रत्यक्ष गोचरम्॥
यथाहि भूतेषु चराचरेषु मह्यादयो योनिषु भान्ति नाना।

एवं भवान् केवल आत्मयोनिष्वात्मऽऽत्मतन्त्रो बहुधा विभाति ।।
सृजस्वथो लुम्पसि पासि विश्वं, रजस्तमः सत्वगुणै स्वशक्तिभिः ।
न बध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वाज्ञानात्मनस्ते क्वच बन्धहेतुः।।
देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद् भवो न साक्षान्न भिदाऽऽत्मनः स्यात्
अतो न बन्धस्तव नै व मोक्षः स्यातां निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ।।

आप जगत के कारण जगत-रूप और आदि पुरुष हैं। आपके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है न कारण है और न कार्य। हे परमात्मन् ! आपने ही अपनी शक्तियों से इसकी रचना की है। आप अपनी काल, माया आदि शक्तियों से इसमें प्रविष्ट होकर, जितनी वस्तुएं देखो और सुनी जाती हैं; उनके रूप में प्रतीत हो रहे हैं। जैसे पृथ्वी आदि की रचना उनके कारण तत्वों से ही होती है, पर कार्य रूप में अनेक प्रकार के प्रतीत होते हैं, इसी प्रकार आप हैं तो केवल आत्मा तत्व में ही, पर कार्यरूप जगत में स्वेच्छा से अनेक रूपों में प्रतीत होते हैं। प्रभो ! आप रजोगुण, सत्वगुण और तमोगुण रूप अपनी शक्तियों से क्रमशः जगत की रचना, पालन और संहार करते हैं, किन्तु उन गुणों अथवा उनके द्वारा होने वाले कर्मों बन्धन में नहीं पड़ते क्योंकि आप शुद्ध ज्ञान स्वरूप हैं। ऐसी स्थित में आपके लिये बन्धन का कारण ही क्या हो सकता है ? आत्मा में किसी प्रकार की स्थूल अथवा सूक्ष्मदेह की उपाधि नहीं होती इसलिये उसमें न तो जन्म-मृत्यु होती है, न कोई भेदभाव होता है। यही कारण है कि आप बन्धन और मोक्ष दोनों से परे हैं। हम अपने अज्ञान के कारण ही अपनी मति के अनुसार आप के बन्धनग्रस्त या मुक्त होने की कल्पना किया करते हैं।'

इसी प्रकार जब भगवान कृष्ण कालयवन को धोखा देकर मुचुकुन्द के पास ले गये और उसे भस्म करा दिया तो मुचुकन्द द्वारा नाम, वंश, निवास स्थान आदि पूछने पर अपना परिचय देते हुए उसमें अपने ईश्वरत्व को पूर्ण रूप से प्रकट किया है–

जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रशः ।
न शक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वान्मयापि हि ॥
क्वचिद् रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः ।
गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥
कालत्रयोपपन्नानि जन्म कर्माणि मे नृप ।
अनुक्रमन्तो नैवान्तं गच्छन्ति परमर्षयः ॥
तथाप्यद्यतनान्यङ्ग शृणुष्व गदतो मम ।
विज्ञापितो विरिञ्चेन पुराहं धर्म गुप्तये ॥
भूमेर्भारायमाणानाम सुराणां क्षयाय च ।
अवतीर्णो यदुकुले गृह आनक दुन्दभेः ॥
वदन्ति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माम् ।

"हे मुचुकुन्द ! मेरे हजारों जन्म, कर्म और नाम हैं । वे अनन्त हैं इसलिये मैं भी उनकी गिनती करके नहीं बतला सकता । यह सम्भव है कि कोई पुरुष अपने जन्मों में पृथ्वी के धूलकणों की गिनती कर डाले, परन्तु मेरे जन्म, गुण कर्म और नामों को कोई कभी किसी प्रकार नहीं गिन सकता । सनक-सनन्दन आदि परमर्षिगण मेरे त्रिकालसिद्ध जन्म और कर्मों का वर्णन करते रहते हैं, परन्तु कभी उनका पार नहीं पाते । ऐसा होने पर भी मैं तुमको बतलाता हूँ कि पहले ब्रह्माजी ने मुझसे धर्म की रक्षा और पृथ्वी का भार बने हुए असुरों का संहार करने के लिये प्रार्थना की थी । उन्हीं की प्रार्थना से मैं ने यदुवंश में वसुदेवजी के यहाँ अवतार ग्रहण किया है । अब मैं वसुदेव जी का पुत्र हूँ, इसलिये मुझे वासुदेव कहते हैं ।"

जब वाणासुर ने श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को अवरुद्ध कर लिया तो उन्होंने वाणासुर की राजधानी शोणितपुर पर आक्रमण किया और बड़े-बड़े प्रसिद्ध दैत्यों तथा उनके सहायक भगवान शंकर के गणों को हरा कर भगादिया। जब वे वाणासुर की भुजाओं को काटने लगे तो भगवान शंकर ने स्वयं वहाँ आकर उनसे वाणासुर की रक्षा की प्रार्थना की। उस अवसर पर शंकरजी ने श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहा था।

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढ़ं ब्रह्मणि वाङ्मये।
यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम्॥
नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो द्यौः शीर्षमाशा श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी।
चन्द्रो मनोयस्य दृगर्क आत्मा अहं समुद्रो जठरं भुजेन्द्रः॥
तवावतारोऽयमकुण्ठधामन् धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय।
वदं च सर्वे भवतानुभाविता विभावयामो भुवनानि सप्त॥
त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्यः स्वदृगघेतुरहेतुरीशः।
प्रतीपसेऽथापि यथाविकारं स्वमायया सर्वगुण प्रसिद्धयै॥
यथैवसूर्यः पिहितश्छायया स्वयां छायां च रूपाणि च सञ्चकास्ति।
एवं गुणेनापि हतो गुणांस्त्वमात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन्॥
(स्कन्द १० अ० ६३)

"प्रभो! आप वेदमंत्रों में तात्पर्य रूप से छिपे हुये परम ज्योति स्वरूप परब्रह्म है। शुद्ध हृदय महात्मागण आपके आकाश के समान सर्वव्यापक और निर्विकार स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं। आकाश आपकी नाभि है, अग्नि मुख है, जल वीर्य है, स्वर्ग सिर, दिशाएँ कान और पृथ्वी चरण हैं। चन्द्रमा मन, सूर्य नेत्र, और मैं (शिव) आपका अहंकार हूँ। समुद्र आपका पेट है और इन्द्र भुजा स्वरूप है। हे अखंड ज्योतिस्वरूप परमात्मन्! आपका यह अवतार धर्म की रक्षा और

संसार के अभ्युदय-अभिवृद्धि के लिये हुआ है। हम सब आपके प्रभाव से ही प्रभावान्वित होकर सातों भुवनों का पालन करते हैं। आप एक और अद्वितीय आदिपुरुष हैं। मायाकृत जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओं में अनुगत और उनसे अतीत तुरीय तत्त्व भी आप ही हैं। आप किसी दूसरी वस्तु से प्रकाशित नहीं होते, वरन् स्वयं प्रकाश है। आप सब के कारण हैं, परन्तु आपका न तो कोई कारण हैं और न आप में कारणपना ही है। भगवान् ! ऐसा होने पर भी आप तीनों गुणों की विभिन्न विषमताओं को प्रकाशित करने के लिये अपनी माया से देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि शरीरों के अनुसार भिन्न भिन्न-रूपों में प्रतीत होते हैं।"

भगवान कृष्ण जी ने शंकर जी के अनुरोध की रक्षा करके वाणासुर को प्राण प्रदान किया और कहा कि आप (शंकर जी) और मुझमें कोई भेद ही नहीं है। केवल सृष्टि संचालन के लिये दो भिन्न रूप जान पड़ते हैं।

'पद्मपुराण' में वेद व्यास और कृष्णजी का संवाद—

एक बार भगवान वेद व्यास ने ईश्वर के परमतत्व को जानने की इच्छा से कई हजार वर्ष तक कठिन तप किया। इस पर प्रसन्न होकर भगवान ने उनसे वर मांगने को कहा तो उन्होंने यही प्रार्थना की, कि हे मधुसूदन ! मैं आपके अद्भुत तत्व रूप को ही जनना चाहता हूँ। इस पर भगवान ने कहा—

मामे के प्रकृतिं प्राहुः पुरुषं च तथेश्वरम्।
धर्म मेके धनं चैके मोक्ष मेके ऽ कुतोभयम्॥
शून्य मेके भावमेके शिवमेके सदाशिवम्।
अपरे वेदशिरसि स्थितमेकं सनातनम्॥
सद्भावं विक्रियाहीनं सच्चिदानन्द विग्रहम्।
पश्याद्य दर्शयिष्यामि स्वरूपं वेदगोपितम्॥

"हे व्यासजी ! मेरे विषय में लोगों की अनेक प्रकार की धारणा हैं । कोई मुझे 'प्रकृति' कहते हैं, कोई 'पुरुष' कोई ईश्वर' कोई 'धर्म' या 'अर्थ' । किन्हीं के मत से मैं भय रहित मोक्षस्वरूप हूँ, कोई भाव (सत्वस्वरूप) मानते हैं और कोई कल्याणमय सदाशिव बतलाते हैं । इसी प्रकार दूसरे लोग मुझे वेदान्त प्रतिपादित 'अद्वितीय सनातन ब्रह्म' मानते हैं । किन्तु जो वास्तव में सत्तास्वरूप और निर्विकार है, जो दिव्य सच्चिदानन्द विग्रह रूप है, तथा जिसका रहस्य वेदों से भी छिपा हुआ है, अपने उस पारमार्थिक स्वरूप को आज तुम्हारे सामने प्रकट करता हूँ ।"

यह कह कर भगवान ने व्यासजी को अपना बालकृष्ण स्वरूप दिखलाया, जिसमें वे एक दिव्य बालक के रूप में गोप बालक और कन्याओं से घिरे हुए एक कदम्ब वृक्ष की जड़ पर बैठे हुए थे । भगवान ने कहा—

यदिहं मे त्वया दृष्ट रूपं दिव्यं सनातनम् ।
निष्कलं निष्क्रियं शान्तं सच्चिदानन्द विग्रहम् ।।
पूर्णं पद्मपलाशाक्षं नातः परतरं मम ।
इदमेव वदन्त्येते वेदाः कारणाकारणम् ।।
सत्यं नित्यं परानन्दं चिद्घनं शाश्वतं शिवम् ।

"हे मुनिवर ! तुमने जो इस दिव्य सनातन रूप का दर्शन किया है, यही मेरा निष्कल, निष्क्रिय, शान्त और पूर्ण सच्चिदानन्दमय विग्रह है । इस कमल लोचन स्वरूप से बढ़कर दूसरा कोई उत्कृष्ट तत्व नहीं है । वेद इसी स्वरूप का वर्णन करते हैं और यही कारणों का भी कारण हैं । यही सत्य, नित्य, परमानन्द स्वरूप; चिदानंदघन, सनातन शिवतत्व है ।"

आदि पुराण में भगवान का भक्ति-तत्त्व कथन--

'आदि पुराण' में भक्ति मार्ग और भक्तों की महिमा का कथन

करते हुए भगवान कृष्ण ने कहा—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।।

'हे नारदजी ! मैं न तो वैकुन्ठ में वास करता हूँ और न योगियों के हृदय में ही रहता हूँ । मेरे भक्त जहां मेरा गुण-कीर्तन या स्मरण करते हैं मैं वहीं रहता हूँ ।'

इस एक ही श्लोक में भगवान ने उस तत्व को प्रकट कर दिया है जिसको कोई तीन काल में नहीं कर सकता । वैकुण्ठ के योग्य धर्म-साधन अथवा योग-साधन न्यूनाधिक सांसारिकता से सम्बन्धित है और इनमें मनुष्य जो कुछ कर्म करता है वह फल प्राप्ति की इच्छा से होता है । पर भगवान की निष्काम भक्ति एक ऐसी चीज है जिसमें भला-बुरा कोई उद्देश्य नहीं होता वरन्-भक्ति-भक्ति के लिये ही होती है, और उस मार्ग पर चलने वाला निश्चित रूप से जीवन को सफल कर लेता है । भक्त के लिए भगवान हर जगह और हर रूपमें उपस्थिति रहते हैं । उनको वैकुण्ठ में, या मन्दिरों में या किसी विशेष विधि के द्वारा ही प्राप्त करने की चेष्टा आवश्यक नहीं है । वे सत्ता मात्र है और इस लिए सर्वत्र और सभी रूपों में उनको पाया जा सकता है ।

भविष्य पुराण में अवतार कथन—

महाभारत युद्ध के पश्चात जब महाराज युधिष्ठिर राज्यसंचालन कर रहे थे, एक समय व्यास, मार्कण्डेय शांडिल्य आदि अनेक मुनि उनके पास आये । उस अवसर पर उन्होंने धर्म सिद्धान्त को जानने की जिज्ञासा की तो श्री व्यासजी ने उन्हें बतलाया—

पार्श्वस्थिते हृषीकेशे केशवे केशिसूदने ।
कस्यचित्कथने जिह्वा तत्र संपरिवर्तते ।।
कर्ता पालयिता हर्ता जगतां यो जगन्मयः ।
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य धर्मान्वक्ष्यत्यसौ तव ।।

भगवान केशिसूदन श्रीकृष्ण यहां हमारे सामने सब के

उपस्थित हैं। इन के रहते हुए धर्म के सम्बन्ध में कोई अन्य क्या कह सकता है ? ये तो संसार के कर्ता-हर्ता, पालन कर्ता और स्वयं ही जगतरूप हैं। ये धर्म के प्रत्यक्ष दृष्टा है। इस धर्म के सम्बन्ध में ये ही तुम को सब कुछ बता सकेंगे।

ब्रह्मवैवर्त पुराण--

ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा-कृष्ण के युगल स्वरूप की उपासना को सर्वोच्च मान कर उसका दिव्य रूप में बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। पर उसमें भी भगवान को सबका कर्ता और सर्वव्यापी मान कर अवतार के स्वरूप का वर्णन पाया जाता है। जब नन्द बाबा भगवान कृष्ण के मथुरा में ही ठहर जाने के कारण उनके वियोग से अत्यन्त कातर हो रहे थे, तब भगवान से स्वयं उनको बतलाया था—

निबोध नन्द सानन्दं त्यज शोकं मुदं लभ।
ज्ञान गृहाण मद्दत्तं ब्रह्मणे पुरा॥
यद्यदत्तं च शेषाय गणेशायेश्वराय च।
दिनेशाय मुनीशाय योगीशाय च पुष्करे॥
ममैव मायया सर्वे सानन्दा विषयेषु च।
देहत्यागे विषण्णाश्च विच्छेदे बान्धवस्य च॥
मद्भक्तो भक्तियुक्तश्च मद्याजी विजितेन्द्रियः।
मन्मन्त्रोपासकश्चैव मत्सेवानिरतः शुचिः॥
मद्भयाद्वाति वातोऽयं रविभाति च नित्यशः।
भाति चन्द्रो महेन्द्रश्च कालभेदे च वर्षति॥
वह्निर्दहति मृत्युश्च चरत्येव हि जन्तुषु।
विभर्ति वृक्षः कालेन पुष्पाणि च फलानि च॥

हे नन्द बाबा ! मेरे वचनों को आनंद पूर्वक सुनो, शोक को त्यागकर वर्ष को हृदय में स्थान दो। मैं जो विश्व ब्रह्माण्ड सम्बन्धी रहस्य बतलाता हूँ उसे सुनो और समझो। पूर्वकाल में यही ज्ञान मैंने

ब्रह्मा, शेष, गणेश, महेश, दिनेश, मुनीशों और योगीशों को भी प्रदान किया था। यह मेरी माया ही है जिसके प्रभाव से सब प्राणी संसार के सुखों को प्राप्त करके प्रसन्न होते रहते हैं और देह त्याग तथा कुटुम्ब-परिवार से छूटने का समय आता है तो विषाद करने लगते हैं। पर जो मेरा भक्त परमात्मा-तत्व को समझता होगा, मेरे भजन में लगा रहता होगा, इन्द्रियों को वश में रख कर मेरी उपासना करता होगा, निरन्तर मेरी सेवा में संलग्न होगा, वह सदैव परम पवित्र माना जायगा और कभी किसी कारण से दुःखी नहीं हो सकेगा। आप अच्छी तरह विश्वास करलो कि विश्व का नियन्ता मैं ही हूँ। मेरे भय से ही वायु चलती है, सूर्य और चन्द्रमा प्रतिदिन प्रकाशित होते हैं, इन्द्र समय पर वर्षा करते हैं, आग जलती है, मृत्यु सब जीवों को हटाती रहती है और वृक्ष समयानुसार पुष्प फल आदि धारण करते हैं।"

अहमात्मा च सर्वेशा सर्वज्ञानात्मकः स्मृतः।
मनो ब्रह्मा च प्रकृतिर्बुद्धिरूपा सनातनी॥
प्राणा विष्णुश्चेतना सा पद्मा तु चाधि देवता।
मयिस्थिते स्थितः सर्वे गतास्तेऽपि गते मयि॥
अस्माभिश्च विना देहः सद्यः पतित निश्चितम्।
पाञ्चभूतो विलीनश्च पंचभूतेषु तत्क्षणम्॥
सर्व देहे प्रविष्टोहं न लिप्तः सर्व कर्मसु।
जीवन्मुक्तश्च मद्भक्तो जन्ममृत्युजराहरः॥

"मैं सर्वेश्वर पूर्ण ज्ञान स्वरूप आत्मा हूँ। ब्रह्मा मन है, सनातनी प्रकृति बुद्धि है, प्राण विष्णु है, तथा चेतना उसकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी है। शरीर में जब तक मैं चेतन आत्मा रूप से स्थित रहता हूँ, तभी तक वह भी स्थिर रहता है। मेरे चले जाने पर वे भी सब हट जाते हैं, क्योंकि सब मेरे ही रूप हैं। इन सबके चले जाने पर देह तत्काल निस्सार हो जाता है। जिन पंच भूतों से वह बना होता है वे भी समयानुसार अपने मूल तत्वों में विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार मैं

आत्मा रूप से समस्त शरीर में व्याप्त रहता हूं, पर उनके द्वारा किये जाने वाले कर्मों से निर्लिप्त रहता हूँ। मुझे इस रूप में जानने वाला मेरा भक्त जीवन्मुक्त होता है और उस पर जन्म-जरा, मृत्यु का कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता।''

विष्णु पुराण में अक्रूरजी का भगवद्दर्शन-

अक्रूरजी जब कंस की आज्ञा से कृष्ण और बलराम को वृन्दावन से लिवाकर मथुरा आ रहे थे तो मार्ग में सन्ध्या-वन्दन के निमित्त वे यमुना में स्नान करने को उतरे। वहाँ उनको शेष शैया पर भगवान कृष्ण के दर्शन हुये तो वे आश्चर्य चकित हो गये क्योंकि वे उसी समय उनको रथ पर बैठा हुआ छोड़ आये थे। फिर जब वे जल से बाहर आये तो उन्होंने दोनों भाइयों को उसी प्रकार बैठा पाया। जब दूसरी बार भी ऐसा ही दृश्य दिखलाई पड़ा तो वे भगवान कृष्ण के वास्तविक परात्पर रूप को पहिचान गये और स्तुति करते हुए उन्होंने कहा—

नमो विज्ञान पाराया परा. प्रकृतेः प्रभो।
भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान्॥
आत्मा च परमात्मा च त्वमेकः पंचधा स्थितः।
प्रसीद सर्वे सर्वात्मन् क्षराक्षरमयेश्वर।
ब्रह्माविष्णुशिवाख्याभिः कल्पना भिरुदीरितः॥
अनाख्येयस्वरूपात्मन्ननाख्येय प्रय.जनम्।
अनाख्येयाभिधानं त्वां नतोऽस्मि परमेश्वर।'
न यत्र नाथ विद्यन्ते नामजात्यादिकल्पनाः।
तद् ब्रह्म परमं नित्यमविकारि भवानजः॥
न कल्पनामृतेऽर्थस्य सर्वस्याधिगमो यतः।
ततः कृष्णाच्युतानन्तविष्णु संज्ञा भिरीड्यते॥

''हे प्रभो! आप विज्ञान और प्रकृति से परे को नमस्कार है। आप एक ही भूतात्मा, इन्द्रियात्मा, प्रधानात्मा, जीवात्मा और पर-

मात्मा—इन पाँच रूपों में स्थित हैं। सर्वात्मन ! हे क्षर-अक्षरमय परमेश्वर ! आप एक ही ब्रह्मा, विष्णु, महादेव के रूपों में कल्पित किये जाते हैं। हे भगवान् ! आपके नाम, रूप प्रयोजन–सभी अकथनीय हैं। ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ आप न हों। आप जाति आदि कल्पनाओं से परे नित्य, निर्विकार एवं अजन्मा परब्रह्म हैं। पर बिना किसी विधि के आपका वर्णन संभव न होने से ही लोग कृष्ण अच्युत, अनन्त और विष्णु आदि नामों से आपकी आराधना करते हैं।

सर्वार्थस्त्वमज विकल्पनाभिरेतै –
र्देवाद्यैर्भवति हि यैरनन्त विश्वम् ॥
विश्वात्मा त्वामिति विकारहीन मेत।
त्सर्वस्मिन्न हि भवतोऽसि किञ्चिदन्यत् ॥
त्वं ब्रह्मा पशुपतिर्यमा विधाता।
धाता त्व त्रिदशपतिस्समीरणोऽग्निः॥
तोमेशो धनपतिरन्तकस्त्वमेको।
भिन्नार्थैर्जगदभिपासि शक्ति भेदैः॥
विश्वं भवान्सृजति सूर्यगभस्तिरूपो।
विश्वेश ते गुणमयोऽयमतः प्रपंचः॥
रूपं परं सदिति वाचकमक्षरं य—
ज्ज्ञानात्मने सदसते प्रणतोस्मि तस्मैः॥

"हे अजन्मा ! जिन देवादि कल्पना वाले पदार्थों से यह संसार उत्पन्न हुआ हैं, वह आप ही हैं। आप ही विकारहीन आत्मावस्तु होने से विश्वात्मा हैं। इन सब में आपसे भिन्न कोई भी पदार्थ नहीं है। आप ही ब्रह्मा, पशुपति; अर्यमा, विधाता, धाना, इन्द्र, समीर, अग्नि, वरुण, कुबेर और यम के रूप में विभिन्न कार्यभेद के द्वारा सम्पूर्ण विश्व का संचालन करते हैं। हे विश्वेश्वर ! आप ही सूर्य रश्मियों के रूप में होकर जगत की सृष्टि करते हैं। इस प्रकार यह गुणमय सम्पूर्ण प्रपंच आपका ही स्वरूप है। जिसका वाचक सत् है, वह प्रणव आपका

ही रूप है। आपके उस ज्ञानात्मक सत्स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ।"

'विष्णुपुराण' के आरम्भ में ही मैत्रेय के जिज्ञासा करने पर महर्षि पाराशर ने कहा था—

विष्णो सकाशादुद्भूतम् जगत्तत्रैव च
स्थितम् स्थिति संयमकर्ता सौ जयमगतोऽस्य जगच्च सः ॥
अविकाराय शुद्धाय, नित्याय परमात्मने ।
सदैक रूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च ।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्त कारिणे ॥
एकानेक रूपाय स्थूल सूक्ष्मात्मने नमः ।
अव्यक्तव्यक्तरूपाय विष्णवे-मुक्ति हेतवे ॥

"यह समस्त जगत भगवान विष्णु से ही उत्पन्न हुआ है और उन्हीं में स्थित है। इसकी स्थिति और संचालन के कर्त्ता वही हैं और वस्तुतः वे ही जगत रूप हैं। ऐसे विकाररहित, शुद्ध, तीनों काल में अविनाशी, परमात्मा, सर्वदा एक रूप, सर्व विजयी विष्णु ही हरि, हिरण्यगर्भ और शंकर के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन सृष्टि स्थिति और विनाश के कारण भगवान विष्णु को नमस्कार है। अनेकानेक स्वरूप, स्थूल, सूक्ष्ममय, कर्मकारणभूत, मुक्तिप्रदाता, समस्त जगत की उत्पत्ति, स्थिति और सब के मूलभूत जगतमय परमात्मा विष्णु को नमस्कार है।" भगवान कृष्ण को कहीं विष्णु का और कहीं विष्णु-ब्रह्मा-शिव आदि त्रिदेवों के भी उत्पत्तिकर्त्ता परब्रह्म का अवतार कहा गया है। वास्तव में विश्व की सर्वोच्च सत्ता चैतन्य-तत्त्व है। जो उसके मूल स्वरूप को समझ लेता है और उसी में स्थित हो जाता है उसे विष्णु, महाविष्णु परमात्मा सब कुछ कहा जा सकता है।

हरिवंश पुराण—

'हरिवंश पुराण में भी कई स्थानों पर श्री कृष्ण जी के

अवतारत्व का विशेष रूप से प्रतिपादन किया है और समस्त दैवी और पार्थिव शक्तियों का केन्द्र उन्हीं को बतलाया गया है। जब उन्होंने बाणासुर को मारने के लिये उस पर चढ़ाई की तब भगवान शंकर बाणासुर की तरफ से लड़ने को आये। दोनों में ऐसा भीषण युद्ध हुआ कि पृथ्वी भय से काँपने लगी और ब्रह्माजी की शरण में पहुँची। उसकी रक्षा के लिये ब्रह्माजी ने शिवजी के पास जाकर कहा—

"हे भगवान् ! आपने स्वयं ही इस महादैत्य के निधन का उपाय किया था, फिर आप इसकी रक्षा को क्यों तत्पर हैं ? श्रीकृष्ण तो आपकी ही आत्मा हैं, इसलिये उनके साथ युद्ध करना आपको शोभा नहीं देता।" यह सुनकर भगवान शंकर ने श्रीकृष्ण की देह में घुसकर तीनों लोकों के दर्शन किये। उस समय उन्होंने योगस्थ होकर अपने जृम्भास्त्र को निष्क्रिय देखा, फिर द्वारका में बाणासुर की मृत्यु विषयक अपने वर का भी स्मरण किया। तब ब्रह्माजी की बात मान कर वे कहने लगे—अब मैं श्रीकृष्ण से नहीं लड़ूँगा, अच्छा हो कि पृथ्वी का भार हलका हो जाय। अन्त में जब श्रीकृष्ण ने बाणासुर को पराजित करके मारना चाहा तो शंकर जी ने उसकी प्राण रक्षा का आग्रह करते हुये कहा—

कृष्ण कृष्ण महाबाहो जाने त्वां पुरुषोत्तमम्।
मधु कैटभ हन्तारं देवदेवं सनातनम्॥
लोकानां त्वं गतिर्देव त्वत्प्रसूतमिदं जगत्।
अजेयस्त्वं त्रिभिर्लोकैः ससुरासुर पन्नगैः॥
तस्मात्संहर दिव्यं त्वमिदं चक्रं समुद्यतम्।
बाणस्यास्याभयं दत्तं मया केशिनिषूदनम्।
तन्मे न स्यादवृथा वाक्यमतस्तत्वां क्षामयांम्यहम्॥

"हे महाबाहो ! हे पुरुषोत्तम ! हे देवाधिदेव कृष्ण ! आप ही मधुकैटभ को मारने वाले सनातन पुरुष हैं। आपही संसारी जीवों की एकमात्र गति हैं, और यह सम्पूर्ण विश्व आप से ही उत्पन्न हुआ है।

इसलिये कोई देवता, दैत्य, मनुष्य अथवा अन्य प्राणी आपको परास्त नहीं कर सकता। अतः आप कृपा करके अपने अमोघ चक्र को रोक लें। हे केशव ! मैंने बाणासुर को अभय प्रदान किया हुआ है, इसलिये आप ऐसा करें जिससे मेरे वचनों की रक्षा हो सके।"

इसी प्रकार बाणासुर पर विजय प्राप्त करके वहाँ से लौटते समय उनका संघर्ष वरुण से हो गया। उस समय श्रीकृष्ण की शक्ति से अपनी सेना को नष्ट होते देख कर उसने कहा—

अजेयः शाश्वतो देहः स्वयम्भूभूतभावनः।
अक्षरंच क्षरंचैव भावाभावौ महाद्युते॥
रक्ष मां रक्षणीयोऽहं त्वयाऽनघ नमोस्तुते।
आदिकर्त्ताऽसि लोकानां त्वयैतद् बहुलीकृतम्॥
विक्रीडसि महादेव बालः क्रीडनकैरिव।
न ह्ययं प्रकृतिद्वेषी नाहं प्रकृति दूषकः॥
प्रकृतिर्या विकारेषु वर्त्तते पुरुषर्षभ।
तस्या विकार शमने वर्त्तसे त्वं महाद्युते॥
विकारो वा विकाराणां विकाराय न तेऽनघा।
तान धर्मविदो मन्दान्भवान्वि कुरुते सदा॥
परावरज्ञःसर्वज्ञ ऐश्वर्यविधिमास्थितिः।
किं मोहयसि नः सर्वान्प्रजापतिरिव स्वयम्॥

"हे भगवन् ! आप अजेय, शाश्वत, स्वयम्भू, भूतभावन, अक्षर-क्षर, भाव-अभाव हैं और आपही सर्वत्र व्याप्त हैं। हे एक से अनेक होने की सामर्थ्य रखने वाले परमात्मन् ! मैं तो आपसे रक्षा किये जाने का पात्र हूँ। हे लोकों के कर्त्ता जगदीश्वर ! आपको नमस्कार है। जैसे बालक खिलौनों के साथ खेलते हैं वैसे ही आप इस विश्वरूपी खिलौने से खेलते रहते हैं, पर उसका तात्पर्य किसी की समझ में नहीं आता। जब प्रकृति में कोई महाविकार उत्पन्न हो जाता है, तो उसको दूर करने के निमित्त ही आपका अवतार होता है। उस समय

आप जो क्रोध करते हैं, उसकी उत्पत्ति केवल दुष्टों और अधार्मिकों का अच्छी तरह मर्दन करने के लिये ही होती है। हे सर्वज्ञ ! आप अपने महान् दैवी ऐश्वर्य में स्थित होकर प्रजापति के समान हम सबको मोहित क्यों करते हैं ?"

वरुण ने अपने वक्तव्य में जो कुछ कहा वह शास्त्रों के इसी सिद्धान्त के आधार पर कहा गया है कि जब पृथ्वी पर दुष्ट लोगों का उत्थान होता है और वे धर्म तथा नीति का उल्लघन करने लगते हैं, तभी भगवान अवतार लेकर उस स्थिति का सुधार करते हैं। यद्यपि उस समय वे भी सामान्य मनुष्यों की तरह ही युद्ध और संधि करते हैं, पर वस्तुत: उनका यह कार्य केवल एक खेल के समान ही होता है।



चौथा अध्याय

अवतार के विषय में मतभेद

इस बात को तो सभी शास्त्र तथा विद्वान् स्वीकार करते हैं कि इस समस्त दृश्य जगत की संचालिका और प्रेरिका कोई अदृश्य और अव्यक्त शक्ति है, और संसार में जब कोई बहुत बड़ा परिवर्तन होता है, या मानवता की प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, तब उसी शक्ति के हस्तक्षेप से अन्त में उसका निवारण होता है। इस निवारण करने की क्रिया को कुछ लोग अदृश्य दैवी शक्तियों अथवा संसारव्यापी नवीन भावनाओं के रूप में अनुभव करते हैं और कुछ किसी 'महामानव' की लोकोत्तर नर-लीलाओं में उसका दर्शन करते हैं। फिर अवतारों की नरलीलाओं के मानने वाले उनका वर्णन अपनी मान्यताओं के अनुसार विभिन्न रीति से करते हैं। इससे सर्व साधारण को शंका उत्पन्न होती है कि ऐसी घटनाओं को निराकार परमात्मा की दैवी शक्तियों का परिणाम माना जाय या मनुष्य शरीर धारण करके सांसारिक रूप में जगत की व्यवस्था और संशोधन करने वाले 'अवतार' की लीलाएँ कहा जाय ?

इसी मतभेद और तरह-तरह के पृथक वर्णनों के कारण आलोचकों को इनका खण्डन करने का अवसर मिलता है और वे समस्त अवतार सिद्धान्त को ही काल्पनिक या असम्भव कह कर उसकी तरफ ध्यान न देने की प्रेरणा करने लगते हैं। हम भी अवतार सम्बन्धी विस्तृत वर्णनों को धार्मिक उपाख्यान ही मानते हैं, और उनमें वर्णित प्रत्येक घटना को अक्षरशः सत्य सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं समझते। पर इसका यह अर्थ नहीं कि संसार-संकट के अवसर पर पराशक्ति

की विशेष व्यक्ति को विशेष प्रेरणा देने की सम्भावना भी अस्वीकार की जाय। जैसा हम पीछे बतला चुके हैं। यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि पौराणिक-युग में भगवान राम और कृष्ण तथा ऐतिहासिक काल में भगवान बुद्ध और शंकराचार्य जो कार्य करके दिखा गये हैं उसको आज तक मानव की शक्ति से सम्भव नहीं माना जा सकता। अतः जब हम देखते हैं कि इन ढाई हज़ार वर्षों के भीतर जन्म लेने वाले कई खरब मनुष्यों में से दस-पाँच भी प्रयत्न करते हुये उनके समान कार्य करके न दिखा सके तो इस अन्तर का कोई विशेष कारण मानना ही पड़ेगा। और वह विशेष कारण यही हो सकता है कि या तो अनेक जन्मों में उनका इतना विकास हो चुका था कि वे ईश्वरीय स्थिति तक पहुँच गये थे या संसार की सर्वोच्च जीवनमुक्त आत्माओं में से ही कोई विश्व-विधान के अनुसार संसार की उलझी हुई विकट समस्या को सुलझाने के लिये पृथ्वी पर अवतरित हुई थी। इस प्रकार की विचारधारा वर्तमान समय के विद्वानों में ही नहीं पाई जाती, पुराने 'अवतारवादी' लेखकों ने ईश्वरावतारों के चरित्र सम्बन्धी अद्भुत और चमत्कारों से भरी हुई कथाएँ लिखते हुये बीच-बीच में इस तथ्य को भी प्रकट कर दिया है। 'रामचरित मानस' में, जिसे 'अवतारवाद' की दृष्टि से सबसे प्रभावशाली और महान रचना कहा जा सकता है, गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को मानते हुये ही 'अवतार' का प्रतिपादन किया है। उन्होंने कहा है कि भगवान के अवतार का वास्तविक रहस्य जान सकना या बतला सकना तो किसी भी बड़े से बड़े विद्वान, ऋषि-महर्षि के लिये संभव नहीं, पर उसका प्रत्यक्ष कारण वही है जो गीता में बतलाया गया है—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम् सृजामह्यम्॥

इसी सिद्धान्त की व्याख्या करते हुये उन्होंने 'उमा-शंभु संवाद'

में श्री शिव जी के मुख से कहलाया है—

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई।
राम अतर्क्य बुद्धि मन वानी। मत हमार अस सुनहि सयानी।
करहि अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी।
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।
असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग विस्तरहिं विरुद जस राम-जन्म कर हेतु॥

अर्थात् "भगवान का अवतार क्यों होता है इसको निश्चयपूर्वक कोई नहीं कह सकता। परमात्मा और उसकी क्रियाएँ मनुष्य की बुद्धि, मन और वाणी से परे की बात है, उसमें तर्क से काम नहीं चल सकता। तो भी शास्त्रों के मतानुसार यही कहा जा सकता है कि जब-जब धर्म पर आघात होता है, संसार में अहंकारी, दुष्ट लोगों की संख्या बहुत अधिक हो जाती है और वे अनीतिपूर्वक सज्जन पुरुषों, गायों, देवताओं तथा पृथ्वी को कष्ट देने लगते हैं, तभी-तभी भगवान विभिन्न रूप धारण करके सज्जनों की विपत्ति को दूर करते हैं। उस अवसर पर भगवान दुष्टों का नाश कर फिर से देव-पुरुषों की स्थापना करते हैं और इस तरह वे धर्म-नीति की मर्यादा को सुदृढ़ बनाते हैं। यही भगवान के अवतार का मुख्य हेतु है।"

इस वक्तव्य में 'शिवजी' ने अवतार का मूल स्वरूप बता दिया है कि जब कभी संसार में अनीति और अधर्म की अत्यधिक प्रबलता हो जाती है और पाशविक शक्ति से मदान्ध दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति सात्विक वृत्ति के सज्जनों को आतंकित करने लगते हैं तभी परमात्म-शक्ति उसके सुधार की कोई योजना करती है। उस योजना का कर्त्ता 'अवतार' कहलाने लग जाता है। आगे चल कर उन्होंने दृष्टान्त रूप से इसके कुछ उदाहरण भी दिये हैं—

राम जन्म के हेतु अनेका। परम विचित्र एक से एका।
जनम एक दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी॥

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु विजय जान सब कोऊ ।।
विप्र श्राप ने दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन पाई ।।
कनकसिपु और हाटक लोचन। जगत विदित सुरपति मदमोचन।
विजई समर वीर विख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता ।।
होइ नरहरि दूसर पुन मारा। जन प्रहलाद सुजस विस्तारा ।।

भये निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान।
कुंभ करन रावन सुभट सुर विजई जगजान ।।

एकबार तिन्हके हित लागी। धरेउ शरीर भगत अनुरागी ।।
कस्यप अदिति तहाँ पितुमाता। दशरथ कौशल्या विख्याता ।।
एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे ।।
तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ ।।
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुन मुनि वरनी कविन घनेरी ।।

"इसके सिवाय भगवान के अवतार के और भी अनेक कारणहैं, जो एक से एक बढ़कर अत्यन्त विचित्र होते हैं। मैं उनमें से दो-एक का वर्णन यहाँ करता हूँ। जय और विजय नाम के भगवान के दो द्वारपाल थे। ऋषि ने उनको तामसी योनि में जाने का शाप दे दिया। इससे वे हिरण्याक्ष और हिरनाकुश के नाम वाले दो महावीर दैत्य बन गये, जिनके भय से इन्द्र भी अपना राज्य छोड़कर भाग गया। वे संसार-विजयी वीर थे। उनमें से हिरण्याक्ष को भगवान ने 'वाराह' अवतार धारण करके मारा। दूसरे हिरनाकुश को नष्ट करने के लिये उन्हें 'नरसिंह' रूप धारण करना पड़ा। ये दोनों दैत्य यहाँ मारे जाकर फिर से रावण और कुम्भकरण के रूप में राक्षस बने। उनसे भक्तों की रक्षा करने के लिये भगवान को फिर अवतार लेना पड़ा। इसबार उनके माता-पिता कस्यप और अदिति थे, जिन्होंने पृथ्वी पर दशरथ और कौशल्याके रूपमें जन्म लिया था। एक अन्य कल्पमें समस्त देवगण जलंधर नामक दैत्य से हार कर बहुत दुःखी हो गये। तब भगवान ने बड़े कौशल से जलंधर को मारा। वही जलंधर दूसरे जन्म

में रावण बना। उसको भगवान ने राम का अवतार ग्रहण करके युद्ध में मारा था। इस प्रकार भगवान के प्रत्येक अवतार की अलग-अलग कथा है, जिनका ऋषि मुनियों ने वर्णन किया है और उसे सुनकर कवियों ने उसका विस्तार करके बड़े-बड़े ग्रंथ रच डाले हैं।"

पुराणों में एक ही अवतार की कथा जो विभिन्न रूपों में वर्णित है उसका कारण बतलाते हुये गोस्वामी जी ने एक नहीं अनेक स्थलों पर कहा है कि इस अन्तर का कारण अलग-अलग कल्पों से उनका सम्बन्ध होना है। संसार में बीच-बीच में स्वार्थ प्रधान मार्ग के अनुयायी दुष्टों का जोर बढ़ना और धर्म तथा नीति के नियमों का ह्रास हो जाना तो एक प्राकृतिक नियम-सा ही है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ तथा सामाजिक प्रणाली काल-प्रभाव से एकाध हजार वर्ष में विकृत तथा अनुपयोगी हो जाती है। पर जिनका लाभ उसी से होता है वह उसके सुधार अथवा परिवर्तन का विरोध करते हैं और इससे संसार में अन्याय तथा लड़ाई-झगड़े का बाजार गर्म हो जाता है। तब उस दूषित परिस्थिति का सुधार करने को भगवान का 'अवतार' होता है। यह संभव है कि भिन्न-भिन्न कल्पों में उन दुष्ट प्रकृति के व्यक्तियों (दैत्यों) तथा 'अवतारों' के नाम भी कुछ और रहे हों, पर जब हम दस-बीस हजार वर्ष पुराने राजाओं और महान पुरुषों के नाम तथा परिचय आदि नहीं जानते और केवल अनुमान से ही थोड़ा बहुत काम चलाते हैं तो बहुत वर्ष पहले के 'कल्प' की घटनाओं का यथातथ्य वर्णन अथवा नामों आदि का उल्लेख कैसे संभव हो सकता है ? इसलिये कवि एक प्रकृति के लोगों का वर्णन एक ही नाम से करने लगता है, और समझता है कि इससे कोई हानि नहीं हो सकती। लोग तो अन्याय के दमन और सज्जनता की रक्षा की कथा सुनकर शिक्षा ग्रहण करते हैं, नाम कुछ भी हों, उसका कोई खास प्रभाव नहीं पड़ सकता।

निर्गुण और सगुण का विवाद निरर्थक है—

इसी प्रसंग में पार्वती जी के यह प्रश्न करने पर कि निर्गुण, निराकार परमात्मा मनुष्य शरीरधारी अवतार कैसे बन सकता है, शिवजी ने उसका समाधान इस प्रकार किया है—

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा ।।
अगुन अरूप अलख अज जोई ।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।
जो गुन रहित सगुन सोई कैसे ।
जल हिम उपल विलग नहि जैसे ।।

इस प्रकार अवतार सम्बन्धी अधिकांश शंकाओं तथा भ्रमों का निराकरण प्राचीन 'अवतारवादी' विद्वानों ने स्वयं ही कर दिया है और इस गूढ़ विषय को जहाँ तक बन सका है स्पष्ट और बोधगम्य भी बना दिया है। पर कठिनाई यही है कि लोग उनकी रचनाओं को भी निष्पक्ष भाव से, मूल तथ्य को समझने की चेष्टा करते हुये नहीं पढ़ते। अन्ध श्रद्धा वाले तो बिना सोचे-समझे प्रत्येक संभव-असंभव, रूपक-अलंकारयुक्त बात को भी ज्यों का त्यों अक्षरशः मानने में ही 'धर्म' मानते हैं, और विरोधी या खण्डनात्मक मनोवृत्ति वाले उसके वास्तविक आशय और उद्देश्य को ठुकरा कर इधर-उधर के दो-चार वाक्य ऐसे ढूँढ़ते हैं, जिनका 'अनर्थ' करके वे उस पर दोषारोपण कर सकें। पाठक देखेंगे कि हमने भागवत, रामायण, महाभारत और विविध पुराण ग्रंथों से ही ऐसे कथन प्रस्तुत किये हैं, जिनसे अवतार की युक्तियुक्त स्थिति सबकी समझ में आ सकती है। भक्त शिरोमणि गो० तुलसीदास जी भी यह कहते हैं कि मनुष्य की क्या चलाई देवगण भी भगवान के 'अवतार' का निश्चित कारण और रहस्य नहीं समझ सकते। पर मुनि और ऋषियों ने इस सम्बन्ध में अपनी विशद बुद्धि से अनुमान करके जो कुछ बतलाया है उसी के आधार पर विद्वान् कवियों और लेखकों ने कवि-कल्पना और लेखन

कला के अनुसार उनके अनेकानेक चरित्रों की लोक कल्याणार्थ रचना की है—तो इससे बढ़कर स्पष्ट वक्तव्य और क्या हो सकता है ?

हम यह जानते हैं कि सभी पुराणों में और रामायण में भी अवतारों के सम्बन्ध में ऐसे अनेक कथा-प्रसंग लिखे गये हैं, जिनका 'चमत्कार' के सिवाय और कोई उद्देश्य नहीं और उनके प्रत्येक कार्य और शक्ति का वर्णन भी प्राय: बहुत बढ़ा-चढ़ाकर किया गया है। इससे अनेक स्थानों में एक समझदार पाठक को 'निराधार गप्पें' लिख मारने का अनुभव होता है और ऐसी रचनाओं के प्रति उसके मन में 'दुर्भाव' उत्पन्न हो जाता है। यह स्थिति खेदजनक अवश्य है, पर इसका उत्तरदायित्व अधिकांश में मूल लेखकों पर न होकर उन कथा-वाचकों तथा प्रचारकों पर है जिन्होंने अपने किसी लाभ की दृष्टि से अथवा निम्न श्रेणी के श्रोताओं का मनोरंजन करने के उद्देश्य से उनमें प्रक्षिप्त अंश सम्मिलित कर दिये हैं। यह हानिकारक प्रवृत्ति केवल पुराणों तक ही सीमित नहीं है, वरन् हिंदू धर्म के अन्य अनेक शास्त्रों में भी परिलक्षित होती है। अन्य धर्मों के प्रधान ग्रंथ भी इससे अछूते नहीं कहे जा सकते। पर उनकी संख्या अत्यल्प होने से उनमें इतनी अधिक 'मिलावट' नहीं की जा सकी है।

कबीरदास जी का अवतार-सिद्धांत—

महात्मा कबीरदास का भारतवर्ष के मध्यकालीन तथा आधुनिक धार्मिक-इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। उनके धर्म-सिद्धान्तों में निर्गुण परमात्मा की उपासना का उपदेश दिया गया है और अन्ध-विश्वास पर आधारित अनेक प्राचीन धार्मिक रूढ़ियों का भी उन्होंने खण्डन किया है। 'सन्त-मत' के आदि प्रवर्तक वे ही हैं और नानक, दादू, रैदास, प्राणनाथ आदि सन्तों से लेकर वर्तमान राधास्वामी सम्प्रदाय तक का मूल स्रोत किसी न किसी रूप में कबीरसाहव की शिक्षाएँ ही हैं। वे एक कट्टर निर्गुणोपासक की दृष्टि से सगुण अवतारों की उपासना का समर्थन नहीं कर सकते थे, पर ईश्वरीय-शक्ति और

जीवात्मा के विकास क्रम को ध्यान में रखते हुये सिद्धान्त रूप से 'अवतार' को उन्होंने भी माना है। उन्होंने कहा है—

एक राम है सब से न्यारा। एक राम ने जगत पसारा॥
एक राम घट-घट में बोले। एक राम अवतारी डोले॥
जासु कृपा भव दुख मिट जाहीं। सद्गुरू एक राम रघुराई॥

कबीरदास जी ने परमात्मा की चैतन्य-सत्ता के विकास और विस्तार के पाँच दर्जे बतलाये हैं। आरम्भ में उसका स्वरूप सर्वथा अव्यक्त और अज्ञेय होता है। उसके लिये कोई ठीक नाम या रूप बतला सकना संभव नहीं होता। उसी को शास्त्रों में निराकार, निर्गुण 'परब्रह्म' बतलाया गया। फिर जब उस अव्यक्त शक्ति में सृष्टि रचना की प्रवृत्ति आरम्भ होती है तो वह ऐसे रूप में आ जाती है जिसके कार्य और रूप का अनुमान मानव-बुद्धि कर सकती है। शास्त्रकारों ने उसे 'ईश्वर' कहा है, जो सृष्टि का कर्त्ता माना जाता है। उससे आगे चलकर वह 'एकोऽहम बहुस्यामि' के सिद्धान्त के अनुसार असंख्य जीवात्माओं के रूप में प्रकट होता है और उससे प्राणी-जगत की रचना आरम्भ हो जाती है। इस विकास-क्रम में जो जीवात्मा अपने कर्मों द्वारा विशेषरूप से उन्नति कर लेता है और विकास से सर्वोच्च शिखर पर जा पहुँचता है वह जीवनमुक्त होकर अन्य जीवात्माओं के लिये मार्ग-दर्शक बन जाता है और 'अवतार' की स्थिति को प्राप्त कर लेता है। उसके अतिरिक्त अन्य जीवनमुक्त आत्मायें भी, जो अपनी शक्तियों को लोक कल्याण के लिये अर्पण कर देती हैं, सद्गुरु या महान सन्तों के रूप में माननीय होती हैं। यद्यपि चैतन्य-सत्ता के इन पाँचों विभागों में शक्ति और कर्मों की निगाह से बड़ा भेद है, पर ये सब एक ही श्रेणी में गिने जा सकते हैं और अन्त में कभी न कभी एक ही स्थान पर मिल जाते हैं।

गीता ग्रौर ग्रवतारवाद—

'गीता' को ग्रधिकांश लोग व्यावहारिक वेदान्त तथा दर्शन-शास्त्र की एक रचना मानते हैं। वैसे भी उसको 'ब्रह्म विद्या शास्त्र' कहा गया है, जिसका ग्राशय ग्रध्यात्म-ज्ञान तथा उसके ग्रनुकूल व्यवहार से है। यद्यपि 'गीता' मुख्य रूप से ग्रवतार-सिद्धान्त का प्रतिपादन करने या किसी ग्रवतार का चरित्र वर्णन करने के उद्देश्य से नहीं लिखी गयी है, तो भी उसके वक्ता भगवान कृष्ण हैं ग्रौर उन्होंने ग्रपनी विशेष शक्तियों से ही ग्रर्जुन को प्रभावित किया था। इसलिये उसमें ग्रवतार-वाद की चर्चा ग्रनिवार्य रूप से ग्रागई है ग्रौर जो कुछ कहा गया है, वह बड़े प्रामाणिक रूप में कहा गया है।

चौथे ग्रध्याय के ग्रारम्भ में ही भगवान कृष्ण ने यह कहा है कि "इस अनासक्त कर्मयोग का उपदेश सर्व प्रथम मैंने सूर्य को दिया था। सूर्य ने ग्रपने पुत्र मनु से कहा ग्रौर मनु ने ग्रपने पुत्र राजा इच्छाकु से कहा। उनके द्वारा यह परम्परागत रूप में राजर्षियों में प्रचलित रहा।" इस पर शंका करके ग्रर्जुन ने पूछा कि "ग्राप ने इस योग का उपदेश सूर्य को कैसे दिया होगा? क्यों कि ग्रापका जन्म तो ग्रभी हुग्रा है ग्रौर सूर्यं का जन्म बहुत पुराना है।" इस पर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥
जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेतिसोऽर्जुन॥

"हे ग्रर्जुन मेरा जन्म प्राकृत (सामान्य) मनुष्यों की तरह नहीं होता। मैं ग्रविनाशी स्वरूप, ग्रजन्मा होने पर भी, तथा सब सांसारिक प्राणियों का ईश्वर होने पर भी ग्रपनी प्रकृति को ग्राधीन करके योग-माया से प्रकट होता हूँ। इसलिये मेरा जन्म ग्रौर कर्म दिव्य ग्रथवा ग्रलौकिक है। इस बात को जो पुरुष तत्त्वपूर्वक समझ लेता है, वह भव-बन्धन से छुटकारा पाजाता है।'

थियोसोफी की संस्थापिका मैडम ब्लैवटस्की ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सीक्रेट डाक्टरिन '(गुप्त रहस्य) में लिखा है कि संसार में जन्म तीन प्रकार के होते हैं। प्रथम जन्म सामान्य जीवात्माओं का सृष्टि विकास क्रम के अनुसार होता है। दूसरा जीवन्मुक्त आत्माओं को जन्म होता है जो वे अपनी इच्छा से किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये लेते हैं। और तीसरा जन्म भगवान के अवतारों का होता है, जो यद्यपि सब लोगों को सामान्य मनुष्यों के समान ही जान पड़ता है, पर जिसे वे अपनी योगमाया के प्रभाव से ग्रहण करके ठीक अवसर पर कहीं भी प्रकट होजाते हैं। 'गीता' में भगवान का कथन इसी तथ्य की पुष्टि करने वाला है। यद्यपि 'भागवत' और 'हरिवंश' के अनुसार अनेक पटरानी और रानियों से विवाह करके बहुसंख्यक पुत्र उत्पन्न करने वाले श्रीकृष्ण चन्द्र महाराज घोर संसारी जीव जान पड़ते हैं, पर साथ ही आवश्यकता पड़ने पर वे भक्तों की रक्षा और दुष्टों के नाश के लिये ऐसी अलौकिक शक्ति भी दिखलाते हैं जो अन्य नर तन धारी के लिये संभव नहीं। इसी लिये वे एक बार नहीं बार-बार अर्जुन को अपनी ईश्वरीय सत्ता का विश्वास दिलाते रहे और परिचय देते रहे। सातवें अध्याय में उन्होंने कहा है कि यद्यपि लोग अपने अज्ञान के कारण मेरे अविनाशी स्वरूप को नहीं समझ पाते पर जो व्यक्ति श्रद्धा और भक्ति पूर्वक मेरा आश्रय ग्रहण करते हैं मैं सदा उनका कल्याण करता हूँ।

अन्तवत्तु फलं तेषाम् तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥
अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यते माम बुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥
नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥

"जो अल्प बुद्धि लोग संसारिक लाभ की आशा से विभिन्न

देवताओं की उपासना किया करते हैं, वे स्थाई लाभ प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि संसार त्यागने पर वे उन्हीं देवताओं के लोकमें जाते हैं, जहां से फिर वापस आना पड़ता है। पर भगवान के भक्त उनके पास जाकर सदैव को मुक्त हो जाते हैं। ऐसे मूढ लोग मेरे 'भगवान' के श्रेष्ठ उत्तमोत्तम और अव्यय रूप को न जानकर मुझे व्यक्त रूप में अर्थात् मनुष्य ही मानते हैं। मैं भी अपनी योगमाया से आच्छादित रह कर सबको अपना वास्तविक रूप नहीं दिखाता, इससे मूढ लोग यह नहीं जान पाते कि मैं अजन्मा और अव्यय हूँ।"

इसमें भगवान कृष्ण ने अर्जुन के सामने अपने ईश्वरत्व को प्रकट करते हुए कहा है कि मैं अनधिकारी लोगों के सामने अपने वास्तविक अविनाशी और अनन्त रूप को प्रकट नहीं करता। इससे वे मुझे सामान्य मनुष्यों की तरह जन्म-मरण और पाप-पुण्य में बँधा हुआ मानते रहते हैं। ऐसे लोग समझते हैं कि भगवान की भक्ति से तो केवल मोक्ष ही प्राप्त हो सकती है। सांसारिक वैभव, अधिकार, शक्ति देने का कार्य तो अन्य देवताओं का है। इस लिये वे उन्हीं की उपासना में लग जाते हैं। अगर वे सच्चे हृदय से उपासना करते हैं तो उसका फल भी उनको मिलता है। पर चूँकि वे देवगण स्वयं अस्थाई हैं, इसलिये उन सबके पास घूम फिर कर मनुष्य को भगवान के पास ही आना पड़ता है और उन्हीं की श्रद्धाभक्ति द्वारा अपने जीवन को सार्थक बनाना पड़ता है। वैसे सामान्यता भगवान की उपासना मूर्ति आदि की पूजा जप, ध्यान आदि के द्वारा ही की जाती है, पर जो लोग सौभाग्य से किसी 'अवतार' के युग में जन्म लेकर उसका सान्निध्य प्राप्त कर लेते हैं वे तो भवसागर से तर ही जाते हैं। जीवन्मुक्त महात्माओं की कृपा का भी ऐसा ही फल होता है, क्योंकि वे भगवान को प्राप्त कर चुके होते हैं और इस लिये अन्य जीवात्माओं का मार्ग-दर्शन करके उन्हें भी लक्ष्य तक पहुचा सकते हैं बड़े या छोटे (पूर्ण अपूर्ण) अवतारों का यह महत्त्व संसार के कल्याण की दृष्टि साधारण नहीं है।

नौवें अध्याय में भगवान ने वह स्पष्ट किया है कि यद्यपि मैं समस्त जड़ भूतों, सांसारिक पदार्थों को उत्पन्न करता हूँ, उनका पालन-पोषण भी करता हूँ फिर भी अपनी योगमाया के प्रभाव से अपनी आत्मा को उन भूतों से सदैव प्रथक ही रखता हूँ—

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न न भूतस्थो ममात्मा भूत भावना ॥५
यथाकाश स्थितो नित्यं वायु सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६
सर्व भूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामि काम ।
कल्प वृक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥७
प्रकृति स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात ॥८
ममाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥

'मेरी योग सामर्थ्य का यह चमत्कार है कि मेरी आत्मा उन भूतों को उत्पन्न करती है, उनका पालन भी करती है पर उनसे सर्वथा पृथक रहती है। जिसप्रकार वायु सर्वत्र बहती हुई आकाश में ही रहती है, उसी प्रकार समस्त भूत सदैव मेरे भीतर ही रहते हैं। वे सृष्टि रचना के समय विभिन्न पदार्थों का रूप धारण करते हैं, पर अन्त में सब मेरी प्रकृति में ही आ मिलते हैं। प्रत्येक कल्प के आरम्भ में मैं इसीप्रकार उनका निर्माण करता हूँ। पर यह कार्य मैं स्वयं नहीं करता, वरन अध्यक्ष रूप से प्रकृति द्वारा ही सब काम कराता हूं। इस प्रकार यह जगत का बनना-बिगड़ना सदैव चलना रहता है।"

भगवान का यह कथन है कि समस्त भूत मेरे भीतर हैं, पर मैं उनसे सर्वथा प्रथक रहता हूँ, एक पहेली की तरह जान पड़ता है इसमें पाठक को एक विरोधाभास की झलक दिखाई पड़ती है। पर परमात्मा का विषय ही ऐसा है कि मानव बुद्धि कभी उसको ठीक रूप में ग्रहण

नहीं कर सकती, न उसका निश्चयात्मक रूप से वर्णन कर सकती हैं। इसका विवेचन करते हुए लोकमान्य तिलक ने 'गीता रहस्य' में लिखा है—

"उपनिषदों में परमात्मा का स्वरूप अव्यक्त माना हैं और उसे तीन प्रकार का बतलाया है अर्थात् सगुण, सगुण-निर्गुण और अन्त में केवल निर्गुण। अब प्रश्न यह है कि अव्यक्त और श्रेष्ठ स्वरूप के उक्त तीन परस्पर विरोधी रूपों का मेल किस तरह मिलाया जाय? यह कहा जा सकता है कि इन तीनों में जो सगुण-निर्गुण अर्थात् उभयात्मक रूप है, वह सगुण से निर्गुण (अथवा अज्ञेय) में जाने की सीढ़ी या साधन है। क्योंकि, पहले सगुण रूप का ज्ञान होने पर ही धीरे-धीरे एक एक गुण का त्याग करने से निर्गुण स्वरूप का अनुभव हो सकता है, और इसी वृत्ति से 'ब्रह्म-प्रतीक की चढ़ती हुई उपासना उपनिषदों में बतलाई गई है। उदाहरणार्थ 'तैत्तरीय उपनिषद' में वरुण ने भृगु को यही उपदेश दिया कि 'अन्न ही ब्रह्म है' फिर क्रम से प्राण, मन, विज्ञान और आनन्द इन ब्रह्म रूपों का ज्ञान उसे करा दिया। दूसरी बात यह भी है कि गुण-बोधक विशेषणों से निर्गुण रूप का वर्णन करना असम्भव है, अतएव परस्पर-विरोधी विशेषणों से ही वर्णन करना पड़ता है।

"इसका कारण यह है कि जब हम किसी एक वस्तु के सम्बन्ध में 'दूर' या 'सत्' शब्दों का प्रयोग करते हैं तब हमें किसी दूसरी वस्तु के 'समीप या 'असत्' होने का भी अप्रत्यक्ष रूप से बोध होजाया करता है। परन्तु यदि एक ही ब्रह्म सर्वव्यापी है तो परमेश्वर को 'दूर या सत्' कह कर 'समीप या असत्' और किसी दूसरी वस्तु को कहें? ऐसी अवस्था में दूर नहीं समीप नहीं "सत् नहीं असत् नहीं" इस प्रकार के परस्पर विरुद्ध विशेषणों की भाषा का ही उपयोग करना पड़ता है।"

यही सिद्धान्त स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने 'गीता' में प्रतिपादित किया है–

बहिरतश्च भूतानाम चरं चरमेव च ।
सूक्ष्म त्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चांतिके चतत् ।।

"वह परमात्मा सब भूतों के भीतर और बाहर भी है, अचर है चर भी है, सूक्ष्म होने के कारण वह जानने में नहीं आता, और दूर होकर भी समीप है।" 'विष्णु-पुराण' के अन्त में भी भगवान की इन परस्पर विरोधी जान पड़ने वाली विशेषताओं का उल्लेख मिलता है—

तस्यैव योऽनु गुणभुग्बहुधैक एव
शुद्धो ऽप्यशुद्ध इव भाति हि मूर्तिभेदैः।
ज्ञानान्वितः सकलसत्वविभूति कर्ता
तस्मै नमोऽस्तु पुरुषाय सदाव्ययाय ।।

"जो ईश्वर के सदृश्य ही विशेषताओं से सम्पन्न है, एक होकर भी अनेक रूप है, शुद्ध होकर भी अनेक रूपों के कारण अशुद्ध 'विकारवान जैसे' प्रतीत होते हैं, जो ज्ञानस्वरूप और समस्त तत्त्वों और विभूतियों के कर्ता हैं, उस नित्य 'अविनाशी' तथा अव्यय पुरुष को नमस्कार है।"

जो व्यक्ति इस परस्पर-विरोधी दृष्टिकोण को समझ लेता है और यह विश्वास कर लेता है कि जब भगवान को 'सर्व शक्तिमान' कहा जाता है तो उसके लिये निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में विश्व की व्यवस्था कर सकना असम्भव नहीं, वे 'अवतार' के तत्व को भी सहज में हृदयंगम कर सकते हैं। वास्तव में मानव बुद्धि और ज्ञान अभी जहाँ तक विकसित हो सका हैं, उसके आधार पर परब्रह्म के स्वरूप का समझ सकना अथवा उसके कार्यों के गलत अथ वा सही होने का फैसला कर ड़ालना अबुद्धिमत्ता का प्रमाण है। इस लिये यदि कोई राम, कृष्ण कल्कि आदि को पूर्ण परमात्मा का अवतार मानना है और दूसरा उनको आत्म विकास के सर्वोपरि पर शिखर पर पहुंची हुई जीवात्मा ही बतलाता है, तो इस पर झगड़ना व्यर्थ की बात है। सभी जीवात्मा परमात्मा के अंश माने गये हैं। "ईश्वर अंश जीव अविनाशी" "रामायण'

के अनुसार जो जीवात्मा अपने पुरुषार्थ से अंतिम लक्ष्य तक पहुंच जाता है उसमें और परमात्मा मे कोई अन्तर नही रहता। इसलिये 'अवतारों' को चाहे किसी ऊपर के लोक से स्वेच्छापूर्वक 'धर्म रक्षार्थ' आई हुई दैवी आत्मा माना जाय और चाहे जीवन्मुक्त अवस्था को पहुँची हुई कोई आत्मा उससे तत्वत: कोई अन्तर नहीं पड़ता। ये दोनों एक ही परमात्मा के अत्यन्त विकसित अंश हैं, जो चाहे तो अपने को बिना किसी भूल के 'परमात्मा' कह सकते है, क्योंकि वे परमात्मा में से ही प्रकट हुए हैं और उसी में जब चाहेंगे चले जायेंगे। उनमें और साधारण जीवात्माओं में यही अन्तर होता है कि जीवात्मा स्वेच्छापूर्वक चाहे जहां नहीं जा सकते, वरन् कर्म बन्धनों में बंधे रहने कारण उनको विवश होकर बार-बार जन्म मरण के चक्र में भ्रमण करते रहना पड़ता है। वे भी उद्योग करके 'अवतारों' के समान जीवन्मुक्त स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं, पर वह केवल सुन लेने या समझ लेने की चीज नहीं। जो वास्तव में उतना ऊँचा परमार्थ, त्याग, तप कर सकेगा और संसार के सर्वोच्च ज्ञान को प्राप्त करलेगा, वही एक या अनेक जन्मों के प्रयत्न से उस स्थिति को पहुँच सकेगा।

इस सम्बन्ध में हम एक विचित्र अवस्था आजकल अपने देश में देख रहे हैं। एक तरफ तो नवशिक्षित कहलाने वाले अवतार आदि को 'गपोड़ा' अथवा अन्धविश्वास के सिवाय और कुछ मानने को तैयार नहीं और दूसरी तरफ कुछ लोग आत्मा, परमात्मा, कर्म-फल तप,जीवन्मुक्ति आदि की बातों को पढ़ या सुनकर, अपने भीतर कुछ अनुभव करने लगते हैं, और थोड़ा जप, तप या किसी प्रकार का योग साधन करके अपने को दैवी-पुरुष–अवतार समझने, कहने लगजाते हैं। वे अपने को स्वयं इस रूप में प्रकट करते हैं और उनके सहयोगी भी, कुछ अन्धश्रद्धा से और कुछ किसी स्वार्थ-भाव के कारण इसका प्रचार करने लगजाते हैं। ऐसे एक नहीं बहुसंख्यक व्यक्ति इस समय हमारे देश में मौजूद हैं और प्रत्येक को हजार-दो हजार या कुछ सौ

अनुयायी मिल ही जाते हैं, जिससे वे मिथ्या प्रचार करके हिन्दू-समाज के धार्मिक वातावरण को दूषित बनाते हैं। पर यह एक अलग ही समस्या है, जिस पर किसी अगले अध्याय में विचार करेंगे।

गीता के अवतार सिद्धान्त की विशेषता

'गीता' में भगवान कृष्ण ने अपने भगवत्स्वरूप का जो उल्लेख स्थान-स्थान पर किया है, उसका ध्यानपूर्वक मनन और विश्लेषण करने पर अन्यग्रंथों की अपेक्षा उसमें एक विशेषता यह जान पड़ती है कि उनका मुख्य उद्देश्य अपने को भगवान का अवतार घोषित करना नहीं है, वरन् अर्जुन को 'ब्रह्मविद्या' (अध्यात्म शास्त्र) का मर्म समझाने के लिये वे अपने को ईश्वरीय-शक्ति के प्रतीक रूप में उपस्थित कर रहे हैं। उन्होंने अनेक स्थानों पर इस तरह के उद्गार प्रकट करते हुए एक श्लोक में अपने को ईश्वर या अवतार के रूप में प्रकट किया है और दूसरे में परमात्मा की शक्ति का भिन्न रूप में उल्लेख किया है। उदाहरण के लिये गीता का उपदेश समाप्त हो जाने पर १८ वे अध्याय के अन्त में उन्होंने अर्जुन से कहा है—

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदन्तरम् ॥ ५५
सर्व कर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥५६
चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोग मुपाश्रित्यमच्चित: सततं भव: ॥५७

"साधक को भक्ति के प्रभाव से मेरा तात्विक ज्ञान होजाता है। कि मैं कितना हूँ और कौन हूँ ? इस प्रकार मेरी तात्त्विक पहिचान होजाने पर वह मुझ में ही प्रवेश करता है और उस अवस्था में मेरा ही आश्रय लेकर, सब कर्म करते रहने परभी मेरे अनुग्रह से उसे शाश्वत एवं अव्यय स्थान प्राप्त होता है। इसलिये हे अर्जुन! तू हृदय से सब कर्मों को मेरे में अर्पण करके मेरे परायण हुआ, समत्वबुद्धि रूप

निष्काम कर्मयोग को अवलम्बन करके निरन्तर मुझ में चित्त रखने वाला होगा।"

इस प्रकार अपनी ईश्वरीय सत्ता को बहुत स्पष्ट शब्दों में प्रकट करके उसी प्रसंग में पृथक भाव से भी ईश्वरत्व का उल्लेख करने लगते हैं

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढ़ानि मायया ॥६१
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

"क्योंकि हे अर्जुन! शरीर रूप यंत्र में आरूढ़ हुए संपूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमाता हुआ सब भूत प्राणियों के हृदय से स्थित रहता है। इसलिये हे भारत! सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही अनन्य शरण को प्राप्त होकर उनकी कृपा से परम शान्ति और सनातन परम धाम को प्राप्त करो।'.

इस प्रकार एक बार अपने को कर्त्ता बताकर दूसरी बार मानव-हृदय में स्थित 'ईश्वर' का उल्लेख करना यह प्रकट करता है कि श्री कृष्ण का आशय अपने ईश्वर होने पर जोर देना नहीं है, वरन् वे अर्जुन के सम्मुख नाटक के एक पात्र के समान 'ईश्वरत्व' का पार्ट अदा करके उसे अपने कथन का अर्थ भली भाँति समझा देना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त जब वेदान्त-शास्त्र निश्चित रूप से जीव के ब्रह्म हाने का प्रतिपादन करता है और प्रत्येक मनुष्य के लिये 'अहं ब्रह्मास्मि' की घोषणा करता है, तो श्रीकृष्ण जैसे महाज्ञानी और योगीश्वर को यदि भगवान कहा जाय तो इसमें अनुचित क्या है? वे तो स्वयंअन्य जीवों से अपनी तुलना करते हुए अपनी यही विशेषता मानते हैं कि वे आत्मा और परमात्मा के वास्तविक रहस्यों को जान गये हैं जब कि अन्य लोग उसे नहीं जानते।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥

अर्थात् 'हे अर्जुन ! मेरे और तेरे भी बहुत से जन्म होचुके हैं, परंतु हे धनंजय उन सब को तू नहीं जानता और मैं जानता हूँ।"

इस कथन से यदि वह तात्पर्य निकाला जाय कि भगवान श्रीकृष्ण स्वयं अपने को भी मानव-श्रेणी में रखते थे और अपने ईश्वर-भाव को दैवी-सत्ता का विषय प्रभावशाली ढंग से प्रतिपादन करने के निमित्त ही प्रकट करते थे, तो यह सर्वथा अनुपयुक्त नहीं है। यों तो 'भागवत' 'महाभारत, 'हरिवंश' 'ब्रह्मवैवर्त' 'विष्णु पुराण' आदि में उनके चरित्र की घटनाओं में से अनेक आक्षेप योग्य बतलाई जा सकती हैं, पर श्रद्धालु भक्तगण उनका कारण 'भगवान की नर लीला. बतला कर मामला खत्म कर देते हैं। यदि हम 'अवतार' का आशय किसी 'महा मानव' या 'अति मानव' से लगायें अथवा उनकी विशेष विचार धारा को कार्य रूप में परिणित करने को ही वास्तविक 'अवतार' मानें तो फिर इस में बुद्धिवादी लोगों को भी कोई विरोध नहीं हो सकता। हम भगवान कृष्ण को सर्वोपरि दैवी सत्ता को मानने से इन्कार नहीं करते, पर हमने ऊपर 'अवतार-समस्या' का जो एक नया पहलू रखा है, वह भी 'अवतार का' एक रूप हो सकता है। संसार में तो कहीं न कहीं एकाध कठिन और भयंकर समस्या सदैव उत्पन्न होती ही रहती है, और उसका निवारण किसी नए आन्दोलन नई विचारधारा को प्रचारित करने से ही हो सकता है। ऐसी प्रभावशाली विचारधारा ईश्वर की प्रेरणा से ही उत्पन्न होसकती और चारों तरफ फैल सकती है। इस लिये यदि उसे ही ईश्वर का एक 'भाव अवतार' कहा जाय तो इसमें कुछ अनुचित नहीं।

गीता का मनन करने से यह प्रकट होता है कि उसका मूल उद्देश्य मनुष्य को कर्त्तव्य परायण बनाना है, और उसका यह कर्त्तव्य पालन का भाव इतना सुदृढ़ होना चाहिये कि उसकी पूर्ति में वह सुख-दुःख हानि-लाभ, यश-अपयश और सगे सम्बन्धियों तक का ख्याल न करे।

भगवान कृष्ण का कहना था कि यह सिद्धान्त ईश्वरीय विधान के अनुकूल है, और इसपर चलकर मनुष्य सांसारिक जीवन व्यतीत करता हुआ भी मोक्ष और जीवन्मुक्त स्थिति को प्राप्त कर सकता है। उनकी यह 'निष्काम कर्म' विचारधारा हजारों वर्षों से स्थिर हैं और इससे न मालुम कितने मनुष्यों का उद्धार हो चुका है। आज भी संसार भर में 'गीता' का जो आदर और प्रचार है, उससे यह विदित होता है कि यदि बहुसंख्यक व्यक्ति नहीं तो कुछ चुनी हुई आत्मायें अवश्य उससे प्रभावित होकर मोक्ष-मार्ग की ओर अग्रसर हो रही होंगी। ऐसी सशक्त विचार-धाराऐं जो पाँच हजार वर्षों से जन-मानस पर अधिकार जमाए हुए हैं 'ईश्वरीय सत्ता का प्रकटीकरण' ही मानी जा सकती है !

अवतार के सम्बन्ध में सब से बुद्धिसंगत घोषणा भगवान कृष्ण ने गीता में ही की है कि 'जब कभी 'धर्म' पर संकट आता है 'अधर्म' का उत्थान होने लगता है तभी उसका निराकरण करने को दैवी-सत्ता का प्रकटीकरण होता है।" यह विचारधारा इतनी स्वाभाविक और सुदृढ़ सिद्ध हुई है कि प्रत्येक विद्वान और धर्मशास्त्र ने इसको अपना लिया है। इस घोषणा में यह नहीं कहा गया है कि भगवद्-शक्ति अवश्यमेव मानवाकार और किसी व्यक्त विशेष के रूप में ही प्रकट होगी। ईश्वर सर्व शक्तिमान और घट-घट व्यापी है, वह अपना उद्देश्य अनेक प्रकार से पूरा कर सकता है। जब गीता (१८।३१) के अनुसार ही ईश्वर प्रत्येक नर तन धारी के हृदय-देश में प्रतिष्ठित है और उसे निरन्तर भ्रमाता रहता है, तो वह किसी एक या अनेक व्यक्तियों को समयानुकूल प्रेरणा देकर ही महान कार्यों की पूर्ति करा सकता है। इसलिये गीता के अनुयाइयों को 'अवतार वाद' के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं विस्तृत रखना चाहिये और मानव रूप अवतार' की तरह भाव रूप ईश्वरावतार के सिद्धान्त को भी सर्वथा युक्तियुक्त और शास्त्रानुकूल मानना चाहिये।

कल्कि पुराण के अवतार वर्णन पर एक दृष्टि

'कल्कि-पुराण' के रचियता ने भगवान कल्कि के प्राकट्य का का वर्णन बहुत सीधे-सादे ढ़ंग से 'प्राचीन शैली' पर कर दिया है, कि "जब कलियुग में पाप बहुत बढ़ गये और धर्म-कार्यों के बन्द होजाने से देवगण कष्ट पाने लगे तो वे अपनी दुरवस्था का निवारण करने के लिये ब्रह्माजी की सेवा में उपस्थित हुए । ब्रह्माजी सब को लेकर विष्णु भगवान की सेवा में उपस्थित हुए । भगवान ने धर्म की हानि होते देखकर अवतार लेना स्वीकार किया और वे 'शंभल' ग्राम में विष्णु-यशविप्र की भार्या के गर्भ में प्रविष्ट होगये, और यथा समय जन्म लेकर अपने लीला कार्य को सम्पन्न करने लगे ।"

इस वर्णन में कोई नई बात नहीं है । अन्य सब पुराणों और रामायण आदि में यही अधिक विस्तार से साहित्यिक ढंग से वर्णन किया गया है । कल्कि पुराण का आकार अपेक्षाकृत बहुत छोटा है, इसलिये उसमें दस-बीस श्लोकों में ही इस वर्णन को निपटा दिया है । तो भी उसमें दो-चार बातें ऐसी हैं जिन से कल्कि भगवान का जन्म लौकिक के वजाय दैवी सिद्ध हो सकता है । कल्कि भगवान का जन्म होने पर उनके आरम्भिक संस्कार कैसे सम्पन्न हुए इस सम्बन्ध में कहा गया है—

धातृमाता महाषष्ठी नाभिच्छेत्री तदम्बिका ।
गंगोदक क्लेदमोक्षा सावित्री मार्जनोद्यता ।।
तस्य विष्णोरनन्तस्य वसुधा ऽधात्पयः सुधाम् ।
मात्रका माङ्गल्य वचः कृष्णजन्मदिने यथा ।।

अर्थात्—"कल्कि भगवान के जन्म लेने पर भगवती महाषष्ठी ने धात्री (दाई) का कार्य किया, अम्बिका देवी ने नाल काटा, भगवती भगीरथी ने अपने जल से गर्भक्लेद (शिशु के शरीर में लगे रक्त आदि)को दूर किया, और सावित्री देवी उनका मार्जन करने लगीं । भगवान कृष्ण के जन्म के अवसर की भाँति भगवान कल्कि के

जन्म लेने पर भगवती वसुमती ने दुग्ध धारा प्रवाहित की और मातृका भवानी ने मंगल गीत गाये।"

यह वर्णन लौकिक नहीं, अलौकिक ही कहा जा सकता है। वैसे यह तो हर शास्त्र में कह दिया गया है कि भगवान के अवतार रूप में जन्म ग्रहण करने का रहस्य कोई जान नहीं सकता। इसी प्रसंग में यह भी लिखा है कि "उसी अवसर पर जब भगवान का नाम करण संस्कार किया जाने लगा तो उनके दर्शन के निमित्त परशुराम जी, कृपाचार्य, व्यासमुनि एवं द्रोणाचार्य-पुत्र अश्वत्थामा भिक्षुक भेष धारण करके वहाँ आये।" इस प्रकार के वर्णन स्थूल जगत की अपेक्षा सूक्ष्म-जगत अथवा दैवी-जगत के लिये अधिक उपयुक्त जान पड़ते हैं। कल्कि-पुराण के रचियता ने श्री कल्कि के प्रकट होने का वर्णन परम्परागत रूप में कर दिया है। पर समस्त पुराण के कथानक पर ध्यान देने से कल्कि-भगवान का प्राकट्य व्यक्तिगत रूप में मानने की अपेक्षा भाव-रूप में मानना अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है। वैसे जब कभी धर्म और अधर्म के विरोधी पक्षों में संघर्ष प्रकट रूप में और विशाल परिमाण में होगा तो धर्म रक्षार्थ अग्रसर होने वालों में एक या दो-चार व्यक्ति भी प्रमुख हो सकते हैं, उनमें से किसी एक का आत्मोत्सर्ग और बलिदान सर्वोपरि भी माना जासकता है, पर ज्ञानी जन इसको बहुत अधिक महत्व देना अनावश्यक बतलाते हैं। ऐसे संघर्ष में महत्व की वस्तु वह सिद्धान्त या विचार धारा ही होती है। जिससे प्रेरित होकर इतने सुयोग्य और शक्तिशाली व्यवितत्व सांसारिक स्वार्थ को त्याग कर पारमार्थिक उद्देश्य के लिये अधर्म के विरुद्ध उठ खड़े होते हैं, और इस कार्य की पूर्ति के लिये किसी भी त्याग या बलिदान को करने से पीछे पैर नहीं हटाते।

इसी प्रकार जब श्री कल्कि भगवान के पुन: बैकुन्ठ जाने का वर्णन किया है तो कहा गया है कि भगवान तो वास्तव में निराकार और रूपविहीन थे। संसार के प्राणियों को उनका जो रूप दिखाई दिया

वह उनकी माया की शक्ति ही थी—

तुष्टुवुर्मुर्मुहुः सर्वे लोकाः सस्थाणु जंगमाः ।
दृष्टोरूपमरूपस्य निर्वाणे वैष्णवं पदम् ॥

अर्थात् "जब भगवान कल्कि ने इस जगत को त्याग कर विष्णु-पद में प्रवेश किया तो उन अरूप विष्णु भगवान के रूप-दर्शन कर समस्त स्थावर और जंगम प्राणी मोहित होकर स्तुति करने लगे।"

अवतार के सम्बन्ध में निराकार ब्रह्म के साकार रूप में प्रकट होने की समस्या सदा से विवादास्पद रही है। इसी कारण निराकार-वादी और वेदान्ती विचारों वाले किसी अवतार को साक्षात् परमात्मा के दर्जे का स्वीकार नहीं करते, वरन् विशेष दैवी शक्ति से सम्पन्न देवपुरुष ही मानते हैं। यद्यपि सगुणवादियों ने जल जैसे निराकार तत्व के ठण्ड पाकर जम जाने पर साकार रूप में परिवर्तित होने का प्रमाण दिया है पर तर्कवादी लोगों का उससे संतोष नहीं होता। उनका कहना है कि जल और वायु के निराकारत्व तथा परमात्म-तत्त्व के निराकार होने में बहुत अन्तर है। विज्ञान के अनुसार भौतिक तत्त्व-गैस, द्रव और ठोस तीनों अवस्थाओं में रह सकते हैं और रहते हैं। पर परमात्म तत्त्वों को किसी प्रकार पंच-भौतिक नहीं कहा जासकता है। वह तो केवल शक्ति या सत्ता के रूप में है, उसका स्थूल रूप में आसकना संभव नहीं। जिस प्रकार उष्णता और विद्युत की शक्ति केवल किसी माध्यम से ही प्रकट होती और काम करती है, उसी प्रकार परमात्म-शक्ति भी आवश्यकतानुसार एक या अधिक लोगों को प्रेरित करके ही दैवी लक्ष्य की पूर्ति करती है।

जैसा हमने ऊपर बतलाया है 'कल्कि पुराण' का कथानक बहुत सीधा सीधा और आरम्भ से अन्त तक एक उपाख्यान की तरह है। उसमें अन्य पुराणों की तरह 'सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तर, देव-ऋषि और राजवंशों, आदि का समावेश नहीं किया गया है। या तो रचियता ने ही इसे संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है अथवा किसी अन्य विद्वान ने उसका

यह संक्षिप्त संस्करण तैयार किया है यही समस्या 'विष्णु पुराण' के सम्बन्ध में भी उपस्थित है जिसको अन्य पुराणों की सूचियों में २३ हजार श्लोकों का बतलाया है, पर वर्तमान समय में जो ६।। हजार श्लोकों का ही मिलता है। कुछ भी हो 'कल्कि पुराण' में अवतार के साकार और निराकार रूपों के सम्बन्ध कोइ स्पष्ट विवेचन नहीं किया गया, पर जब हम ,रामायण' 'गीता' 'भागवत' आदि के विवेचन को ध्यान में रखते हुए उसके कथानक पर विचार करते है, तो 'कल्कि भगवान'का स्वरूप अधिकाँश में 'भावात्मक' ही प्रतीत होता है ! हम जानते हैं कि जो लोग 'अवतार' शद्व से केवल 'राम,कृष्ण' नरसिंह, 'वामन' आदि जैसे चमत्कारी दैवी पुरुषों का ही आशय समझते हैं और लोकोत्तर लीलाओं के कारण ही उनको 'भगवान' मानते हैं, वे अवश्य ही 'भावात्मक अवतार' के सम्बन्व में तरह-तरह की शंकाय करेंगे। उनसे हम इतना ही कह सकते हैं कि जिसप्रकार वेदव्यास, गो० तुलसी-दास आदि महामानवौं ने भगवान के 'निराकार' और ,साकार' दोनौं रूपौं को यथार्थ स्वीकार किया है।उसी प्रकार' शरीर धारी' अवतार और भाव रूपी अवतार दोनो ही सभव होसकते हैं !



पाँचवा अध्याय

कल्कि अवतार का विश्वव्यापी प्रभाव

समस्त अवतारों का 'युग-परिवर्तन' से विशेष सम्बन्ध होता है। हम यह कह सकते हैं कि जब नये युग का आविर्भाव होने लगता है, तो उसकी प्रक्रिया किसी 'अवतार' नामधारी द्वारा आरम्भ की जाती है। इसी बात को दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि जब संसार में किसी 'अवतार' का प्राकट्य होता है, तो उसके परिणाम स्वरूप एक नवीन युग का जन्म भी होता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर आज लाखों व्यक्ति वर्तमान विश्वव्यापी हलचल में एक नये युग के सूत्रपात के चिन्ह देखकर भावी अवतार के आगमन की आशा भी कर रहे हैं।

'कल्कि' का कलियुग के साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। उनका नामकरण इसी आधार पर किया गया है। सभी पुराणों में यह वर्णन पाया जाता है कि जब कलियुग के प्रभाव से मानव समाज की अवस्था विशेष शोचनीय हो जायगी तब 'कलियुग' को नष्ट करके 'सतयुग' की स्थापना के निमित्त 'कल्कि भगवान' प्रकट होंगे। कुछ लोग इस घटना का समय अब से कई लाख वर्ष बाद मान रहे हैं और कितने ही वर्त-मान चिन्हों को देखते हुए शीघ्र ही उनके प्रादुर्भाव की भविष्यवाणी कर रहे हैं। बंगाल के एक स्वामी जी ने तो 'शास्त्रों के प्रमाण' और निजी ''यौगिक अनुभूतियों' के आधार एक बड़ा ग्रन्थ छपा कर सन् १९८५ में कल्कि के प्रकट होने की घोषणा ही कर दी है। हम इस स्थान पर 'कल्कि' के प्रकट होने की तारीख सम्बन्धी विवाद में पड़ना नहीं चाहते, पर जो लोग अवतार को लाखों वर्ष आगे की घटना मानते हैं;उनसे तो हमारा मतभेद स्पष्ट है। अधिकांश पुराणों और मनुस्मृति

आदि में भी कलियुग को १२०० वर्ष का लिखा है। पर पुराने ढर के पंडित उनको देव-वर्ष कहकर ४ लाख ३२ हजार की संख्या बतलाते हैं, जब कि अन्य विद्वान् उनको मानव-वर्ष मानकर चारों युगों का परिमाण १२ हजार वर्ष निश्चित करते हैं। वे इसके प्रमाण स्वरूप 'मनुस्मृति' के ये श्लोक उपस्थित करते हैं—

चत्वार्याहु सहस्राणि वर्षाणांतु कृतं युगं।
तस्य तावत शती सध्या सध्यांशश्च तथा विधि: ॥
इतरेषु स सध्येषु स संध्यांशेषु च त्रिषु।
एकोपायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥

इन श्लोकों में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि कृतयुग (सतयुग)४ हजार वर्षों का होता है और ४००-४०० वर्ष की उसकी संध्या और संध्यांश होते हैं। इसी प्रकार त्रेता, द्वापर तथा कलियुग क्रमश: ३ हजार, २ हजार और एक हजार वर्षों के होते हैं, और उतने-उतने सौ वर्षों की उनकी दोनों संधियां(संध्या और संध्यांश)भी होती हैं।"

युगों की अवधि का निर्णय करने के लिए अब से ४० वर्ष पहले 'चेतावनी' नामक पुस्तिका के लेखक पं० राजनारायण षटशास्त्री ने बड़ा परिश्रम और आन्दोलन किया था। उनकी 'चेतावनी' सामान्य जनता में बड़ी लोकप्रिय हो गई थी और हजारों की संख्या में छप कर बिकी थी। उन्होंने लाखों वर्ष के युगों के खण्डन में ज्योतिष, धर्मशास्त्र तथा महाभारत आदि से तथा स्वयं खोजकर बहुत से प्रमाण दिये थे। उनमें से दो का उल्लेख नीचे किया जाता है—

उदयपुर जयपुर, जोधपुर तथा काश्मीर के महाराज अपने वंश का सम्बन्ध भगवान राम के सूर्यवंश से बतलाते हैं और इन्होंने अनेक विद्वान पंडितों को नियुक्त करके तथा समस्त प्राचीन ग्रन्थों तथा पुराणों में दी हुई वंशावालियों की खोज और मिलान कराके अन्त में श्रीरामचन्द्र से अपने समय तक के समस्त राजाओं की नामावली तैयार कराई। इसके अनुसार श्रीरामचन्द्र से जयपुर के वर्तमान महाराज मानसिंह तक कुल २३१ राजा हो चुके हैं। अब अगर पुराने ढर्रे

के पंडितों के हिसाब से माना जाय तो श्रीरामचन्द्र को करीब ९-१० लाख वर्ष पहले का मानना पड़ेगा। पर दस लाख वर्षों में २३१ पीढ़ियों का होना किसी हिसाब से ठीक सिद्ध नहीं होता। विद्वानों ने एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी का अन्तर सामान्यतया २५, ३० वर्ष का ही निर्धारित किया है। इस हिसाब से २३१ पीढ़ियों में ५-६ हजार वर्ष से अधिक का समय व्यतीत नहीं हो सकता।

इसमें अगर यह दलील दी जाय, जैसा कि अक्सर 'पंडित' नामधारी प्राय: दिया करते हैं कि पुराने जमाने में मनुष्यों की आयु हजारों वर्ष की हुआ करती थी, इसलिए एक-एक पीढ़ी का अन्तर बहुत अधिक हो सकता है, तो यह निरर्थक है। हजारों, लाखों वर्ष की आयु और सैंकड़ों गज लम्बे चौड़े शरीर कथा और उपाख्यानों में सुनाये जा सकते हैं, पर जब गंभीरतापूर्वक विचार विमर्श किया जाय तो उन को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। प्राचीन और आधुनिक वातावरण और रहन-सहन में अन्तर पड़ गया है उसके आधार पर उस समय बहुसंख्यक लोगों की आयु अब से ड्योढ़ी दुगुनी तक मानी जा सकती है जैसा कि आजकल भी शहरों के कृत्रिम वातावरण से दूर ग्रामीण अथवा पहाड़ी स्थानों के निवासियों में अनेक व्यक्ति १२५, १५० या इससे भी अधिक आयु के पाये जाते हैं। धर्मशास्त्रों की दृष्टि से भी जो 'वेद' संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ स्वीकार किये गये हैं उनमें सब जगह 'जीवेम शरद: शतम्' कह कर परमात्मा से सौ वर्ष की आयु की प्रार्थना की गई है। पाठक इस पर विचार करके स्वयं वास्तविकता का अनुमान कर सकते हैं। ऐसी ही कथाओं में श्री रामचन्द्र जी का शासन-काल ग्यारह हजार वर्ष लिख दिया गया है, पर उनके विवाह के सम्बन्ध में यही कहा गया है कि उस समय 'रामचन्द्र जी की आयु २७ वर्ष और सीता की १८ वर्ष की थी।' इससे भी यह जाना जा सकता है कि हजारों वर्ष की आयु वाली बात ठीक नहीं है, कम से कम उसका सम्बन्ध वर्तमान 'मन्वन्तर' से नहीं हो सकता।

'चेतावनी' की दूसरी खोज यह है कि अनेक स्थानों पर चारों युगों को जो ४३ लाख २० हजार वर्षों का लिखा है,वे वास्तव में ३६० दिन वाले वर्ष नहीं है, वरन् सूर्याब्द (२४ घंटे का रात दिन) हैं। प्राचीन ग्रन्थों में बहुत से वर्णनों में इसी प्रकार 'सूर्याब्द' का उल्लेख किया गया है। इसका एक उदाहरण 'बाल्मीकि रामायण' में मिलता है। उसके उत्तरकाण्ड (सर्ग ७३) में एक ब्राह्मण का वर्णन मिलता है जिसने श्रीराम के दरबार में आकर अपने बालक के मर जाने की शिकायत की और कहा—

अप्राप्त यौवनं व.ले पंच वर्ष सहस्रकम।
अकाले कालमापन्नं मम दुखाय पुत्रकम्॥

इसमें कहा गया है कि "मेरा पाँच सहस्र वर्ष की आयु का बालक यौवनावस्था प्राप्त होने से पूर्व ही अकाल में काल-कवलित हो गया है, इससे मैं अत्यन्त दुखी हूँ।" इस कथानक में ५ हजार वर्ष की आयु वाले को 'बालक' कहना बड़ा बेतुका जान पड़ता है पुराणों की कथाओं में महाराज दशरथ और श्री रामचन्द्रजी की आयु लगभग दस-ग्यारह सहस्र वर्ष की बतलाई है। थोड़ी देर के लिए उसको भी मान लिया जाय तो भी ५ हजार वर्ष की आयु वाला 'युवा' अथवा प्रौढ़ ही कहा जा सकता है, उसे बालक कहना तो गलत ही माना जायगा। इसलिये रामायण के एक विद्वान् टीकाकार पं० रामाभिराम ने इसका अर्थ करते हुए लिखा है—

"पञ्च वर्ष सहस्रकं, वर्ष शब्दोत्र दिन परः।
किञ्चिन्न्यून चतुर्दश वर्ष मित्यर्थः।"

अर्थात् "यहाँ पर जो 'पंच सहस्र वर्ष' कहा गया है उसका आशय दिन से है। इस हिसाब से उस ब्राह्मण का बालक चौदह वर्ष से कुछ कम आयु का था।"

अगर कोई इस 'सूर्याब्द' की बात को मनगढ़न्त अथवा काल्पनिक कहे तो यह उसकी भूल और जानकारी की कमी है। वास्तव में कथा

कहने वाले या पूजा-पाठ कराने वाले 'पंडितों' में से एक प्रतिशत भी ऐसे नहीं होते जिन्होंने प्राचीन साहित्य का गहरा अध्ययन किया हो और उसका मर्म खोजने में परिश्रम किया हो। यदि वे खोज करते तो उनको मालूम हो जाता है कि वर्ष केवल ३६० या ३६५ दिनों का ही नहीं होता वरन् इससे बहुत कम और बहुत अधिक अनेक प्रकार का होता है। गणित ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सूर्य सिद्धान्त' में नौ प्रकार के वर्ष बतलाये गये हैं—

ब्राह्मं दिव्यं यथा पित्र्यं प्राजापत्यं गुरोऽस्तथा।
सौरे च सावनं चान्द्र मार्क्ष माननी वै नव॥
(सू० १३-१)

अर्थात्—"ब्रह्म-वर्ष इस सृष्टि के बराबर होता है। 'दिव्य-वर्ष (यह सूर्य की उत्तर-दक्षिण गति से ३६० दिन का होता है)। 'पितृ वर्ष' 'यह हमारे एक महीने के बराबर होता है) 'प्रजापति वर्ष' (यह एक प्रतिसर्ग सृष्टि के समान कहा गया है।) 'गुरू वर्ष' (यह बृहस्पति के भ्रमण काल के अनुसार १२ वर्ष का होता है।) 'सौर-वर्ष' (३६५ दिन का।) 'सावन वर्ष' (सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक २४ घंटे का। इसी को 'सूर्य-वत्सर' या 'सूर्याब्द कहा गया है।) 'चान्द्र वर्ष' (यह तिथियों के हिसाब से ३५४ दिन का होता है।) 'नक्षत्र वर्ष' यह ५२ घड़ी कुछ पल का होता है।)

वेदों में 'युगों' का हिसाब भी कई प्रकार से बताया गया है और वेदांग-ज्योतिष के ग्रन्थों में छः-छः महीने के('देवयुग' और 'मनुष्य-युग) से लेकर पाँच, बारह, साठ, बारह हजार तथा लाखों वर्ष की संख्या वाले अनेक युगों का विवरण पाया जाता है। 'अथर्व वेद' में भी एक स्थान पर चारों युगों का परिमाण १२ हजार वर्ष का होने का वर्णन मिलता है—

शतंते युत हायतां द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।
इन्द्राग्नि विश्वेदेवास्ते नुमन्यतामहृणीय माना॥

सायणाचार्य ने इस मंत्र का भाष्य करते हुए लिखा है—

"चतुर्णां युगानां संधि संवत्सरान् विहाय युग चतुष्टय मिलित्वा अयुतं संवत्सराः स्यु तानु विभज्य कलि द्वापराख्ये त्रीणि त्रेता साहितानि चत्वारि कृतयुग साहितानि कुर्म इति आशास्यते।"

अर्थात् -'चारों युगों के सन्धि-संवत्सरों को छोड़ दस हजार वर्ष होते हैं। कलि, द्वापर, त्रेता और कृतयुग सहित ये चारों यग होते हैं।"

आचरण के आधार पर युग परिवर्तन—यहाँ तक हमने उन पाठकों को समझाने के लिये, जो मानते हैं कि शास्त्रानुसार चारों युगों का क्रम से निरन्तर आते-जाते रहना अनिवार्य है, कुछ शास्त्रीय विवेचन किया। अन्यथा हम तो इस सम्बन्ध में वैदिक ऋषियों के उस सिद्धान्त को यथार्थ मानते हैं जिसमें कहा गया है कि 'युग' का आधार मनुष्य के कर्मों और विचारों पर है। जैसा भला-बुरा हमारा आचरण होगा वैसा ही 'युग' (समय) हमको जान पड़ने लगेगा। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में इन्द्र ने कहा था—

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तुद्वापरः।
उत्तिष्ठिन्त्रेता भति कृतं सम्वद्यते चरन्॥

अर्थात्—"जब समाज या व्यक्ति सोता रहता है (अकर्मण्य अवस्था में रहता है) तो उसे कलियुग की अवस्था कहना चाहिए) जब वह आँखें खोलकर जँभाई लेने लगे तो वह द्वापर की दशा होती है। जब उठ जाता है ता वह त्रेता में पर धरता है, और जब चलने लग जाता है (अपने कर्तव्य पालन में सलग्न होता है)तब वह सतयुग की अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

शासन और 'युग का सम्बन्ध—

इससे भी अधिक व्यावहारिक बात इस सम्बन्ध में 'महाभारत' में भीष्म पितामह ने कही थी। उन्होंने युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए

कहा कि "देश का राजा या शासन-संचालन करने वाला राष्ट्रपति जैसा होगा वहाँ वैसा ही युग प्रवृत्तमान हो जायगा।" यदि राजा या शासन का संचालन करने वाले प्रधान अधिकारी सच्चे, न्यायपरायण और पूर्ण कर्तव्य निष्ठ हैं तो वहाँ की जनता को भी उसी प्रकार चलना पड़ेगा। ऐसे आदर्श शासन में दुष्ट, दुराचारी, ठग, बदमाशो को यातो अपने दुर्गुण त्याग कर सज्जनता का व्यवहार सीखना पड़ता है अथवा वहाँ से निकल किसी दूरवर्ती स्थान को चला जाना पड़ता है। इस प्रकार महाभारत के कथनानुसार जहाँ जैसा राजा होता है वैसा ही युग वर्तने लगता है—

राजा कृतयुगस्त्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च।
युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम्॥
(शान्ति पर्व अ० ६९-९८)

"राजा ही सत्युग की सृष्टि करने वाला होता है और राजा ही त्रेता, द्वापर और चौथे युग (कलियुग) की भी सृष्टि का कारण होता है।"

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वर्तमान समय में भारतीय जनता के एक बड़े भाग में जो 'कलियुग' के अनिवार्य होने की धारणा जमी हुई है, वह बड़ी घातक है। हमने बहुसंख्यक व्यक्तियों को किसी बुराई का जिक्र आने पर प्राय: यह कहते सुना है कि—"अजी, यह तो कलियुग है, इसमें तो ऐसे निषिद्ध या पाप कर्मों का होना मामूली बात है।" आज यह मनोवृत्ति करोड़ों लोगों में देखी जा सकती है। अपनी बुराई या त्रुटियों का दोष इस प्रकार 'युग' अथवा 'दैव' पर डालकर उनके सुधार का कोई प्रयत्न न करना एक बहुत बड़ी मूर्खता का चिन्ह है 'कल्कि पुराण' के पाठकों से हम आग्रह पूर्वक प्रार्थना करेंगे कि वे अपने ऊपर 'कलियुग' का प्रभाव स्वीकार न करें, वरन् "भगवान कल्कि" के सहयोगी बन कर उसको नष्ट करने को तैयार हो जायें। जैसा 'कल्कि पुराण' में कहा गया है 'कलियुग' का

प्रभाव तामसी बुद्धि वालों और मद्यपान व्यभिचार, जुआ आदि दुर्व्य-सनों में लिप्त व्यक्तिओं पर ही अधिक पड़ता है। अतएव अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को सबसे पहले 'कलियुग' की दूषित भावना को सर्वथा त्यगकर श्रेष्ठ युग के आगमन की ही भावना करनी चाहिए। हमारे विचार में यही 'कल्कि' का सबसे मुख्य और वास्तविक सन्देश और उपदेश है। युगों की वर्ष-संख्या के सम्बन्ध एक मध्यम मार्गीय दल उन लोगों का भी है, जो कहते हैं कि प्रत्येक महायुग में कम अवधि वाले चारों युगों की अन्तर-दशा में निरन्तर आती रहती है। इसी विचार के एक सज्जन ने 'सतयुग' मासिक पत्र (सितम्बर १९३९) में लिखा था कि 'कलियुग ४३२००० वर्ष तक रहता है, पर बीच-बीच में प्रत्येक ५०५३ वर्षों के बाद ८० वर्षों के लिये सत्युग आता रहता है)' इन दोनों में से किसी का खंडन न करते हुए वर्तमान परिस्थितियों को देख कर हम युग–परिवर्तन की संभावना पर निश्चित रूप से विश्वास करते हैं, और हमारी यह भी धारणा है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'कल्कि अवतार' की प्रक्रिया इस समय भी भी विश्वव्यापी वातावरण में चल रही है।

'महाभारत' (वन पर्व अ० १९०) में कल्कि–अवतार के प्रकट होने का वर्णन अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा विस्तारपूर्वक किया गया है। उसमें आरम्भ में कलियुग में समाज की दुरवस्था और लोगों में उत्पन्न होने वाले भयंकर दोषों का वर्णन करके कहा गया है—

कल्की विष्णुयशा नाम द्विजः काल प्रचोदितः।
उत्पत्स्यते महावीर्यो महा बुद्धि पराक्रमः ।।९३
सम्भूतः सम्भल ग्रामे ब्राह्मण वसथे शुभे।
(महात्मा वृत्तसम्पन्नः प्रजानां हितकृन्नृप)
मनसा तस्य सर्वाणि वाहनान्यायुधानि च ।।९४
उपस्थास्यन्ति योधाश्च शस्त्राणि कवचानि च।
स धर्म विजयी राजा चक्रवर्ती भविष्यति ।।९५

207/H
29.11.73

स चेमं संकुलं लोकँ प्रसादमुप नेष्यति ।
उत्थितो ब्राह्मणो दीप्तः क्षयान्तकृदुदारधीः ।।९६
संक्षेपको हि सर्वस्य युगस्य परिवर्तकः ।
स सर्वत्र गतान् क्षुद्रान् ब्राह्मणैः परिवारितः ।
उत्सादयिष्यति तदा सर्वम्लेच्छ गणान् द्विजः ।।९७

अर्थात्—"युगान्त के अवसर पर महाकाल की प्रेरणा से सम्भल निवासी एक ब्राह्मण के घर में एक बालक प्रकट होगा जिसका नाम 'विष्णु यशा-कल्की' होगा। वह महान बुद्धि एवं पराक्रम से सम्पन्न महात्मा, सदाचारी और जनता का हितैषी होगा। मन से चिन्तन करते ही उसके पास इच्छानुसार वाहन अस्त्र-शस्त्र, योद्धा, कवच आदि उपस्थित हो जायेंगे। वह धर्मविजयी चक्रवर्ती राजा होगा। वह उदार बुद्धि, तेजस्वी ब्राह्मण, दुःख से व्याप्त इस जगत को आनन्द प्रदान करेगा। कलियुग का अन्त करने के लिए उसका प्रादुर्भाव होगा। वही कलियुग का संहार करके नूतन युग का प्रवर्तक होगा। वह सर्वत्र ब्राह्मणों से घिरा हुआ विचरण करेगा और भूमंडल में फैले हुए नीच स्वभाव वाले सम्पूर्ण म्लेच्छों का संहार कर डालेगा।"

उपर्युक्त वर्णन में अवतार का नाम 'विष्णुयशा कल्की' लिखा है, जब कि 'कल्किपुराण' तथा अन्य ग्रन्थों में भी विष्णुयश को कल्की का पिता कहा गया है। हो सकता है कि जैसे अनेक प्रदेशों में पिता और पुत्र का नाम मिलाकर ही पूरा नाम बोला जाता है, उसी रीति का यहां अनुसरण किया गया हो। 'श्रीमद्भागवत्' के बारहवें स्कन्ध के दूसरे अध्याय में भी कलियुग का वर्णन करते हुए कल्कि अवतार के प्राकट्य और कार्यों का महत्त्व बड़े श्रद्धायुक्त रूप में बतलाया गया है—

शम्भलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
भवने विष्णुयशसः कल्कि प्रादुर्भवष्यति ।।१८
अश्वमाशुगमारुह्य देवदत्तं जगत्पतिः ।
असिनासासाधुदमनमष्टैश्वर्यगुणान्वितः ।।१९

विचरन्नाशुना क्षोण्यां हयेनाप्रतिमद्युतिः ।
नृपलिंगच्छदो दस्यून कोटिशो निर्हनिष्यतिः ।।२०
अथ तेषां भविष्यन्ति मनांसि विशदानि वै ।
वासुदेवांगरागातिपुण्यगन्धानिलस्प्रशाम् ।
पौरजानपदानां वै हतेष्वखिलदस्यषु ।।२१
तेषां प्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठः सम्भाविष्यति ।
वासुदेवे भगवति सत्त्वमूर्तौ हृदि स्थिते ।।२२
यदावतीर्णो भगवान् कल्किर्धर्मपतिर्हरिः ।
कृतं भविष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्त्विकी ।।२३

"जब अवतार के प्रकट होने का अवसर आयेगा उस समय सम्भल ग्राम में विष्णुयश नाम के एक श्रेष्ठ ब्राह्मण होंगे । उनका हृदय बड़ा उदार एवं भक्तियुक्त होगा । उन्हीं के घर में कल्कि–भगवान अवतार ग्रहण करेंगे । श्री भगवान ही अष्ट सिद्धियों के तथा समस्त सद्गुणों के एकमात्र आश्रय हैं । समस्त चराचर जगत के वे ही रक्षक और स्वामी हैं । वे देवदत्त नामक शीघ्रगामी घोड़े पर सवार होकर दुष्टों को अपनी जगत प्रसिद्ध तलवार के घाट उतारेंगे । उनके रोम-रोम से तेज छिटकता होगा । अपने शीघ्रगामी वाहन पर पृथ्वी पर सर्वत्र विचरण करके 'राजाओं' के वेष में प्रच्छन्न करोड़ों लुटेरों का संहार करेंगे । जब भगवान के अंगराग से सुगन्धित हुई वायु लोगों को स्पर्श करेगी तो उनका हृदय पवित्र हो जायगा और पाप कर्मों का अन्त हो जायगा । इससे सबके हृदय में भगवद्भक्ति का संचार होगा और वे सुखी तथा पूर्ण स्वस्थ होने लग जायेंगे । प्रजा के नयन-मनोहारी श्री हरि ही धर्म के रक्षक और सब के स्वामी हैं । वे ही भगवान जब कल्कि रूप में प्रकट होंगे, तो कलियुग का अन्त होकर सत्युग (श्रेष्ठ युग) प्रारम्भ हो जायगा और सब मनुष्य तथा उनकी संतान स्वयमेव सत्त्वगुण युक्त बन जायगी ।"

'भागवत' में 'राजा रूपी दस्युओं' के कल्कि भगवान् द्वारा नष्ट किए जाने की बात लिखी गई है। जिस समय इस वर्णन को लिखा गया था, उस समय पृथिवी पर प्रत्येक अधिकार सम्पन्न और शक्तिशाली को राजा माना जाता था, क्योंकि वह क्षत्रियों की प्रधानता का युग था। पर अब वह समय बदल कर वैश्य-प्रधान युग आ गया है और संसार भर में समाज की बागडोर बहुत बड़े धनवानों, उद्योगपतियों, बैंकरों, पूँजीवादियों के हाथ में है। उन्होंने समस्त धन को और उसके द्वारा जनता के जीवन-निर्वाह के साधनों को अपने वश में कर रखा है। इसका परिणाम यह होता है कि एक तरफ तो संसार के करोड़ों व्यक्ति अन्न और वस्त्र के अभाव से पीड़ित रहते हैं और दूसरी तरफ लाखों मन खाद्य सामग्री और करोड़ों गज कपड़ा उनके गोदामों में ताले के भीतर बन्द घुन-सड़कर नष्ट हो जाता है। 'कल्कि' अपनी शक्ति-प्रभाव से इस अन्याय पूर्ण स्थिति को बदल देंगे, और पूँजीवादी प्रथा का अन्त हो जायगा।

'भविष्य-पुराण' में 'कलि' का उल्लेख युग परिवर्त्तन के सम्बन्ध में करके यह बताया गया है कि वे 'महायज्ञ' द्वारा देवताओं को संतुष्ट करके जगत् को सुखी बनायेंगे—

तदास भगवान कल्किः पुराण पुरुषोद्भवः।
दिव्यं वाजिनमारुह्य खड्गी वर्मा च चर्मधक ॥
म्लेच्छांस्तान दैत्यभूतांश्च हत्वा योगं गमिष्यति ॥
षोडशाब्द सहस्रानि तद्द्येशाग्नि प्रतापिता।
भस्मभूता कर्मभूमिर्निर्जीवा भाविता तदा ॥
गते कलियुगे घोर कर्मभूमि पुनर्हरि।
कृत्वास्थलमयों रम्यां यज्ञैर्देवान् यजिष्यति ॥
यज्ञभागमुपादाय देवास्ते बल संयुता।
वैवस्वतं मनुं गत्वा कथयिष्यन्ति कारणम् ॥

'उस अवसर पर पुराण, पुरुष, परमेश्वर 'कल्कि' प्रकट होंगे, जो दिव्य अश्व पर आरूढ़ और असि (तलवार), वर्म (कवच), चर्म (ढाल) आदि समस्त शस्त्रों से सुसज्जित होंगे । वे लाखों म्लेच्छों को उनके दुष्कर्मों के फलस्वरूप नष्ट कर देंगे और उसके पश्चात् 'महासमाधि' ग्रहण कर लेंगे । उनके प्राकट्य के पहले यह भूमि धर्म-कर्म रहित धर्म विमुख लोगों से भर जायगी, पर भगवान् कल्कि के प्रभाव से वह फिर पुण्य-स्थली बन जायगी । जब कल्कि भगवान् धर्म रक्षार्थ महायज्ञ का अनुष्ठान करेंगे, तो देवगण अपना नियमित अंश प्राप्त करके शक्ति सम्पन्न हो जायेंगे और पृथ्वी निवासियों के कल्याण साधन में तत्पर होंगे ।'

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' के 'प्रकृतिखण्ड' में 'कल्कि' का वर्णन करते हुए कहा है—

एवं कलौ सम्प्रवृत्ते सर्वे म्लेच्छमयो भवेत् ।
विप्रस्य विष्णुयशसः पुत्रः कल्किर्भविष्यति ॥
नारायण कलांशश्च भगवान बलिनां बली ।
दीर्घेण करवालेन दीर्घ घोटक वाहनः ॥
म्लेच्छशून्याश्च पृथिव्यां त्रिरात्रेण करिष्यति ।
निर्म्लेच्छां वसुधां कृत्वा अनुर्धानं करिष्यति ॥

'जब कलियुग की वृद्धि होकर समस्त जगत् म्लेच्छों (धर्म-द्रोहियों, से भर जायगा, तब भगवान् नारायण के कलांश से विष्णु यश के ग्रह में 'कल्कि' का आविर्भाव होगा । वह बड़े-बड़े शक्तिशा लियों की अपेक्षा भी अधिक शक्तिमान् होगे । वे अपनी विशाल तलवार और विशाल अश्व द्वारा तीन रात्रि में अत्यन्त शीघ्र म्लेच्छों का मूलोच्छेदन कर डालेंगे और पृथिवी के धर्मयुक्त हो जाने पर पुनः वैकुण्ठ को चले जायेंगे ।' ये ही श्लोक कल्कि अवतार का वर्णन करते हुए 'देवी भागवत' में भी मिलते हैं । 'विष्णु पुराण' (३—२) में कल्कि अवतार के विषय में कहा गया है—

वेदांस्तु द्वापरे व्यासः कलेरन्ते पुनर्हरि ।
कल्किस्वरूपी दुर्वृत्तान् मार्गे स्थापयति प्रभु ।।

अर्थात् 'भगवान् नारायण द्वापर में व्यासदेव के रूप में वेदों का विभाजन करके पुनः कलियुग के अन्त में 'कल्कि' के रूप में प्रकट होंगे और दुष्ट स्वभाव वालों को सत्मार्ग पर लगायेंगे ।' आगे चलकर चतुर्थ अंश के चौबीसवें अध्याय में कल्कि अवतार का विशेष वर्णन करते हुए कहा है—

'श्रौते स्मार्ते च धर्मे विप्लवमत्यन्तमुपगते क्षीणप्राये च कलावशेषजगत्स्रष्टुश्चराचरगुरोरादि मध्यान्तर रहितस्य ब्रह्ममयस्यात्मरूपिणो भगवतो वासुदेवस्यांशश्शम्बलग्रामप्रधानब्राह्मणस्य विष्णुयशसो गहेऽष्टगुणर्द्धिसमन्वित कल्किरूपी जगत्यत्रावतीर्य सकल म्लेच्छदस्युदुष्टा चरणचेतसामशेषाणामपरिच्छिन्न शक्तिमहात्म्यः क्षयं करिष्यति स्वधर्मेषु चाखिलामेव संस्थापयिष्यति ।९८।

अर्थात्—'जब श्रौत वैदिक) और स्मार्त धर्म की अत्यन्त हानि हो जायेगी और कलियुग प्रायः समाप्ति पर होगा, तभी 'शम्बल' ग्राम में निवास करने वाले विप्रश्रेष्ठ विष्णु यश के यहाँ सम्पूर्ण विश्व के कारण, चराचर के स्वामी, आदि-मध्य-अन्त से हीन, ब्रह्ममय एवं आत्मरूप भगवान् अपने अंश से अष्टगुण युक्त कल्कि रूप से अवतार धारण करेंगे। वही अपनी शक्ति और महिमा से सम्पन्न होकर सब म्लेच्छों, दस्युओं और दुष्ट हृदयों और दुराचारियों को नष्ट कर सभी प्रजा को अपने-अपने धर्म में स्थापित करेंगे ।'

'अग्नि पुराण' में कलियुग के कारण धर्म मौर समाज की दुरवस्था का चित्रण करते हुए 'कल्कि' के महत्व पर प्रकाश डाला गया है—

सर्वे कलियुगान्ते तु भविष्यन्ति च संकराः ।
दस्यवः शीलहीनाश्च वेदो वाजसनेयकः ॥
धर्मकञ्चुकसंव्रीता अधर्मरुचयस्तथा ।
मानुषान् भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छान् पार्थिव रूपिणः ॥
कल्कि विष्णुयशः पुत्रो याज्ञवल्क्य पुरोहितः ।
उत्सादयिष्यति म्लेच्छान् गृहीतास्त्र कृतायुधः ॥
कल्कि रूपं परित्यज्य हरिः स्वर्गं गमिष्यति ।
तथा कृतयुगं नाम पुण्वत् सम्भविष्यति ॥

'कलियुग का अन्त होने के समय सब लोग वर्ण संकर हो जायेंगे। वे लुटेरे, शील रहित और वेद विरुद्ध आचरण करने वाले होंगे। उनकी रुचि धर्म की तरफ से हटकर अधर्म की तरफ चली जावगी। म्लेच्छ राजागण मनुष्यों का बहुत बुरी तरह शोषण करेंगे। तब कल्कि भगवान् श्री विष्णु यश के यहाँ प्रकट होंगे और याज्ञवल्क्य उनके पुरोहित होंगे। वे शस्त्र लेकर अपनी शक्ति से म्लेच्छों को नष्ट कर डालेंगे। इसके पश्चात् जब पृथिवी पर फिर से सत्युग स्थापित हो जायगा तब भगवान् कल्कि पुनः अपने लोक को चले जायेंगे।'

'गरुड़ पुराण' (अध्याय—१४६) में भी 'कल्कि' का वर्णन बहुत संक्षेप में कर दिया गया है—

कल्कि विष्णुश्च भाविता शम्भल ग्रामके पुनः ।
अश्वारूढोऽखिलान् लोकांस्तदाभीतान करिष्यति ॥
एवं स भगवान व्यास धर्मसंरक्षणाय च ।
दुष्टानां च वधार्थाय अवतारं करिष्यति ॥

'शम्भलग्राम में विष्णु यश के यहाँ भगवान् 'कल्कि' रूप में प्रकट होंगे। वे घोड़े पर चढ़कर समस्त संसार को प्रभावित करेंगे। जैसा भगवान् व्यास कह गये हैं उनका अवतार दुष्टों का वध करने के लिए होगा।'

'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' में भी कल्कि के सम्बन्ध में निम्न-लिखित श्लोक मिलता है—

कलेरन्ते तु संप्राप्ते कल्किनं ब्रह्मवादिनम्।
अनुप्रविश्य कुरुते वासुदेवो जगत्स्थितम् ।।

'जब कलियुग समाप्त होने लगेगा तो सर्वव्यापी भगवान् पृथ्वी पर 'कल्कि' रूप में प्रकट होंगे और ईश्वरीय सत्ता (धर्म) की स्थापना करेंगे।'

इस प्रकार प्रत्येक पुराण में 'कल्कि' का न्यूनाधिक परिमाण में उल्लेख मिलता है। सभी विद्वानों और ऋषि-महर्षियों ने उनकी गणना प्रमुख अवतारों में की है और उनकी महिमा श्रद्धापूर्वक गाई है। यद्यपि 'कल्किपुराण' में 'कल्कि' का चरित्र-चित्रण सामान्य रूप में ही किया गया है और अन्य पुराणों की तुलना में वह नाममात्र का ही ग्रंथ माना जा सकता है, पर इससे 'कल्कि' के महत्व में कोई अन्तर नहीं पड़ा और हम कह सकते हैं कि दश अवतारों में से राम, कृष्ण अति-रिक्त शायद ही कोई ऐसा अवतार हो जिसकी चर्चा प्राचीन और नवीन ग्रंथों में 'कल्कि' की अपेक्षा अधिक मिल सके। कारण यही है कि 'कल्कि' का उद्देश्य प्रत्यक्ष रूप में दुष्टों और अधर्मियों से मानवता का परित्राण करना माना गया है। इतना ही नहीं अनेक विद्वानों की यह भी धारणा है कि 'कल्कि' संसार की भावी सभ्यता, जो वर्तमान से बहुत भिन्न होगी, के संस्थापक होंगे। यही कारण है कि प्राचीन धार्मिक विद्वानों के साथ नये युग के विचारकों ने भी 'कल्कि' की तरफ अधिक ध्यान दिया है और इस विषय की पर्याप्त विवेचना की है। थियोसोफिकल सोसाइटी की विदेश स्थित शाखाओं के द्वारा 'कल्कि' की चर्चा वहाँ भी पहुंच गई है और विद्वानों में इस विषय पर विचार विमर्श हुआ करता है।

पुराणकारों के अतिरिक्त प्राचीन विद्वानों तथा कवियों में से भीअनेक ने अपनी रचनाओं में 'कल्कि' का गुणगान और मानवता की

रक्षा करने के उपलक्ष में उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। एक संस्कृत कविता में जिसको शङ्कराचार्य की रचित बताया गया है, 'कल्कि' के सम्बन्ध में कहा है--

दुरापार संसार संहारकारी
भवत्यश्वार कृपाणप्रहारी ।
मुरारिर्दशाकार धारीह कल्की
करोतु द्विषां ध्वंसनं वः स कल्कि ॥

'भगवान् कल्कि, जो दश अवतारों में से हैं, हमको भीषण संसार-सागर से पार करें और कृपाण से दुष्टों का नाश करके हमारे कष्टों को मिटायें।'

काश्मीर के सुप्रसिद्ध प्राचीन संस्कृत कवि क्षेमेन्द्र ने 'दशावतार चरित्र' नामक सुन्दर काव्य लिखा है। इसमें कल्कि भगवान् (क्षेमेन्द्र ने इसका उच्चारण 'कर्कि' किया है) की गुण गाथा विस्तार पूर्वक गाते हुए कहा है—

तस्मिन काले निरा लोके लोके पाप तमोदये ।
उत्पत्स्य तेऽर्क संकाशः शिशुर्कर्किकुले द्विजः ॥
विष्णुर्भू भार शान्त्यर्था सोऽथ विष्णुयशः क्षिती ।
चरिष्यत्यश्वमारुह्य म्लेच्छ संक्षय दीक्षितः ॥

'उस अन्धकार युग में जब कि लोग पाप-कर्मों में लिप्त होंगे, विष्णुयश नामक प्रमुख ब्राह्मणों के घर में सूर्य के समान तेजस्वी एक बालक जन्म लेगा। वह 'कल्कि' नाम वाला भगवान् का अवतार होगा और पृथिवी को भारमुक्त करके सुखी बनायेगा। वह अश्व पर सवार होकर सर्वत्र दुष्टों का नाश करता हुआ फिरेगा।'

दशावतार सम्बन्धी एक अन्य रचना में कहा गया है—

कल्पावसाने तुरगाधिरूढ़ो
सङ्घटायामास निमेषमात्रात् ।

यस्तेजसातिर्दहतातिभीष
स्त कल्किनं विश्वपतिं भजामः ।।

'युग के समाप्त होने पर अश्व पर आरूढ़ 'कल्कि' प्रकट होंगे जिनका तेज अत्यन्त तीव्र और भीषण होगा, वे दुष्टों को देखते-देखते भस्म कर देंगे।'

'कल्कि' की भावना का प्रभाव भारत के अन्य धर्म-सम्प्रदायों पर भी पड़ा है। चाहे वे उनको किसी दृष्टि से क्यों न देखते हों पर उनके रूप में भावी अवतार की सम्भावनाओं को उन्होंने स्वीकार किया है।' 'जैन हरि वंश' (१०-२-५२) में कहा गया है —

मुक्तिगते महावीरः प्रतिवर्ष सहस्रकम् ।
एकैको जायते कल्कि जैनमत विरोधकः ।।

'जैन तीर्थङ्कर महावीर स्वामी के निर्वाण के पश्चात् प्रति एक हजार वर्ष पर एक 'कल्कि' प्रकट होता रहेगा, जो जैन मत का विरोधी होगा।'

इस वर्णन में एक हजार वर्ष का उल्लेख विशेष महत्त्वपूर्ण है। कलियुग की अवधि अधिकांश पुराणों में एक हजार वर्ष ही बतलाई है और सूरदास आदि कई सन्त एक हजार वर्ष तक 'सतयुग' कायम रहने का कथन कर गए हैं। 'कल्कि' प्रकट होने का आशय 'युग-परिवर्तन' से निश्चित रूप से लिया जाता है। इसलिए प्रति एक हजार वर्ष पर संसार की अवस्था में एक नया विशेष परिवर्तन होने की सम्भावना का प्रतिपादन करना अवश्य ध्यान देने योग्य है।

एक आश्चर्यजनक बात यह है कि कल्कि की भावना भारतवर्ष की धार्मिक रूढ़ियों में ओत-प्रोत जनता तक ही सीमित नहीं रही पर उनका प्रभाव अब से दो सौ वर्ष पूर्व इङ्गलैण्ड तक पहुँच गया। वहाँ के Thomas Cambell (थामस केम्बैल) नामक कवि ने सन् १७९९ में "Pleasures of Hope" शीर्षक जोरदार कविता में

'कल्कि' के महान् कार्यों का वर्णन करके उनके जगदुद्धारक रूप को बड़ी भक्ति भावना से नमस्कार किया था—

Nine times have Brahma's wheels of lightning hurld.
His awful presence o'er the alarmed world.
Nine times hath guilt, through all his giant frame.
Convulsive trembled. as the mighty came.
Nine times hath Suffering, Mercy spread in vain.
But heaven shall burst her starry gates again !
He comes ! dread Brahma shakes the sunless sky,
With murmuring wrath. and thunders from on high.
Heaven's fiery horse, beneath his warrior form,
Paws the light clouds and gallops on the storm.
Earth, and her trembling isles in oceans bed.
Are shook, and Nature rocks beneath his tread.
The tenth Avtar comes ! at heaven's command.
Shall Sarswati wave her hallow'd wand.
Come heavenly powers ! prisneval peace restore
Loves !—Mercy !—Wisdom !—rule for ever more.

अर्थात्—परमात्मा के रथ के विद्युत चक्र नो बार घूम चुके हैं और भयभीत संसार उसकी दारुण सत्ता का अनुभव कर चुका है। नो बार जब वह शक्तिशाली सत्ता प्रकट हुई ससारव्यापि दुष्टता का

विशालकाय ढाँचा काँप उठा और अस्त-व्यस्त हो गया। नौ बार उस सत्ता ने जो दया दिखाई वह निरर्थक सिद्ध हुई, पर अब बैकुण्ठ का नक्षत्र-मंडित द्वार फिर एक बार खुलने वाला है। 'वह' आ रहा है। उसके भय से आकाश हिलने लगता है, दिशाओं में सन्नाटा छा जाता है और एक महा भयङ्कर गर्जना ऊपर से आती है। वैकुण्ठ लोक के अग्निमय अश्व पर आरूढ़ होकर वह दैवी योद्धा (कल्कि) बादलों पर कदम रखता है और तूफानों के कूद पड़ता है। तब समस्त पृथिवी और महासागरों में स्थित बड़े-बड़े टापू कम्पायमान हो उठेंगे और प्रकृति के शक्तिशाली चरण उनकी जड़ तक को हिला देंगे। दशवाँ अवतार महाकाल के आदेश से आ रहा है। भगवती सरस्वती अपने पवित्र हस्त-दंड से उसका अभिवादन करेगी। हे दिव्यलोकवासी सर्वशक्तिमान्! प्रकट होकर फिर से शान्ति को प्रतिष्ठित करो, जिससे संसार में एक बार पुनः प्रेम, करुणा और ज्ञान का राज्य स्थापित हो जाय।'

यद्यपि हम इन उद्गारों का आशय भावात्मक रूप में ही ग्रहण करते हैं और हमारा अनुमान है कि इस अवसर पर दैवी-सत्ता (कल्कि) अदृश्य रूप से ही युग-परिवर्तन का ध्येय पूरा करेगी। तो भी प्रत्यक्षवादी जन समूह के लिए उसका मानवाकार में दिखाई देना भी सर्वथा असम्भव नहीं है। संसार संकट के निवारण के लिए कोई न कोई महान् आत्मा अग्रसर होगी ही। उसे सब देश के न्यायप्रिय लोगों का सहयोग भी प्राप्त होगा, जिससे वह दुष्टता की शक्तियों का अन्त कर सके। पर हम इसको अधिक महत्व इसलिए नहीं देना चाहते कि वह तो सृष्टि का अटल नियम है और सदा से होता आया है। पर ऐसे अवसर पर एक नहीं अनेक महापुरुष सम्मुख आकर उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होते हैं। उनमें से कौन प्रमुख है, सर्वोच्च दैवी सत्ता का प्रतीक है इसे शीघ्र ही जान सकना सम्भव नहीं होता। इसीलिए हमारी दृष्टि में तो सर्वाधिक महत्व और आश्चर्य की बात वह 'अवतार भावना' है, जो कम से कम दो-डेढ़ हजार वर्ष से हमारे देश में अक्षुण्ण

चली आई है और जिसकी प्रतिध्वनि दो सौ वर्ष पूर्व योरोप जैसे सूदूरवर्ती महाद्वीप में भी उठने लग गई।

इतना ही नहीं इसी भावना के प्रभाव से यहूदी, ईसाई, बौद्ध, शिंटोमत [जापान का धर्म] इस्लाम आदि सभी प्रमुख मजहबों में 'अवतार' की चर्चा आरम्भ हो गई है। ईसाइयों में ईसामसीह के 'द्वितीय आगमन' की चर्चा दिन पर दिन जोर पकड़ती जाती है, और अमरीका आदि में इस सिद्धान्त का प्रचार करने के लिए 'सैकिण्ड एड-वेंटिस चर्च' का पृथक् ही सङ्गठन हो गया है। मुसलमानों में 'हजरत मेंहदी' के प्राकट्य का विश्वास लाखों व्यक्ति कर रहे हैं और उसके लिए बहुत कुछ कष्ट सहन कर चुके हैं, क्योंकि कट्टरपंथी मुसलमान ऐसी चर्चा को 'अधर्म' मानते हैं। बौद्धों में 'मैत्रेय' के रूप में बुद्ध भगवान् के नवीन अवतार की संभावना गम्भीरता पूर्वक स्वीकार की जा रही रही है। इस प्रकार 'कल्कि-भावना' ने दुनिया भर का ध्यान आकर्शित किया है और जगह-जगह के लोग किसी अदृश्य प्रेरणा के वशीभूत होकर 'उस आने वाले' की राह उत्ससुकता पूर्वक देख रहे हैं।

इसका आशय यही है कि संत्रस्त मानवता इतने समय से निरन्तर किसी 'उद्धारकर्ता' की राह देख रही है और उसके स्वागत के लिये हर तरह की तैयारियाँ भी कर रही है।

समय के चिन्हों को देखकर हम कह सकते हैं कि जन-समुदाय की उस चिर-अभिलाषित कामना की पूर्ति का समय बिल्कुल समीप आ चुका है। जिन लोगों को किञ्चित भी दैवी-प्रकाश प्राप्त है वे इस समय 'कल्कि' के अश्व की टापों का शब्द अपने कानों से सुन रहे हैं और उसकी कृपाण की चमक सुदूर आकाश में देख रहे हैं। समस्त शास्त्रों, भविष्य वेत्ताओं, सन्तों, भक्तों ने आत्मा से जो उद्गार प्रकट किए हैं उनके पूरा होने में अब विलम्ब नहीं। इसलिए हम सब भी उन सबके स्वर में स्वर मिलाकर गगन-भेदी स्वर में कहें—

"कल्कि की जय"

छठा अध्याय

कलियुग और कल्कि

कल्कि अवतार का नामकरण कलियुग के आधार पर ही हुआ है। कलियुग का नाश करने वाला होने से ही उनको 'कल्कि' कहा गया है। कलियुग को पाप-पुरुष से उत्पन्न माना गया है और सर्वसाधारण में आम तौर से यह धारणा पाई जाती है कि जब तक कलियुग रहेगा लोगों का झुकाव अधिकांश में पाप-कर्मों की तरफ ही रहेगा और धर्म दुर्दशा होती रहेगी। यह भावना चाहे किसी कारण उत्पन्न हुई हो, पर इसने समाज की बड़ी हानि की है और दोषों तथा दुर्गुणों का प्रतिकार करने की प्रवृत्ति को निरन्तर निर्बल किया है।

फिर हम जिस पुराण या शास्त्र को देखें उसमें कलियुग की पापपूर्ण अवस्था और दूषित सामाजिक वातावरण का वर्णन अवश्य पाते हैं। सभी पुराणों ने यह कहा है कि ब्राह्मण ही समाज में सर्वाधिक पूज्य हैं, उनकी महिमा देवताओं से भी अधिक है पर कलियुग में वे ही ब्राह्मण महभ्रष्ट हो जायेंगे और इसके फलस्वरूप समस्त समाज का पतन हो जायगा—वह अनगिनती छोटे-बड़े दोषों का भण्डार बन जायगा। हमारी सम्मति में भी कलियुग संबन्धी भविष्यवाणियों में सबसे सच्ची बात यही है।

आज हम निस्संकोच कह सकते हैं कि ब्राह्मणों का पतन हो जाने से ही भारतीय समाज वर्तमान दुर्दशा को प्राप्त हुआ है। जब तक ब्राह्मण सच्चे अर्थों में 'राष्ट्र के कर्णधार' थे और अपने तुच्छ स्वार्थ के बजाय जन समुदाय को वास्तविक कल्याणकारी मार्ग दिखलाने में ही

अपनी शक्ति और साधनों का उपयोग करते थे, तब तक यह देश सब तरह से सुखी और अधिकार सम्पन्न बना रहा। पर जब वे स्वार्थ के वशीभूत हो अपने कर्तव्य से विमुख हो गये और लोगों को सन्मार्ग दिखलाने के बजाय अपनी पूजा-पाठ की कमाई की खातिर उनको अन्ध-विश्वास के गर्त में ढकेलने लगे, तो समाज को गिरते हुए देर न लगी। इस दूषित वातावरण का वर्णन करते हुए 'कल्कि पुराण' में कहा गया है—

यज्ञाध्ययनदानादिवेद तन्त्र विनाशकाः।
आधिव्याधि जराग्लानि दुःख शोक भयाश्रयाः॥

'जब कलियुग ने अपना प्रभाव फैलाया तो देश में दल के दल धर्म निन्दक पैदा होने लगे। ये आधि-व्याधि, जरा, ग्लानि, दुख, शोक, भय का आश्रय लेकर यज्ञ, स्वाध्याय, दानादि, धर्म कार्य एवं-वेद तन्त्रादि धर्म शास्त्रों के विनाश करने वाले हुए।'

आगे चल कर कहा गया है कि 'ऐसे लाखों समाज को नष्ट करने वाले कलिराज के अनुयायिओं ने क्षण भंगुर और कामुक मानव-शरीरधारण किया। वे अत्यन्त दम्भी दुराचारी, माता-पिता-हिंसक कलि-युगानुयायी ब्राह्मण योनि में जन्म लेकर वेद-शास्त्र से विमुख, दरिद्र और शूद्र जाति के उपासक हुए। धर्म बेचने वाले, वेद बेचने वाले, रस और माँस बेचने वाले, संस्कारहीन, अत्यन्त कुतर्कवादी, शिश्नोदरपरायण, उन्मत्त, परपत्नीरत, अधम, वर्ण सङ्करों के जनक असंख्यों पैदा हो गए। विवाद और कलह में क्षुब्ध, केश विन्यास में निपुण, धनी और ब्याज खाने वाले ब्राह्मण कलियुग में पूज्य माने जाने लगे। उस समय सन्यासी गृहस्थों की तरह रहने लगे, सब मनुष्य गुरुजनों के निन्दक हो गए और धर्मध्वज धारण करने वाले साधु ठगी का धन्धा करने लगे। धनवान् पुरुष ही सज्जन समझे जाने लगे, दूर देश का जल ही तीर्थ हुआ, यज्ञोपवीत—मात्र में ही ब्राह्मणत्व माना जाने लगा और

केवल दण्ड ही सन्यासी का चिन्ह रह गया । परान्नलोलुप ब्राह्मणगण चण्डाल-गृह में यजन करने लगे, मेघों ने अल्प जल बरसाना आरम्भ किया, पृथ्वी थोड़ा अन्न उपजाने वाली हुई, राजा प्रजा का भक्षण करने लगे और प्रजा करों के भार से व्याकुल होने लगी । कलियुग के प्रथम में ही साधारण जन भगवान की निन्दा करने लगे । दूसरे चरण में भगवान् का नाम तक लेना उन्होंने छोड़ दिया ।'

अन्य ग्रन्थों में भी कलियुगीन स्थिति का ऐसा ही चरित्र-चित्रण किया, और यद्यपि उनके रचयिता अधिकाँश में ब्राह्मण ही थे, पर उन्होंने कलियुगी ब्राह्मणों के सम्बन्ध में ऐसी कड़ी आलोचनात्मक बातें लिखी हैं । नीचे हम पाठकों के अवलोकनार्थ 'महाभारत' (वन पर्व अ० १६०) में दिए गए 'कलियुग वर्णन' का कुछ अंश उद्घृत करते हैं, जिससे पाठकों को अनुमान हो सकेगा कि अब से सैंकड़ों-हजारों वर्ष पूर्व जिन विद्वानों ने इन वर्णनों को लिखा था, वे निस्सन्देह मानव-प्रकृति और समाज के उत्थान और पतन के कारणों के कितने सच्चे ज्ञाता थे—

व्याजैर्धर्मे चरिष्यन्ति धर्म वैतंसिका नराः ।
सत्यं संक्षेप्स्यते लोके नरैः पण्डितमानिभि ॥
सत्यहान्या ततस्तेषामायुरल्पं भविष्यति ।
आयुषः प्रक्षयाद् विद्यां शक्ष्यन्त्युपजीवितुम् ॥
विद्याहीनानविज्ञानाल्लोभोऽभ्यामि भविष्यति ।
लोभक्रोधपरा मूढाः कामासक्ताश्च मानवाः ॥
वैरबद्ध भविष्यन्ति परस्पर वधैषिणः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रीया वैश्या संकीर्यन्तः परस्परम् ।।
शूद्रतुल्या भविष्यन्ति तपःसत्यविवर्जिताः ।
अन्त्या मध्या भविष्यन्ति मध्याश्चान्त्या न संशयः ।

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी जातियों के लोग कपट-पूर्वक धर्म का आचरण करेंगे और धर्म का जाल बिछाकर दूसरे लोगों

को ठगने लगेंगे। 'पण्डित' कहलाने वाले लोग भी सत्य का परित्याग कर देंगे। सत्य की कमी हो जाने से उनकी आयु भी घट जायगी, और आयु कम होने के कारण वे जीवन-निर्वाह के योग्य विद्या प्राप्त नहीं कर सकेंगे। विद्या के बिना ज्ञान का होना कैसे सम्भव है? इसलिए उनमें लोभ की प्रबलता हो जायगी। लोभ और क्रोध के वशीभूत मूढ़ मनुष्य कामनाओं के फँसकर आपस में वैर करने लगेंगे और शत्रुभाव से एक दूसरे को मारने को तत्पर होंगे। साथ ही चारों वर्णों के स्त्री-पुरुष आचार-भ्रष्ट होकर परस्पर वर्णसंकर सन्तान उत्पन्न करने लगेंगे। वे तपस्या और सत्य से रहित होकर नीच लोगों के समान हो जायंगे। छोटी जाति वाले ऊँचे वर्णों के कार्य करने लगेंगे और ऊँचे कहलाने वाले नीच कर्मों में संकोच अनुभव अनुभव नहीं करेंगे, इसमें संशय नहीं।'

भार्यामित्राश्च पुरुषा भविष्यन्ति युगक्षये।
मत्स्याभिषेण जीवन्तो दुहन्तश्चाप्यजैडकम्॥
गोषु नष्टासु पुरुषा येऽपि नित्यं धृतव्रतः।
तेपि लोभसमायुक्ता भविष्यन्ति युगक्षये॥
अन्यान्यं परिमृष्णान्तो हिंसयन्तश्च मानवाः।
अजपा नास्तिकाः स्तेना भविष्यन्ति युगक्षये॥
श्राद्धे दैवे च पुरुषा येऽपि नित्यं धृतव्रताः।
तेऽपि लोभसमायुक्ता भोक्षयन्तीह परस्परम्॥
न व्रतानि चरिष्यन्ति ब्राह्मणा वेदनिन्दकाः।
न यक्ष्यन्ति न होष्यन्ति हेतुवाद विमोहिताः।
निम्नेष्वीहां करिष्यन्ति हेतुवादविमोहिताः॥

'उस समय लोग स्त्रियों से ही मित्रता करने वाले होंगे। अनेक लोग मछली मांस से जीविका चलाने वाले होंगे। गायों के नष्ट हो जाने से भेड़, बकरी का दूध व्यवहार में लाने लगेंगे। जो व्यक्ति व्रतों का पालन करने वाले हैं वे भी युग-प्रभाव से लोभी बन जायेंगे। लोग एक दूसरे

को लूटने-मारने लगेंगे और उनमें से अधिकांश भजन-साधन से रहित नास्तिक, अपहरणकर्त्ता बन जायेंगे। जो लोग सदैव परान्न का त्याग करके व्रतशील रहते हैं वे लोभवश देवयज्ञ और मृतक श्राद्धों में खाने लग जायेंगे। ब्राह्मण लोग व्रतों का पालन त्याग कर उलटा वेदनिन्दक बन जायेंगें, वे यज्ञ और होम को छोड़ बैठेंगे और झूंठे तर्कवाद में फँस कर नीच कर्म करने को उद्यत हो जायेंगे।'

प्रामशः कृपणानां हि तथा बन्धुमतामपि।
विधवानां च वित्तानि हरिष्यन्तीह मानवाः॥
स्वल्प वीर्यबलाः स्तब्धा लोभमोहपरायणाः।
तत्कथादान संतुष्टा दुष्टनामपि मानवाः॥
परिग्रहे करिष्यन्ति मायाचार परिग्रहाः।
समाह्वयन्तः कौन्तेयः राजानः पाप बुद्धयः॥
परस्परवधोद्युक्ता मूर्खाः पण्डित मानिनः।
भविष्यन्ति युगस्यान्ते क्षत्रिया लोककण्टयाः॥
अरक्षितारो लुब्धाश्च मानाहंकार दर्पिताः।
केवलं दण्डरुचयो भविष्यन्ति युगक्षये॥

'अर्थपिशाच मनोवृत्ति के मनुष्य दीनों, असहायों और विधवाओं का भी धन भी हड़प लेंगे। उनके शारीरिक बल और पराक्रम क्षीण हो जायेंगे। वे उद्दंड होकर लोभ और मोह में ग्रस्त रहेंगे। वैसी ही चर्चा, प्रशंसा करने और उनसे दान लेने में प्रसन्नता अनुभव करेंगे। कपटपूर्ण आचरण करते हुए वे बुरे लोगों के दान को भी ग्रहण कर लेंगे। राजा लोग पाप-परायण होकर एक-दूसरे का प्राण लेने को उद्यत होंगे और ब्राह्मण मूर्ख और नीच होते हुए भी पण्डिताई का दावा करेंगे। क्षत्रीय लोग (शासक-वर्ग) जगत के लिए कंटक स्वरूप बन जायेंगे। उस समय उनको प्रजा की रक्षा की ओ जरा भी चिन्ता न होगी केवल उनसे रुपया ऐंठकर अपना घर भरने का ध्यान रखेंगे। सदा मान और अहङ्कार के

मद में चूर रहेंगे और प्रजा को अनावश्यक रूप से दण्डित करते रहेंगे।

आक्रम्याक्रम्य साधूनां दारांश्चापि धनानिच ।
भोक्ष्यन्ते निरनुक्रोशा रुदतामपि भारत ॥
न कन्यां याचते कश्चिन्नापि कन्या प्रदीयते ।
स्वयंग्राहा भविष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ॥
म्लेश्छीभूतं जगत् सर्वं भविष्यतिन संशयः ।
हस्तो हस्तं परिमुषेद् युगान्ते समुपस्थिते ॥
सत्यं संक्षिप्यते लोके नरैः पण्डितमानिभिः ।
स्थविरा बालमतयो बालः स्थाविरबुद्धयः ॥
एकहार्ये युगं सर्वं लोभ मोह व्यवस्थितम् ।
अधर्मो वर्द्धते तत्र न तु धर्मः प्रवर्तते ॥

'लोग इतने दुष्ट हो जायेंगे कि सीधे-साधे भले मानसों पर अकारण आक्रमण करके उनके धर्म और स्त्री आदि का बल पूर्वक अपहरण करने लगेंगे और उनके रोने-पीटने पर भी कुछ ध्यान न देंगे। उस समय न तो कोई किसी से कन्या की याचना करेगा। और न कन्यादान ही करेगा वर-कन्या स्वयं ही एक दूसरे को पसन्द कर लेंगे। तब सारा जगत म्लेच्छमय हो जायगा और एक हाथ दूसरे हाथ को लूटेगा–अर्थात् सगा भाई ही भाईके धन को हड़प लेगा। अपने को पण्डित मानने वाले मनुष्य संसार सत्य को मिटा देंगे। बूढ़ों की बुद्धि बालकों जैसी और बालकों की बूढ़ों के समान हो जायगी। सब कोई लोभ और मोह में फंसकर भक्ष्याभक्ष्य का विचार किए बिना सम्मिलित भोजन करने लगेंगे। अधर्म बढ़ेगा और धर्म विदा हो जायगा।'

न कश्चित् कस्याचिच्छ्रोता न कश्चिद् कस्याचिद् गुरुः ।
तमोग्रस्तस्तदा लोको भविष्यति जनाधिप ॥
अल्प द्रव्या वृथालिंग च प्रभविष्यति ।

न कश्चित्कस्यचिद् दाता भविष्यते युगक्षये ।
अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः ।
केशशूलाः स्त्रियश्चापि भविष्यन्ति युगक्षये ।।

क्रयविक्रय काले च सर्वः सर्वस्य वञ्चनम् ।
युगान्ते भरतश्रेष्ठ वित्तलोभात् करिष्यति ।।

आरामांश्चैव वृक्षांश्च नाशयिष्यन्ति निर्व्यथाः ।
भविता संशयो लोके जीवितस्य हि देहिनाम् ।।

'उस समय कोई किसी का उपदेश नहीं सुनेगा और न कोई किसी को गुरु मानेगा । समस्त जगत् एक प्रकार के अन्धकार में ग्रस्त होगा । लोगों के पास सम्पत्ति का अभाव होगा, वे दिखावे के लिए साधु वेश धारण कर लेंगे, हिंसा की भावना बढ़ जायगी और कोई किसी को कुछ देने वाला न होगा । उस समय सभी ग्राम नगर आदि अन्न बेचेंगे ब्राह्मण वेद बेचने वाले होंगे, स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति अपना लेंगी । लोग बगीचों के वृक्षों को भी काट डालेंगे और इससे उनको किसी प्रकार का खेद नहीं होगा । उस समय लोगों के जीवित रहने में भी शङ्का हो जायगी ।'

दस्युभिः पीडिता राजन् काका इव द्विजोत्तमाः ।
कुराजभिश्च सततं करभार प्रपीडिता ।।
धैर्यं त्यक्त्वा महीपाल दारुणे युगसंक्षये ।
विकर्माणि करिष्यन्ति शूद्राणां परिचारकाः ।।
निर्विशेषा जनपदास्तथा विष्टिकरार्दिताः ।
आश्रमानुपलयस्यन्ति फलमूलोपजीविनः ।।
भर्तृणां वचने चैव न स्थास्यन्ति ततः स्त्रियः ।
पुत्राश्च मातापितरौ हनिष्यन्ति युगक्षये ।।
जनं परिजनं चापि युगान्ते पर्युपस्थिते ।

अथ देशान् दिशश्चापि पत्तनानि पुराणि च ।
क्रमशः संश्रियष्यन्ति युगान्ते पर्यु पस्थिते ।।

'श्रेष्ठ ब्राह्मण भी लुटेरों से पीड़ित होकर व्याकुल-भाव से चारों तरफ फिरने लगेंगे । राजाओं (शासक-वर्ग) के कर भार से दुःखी और धैर्यहीन होकर वे शूद्रों की नौकरी करने लगेंगे । उस समय सभी भूभागों के निवासी एक-सी वेषभूषा बना लेंगे । लोग बेगार लेने वालों और कर वसूल करने वालों से पीड़ित होकर निर्जन स्थानों में चले जायेंगे और वन के फल-मूल खाकर गुजर करने लगेंगे । स्त्रियाँ पति के वचनों पर कुछ भी ध्यान न देंगी और पुत्र माता-पिता को मारने में संकोच न करेंगे । उस समय लोग अपने परिवार वालों को भी त्याग देंगे । बहुसंख्यक लोग स्वदेश छोड़कर दूसरे देशों, दिशाओं, नगरों, गाँवों का आश्रय लेंगे ।'

'श्री मद्भागवत' भी 'महाभारत' की तरह ही महत्वपूर्ण और मौलिकता से युक्त है । उसका कलियुग वर्णन है तो इससे मिलता-जुलता ही, पर उसकी शैली में कुछ भिन्नता है और कई बातें उसकी आजकल प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रही हैं । उसमें कलियुगी धर्म (स्कन्ध १२ अ० २) का वर्णन करते हुए कहा गया है—

ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया ।
कालेन बलिना राजन् नंक्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतिः ।।
वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः ।
धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ।।
दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके ।
स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ।।
लिङ्गमेवाश्रमख्यातावन्योन्यापत्तिकारणम् ।
अवृत्या न्यायदौर्बल्यं पाण्डित्ये चापलं वचः ।।

अनाढ्य तैवासाधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु ।
स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ॥

'समय बड़ा बलवान् है । जैसे-जैसे कलियुग बढ़ता जायगा, वैसे-वैसे ही धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मरण शक्ति का लोप होता जायगा । कलियुग में जिसके पास धन होगा, उसी को लोग कुलीन, सदाचारी और सद्गुणी मानेगे । जिसके हाथ में शक्ति होगी वही धर्म और न्याय की व्यवस्था अपने अनुकूल करा सकेगा । विवाह-सम्बन्ध के लिए कुल, शील, योग्यता आदि की निरख-परख नहीं रहेगी, युवक-युवती का मन मिल जाने से ही विवाह सम्पन्न हो जायगा । जो जितना छल-कपट कर सकेगा वह उतना ही व्यवहार-कुशल माना जायगा । स्त्री-पुरुष की श्रेष्ठता का आधार उनका शील-संयम न होकर उनका रति-कौशल ही रहेगा । ब्राह्मण की पहिचान उसके गुण-स्वभाव से नहीं यज्ञोपवीत से हुआ करेगी । वस्त्र, दण्ड-कमण्डल आदि से ही ब्रह्मचारी, संन्यासी आदि की पहचान होगी, और एक दूसरे का चिन्ह स्वीकार कर लेना ही एक से दूसरे आश्रम में प्रवेश का स्वरूप होगा । जो घूस देने या धन खर्च करने में असमर्थ होगा उसे अदालतों में ठीक न्याय न मिल सकेगा । बात-चीत में चालाक होने से ही पण्डित माना जायगा । गरीब होना ही असाधुता, दोषी होने का चिन्ह होगा और जो जितना दम्भ कर सकेगा वह उतना ही साधु मान लिया जायगा । विवाह परस्पर की स्वीकृति से हो जायगा और शृङ्गार कर लेने से ही स्नान करना मान लिया जायगा ।'

दूरे वार्ययनं तीर्थं लावण्यं केशधारणम् ।
उदरम्भरता स्वार्थ सत्यत्वे धार्ष्टयमेव हि ॥
दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोऽर्थे धर्मसेवनम् ।
एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमण्डले ॥
ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः ।

प्रजा हि लुब्धै राजन्यैर्निघृ र्णैर्दस्युधर्मभिः ।।
अनावृष्टया विनंक्ष्यन्ति दुर्भिक्षकर पीड़िताः ।
शीत वातातपप्रावृड्हिमैरन्योन्यतः प्रजाः ।।
क्षुतृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव सन्तप्स्यन्ते च चिन्तया ।
त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ।।

'लोग दूर के तालाब को ही तीर्थ मान लेंगे, सिर पर बड़े-बड़े बाल रखना ही सुन्दरता का चिन्ह समझा जायगा, अपना पेट भर लेना ही बड़ा पुरुषार्थ होगा, जो जितनी ढिठाई से बात कर सकेगा वह उतना ही सच्चा मान लिया जायगा। अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण कर लेना ही सबसे अधिक योग्यता मानी जायगी, 'धर्म' का सेवन यश के लिए किया जायगा। इस प्रकार जब पृथिवी में सर्वत्र दुष्टों की प्रधानता हो जायगी, तब राज्य व्यवस्था भी दूषित हो जायगी। ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शूद्र आदि में से जो भी शक्तिशाली, चलता पुर्जा होगा वही शासक बन जायगा। ये शासक अत्यन्त लोभी, निर्दय और लुटेरे होंगे। वे जन-साधारण के धन तथा स्त्रियों तक को लूटने में संकोच न करेंगे। इसके फलस्वरूप सर्वसाधारण सदैव भूख-प्यास, चिन्ता, रोग आदि से दुःखी रहेंगे। उनकी आयु भी बहुत थोड़ी—बीस, तीस वर्ष की ही रह जायगी।

क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलि दोषतः ।
वर्णाश्रमावतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ।।
पाखण्डप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु ।
चौर्यानृतवृथाहिंसानाना वृत्तिषु वै नृषु ।
शूद्रप्रायेषु वर्णेषुच्छागप्रायासु धेनुषु ।
गृहप्रायेष्वाश्रमेषु यौन प्रायेषु बन्धुषु ।।
इत्थं कलौ गतप्राये जने तु खरधर्मिणि ।
धर्मं त्राणाय सत्त्वेन भगवानवतारिष्यति ।।

'कलियुग के दोषों से लोगों के शरीर भी क्षीण हो जायेंगे और वर्णाश्रम धर्म का प्रकाशक वेद-मार्ग नष्ट हो जायगा। धर्म में पाखण्ड बहुम अधिक बढ़ जायगा, शासक-वर्ग लुटेरों की तरह बन जायगा और लोग जीवन-निर्वाह के लिए सामान्यत: चोरी, झूँठ, हिंसा का व्यवहार करने लगेंगे। सब वर्णों के मनुष्यों का आचरण शूद्रों जैसा मर्यादा रहित हो जायगा, गायें बकरियों की तरह दूध देने वाली हो जायेंगी। संन्यासियों के आश्रम गृहस्थियों के घरों की तरह बन जायेंगे और जिनसे विवाह-सम्बन्ध होगा उन्हीं को अपना सम्बन्धी माना जायगा। इस प्रकार का कलियुगी वातावरण छा जाने पर लोग गधों की तरह भार ढोने वाले और विषयी हो जायेंगे। ऐसी तामसी अवस्था हो जाने पर भगवान पुन: सतोगुण लाने के लिए स्वयं अवतार लेंगे।'

वर्तमान दशा को देखते हुए इस वर्णन में कितनी यथार्थता है, इसे पाठक स्वयं अनुभव करते होंगे। समाज में जो नीचतापूर्ण स्वार्थ-भावना तथा स्त्री-पुरुषों में भ्रष्टाचार और चरित्रहीनता का व्यवहार इसमें वर्णन किया गया है वह आज प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि आज सभी लोग ऐसे ही हो गये हैं, क्योंकि भले-बुरे व्यक्ति तो सब कालों में रहेंगे, पर आज ऐसे 'कलियुगी' व्यक्ति लाखों-करोडों की संख्या में प्रत्येक देश में मिल सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

'विष्णु पुराण' में महर्षि पाराशर ने बतलाया है कि जिस समय कलियुग की प्रबलता होगी तो समस्त सामाजिक व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी और नर-नारियों में बहुत से दोष बढ़ जायगे। यद्यपि काम, क्रोध, लोभ आदि के दुर्गुण किसी परिमाण में मनुष्यों में सदा ही बने रहते हैं, पर प्राचीन समय में जब उनको पाप की तरह माना जाता था, तो लोग यथासम्भव इन प्रवृत्तियों को दबाकर रखते थे। पर कलियुग में छोटे-बढ़े सभी लोगों में उनका प्राबल्य हो जाने से सामाजिक मर्यादा भङ्ग

हो जायगी और लोग इन बातों में किसी प्रकार के संकोच या पाप का अनुभव नहीं करेंगे। जिसके मन में जो आवेगा उसी तरह करने में सब अपने को स्वतन्त्र समझेंगे। पुराणकार ने इस स्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए कहा है-

सर्वमेव कलौ शास्त्रं यस्य यद्वचनं द्विज।
देवता च कलौ सर्वा सर्वस्सर्वस्य चाश्रमः॥
उपवासस्तथायासो वित्तोत्सर्गस्तपः कलौ।
धर्मो मयाभिरुचिरैरनुष्ठानैरनुष्ठितः॥
वित्तेन भविता पुंसा स्वल्पेनाढ्यमदः कलौ।
स्त्रीणां रूपमदाश्चैव केशैरेव भविष्यति॥
परित्यज्यन्ति भर्त्तारं वित्तहीनं तथा स्त्रियः।
भर्त्ता भविष्यति कलौ वित्तवानेव योषिताम्॥
यो वै ददाति बहुलं स्वं स स्वामी सदा नृणाम्।
स्वामित्वहेतुस्सम्बन्धी न चाभि जनता तथा॥
गृहान्ता द्रव्यसंघाता द्रव्यान्ता च तथा मति।
अर्थाश्चात्मोपभोग्यान्ता भविष्यन्ति कलौ युगे॥

'कलियुग में जिसके मुंह से जो निकल जाय वही 'शास्त्र' मान लिया जायगा, सब कोई देवता बन बैठेंगे और जो जिस आश्रम को चाहेगा उसी को अपना लेगा। उपवास व्रत आदि ही बहुत बड़ा काम मान लिया जायगा, धन दे देना ही बड़ा तप हो जायगा और अपनी पसन्द से जो जिस अनुष्ठान को कर लेगा वही 'धर्म' हो जायगा। लोग थोड़े से धन से ही अपने को सेठ, साहूकार समझने लगेंगे और स्त्रियाँ केश विन्यास से ही सौन्दर्य का गर्व करने लगेंगी। वे धनहीन पति का त्याग कर देंगी, जो अधिक धन दे सकता है वही स्त्रियों का वास्तविक पति होगा। उस समय पुराने सम्बन्ध अथवा कुलीनता का ख्याल न करके जो अधिक धन देगा उसी को स्वामी माना जायेगा। गृह-संचालन के

लिए ही समस्त द्रव्य होगा, और द्रव्य कमाने में ही मनुष्य की समस्त बुद्धि संलग्न रहेगी, और उस द्रव्य का उद्देश्य स्वयं आराम से जीवन बिताना ही होगा ।'

स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वैरिण्यो ललितस्पृहाः ।
अन्याय वाप्तवित्तेषु पुरुषः स्पृहयालवः ।।
अभ्यर्थितापि सुहृदा स्वार्थं हानिं न मानवाः ।।
पणार्धार्द्धमात्रेऽपि करिष्यन्ति कलौ द्विज ।।
समान पौरुषं चेतो भावि विप्रेषु वै कलौ ।
क्षीरप्रदानसम्बन्धि भावि गोषु च गौरवम् ।।
यो योऽश्वरथनागाढ्यस्स स राजा भविष्यति ।
यश्च यश्चाबलस्सर्वस्स स भृत्य कलौ युगे ।।
वैश्याः कृषिवाणिज्यादि सन्त्यज्य निजकर्म यत् ।
शूद्रवृत्त्या प्रवत्स्यन्ति कारुकर्मोपजीविनः ।।

'उस समय स्त्रियाँ प्रायः स्वेच्छारिणी होकर सुन्दर वेषभूषा वाले पुरुषों को ही चाहेंगी और पुरुष अन्यायपूर्वक अधिकाधिक धन कमाने में ही योग्यता समझेंगे । निकट सम्बन्धियों की प्रार्थना करने पर भी कोई अपनी थोड़ी सी भी स्वार्थ हानि के लिए तैयार न होगा । छोटी जाति वाले ब्राह्मणों के साथ समानता का दावा करेंगे और गायों का भी दूध देने की निगाह से ही आदर किया जायगा । जिसके पास हाथी, घोड़ा, सवारी आदि बहुमूल्य सामग्री होगी वही राजा या शासक बन जायगा और साधन विहीन मनुष्य सज्जन होकर भी उनका सेवक बन कर ही रहेगा । वैश्य लोग अपने स्वाभाविक कर्म– खेती और व्यापार को त्याग कर शिल्प, कारीगरी आदि के कामों से जीवन निर्वाह करने लगेंगे ।'

'शिव-पुराण' का तो कथारम्भ ही कलियुग वर्णन से हुआ है । जब पुराण-मर्मज्ञ सूतजी प्रयाग में पहुंचे तो वहाँ के दीर्घ-यज्ञ में उपस्थित

ऋषियों-मुनियों ने कलियुग की भयङ्करता का वर्णन करते हुए उनसे उद्धार होने का मार्ग पूछा। उसी समस्या का समाधान करते हुए उन्होंने शिवाराधन का उपदेश दिया था। मुनियों ने कलिकाल में आध्यात्मिक पतन का वर्णन करते हुए कहा था—

प्राप्ते कलियुगे घोरे नराः पुण्यविवर्जिताः।
दुराचाररताः सर्वे सत्यवार्तापराङ्मुखः॥
परापवादनिरताः परद्रव्याभिलाषिणः।
परस्त्रीसक्तमनसः परहिंसापरायणाः॥
देहात्मदृष्टयो मूढा नास्तिकाः पशुबुद्धयः।
मातृपितृकुलद्वेषा स्त्रीदेवाः कामकिंकराः॥
विप्रा लोभग्रहग्रस्ता वेदविक्रयजीविनः।
धनार्जनार्थमभ्यस्त विद्यामदविमोहिताः॥
क्षत्रियाश्च तथा सर्वे स्वधर्मत्याग शीलिनः।
असत्सङ्गाः पापरता व्याभिचारपरायणाः॥
वैश्यासंस्कारहीनास्ते स्वधर्मत्यागशीलिनः।
कुपथाः स्वार्जनरताः तुलाकर्म कुवृत्तयः॥
तद्वच्छूद्राश्च ये केचिद् ब्राह्मणाचार तत्पराः।
उज्ज्वलाकृतयो मूढाः स्वधर्म त्यागशीलिनः॥

'कलियुग में मनुष्य पुण्य-पथ को त्यागकर दुराचार में प्रवृत्त हो रहे हैं और सत्य व्यवहार से दूर हटते जा रहे हैं। वे दूसरों की निन्दा करने में निपुण हैं और इसी टोह में रहते हैं कि दूसरे के धन को किस प्रकार हड़पा जाय। साथ ही परस्त्रीगामी और निरपराध व्यक्तियों की हिंसा करने वाले बन गये हैं। अध्यात्म तत्त्व को भूल कर वे देह को ही आत्मा मानने लगे हैं और इस कारण पशुओं की तरह विवेक रहित आचरण करने लगे हैं। वे स्त्री के वशीभूत होकर माता-पिता से द्वेष-भाव रखते हैं और इस प्रकार विषय भोगों के दास बने हुए हैं। ब्राह्मण

धन के लोभी होकर धर्म को बेचने लग गए हैं। वे धन कमाने की विद्या ही सीखते हैं और उसी विद्या का बड़ा गर्व दिखाते हैं। क्षत्रियों ने भी प्रजा संरक्षण का कर्तव्य त्याग दिया हैं और वे कुसङ्ग में रहने वाले पाप कर्मों में लीन और महाव्यभिचारी हो गए हैं। वैश्यों ने अपने जातीय संस्कारों को त्यागकर बेईमानी का व्यापार अपना लिया है और तोल-नाप में छल करके धन कमाने को ही बड़ा गुण समझ रहे है। शूद्र परिश्रम के कार्यों से विमुख होकर ब्राह्मणों के ढंगों को अपना रहे हैं, वैसी ही वेषभूषा बनाकर लोगों को भ्रम में डालना चाहते हैं।"

इस प्रकार सभी पुराणों ने 'कलियुगीन-समाज' की भ्रष्टता के प्रति घृणा और निन्दा का भाव प्रकट किया है और उसका दोषारोपण मुख्यतया ब्राह्मण-वर्ग पर किया है, क्योंकि वे ही समाज के अगुआ हैं। यह तो प्रत्यक्ष है कि इस गिरी-गुजरी हालत में भी अधिकांश भारतीय जनता उनको पूज्य मानती है। प्राचीन काल में जब भारत उन्नति के उच्च सोपान पर स्थित था और उसे जगद्गुरु की पदवी प्राप्त हुई थी, तो उसका श्रेय यहाँ के विद्वान् और त्यागी, तपस्वी ब्राह्मणों को ही दिया गया था। फिर जब उसका पतन हुआ, उसे अपने दोषों के कारण विधर्मी और विदेशियों की दासता स्वीकार करके अपने मस्तक पर कलंक का टीका लगाना पड़ा तो वह उत्तरदायित्व भी ब्राह्मणों का ही माना गया। वास्तव में भारतीय समाज पर उनका प्रभाव इतना अधिक था कि उन्होंने जब जो कुछ निर्णय किया—जो आदेश दिया जो मार्ग दिखलाया, देश के निवासी बिना किसी प्रकार का विरोध किये भले-बुरे का विचार किए उसी के अनुसार चले। इसीलिए पुराण के लेखकों ने, जो प्रायः सभी ब्राह्मण थे, न्यायरक्षार्थ ब्राह्मणों को ही देश और समाज की दुर्दशा के लिए दोषी ठहराया। इसका एक उद्देश्य यह भी है, कि ब्राह्मण अपनी भूल को समझें, और जनता को फिर से सही रास्ता दिखलाने के लिए तत्पर हों।

ऊपर धर्मशास्त्रों से कलियुग वर्णन के जो उद्धरण दिए गए हैं, उनके अतिरिक्त अन्य सभी पुराणों में इस सम्बन्ध में इसी प्रकार के भाव प्रकट किए गए हैं। पर उनमें कोई विशेषता नहीं, वरन् कई में तो ऐसा जान पड़ता है कि एक दूसरे की नकल करदी गई है। उन सबका सारांश देश-भाषा में गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' में बड़े प्रभावशाली रूप में लिख दिया है। साथ ही वह वर्णन स्वाभाविक भी है, और सामान्य बुद्धि के व्यक्ति भी उसका आशय भली प्रकार समझ लेते हैं। गोस्वामी जी ने उत्तरकाण्ड में काकभुशुण्ड और गरुड़ सम्वाद में किसी प्राचीन कल्प के कलियुग का नामोल्लेख करके उसके दोषों का वर्णन इस प्रकार किया है—

तेहि कलिजुग कोसलपुर जाई। जन्मत भयउँ सूद्र तनु पाई॥
सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नरनारी॥
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुशासन
मारग सोई जा कहुँ जो भावा। पण्डित सोई जो गाल बजावा॥
सोई सयान जो परधन हारी। जो करि दंभ सो बड़ आचारी॥
जाकें नख अरु जटा विसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥
असुभ वेष भूषन धरे, भच्छाभच्छ जे खाहिं॥
तेई जोगी तेई सिद्ध नर, पूज्यते कलियुग माहिं॥
सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव विप्र श्रुति संत बिरोधी॥
गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा॥
ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर, कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस, करहिं बिप्र गुर घात॥

काकभुशुण्डिजी ने कहा—"उस कलियुग में मैंने अयोध्याजी में जन्म लिया था। वह बड़ा ही दारुण-युग था और उस समय समस्त स्त्री, पुरुष भाँति-भाँति के पापों में लिप्त रहने वाले थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय अधर्म पर चलने वाले हो गए थे और कोई शास्त्राज्ञा की तरफ

ध्यान नहीं देता था। सभी मनुष्य मनमाने मार्ग पर चलते थे। जो बहुत बातें बनाता उसी को पण्डित समझा जाता। दूसरों का धन हड़प लेना बड़ी होशियारी की बात मानी जाती थी और जो जितना दम्भ-ढोंग करता वह उतना ही आचरणवान माना जाता। बड़े-बड़े नाखून और विशाल जटायें तपस्वियों के चिन्ह मान लिए गये थे। गन्दा वेष और गन्दा आहार करने वाले योगी और सिद्ध मान लिए जाते थे। अधिकांश व्यक्ति काम और लोभ जैसे दुर्गुणों में ग्रस्त थे और वे सब शास्त्रों तथा महात्माओं की शिक्षाओं का विरोध करने वाले थे। शिष्य गुरु की बातों को सुनते न थे और गुरु शिष्य के आचरणों की तरफ से बेखबर रहते थे। वे गुरु कहलाने वाले शिष्य के धन पर तो अधिकार जमा लेते थे पर उसके अज्ञानान्धकार के दूर करने का प्रयत्न नहीं करते थे। उस युग में सभी लोग ब्रह्मज्ञान, अध्यात्म की बात तो बड़ी-बड़ी करते थे, पर जरा से लोभ के लिए गुरुजनों की हिंसा करने को भी तैयार हो जाते थे।"

पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
तेइ अभेदवादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलियुग कर ॥
नारी मुई गृह सम्पति नासी। मूड़ मुड़ाई होंहि संन्यासी ॥
ते विप्रन सन आपु पुजावहि। उभय लोक निज हाथ नसावहिं ॥
विप्र निरच्छर लोलुप कामी निराचार सठ वृषलो स्वामी ॥
तपसी धनवन्त दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही ॥
नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दण्ड विडम्ब प्रजा नितहीं ॥
कलि बारहिंबार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै ॥

'कलियुगी मनुष्य दुराचारी और कपटी हो गए और सदैव मोह, कलह, ममता आदि में फंसे रहने लगे। तो भी अपने को बड़ा वेदान्त-वादी और ज्ञानी समझते थे। स्त्री के मर जाने और घर की सम्पत्ति के नष्ट हो जाने पर सब जातियों के लोग साधु, संन्यासी बन जाते थे और

ब्राह्मणों से पैर पुजाते थे। उधर ब्राह्मण अनपढ़, लालची और चरित्र-हीन थे। वे नीच जाति की स्त्रियों से सम्बन्ध स्थापित कर लेते थे। कलियुग की एक बड़ी अनोखी बात यह देखने में आई कि तपस्वी कहलाने वाले तो धन सम्पति युक्त दिखलाई पड़ते थे और गृहस्थी दरिद्र थे। राजा लोगों को पाप-पुण्य का कोई ध्यान न था, प्रजा को लूटना-मारना ही उनका काम रह गया था। कलियुग में अकाल तो सदा ही बना रहता था और लोग प्राय: 'हाय अन्न' 'हाय अन्न' कहते हुए ही मरते रहते थे।'

जैसा हम युग-परिवर्तन के सम्बन्ध में एक स्थान पर लिख चुके हैं बुरा और भला समय कभी एक-सा नहीं चलता। अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर दशा के रूप में समाज के उत्थान और पतन का चक्र चलता ही रहता है। यद्यपि सामान्य लोगों के मतानुसार राजा परीक्षित के समय से, जिसे ५००० हजार वर्ष हो चुके हैं, कलियुग ही चल रहा है और दिन पर दिन उसकी भयङ्करता बढ़ती जाती हैं। पर हम जानते हैं कि इसी बीच में महाराज विक्रमादित्य का समय भी आ चुका है जिसे सब कोई 'रामराज्य' मानते हैं और इसी आधार पर उनका सवत् आज तक सर्वत्र माननीय है। उनके कुछ समय बाद राजा भोज का शासन-काल भी 'स्वर्णयुग' के नाम से प्रसिद्ध है। इसीलिए हमको यह मानकर कलियुग के इन वर्णनों को पढ़ना चाहिए कि इन ग्रन्थों के लेखकों ने या उनके परिचितों ने इन वर्णनों से मिलते-जुलते समय देखे थे और उन्हीं अनुभवों के आधार पर उन्होंने कलियुग का ऐसा चित्र खींचा है जो आजकल अधिकाँश में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा है।

पर इन वर्णनों का यह आशय हर्गिज नहीं कि हम इन सब बातों को कलियुग के नाम पर उचित या अनिवार्य मान लें। जहाँ तक हम समझ सकते हैं पुराण-लेखकों ने भी इन वर्णनों को इसी भाव से लिखा है कि पाठकों में इस प्रकार की जघन्य प्रवृत्तियों के प्रति विरक्ति और घृणा का भाव उत्पन्न हो और वे यथाशक्ति इनसे बचने की चेष्टा

करें। 'कलियुगी जीव' कहा जाना किसी के लिए सम्मान की बात नहीं हो सकती और कोई भी सज्जन, सभ्य पुरुष इस प्रकार के सम्बोधन को गर्हित ही मानेगा। चारों युगों का विभाजन शास्त्रकारों ने इसीलिए किया है कि लोग भलाई-बुराई के भेद को समझ जायें और सदैव इस विषय में सावधान रहें कि वे 'युग' की प्रचलित बुराइयों में ग्रस्त न हो जायें। यदि अधिकांश व्यक्ति इस प्रकार की भावना बनाये रहें और समाज के अग्रणी, देश के शासक भी इन बुराइयों को दबाते रहने का ध्यान रखें तो कोई कारण नहीं कि 'महाभारत' में व्यासजी का यह कथन कि 'राजा कालस्य कारणम्' (जैसा राजा होता है वैसा ही युग वर्तने लग जाता है) यथार्थ सिद्ध न हो।

कलियुग की इस दुरवस्था और महान् दोषों का निराकरण करके समाज में सुव्यवस्था और सद्‌गुणों का प्रसार करना ही 'कल्कि अवतार' का उद्देश्य माना गया है। 'अधर्म' का मूलोच्छेद और धर्म' की स्थापना ही पृथ्वी पर अवतरित भगवद् शक्ति का सर्वप्रधान लक्षण बतलाया गया है। इसलिए 'कल्कि' चाहे किसी 'भावनात्मक आन्दोलन' के रूप में प्रकट हों और चाहे किसी व्यक्ति या संस्था, समुदाय आदि के रूप में, यदि वह संसार में से वर्तमान भ्रष्टाचार को मिटाकर न्याय और नीति पर आधारित समाज की रचना में सफलता प्राप्त करके दिखा देंगे, तो यह निश्चय ही 'सबसे बड़ा चमत्कार माना जायगा और भारत की 'भक्ति-प्राण' जनता ही नहीं योरोप अमरीका के साइंस [विज्ञान] का अभिमान रखने वाले भी उसके सम्मुख तुरन्त नतमस्तक होंगे।

सातवाँ अध्याय

कल्कि-पुराण पर एक दृष्टि और उसका तात्पर्य

पुराणों को दो श्रेणियों में विभाजित कर दिया गया है—महा-पुराण और उपपुराण। कुछ लोग इसका आशय बड़े और छोटे पुराणों से लगाते हैं, पर यह विचार ठीक नहीं। जिनको उपपुराण कहा गया है उनमें से कई महापुराणों की अपेक्षा बहुत अधिक बड़े और सर्वाङ्गपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए 'देवी भागवत' का उल्लेख किया जा सकता है, जो 'ब्रह्मपुराण', 'विष्णु पुराण', 'अग्निपुराण', 'वामनपुराण' आदि अनेक पुराणों से दुगुने से भी बड़ा है। यह विविध विषयों से युक्त है, पुराणों के पाँचों लक्षण इसमें विस्तारपूर्वक पाये जाते हैं। 'विष्णु धर्मोत्तर' तथा 'हरिवंश' भी काफी बड़े और विशाल ग्रंथ हैं। लेखक सभी महापुराण और उपपुराणों के 'व्यासजी' माने गए हैं। इसलिए केवल 'उपपुराण' कह देने से किसी को छोटा महत्वहीन नहीं माना जा सकता। जनता में तो 'देवी भागवत' 'हरिवंश' आदि का प्रचार अधिकांश पुराणों की अपेक्षा कहीं अधिक है और उनको 'पुराण' की दृष्टि से अधिक मान्यता प्रदान की गई है।

'कल्किपुराण' भी 'उपपुराणों' की सूची में ही आता है, और इस समय उसका जो संस्करण प्राप्त हो रहा है वह बहुत छोटा भी है। यद्यपि 'कल्किपुराण' में ही उसको छः हजार एक सौ श्लोकों का बतलाया गया है, पर इसका जो संस्करण काशी के 'श्रीभारतधर्म महा-मण्डल' द्वारा स्थापित 'श्री निगमागम पुस्तक भण्डार' द्वारा प्रकाशित किया गया है उसकी श्लोक संख्या डेढ़ हजार के आस-पास ही है। इसका

कारण शायद यह हो कि 'भारतधर्म महामण्डल' के पंडितों ने इसको संक्षिप्त करके 'कल्कि-कथा' सम्बन्धी सामग्री ही इसमें से संगृहीत की हो जैसे कई प्रकाशकों ने 'गरुड़-पुराण' के केवल 'प्रेतखण्ड' को ही पृथक करके उस पुराण के नाम से छाप दिया है। अथवा जैसे 'विष्णुपुराण' तथा 'कूर्मपुराण' आदि आजकल उनमें लिखी हुई श्लोक संख्या से चौथाई और तिहाई की संख्या में ही मिलते हैं, वैसा ही हाल 'कल्कि-पुराण' का भी हो गया हो। जो कुछ भी हो इस समय 'कल्कि पुराण' के नाम से केवल यही पुस्तक बाजार में उपलब्ध है। इसमें तीन अंश और ३५ अध्यायों में 'कल्कि' जन्म, विवाह, म्लेच्छ राजाओं से युद्ध तथा राज्य-शासन आदि का मुख्य रूप से वर्णन किया गया है। यद्यपि यह माना जाता है कि 'कल्कि अवतार' कलियुग के अन्त में होगा, पर इस ग्रन्थ में जितनी भी घटनायें वर्णन की गई हैं वे सब भूतकाल वाचक रूप में ही लिखी गई हैं। अर्थात् उनको इस शैली में लिखा गया है जिससे पढ़ने वाले को यह प्रतीत होता है कि ये अब से पहिले किसी समय हो चुकी हैं। इस सम्बन्ध में पुराणकार ने स्वयं एक स्थान पर स्पष्ट कर दिया है यह लेखन-शैली की ही एक विशेषतः है जो पुराण-ग्रन्थों में प्रायः प्रयोग में लाई जाती है।

'कल्कि पुराण' के आरम्भ में ही 'दशम अवतार' की जो झाँकी दिखाई गई है वह काफी प्रभावपूर्ण है और लेखक की कवित्व-शक्ति परिचायक है—

यद्दोर्दण्ड कराल सर्पकवलज्वालाज्वलद्विग्रहाः।
नेतुः सत्करवालदण्डदलिता भूपाः क्षिति क्षोभकाः॥
शाश्वत सैन्धव वाहनो द्विजजानि कल्कि परात्मा हरि।
परात् सत्ययुगादिकृत स भगवान् धर्म प्रवृत्ति प्रिया॥

अर्थात् 'जिन राजाओं (शासकों) ने पृथ्वी की शान्ति को नष्ट किया है, वे जिसकी भुज-भुजङ्ग विषज्वाल से भस्म होंगे, जिनकी भयङ्कर

खड्ग-धारा से अत्याचारी भूपालों को अच्छी तरह दण्ड दिया जायगा ऐसे ब्राह्मण वंशोत्पन्न श्रेष्ठ अश्वारोही, सत्युग आदि विभिन्न युगों में अवतार धारण करने वाले, धर्म-रक्षक भगवान कल्कि तुम्हारी रक्षा करें।'

क्योंकि 'कल्कि' का प्रादुर्भाव कलियुग के दोषों और भीषणता को मिटाने के लिए होगा, इसलिए 'कल्कि-पुराण' में सबसे पहले कलियुग की विकारयुक्त अवस्था का ही वर्णन किया गया है। पुराणकार ने सर्वप्रथम यह स्पष्ट कर दिया है कि कलियुग की उत्पत्ति 'अधर्म' और 'मिथ्या' के संयोग से होती है। इन दोनों के एकत्र हो जाने से दम्भ, माया, लोभ, निकृति, क्रोध, हिंसा आदि दोषों की उत्पत्ति होती है और ये ही सब आगे चल कर अत्यन्त विकार और भ्रष्टाचार युक्त 'कलियुग' जैसे समय की वृद्धि के कारण बनते हैं। इस प्रकार के दोष जब तक नीच वर्ग के थोड़े-बहुत व्यक्तियों तक सीमित रहते हैं तब तक तो उनका प्रभाव विशेष रूप से अनुभव नहीं होता, पर सब समाज के उच्च और शिक्षित वर्ग—ब्राह्मणों में उनका प्रवेश हो जाता है तो दशा बिगड़ने लग जाती है। उनके उदाहरण को देखकर अधिकांश लोग उसी मार्ग का अनुसरण करने लगते हैं और इससे सर्वत्र अनाचार और दुराचार का बोलबाला हो जाता है, और अन्त में धर्म का लोप होकर अधर्म की ही प्रतिष्ठा होने लगती है—

निःस्वाध्या—स्वधा—स्वाहा—वौषडोंकार वर्जिताः।
देवा. सर्वे निराहाराः ब्रह्माणं शरणं ययुः॥

अर्थात् 'जब यज्ञ, कर्म अथवा परमार्थ, परोपकार, उदारता, सेवा धर्म की भावनायें नष्ट हो जाती है तब समस्त देवगण (सत्प्रवृत्तियाँ) भी क्षीण होने लगती हैं और वे विश्व संचालक शक्ति (ब्रह्म) की शरण ग्रहण करके समाज में फैली दुरवस्था को दूर करने की प्रार्थना करती हैं।'

जब समाज की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो जाती है और 'गीता' के कथनानुसार अधर्म की विजय होकर धर्म पददलित किया जाने लगता है—सज्जन व्यक्ति दुःखी और पीड़ित दिखाई पड़ते हैं तथा दुष्ट, धूर्त व्यक्ति शान के साथ अकड़ने लगते हैं, तो जगत् का नियन्त्रण करने वाली शक्ति का आसन डोल जाता है और संसार में कोई ऐसा व्यक्ति सम्मुख आता है—किसी ऐसी दैवी-शक्ति का अवतरण होता है जो उस दूषित, अस्वाभाविक, प्रकृति विरोधी अवस्था के विरुद्ध खड़ी होती है और उसका जड़मूल से परिवर्तन करके नई दुनिया की रचना करती है।

यही 'कल्किपुराण' में वर्णित कथा का सारांश और मूल उद्देश्य है। यह एक ऐसी घटना या नाटक है जो युग-युग में, जब कभी अधर्म की, अन्याय और अत्याचार की अत्यधिक वृद्धि हो जाती है, तो संसार के रङ्गमंच पर दिखाई दिया करता है। इस घटना को 'कल्किपुराण' के लेखक ने अपने समय की लोकरुचि के अनुकूल शैली और भाषा में, मनोरञ्जन का पुट देकर दर्शाया है। इसलिए एक समझदार पाठक को पुराण पढ़ते हुए इस तथ्य को सदैव ध्यान में रखना चाहिए। यों तो सभी पुराणों में लोकाकर्षण के उद्देश्य से कथा भाग को ही मुख्यता दी जाती है, तो भी वे लोग उनके आधार स्वरूप कुछ वास्तविक तथ्यों को समझाने का प्रयत्न करते हैं। पर 'कल्कि पुराण' के लेखक ने तो समस्त वर्णन यह समझकर किया है कि ये घटनायें सुदूर भविष्य में होंगी। ऐसी दशा में उसका कार्य तो केवल कल्पना द्वारा ही सम्पन्न हो सकता था। यही बात हमको इस पुराण को पढ़ते समय आदि से अन्त तक प्रतीत होती है। इसमें बीच-बीच में माया की प्रबलता ज्ञान, भक्ति की महिमा, उपासना, सत्कर्म आदि के सिद्धान्तों और उपदेशों का समावेश अवश्य कर दिया गया है। रामायण की संक्षिप्त कथा भी इसमें एक जगह आ गई है। पर कल्कि के जन्म से लेकर मृत्यु तक की कथा लेखक को अपनी कल्पना से ही गढ़नी पड़ी है।

कल्कि-कथा का एक बहुत बड़ा भाग सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मा के साथ विवाह होने का है। उसमें लेखक ने एक शुक (तोता) को माध्यम बनाकर जिस प्रकार दोनों तरफ प्रेम का सूत्रपात कराया है और फिर विरह की अवस्था दिखलाकर दोनों का मिलन कराया है, वही भारतीय और अन्य देशों की भी अधिकांश प्रेम-कथाओं की शैली है। इसी प्रकार कल्किजी के युद्धों का वर्णन भी उन्हीं गिने-चुने शब्दों में किया गया है जो अन्य पुराणों में वर्णित सैकड़ों देव-दानवों के युद्धों अथवा राजाओं के प्रसिद्ध संग्रामों में पढ़ने को मिलते हैं। अन्त में अपनी कितनी ही रानियों के साथ उनके विहार और रमण आदि का जो दृश्य दिखलाया गया है वह भी अन्य कवियों के शृङ्गार रस वर्णनों से मिलता-जुलता ही है।

पुराण में कल्कि जी का प्रथम युद्ध बौद्धों के साथ दिखलाया गया है और बाद में कलियुग के साथ होने वाले युद्ध में भी शत्रु पक्ष को बौद्धों तथा यवनों के अनुरूप ही चित्रित किया है। अन्य स्थानों पर भी बौद्धों को मारने, हटाने का संकेत मिलता है। अब तो भारतवर्ष में बौद्धों का अस्तित्त्व एक प्रकार से समाप्त ही हो गया है, और भारतीय धर्म से उनके संघर्ष का वर्णन केवल इतिहास का विषय रह गया है। डेढ़ हजार वर्ष पहले ऐसा समय अवश्य था, जब दोनों दलों में निरन्तर लाग-डाँट बनी रहती थी और उनके रक्त रंजित संग्राम भी हुए थे। इससे यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि यह रचना उसी समय के आस-पास की है जब भारतवर्ष में बौद्ध युग प्रचलित था और उसे नष्ट करने के लिए हिन्दू धर्मानुयायियों का पक्ष भी कमर कसके उठ खड़ा हुआ था। उन घटनाओं को देखकर या सुनकर लेखक के दिमाग में उन्हीं युद्धों का नक्शा घूम रहा था और उन्होंने उन्हीं दृश्यों को कल्कि जी के युद्धों में प्रधानता दी है।

पर अन्य पुराणों के वर्णनानुसार उन्होंने उसका आरम्भ अश्वमेध यज्ञ के लिए किए जाने वाले युद्धों की तरह किया है और उसके लिए धन संग्रहार्थ कल्कि जी को सर्वप्रथम कीकट देश (मगध या वर्तमान समय का बिहार प्रदेश) पर आक्रमण करते दिखलाया गया है। वहाँ के शासक 'जिन' ने एक बार तो युद्ध में उनको भयङ्कर अस्त्राघात द्वारा संज्ञा शून्य कर दिया, पर वह उनको उठाकर नहीं ले जा सका, जैसे लक्ष्मणजी को शक्ति से मार देने पर भी मेघनाथ उनको उठा नहीं सका था। पर अन्त में कल्किजी द्वारा बौद्ध पक्ष सर्वथा नष्ट कर दिया गया।

जब कल्किजी जगन्नाथपुरी पहुँचे तो मुनि-ऋषियों ने उनसे कुथोदरी राक्षसी को मारने का अनुरोध किया जो कुम्भकर्ण के पुत्र निकुम्भ की पुत्री थी। वह इतनी विशालकाय थी कि कल्किजी और उनकी सेना उसकी साँस द्वारा खिचकर उसके पेट में चली गई। पर वे भीतर से उसके पेट को फाड़कर बाहर निकल आये, जिससे कुथोदरी मर गई। ये सब वर्णन पुराणों के देव-दानवों की तरह ही हैं। जिस प्रकार तुलसीदासजी ने कुम्भकर्ण द्वारा लाखों बन्दरों को एक साथ निगल जाने की बात लिखी है उसी प्रकार कल्किजी और उनकी सेना के राक्षसी के पेट में चले जाने की ब त कौतूहल का भाव उत्पन्न करने की दृष्टि से ही मानी जा सकती है। अन्यथा मानवाकार शरीरों में इतना अधिक अन्तर न कभी हुआ और न होगा।

कल्कि और कलियुग का संघर्ष—

कुथोदरी को मारकर कल्कि हरिद्वार आ गये, जहाँ उनकी भेंट मरु और देवापि नामक राजाओं से हुई जो अब तपस्वी जीवन व्यतीत कर रहे थे। मरु ने अपने को रघुवंशी बतलाया और कल्किजी के पूछने पर समस्त राम-कथा का सारांश उनको सुना दिया। उस समय 'सत-

युग' और 'धर्म' भी सन्यासी और ब्राह्मणों के रूप में वहाँ आ गये। ये चारों व्यक्ति कल्किजी के पक्के अनुयायी बनकर म्लेच्छों से युद्ध करते और धर्म-संस्थापन के कार्य में सदैव उनके साथ रहे। कहा गया है कि 'धर्म' के साथ उसके अनुयायी भी थे। उनके नाम थे— ऋत (सत्य) प्रसाद, अभय, सुख, प्रीति, योग, अर्थ, स्मृति, क्षेम, प्रतिश्रय। इनके अतिरिक्त श्रद्धा, मैत्री दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा ह्री आदि भी मूर्तिमान रूप में उसके साथ थे।'

इस उद्धरण में कल्कि की सेना का वर्णन प्रतीकात्मक प्रकट होता है। ऋत, अभय श्रद्धा, मैत्री, दया आदि धर्म के अंग ही हैं और कल्कि (धर्म पक्ष) तथा कलियुग (अधर्मपक्ष) के संघर्ष में उनका कल्कि के साथ रहना स्वाभाविक ही है। जब धर्म कल्किजी के साथ शत्रुओं पर विजय-यात्रा के लिए उद्यत हुआ तो उसके शस्त्रों तथा रथ का जो वर्णन किया गया है वह भी प्रतीकात्मक होना चाहिए। इस विषय में लेखक कहते हैं—

साधु सत्कार ही युद्ध के लिए प्रस्तुत 'धर्म' का वेष हुआ। वेद और ब्रह्म महारथ स्वरूप से प्रकट हुए। अनेक शास्त्रों का अन्वेषण धर्म का धनुष हुआ। वेद के सात स्वर उसके रथ के अश्व, भूदेव सारथि अग्नि आसन हुआ। इस प्रकार धर्मरूप नायक ने अनेक क्रियानुष्ठानों के रूप में बड़े बल से युक्त होकर यात्रा की।' उधर कलियुग के जो सहयोगी कल्कि-सेना से युद्ध करने आये उनमें 'दंभ, लोभ, क्रोध, भय, निरय, आधि-व्याधि, ग्लानि, जरा' आदि के नामों का उल्लेख किया गया है। ये सब अधर्म के अंग ही हैं। इस प्रकार लेखक ने यहाँ पर इस बात का संकेत किया है कि कल्कि और कलियुग का संघर्ष एक प्रकार से भावात्मक माना जा सकता है और सूक्ष्म दृष्टि से विचार न किया जाय तो वह संसार में सदैव होता रहता है।

राजा शशिध्वज की दैवी-भावना-

कलियुग की सेना पर विजय प्राप्त करके कल्किजी भल्लाट-नगर (बाणसे घिरे नगर में पहुंचे। वहाँ का राजा शशिध्वज (चन्द्रमा की ध्वजा वाला अर्थात् शिव) भगवान् का सच्चा भक्त था, पर जब कल्किजी दिग्विजय की भावना से वहाँ पहुँचे तो वह क्षत्रिय-धर्म के अनुसार उनसे युद्ध के लिए तैयार हुआ। उसकी रानी सुशान्ता ने जब पूछा कि आप तो भगवान् के भक्त और सेवक हो उनके ऊपर अस्त्र-प्रहार कैसे करोगे, तो शशिध्वज ने अवतार के रहस्य के सम्बन्ध में एक बड़ी महत्वपूर्ण बात कही—

ब्रह्मता ब्रह्मतेशस्य शरीरित्त्वे शरीरिता।
सेवकस्याभेददृशस्त्वेवं जन्मलयोदया:॥

'अर्थात् 'पूर्ण ब्रह्मभावयुक्त ईश्वर को ब्रह्म कहते हैं। जब वह भौतिक शरीर धारण करके मूर्तिमान हो जाता है तब वह शरीरिता (अवतार) कहा जाता है। जिस सेवक (भक्त) की भक्ति-भावना दूर हो गई है और जिसे अभेद-ज्ञान प्राप्त हो चुका है, उसका जन्म, उदय (वृद्धि) और लय (समाप्ति) भी भगवान् के सदृश ही होता है, अर्थात् वह भगवान् के तुल्य ही बन आता है। साथ ही उसने यह भी कहा कि 'जब भगवान् ने मूर्ति धारण की, तब कामादि माया के अंश स्वरूप शरीरों के गुणों की परम्परा नारायण के शरीर में भी आरोपित हुई। कामादि के आरोपित होने से उनके देह में कामादिक विषय क्यों नहीं आरोपित होंगे ?'

इस प्रकार 'कल्कि पुराण' ने एक बहुत बड़ा सिद्धान्त पाठकों के समक्ष रखा है कि संसार में सबसे बड़ा धर्म कर्तव्य-पालन ही है। इसका महत्व इतना अधिक है कि यदि इसके लिए बड़े से बड़े गुरुजन का भी विरोध करना पड़े, उनके विरुद्ध न्याययुक्त संघर्ष करना पड़े

तो उसमें भी कोई दोष नहीं। शशिध्वज ने कहा कि कल्किजी दैवी पुरुष अवश्य है और हम उनकी पूजा भी करते हैं, पर जब वे एक विजयी योद्धा के रूप में हमारे नगर पर आते हैं तो हमको संग्राम भूमि में उनका मुकाबला भी करना चाहिए। इससे न उनके प्रति कोई शत्रुता का भाव होगा न हमारी श्रद्धा में कोई कमी आवेगी। हम केवल उन की बनाई मर्यादा का पालन करने वाले माने जायेंगे। युद्ध समाप्त होने पर फिर भी वे भगवान् और हम भक्त ही बने रहेंगे। कर्तव्य का प्रश्न आने पर एक बार भगवान् कृष्ण और अर्जुन के बीच भी युद्ध ठन गया था और इसी सिद्धान्त के आधार पर श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को भीष्म जैसे पूजनीय सम्बन्धी से लड़ने की प्रेरणा की थी।

'कल्कि-कथा' के अनुसार जब युद्ध करते हुए कल्किजी शशि-ध्वज के प्रहार से संज्ञाशून्य हो गए तो वह उनको उठाकर अपने महलों में ले गया और पत्नी सहित सेवा सुश्रूषा करके उनको स्वस्थ किया। दोनों पक्षों में मेल हो जाने पर युद्ध बन्द कर दिया गया और शशि-ध्वज ने अपनी पुत्री का पाणिग्रहण कल्किजी के साथ कराके उनको सब प्रकार से सन्तुष्ट और प्रसन्न किया। उन्होंने अन्य राजाओं के प्रश्न करने पर यह भी प्रकट किया कि कृष्णावतार के समय भी सत्राजित के रूप में भगवान् कृष्ण के श्वसुर थे और अपनी कन्या सत्यभामा का विवाह भगवान् के साथ किया। उन्होंने कहा कि मैंने अनेक जन्मों में भगवान् की भक्ति करके ही यह महान् पदवी प्राप्त की है और भक्ति ही मानव जीवन का सार है। इस समय मैं उन्हीं भगवान् को कल्कि जी के रूप में अपने सम्मुख देख रहा हूँ। इसीलिए अपनी कन्या और सर्वस्व को उन्हें समर्पित करके मैं अन्त समय में उसी भक्ति-मार्ग का ही अनुसरण करता हूँ।

भगवान् कल्कि इसके पश्चात् भी अनेक दुष्कर्मरत व्यक्तियों का ध्वंस करके धर्म-संस्थापन का कार्य करते रहे। उन्होंने नागों की

काञ्चीपुरी पर आक्रमण करके चित्रग्रीव गन्धर्व की भार्या सुलोचना का उद्धार किया। वह यक्ष ऋषि के शाप से विष-दृष्टि वाली बन गई थी और जो भी प्राणी उसके सम्मुख आता था वह मृत हो जाता था। कल्कि के दर्शनों के पश्चात् उसने कहा—'अब आपकी अमृतमयी दृष्टि के पड़ने से मेरा वह दोष जाता रहा और मैं भी आपका दर्शन करके धन्य हो गई।'

जब 'कल्कि' समस्त पृथिवी में धर्म की स्थापना करके और विभिन्न भागों का आधिपत्य अपने सहयोगियों को देकर पुनः 'शम्भल' में आकर निवास करने लगे तो उनके माता-पिता, भ्राता, पत्नी आदि सबको अत्यानन्द हुआ। इसके पश्चात् वे अनेक वर्षों तक धर्मराज्य करके अपनी पत्नी और पुत्रों के साथ सुखोपभोग करते रहे। जब यहाँ का कार्य पूरा हो चुका तो स्वर्ग के देवताओं ने उनकी सेवा में उपस्थित होकर बैकुण्ठ चलने की प्रार्थना की। इस पर कल्किजी राज्य-भार अपने पुत्रों को देकर हिमालय को चले गये और गङ्गाजी के तट पर चतुर्भुज रूप धारण करके विष्णु पद में प्रवेश कर गये।

'कल्कि-कथा' का यहीं अन्त होता है। इसका सारांश यही है कि जब अधर्म की प्रबलता होकर धर्म का ह्रास होगा तो भगवान् दुष्ट दमनकारी रूप धारण करके संसार का उद्धार करेंगे। पिछले बुद्धावतार के समय भगवान् ने प्रेम और दया का आश्रय लेकर मानव जाति को सुमार्ग पर लगाने का प्रयत्न किया था। पर उसका प्रभाव थोड़े ही समय तक रहा और लोगों ने फिर स्वार्थपरता का मार्ग अपनाकर समाज को कलह और पतन के गढ़े में ढकेल दिया। इस समय दुनिया के 'कर्णधार' कहलाने वाले जिस प्रकार भौतिक विज्ञान का प्रयोग पारस्परिक नाश के साधन प्रस्तुत करने में कर रहे हैं, उससे मानव जाति का भविष्य अत्यन्त सङ्कटमय और अन्धकारपूर्ण दिखलाई पड़ रहा है।

इस समय केवल पृथ्वी-तल पर ही भीषण ध्वंस की तैयारियाँ नहीं हो रहीं हैं वरन जल, थल और अन्तरिक्ष तीनों में मृत्यु के अभूत-पूर्व यन्त्र इकट्ठे किए जा रहे हैं। अवस्था यहाँ तक गम्भीर हो गई है कि यदि आज किसी एक सत्ताधारी व्यक्ति को सनक सवार हो जाय तो वह किसी भी दिन इस 'बारूद के पर्वत' में चिनगारी छोड़कर समस्त जगत् को एक ज्वालामुखी के रूप में परिणित कर सकता है। उस समय न छोटा बच सकेगा और न बड़ा—न आक्रमण किया जाने वाला शेष रहेगा और न आक्रमण करने वाला,न हारने वाला जीवित रहेगा और न जीतने वाला। इस भीषण-भविष्य से भगवान् ही मानव-जाति की रक्षा कर सकते हैं। इसलिए किसी भी रूप में भगवत्—शक्ति का प्रकट होना आवश्यक है। चाहे प्रेम से और चाहे दण्ड से वे ही इस संसार की रक्षा कर सकते हैं। अगर इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम 'कल्कि अवतार' की कल्पना करें तो इसमें कोई अनुचित बात नहीं है। 'कल्कि' शब्द नवीन और उत्कृष्ट मानव-सभ्यता का प्रतीक माना जा सकता है।

'कल्कि' के अनेक रूप—

'कल्कि' कहाँ होंगे, कब होंगे और किस रूप में होंगे ? इसका निर्णय विचारशील लोग स्वयं कर सकते हैं। ऐसे संक्रान्ति-काल में दैवी शक्ति का प्रकट होना अनिवार्य है, इतना ही ही जानना हमारे लिए पर्याप्त हैं। वह शक्ति कब, कहाँ और कैसे सांसारिक मनुष्यों को अपना परिचय देगी ? यह एक गौण प्रश्न है और इस विवाद को उठाना विशेष महत्व की बात नहीं। गुलाब का फूल किसी भी क्यारी में खिले वह बगीचे को सुरभित बनायेगा ही, उसकी सुगन्ध दूर-दूर के लोगों को कुछ लाभ पहुंचायेगी ही।

तो भी हमारे अनेक भाई कौतूहल पूर्वक यह पूछते ही रहते हैं कि 'अगामी अवतार' कब तक प्रकट हो जायगा ? वह किस भूभाग को सुशोभित करेगा ? हमारे सनातन धर्मी भाई तो परम्परागत बातों का

अधिक महत्व मानकर उत्तरप्रदेश के 'सम्भल' नामक कस्बे को 'भगवान् कल्कि' का जन्म-स्थान मान रहे हैं और वहाँ बहुत वर्षों से उनका एक मन्दिर भी बना रखा है। 'थियोसोफिकल सोसाइटी' की संस्थापिका मैडम ब्लैवटस्की ने अपनी 'सीक्रेट डाक्टरिन' पुस्तक में 'शंभल' का पता चीन स्थित गोबी के रेगिस्तान में बतलाया है, जहाँ कोई मानव नहीं पहुँच सकता। 'सतयुग' मासिक पत्र (नवम्बर १६४०) के एक लेखक श्री भारद्वाज रघुनाथ ने उड़ीसा के सिद्धयोगी अच्युतानन्द दास रचित 'मालिका' ग्रन्थ के आधार पर, जो इस समय भी वहाँ के मन्दिरों में ताड़पत्र पर लिखा मिलता है, यह बतलाया था कि 'शंभल पुरी' उड़ीसा में है और वहीं पर 'कल्कि अवतार' होगा। इसके लिए उन्होंने 'मालिका' का एक उद्धारण दिया था जो उड़िया भाषा में है—

जाण ग्रोसुक नदी याउत्ति भेदि।
अपुना गाई चीर नाम ता दुधि।
भक्तङ्क पेण्ट
गिरि उपरे देख उदय वट।
झगडे नदी आसे उजाणि फेरी।
नदीर उत्तर कु शंभल पुरी।
पद्म पोखरी
पोखरी पश्चिम कु लिङ्ग बिहारी ॥

'इस पद्म के अनुसार इस समय भी उड़ीसा में 'दुधि' नाम की नदी मौजूद है। उदयगिरि नाम का पर्वत भी है और बिल्कुल पास ही एक वट वृक्ष है। इस स्थान से थोड़ी दूर उत्तर की तरफ शभलपुरी (वर्तमान नाम शारंगपुर) है। इसके पास ही एक शिव-मन्दिर में 'लिंगविहारी' विराजमान हैं। दुधि नदी शारंगपुर के दक्षिण और पश्चिम की तरफ बहती है और उसने 'सम्भल' को दो तरफ से घेर रखा है।

हमने यह लेख आज से २८ वर्ष पहले 'सतयुग' में प्रकाशित किया था, इस तरफ ज्यादा ध्यान इसलिए नहीं दिया था कि अनेक लोग इसी प्रकार अपने-अपने प्रदेशों को भावी अवतार की लीला भूमि बतलाते हैं। पर अब कल्कि पुराण' की 'श्रीभारतधर्म महामण्डल' द्वारा प्रकाशित तथा काशी के पं० दामोदर शास्त्री द्वारा सम्पादित और सन् १९०७ में प्रकाशित पुस्तक का अवलोकन करते समय हमको यह देखकर कुछ आश्चर्य हुआ कि उसमें भी उड़ीसा का जिक्र आया है। जैसा कि इस पुराण के कथा-भाग में वर्णित है श्री कल्कि भगवान् महेन्द्र पर्वत पर परशुरामजी पास वेदाध्ययन और शस्त्र विद्या की शिक्षा प्राप्त करने गए थे।' यह महेन्द्र पर्वत कहाँ है, इस सम्बन्ध में उक्त पुस्तक में यह फुट नोट दिया गया है—

"पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ जी) में ऋषिकुल्या नाम की नदी हैं। यह गोन्दवन देश की पर्वतमाला से उत्पन्न हुई है। इसी स्थान में 'महेन्द्रमाली नाम से एक पर्वत' प्रख्यात है। यही महेन्द्र पर्वत है। यह महेन्द्र पर्वत माला उड़ीसा के उत्तर गंजाम जिले से गोन्दवन तक फैली हुई है। भारतवर्ष के सात कुलाचलों में से महेन्द्र पर्वत भी एक है।"

इससे विदित होता है कि जिन लोगों ने उड़ीसा स्थित 'शंभल' को कल्कि का स्थान माना है उनके पास वैसा अनुमान करने का कोई कारण था। पर अन्य स्थानों वाले भी अपनी बात के लिये अन्य प्रकार के प्रमाण देते हैं। अभी बङ्गाल के स्वामी जगदीश्वरानन्द ने 'Kalki Comes in 1985' (कल्कि अवतार सन् १९८५ में होगा) नाम की पांच सौ पृष्ठ की अंगरेजी पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि "हिन्दु शास्त्रों में उल्लिखित दस अवतारों में से अब तक शेष रहे एक मात्र अवतार 'कल्कि', बीस वर्ष के बाद बङ्गाब्द १३९२ वैशाख शुक्ल द्वादशी (सन् १९८५ ईसवी के प्रथमार्ध)

को मथुरा के एक ब्राह्मण वंश में अवतीर्ण होंगे ।" यद्यपि उन्होंने कल्कि के जन्म स्थान का श्रेय शंभल के बजाय मथुरा को प्रदान किया है, पर उनके समस्त सहयोगी और सगे सम्बन्धी अधिकांश में बङ्गाल के ही बतलाये हैं।

कुछ समय पूर्व हमने किसी मासिक पत्र के एक लेख में यह भी पढ़ा था कि 'शंभल' वास्तव में ईरान के किसी प्रदेश में अवस्थित है, और 'कल्कि अवतार' वहीं से सम्बन्धित है। इस प्रकार विभिन्न सम्प्रदायों और विचारों के व्यक्ति 'शंभल' के विषय में विभिन्न मत प्रकट कर चुके हैं।

यही बात उनके अवतरण के सम्बन्ध में है। प्राचीन परिपाटी के पण्डित तो उनके आविर्भाव का समय कलियुग के अन्त में मानते हैं जिसमें अभी लाखों वर्ष शेष हैं। पर वर्तमान समय के अवतारवादी, जो कलियुग को १२०० वर्ष से अधिक का नहीं मानते, कल्कि अवतार का समय बिलकुल निकट बतलाते हैं। वैसा हमने ऊपर लिखा है।

बङ्गाली स्वामी जी ने उनकी जन्मतिथि सन् १९८५ में घोषित कर दी है। अमरीका की सन्त महिला जीन डिक्सन ने बतलाया है कि "५ फरवरी १९६५ को एक ऐसे बालक का जन्म हो चुका है जो संसार का नया कायाकल्प करेगा। सम्प्रदायों की संकीर्णता को वह मिटा देगा और एक सार्वभौम विश्वधर्म की स्थापना करेगा। सन् १९८० में होने वाले विश्व युद्ध के पश्चात् वह बालक इतना शक्तिशाली हो जायगा कि संसार भर की सद्भावना उसे प्राप्त होगी और सब लोग उसके निर्देशों का पालन करेंगे। सन् १९९९ में इस बालक की प्रतिभा पूर्ण रूप से निखरेगी और उसके हाथों नये युग की आधारशिला रखी जायगी।"

अन्य अवतारवादी सज्जन भी, जिनमें भारतवासी और विदेशी दोनों ही प्रकार के व्यक्ति हैं, 'अवतार' के प्रकट होने की निकट

भविष्य में ही कल्पना कर रहे हैं। हमारा अनुमान इस विषय में इतना ही है कि वर्तमान घोर अव्यवस्था और विश्व का नाश करने वाले महायुद्ध की प्रतिदिन बढ़ती हुई संभावना को देखते हुये किसी रूप में 'दैवी शक्ति' का हस्तक्षेप अनिवार्य है। इस विश्व रक्षा के कार्य-क्रम का प्रत्यक्ष संचालक कोई भी हो, सर्व साधारण उसे "जगत उद्धारक" ही मानेंगे।

उसे 'कल्कि', 'ईसा', 'मेंहदी', मैत्रेय', (बौद्ध) या यहूदी, पारसी आदि मजहब वालों की मान्यता के अनुसार किसी नाम से पुकारा जाय। हमारा कोई आग्रह नहीं। और न हम उसके प्राकट्य की कोई तिथि नियत करने को उचित कह सकते हैं। 'दैवी' घटनाओं का निश्चयात्मक ज्ञान मनुष्य को नहीं हो सकता। वह उस सम्बन्ध में कुछ अनुमान ही कर सकता है। हमारे अनुमान का आधार यही है है कि जब-जब संसार पर कोई ऐसा घोर संकट आया है, कि मानव-सभ्यता का अन्त होने का भय उपस्थित हो जाय, तभी कोई न कोई दैवी शक्ति किसी व्यक्ति या घटना अथवा विचार के रूप में सम्मुख आई है और उससे मानवता की रक्षा हो सकी है। गीता में भगवान कृष्ण के आश्वासन का अर्थ भी यही है कि वे सत्य और न्याय की पूर्ण रूप से हत्या नहीं होने दे सकते और समय रहते उसकी रक्षार्थ अवश्य प्रकट होते हैं। इसलिये आगामी दस-बीस-तीस वर्षों में ऐसी किसी शक्ति के आविर्भाव पर विश्वास रखना अनुचित नहीं कहा जा सकता।

'कल्कि पुराण' पर यदि घटनाओं की दृष्टि से विचार किया जाय तो वे सब प्राचीन-काल के वातावरण के अनुसार ही लिखी गई कथाएं हैं और आज उनके उसी रूप में घटित होने की कोई आशा नहीं की जा सकती। इसमें हर जगह बाण, तलवार, गदा आदि से युद्ध होने का वर्णन किया गया है जिनकी इस रायफल, मशीनगन, बम और

अणु-अस्त्रों के युग में कोई संभावना नहीं। इसी प्रकार विवाह में दहेज स्वरूप लाखों रथ घोड़े, हाथी और युवती स्त्रियों के देने का जो वर्णन किया गया है, वह भी वर्तमान वातावरण में निरर्थक है। आज-कल राजाओं को भी दहेज में मोटरकार ही दी जाती है और हाथी की अपेक्षा उसका मूल्य भी अधिक होता है। 'बौद्धों' से युद्ध की भी अब कोई सम्भावना नहीं रही। भारतवर्ष के कीकट (मगध) आदि किसी प्रदेश में अब बौद्ध नहीं पाये जाते। यदि चीन वालों से संघर्ष होने की कल्पना करें तो कम्यूनिष्टों ने वहाँ भी बौद्ध धर्म को मिटा दिया है और जो थोड़े बहुत बौद्ध धर्म के अनुयायी बच भी रहे होंगे, तो उनका देश के शासन में कोई हाथ नहीं। लंका, बर्मा, श्याम, कोरिया आदि देशों में थोड़े बहुत बौद्ध हैं, पर वे भारतवर्ष से मिल कर ही रहते हैं। अल्प जन-संख्या वाले होने के कारण भारत से उनके युद्ध करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

कल्कि जी के अनेक विवाहों का होना, जङ्गलों और पर्वतों में जाकर बहुसंख्यक स्त्रियों के साथ बिहार करना, छोटे-बड़े यज्ञ-समारोह रचाना, किसी पहाड़ी आश्रम जाकर वेद-पुराणों की शिक्षा प्राप्त करना आदि ऐसी बातें है जो आज-कल व्यवहार में से प्राय: उठ गई हैं और किसी सम्माननीय व्यक्ति के सम्बन्ध में उनकी सम्भावना भी स्वीकार नहीं की जा सकती। इस समय जो व्यक्ति संसार का मार्ग दर्शक बनेगा और बड़े-बड़े राष्ट्रों का प्रभावित करके नये-युग की स्थापना में समर्थ होगा वह निश्चय ही आधुनिक ज्ञान-विज्ञान में पारंगत होगा और उसका रहन-सहन आधुनिक सभ्यता तथा शिष्टता के नियमों के पूर्ण अनुकूल ही होगा। ऐसे व्यक्ति के लिये यह कल्पना करना कि वह हजार-पाँच सौ वर्ष पुराने ढङ्ग के वस्त्र पहिनेगा और उसी समय का-सा रहन-सहन रखेगा, एक मनोरंजक कल्पना ही हो सकती है।

इस समय जो भी 'अवतार' या संसार का 'मार्गदर्शक' आयेगा वह ऊपर से देखने और व्यवहार में एक आधुनिक युग के सज्जन और

सभ्य पुरुष की तरह ही होगा। अगर 'अवतार' का कार्य-क्षेत्र अकेला भारतवर्ष ही होता तब भी थोड़ी देर के लिए इस सम्भावना पर विचार किया जा सकता था, पर इस समय जो कोई भी मानवता के उद्धार और उत्थान का प्रयत्न आरम्भ करेगा उसे समस्त संसार के लोगों से सम्बन्धित रहना पड़ेगा और सब देश वालों के साथ आत्मीयता का व्यवहार करके उनका विश्वास प्राप्त करना होगा। ऐसा व्यक्ति यदि किसी एक देश की प्राचीन सभ्यता और रहन-सहन के भीतर आबद्ध हुआ तो अन्य देश तथा धर्म वालों को कदापि प्रभावित नहीं कर सकता।

इन सब बातों पर विचार करने से हम स्वभावतः इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'कल्कि पुराण' का मुख्य उद्देश्य कलियुग की दूषित भावना की बुराइयाँ दिखलाकर सर्व साधारण को उसके कुप्रभाव से बचाना है। यदि मनुष्यों के हृदय में यह विचार जड़ जमा ले कि कलियुगी व्यवहार वास्तव में अत्यन्त गर्हित और घृणित हैं और भगवान भी उसके विरुद्ध हैं, तो वे उससे दूर रहने की चेष्टा कर सकते हैं। पाप से बचने और पुण्य की तरफ आकर्षित होने का उपदेश यों तो सभी सद्ग्रन्थ और साधु देते हैं, पर सामान्य पाठकों पर उसका प्रभाव कम पड़ता है। पर जब उसको कथा रूप में कहा जाता है और पाप का कुपरिणाम तथा पुण्य का लाभ दायक परिणाम अन्य लोगों के उदाहरण के साथ वर्णन किये जाते हैं, तो वह बात उनकी समझ में जल्दी आ जाती है। इसलिए यदि कल्कि पुराण के लेखक ने "कलियुग तथा कल्कि" की कथा को मनोरंजक और प्रभाव शाली ढङ्ग से वर्णन किया, और उसे पुराने पुराणों की शैली पर ऐसे ढङ्ग से लिखा है कि जिससे धार्मिक तथा अन्ध-विश्वासी दोनों का ध्यान उधर आकर्षित हो और वे उसे श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखें, तो इसके लिये हम उसे किसी तरह दोष नहीं दे सकते। हमारा कर्तव्य है कि हम कथा के साथ ही उसके मूल उद्देश्य का भी ध्यान रखें, और जहाँ तक सम्भव हो धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझ कर तदनुसार व्यवहार करें।

आठवां अध्याय

कल्कि पुराण और भक्ति-मार्ग

'कल्कि-पुराण' में भगवत्-प्राप्ति का मुख्य उपाय भक्ति ही है और राजा शशिध्वज के उपाख्यान द्वारा उसकी श्रेष्ठता सिद्ध की है। उसमें बतलाया गया है कि मनुष्य अपने को भगवान का सेवक समझ कर तदनुसार व्यवहार करने से ही भक्ति के उच्च आदर्श को प्राप्त कर सकता है। यों तो शास्त्रों में ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है और 'गीता' में भी 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' कह कर ज्ञान को संसार की सर्वोच्च पदवी प्रदान कर दी है। पर यह प्रश्न यह होता है कि क्या सामान्य व्यक्ति ब्रह्मज्ञान को हृदयंगम कर सकते हैं ? सभी विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि ब्रह्म-ज्ञान अथवा आत्मज्ञान का समझ सकना पंडितों और शास्त्र-विशारदों के लिए भी अति कठिन है। गीताकार ने ही इस बात को बहुत स्पष्ट रूप से कह दिया है—

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैन मन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव
कश्चित् ॥२-२९॥

"कोई तो आश्चर्य पूर्वक इसकी ओर देखता है, कोई आश्चर्य रूप से इसका वर्णन करता है, कोई महान आश्चर्य की तरह इसे सुनता है। पर इस तरह देखकर, वर्णन करके और सुनकर भी कोई इसके तत्त्व को नहीं समझ पाता।"

उपनिषदों में भी इस सम्बन्ध में एक कथा है कि वाष्कलि ऋषि ने एक ब्रह्मज्ञानी नृपति से पूछा—"महाराज ! मुझे ब्रह्म की व्याख्या

बतलाइये।' यह बात सुनकर राजा कुछ नहीं बोले। बाष्कलि ने फिर यही प्रश्न किया और राजा चुप ही रहे। जब चार-पांच बार ऐसा ही हुआ तो उन्होंने वाष्कलि से कहा—"मैं तो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर बराबर दे रहा हूं, परन्तु वह तुम्हारी समझ में ही नहीं आता तो मैं क्या करूँ? ब्रह्म स्वरूप किसी तरह समझाया नहीं जा सकता, इसलिये चुप रहना ही सच्चा ब्रह्म लक्षण है।"

जब ज्ञान-मार्ग में इतनी कठिनाई है और निराकार अथवा अव्यक्त ब्रह्म को समझ सकना विरले ही लोगों के लिए संभव है, तब सामान्य जन उसे किस प्रकार ग्रहण कर सकते हैं और कैसे उस मार्ग का अनुसरण करके भगवान को प्राप्त कर सकते हैं? अव्यक्त अथवा निर्गुण ब्रह्म की उपासना का विवेचन करते हुए लो० तिलक ने लिखा है :—

'उपनिषदों में जिस श्रेष्ठ ब्रह्म स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है, वह इन्द्रीयातीत, अव्यक्त, अनन्त, निर्गुण और "एकमेवाद्वितीयं' है, इसलिए उपासना का आरम्भ उस रूप से नहीं हो सकता। जब श्रेष्ठ ब्रह्म स्वरूप का अनुभव होता है तब मन अलग नहीं रहता, वरन् उपास्य और उपासक, ज्ञाता और ज्ञेय दोनों एक हो जाते हैं। निर्गुण ब्रह्म अन्तिम साध्य वस्तु है, साधन नहीं और जब तक किसी न किसी साधन से निर्गुण ब्रह्म के साथ एक रूप होने की पात्रता (योग्यता) मन को प्राप्त न हो जाय, तब तक श्रेष्ठ ब्रह्म स्वरूप का साक्षात्कार नहीं हो सकता। अतएव साधक की दृष्टि से जिसे ब्रह्म-स्वीकार किया जाता है वह दूसरी श्रेणी का अर्थात् सगुण होता है।

मनुष्य के मन की स्वाभाविक रचना ऐसी है कि जो वस्तु अप्रत्यक्ष होती है अर्थात् जिसका कोई विशेष रूप रङ्ग आदि नहीं, उसका हमेशा चिन्तन कर सकना इसके लिए दुस्साध्य होता है। मन को स्वभाव से ही चंचल माना गया है, इसलिये जब तक मन के सामने

आधार के लिये कोई इन्द्रिय गोचर स्थिर वस्तु न हो, तब तक यह मन बार-बार भूल जाया करता है कि उसका लक्ष्य क्या है? जिस प्रकार 'रेखागणित' की शिक्षा देते समय यह जानते हुए भी कि रेखा की कोई चौड़ाई नहीं होती, वह वास्तव में अप्रत्यक्ष या अव्यक्त ही है, उसका एक छोटा-सा नमूना स्लेट या काले तख्ते पर व्यक्त करके दिखाना ही पडता है। इसी प्रकार ऐसे परमेश्वर पर प्रेम करने के लिये जो सर्वकर्त्ता, सर्व शक्तिमान होते हुए भी निराकार और अव्यक्त है, मन के सामने किसी प्रत्यक्ष (नाम रूपात्मक) वस्तु के रहे बिना साधारण मनुष्यों का नाम चल नहीं सकता।

अब चाहे इसे कोई मनुष्य के मन का स्वभाव कहें या दोष, जब तक देहधारी मनुष्य अपने मन के स्वभाव को अलग नहीं कर सकता, तब तक उपासना के लिए उसे भगवान के सगुण स्वरूप को अपनाना ही पड़ेगा। यही भक्ति-मार्ग है।

इसी सिद्धान्त का समर्थन अनेक उपनिषदों में और गीता में भी यह कह कर किया गया है:—

क्लेशाऽधिकतरस्तेषां अव्यक्तासक्त चेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुखं देहवद्भिरवाप्यते ॥१२-५॥

अर्थात्—"जो साधक निराकार ब्रह्म में चित्त लगाकर उपासना करते हैं उनको बहुत क्लेश अथवा परिश्रम उठाना पड़ता है, क्योंकि देहाभिमानी (स्थूल शरीर धारी) मनुष्यों द्वारा अव्यक्त विषयक भावना बड़ी कठिनाई से प्राप्त की जाती है।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञान-मार्ग और भक्ति-मार्ग में किसी प्रकार की प्रतिद्वन्दिता की कल्पना करना हमारा अज्ञान ही है। ये दोनों मार्ग अनादि हैं। इनकी साधन-प्रणाली भिन्न अवश्य है, पर दोनों के द्वारा मनुष्य एक ही लक्ष्य अर्थात् परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त

करता है। अब इसमें यह विवाद उठाना कि "जब परमात्मा का वास्तविक स्वरूप निर्गुण या अव्यक्त है, तो ज्ञान-मार्ग ही अधिक ऊँचा है" व्यर्थ है। वास्तव में महर्षियों ने दोनों मार्गों का प्रतिपादन मनुष्यों की भिन्न रुचि और योग्यता के आधार पर किया है। जैसा हम प्रतिदिन अनुभव करते हैं। अनेक मनुष्य 'बुद्धि-प्रधान' और अनेक 'श्रद्धा-प्रधान' देखने में आते हैं। बुद्धिवादी लोग स्वभावतः ज्ञान-मार्ग की ओर जाते हैं और निर्गुण, निराकार ब्रह्म की उपासना द्वारा मुक्ति प्राप्त का प्रयत्न करते हैं। श्रद्धावान सगुण, साकार भगवान की भक्ति द्वारा उसी मुक्ति या सायुज्य स्थिति तक पहुंचने का उद्योग करते हैं। इसी तथ्य को कल्कि पुराण' में नारद जी द्वारा इस प्रकार कहलाया गया है—

"नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा, त्वचा—इन पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और मन को एक कर परम-ज्ञान का आश्रय ले गुरु के चरणों में आत्मसमर्पण करना चाहिए। जब गुरु प्रसन्न, संतुष्ट रहते हैं तो स्वयं भगवान भी कृपालु हो जाते हैं। बुद्धिमान शिष्य को चाहिये कि प्रणवाग्नि के बीच 'ॐ' को अनन्य हृदय से स्मरण करते हुए सावधान होकर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय आदि एवं स्नानीय वस्त्र-भूषणों से युक्त कर एकाग्र चित्त से नारायण जी के चरणकमलों की पूजा करे। अनन्तर हृदय-कमल के बीच विराजमान रमणीय सर्वाङ्ग सुन्दर भगवान नारायण का चिन्तन करें। इस प्रकार ध्यान करके मन, वचन, बुद्धि एवं इन्द्रियों सहित आत्मा को नारायण में समर्पण करें। देव मूर्ति को भगवान विष्णु का अनन्त रूप मान जिन नामों को जानता हो उनका स्मरण करें। क्योंकि नाम के सिवाय और कोई मार्ग लक्ष्य प्राप्ति का नहीं हैं।

भगवान कृष्ण सेव्य हैं, मैं सेवक हूं और समस्त जीव भगवान की ही मूर्ति (अंश) है—यह भेद-बुद्धि ज्ञान की दृष्टि से अविद्याजन्य

हैं, पर भक्ति मार्ग में सेव्य-सेवक रूप में द्वैत-भाव का उदय हो ही जाता है। भक्त को उचित है कि वह सर्वत्र एकमात्र नारायण को ही देखें। भक्त विष्णु भगवान को स्मरण करता है, उनके नाम का गान करता है, एवं उनके ही निमित्त समस्त कर्म किया करता है। यह सब वह इसलिए करता है कि इससे आनन्द की प्राप्ति होती है। जो नित्या प्रकृति है, जो ब्रह्म सम्पति है वही भक्ति के रूप में प्रकाशित हुई है। यह भक्ति ही विष्णु, ब्रह्मा और शिव स्वरूपा है।"

'कल्कि पुराणकार' ने भक्ति की जो व्याख्या की है उसमें एक सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने भक्ति का रूप केवल पूजा ही नहीं बतलाया है, वरन् इस भावना पर जोर दिया है कि 'भक्त अपने को भगवान का सेवक माने और सब प्राणियों को भगवान की मूर्ति समझे।' वास्तव में वर्तमान समय में भक्तिमार्ग ने जो स्वरूप ग्रहण कर लिया है, उसमें एक स्वतन्त्र विचारक को सिवाय 'नाचने-गाने और पूजा की घण्टी हिलाने' के अतिरिक्त कोई लोकोपयोगी अथवा कल्याणकारी भावना दृष्टि गोचर नहीं होती।

इसी कारण इस सम्बन्ध में प्रायः यह आक्षेप किया जाता है कि भक्तिमार्ग ने लोगों को आलसी और विशेष स्वार्थी बना दिया है। वे लोग सांसारिक संघर्ष और उद्योग से प्रायः यह कर किनाराकशी कर जाते हैं कि "भगवान की जैसी इच्छा होगी वही होगा।" अथवा हमने तो भगवान की शरण ग्रहण करली है, वे ही हमारा बेड़ा पार लगावेंगे।" निस्सन्देह इस प्रकार के उद्गार अकर्मण्यता की वृद्धि करने वाले होते हैं। भारतवर्ष में आज लाखों साधु, वैरागी और पण्डा पुजारी आदि इसी 'सिद्धान्त' की आड़ में निकम्मा जीवन बिता रहे हैं। पर ऊपर के उद्धरण में पुराणकार कहते हैं कि भक्त के लिए केवल पाषाण, धातु या काष्ठ की मूर्ति की पूजा-अर्चा कर लेना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् उसे समझना चाहिये कि भगवान तो घट-घट में समाये

हुए हैं और सब प्राणी एक प्रकार से उनकी ही मूर्ति हैं। इस लिये इन प्राणियों में से किसी की भी सेवा-सहायता करना भगवान की सबसे श्रेष्ठ पूजा और भक्ति है।

हिन्दू धर्म के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय अपने पृथक-पृथक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते रहते हैं, जिनमें से कोई अद्वैत, कोई द्वैत, कोई त्रैत, कोई विशिष्टाद्वैत और कोई शुद्धाद्वैत कहलाता है। इन सब सिद्धान्तों की बारीकियों को समझना सामान्य लोगों का काम नहीं है। वे तो परम्परा पर चलते हुए भगवान की मूर्ति या किसी अन्य प्रतीक के सम्मुख विनीत भाव से अपना मस्तक झुका देना, कुछ भेट चढ़ा देना या पूजा आरती कर देना ही अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। वे नहीं जानते कि उनकी यह उपासना-प्रणाली धर्मशास्त्रों के अनुसार भी सबसे निम्न कोटि में आती है। 'योगवासिष्ठ' में एक स्थान पर कहा गया है—

अक्षरावगमलब्धये यथा स्थूलवर्तुलदृषत्परिग्रहः।
शुद्धबुद्धपरिलब्धये तथा दारुमृण्मयशिलामयार्चनम्॥

अर्थात्—"अक्षर-ज्ञान कराने के लिये जिस प्रकार छोटे बच्चों को छोटे-छोटे कङ्कड़, रेत आदि रख कर आकार दिखलाना पड़ता है, उसी प्रकार (नित्य) शुद्ध-बुद्ध परब्रह्म का ज्ञान कराने के लिए लकड़ी, मिट्टी या पत्थर की मूर्ति को स्वीकार किया जाता है।"

इस प्रकार इस समय लोग भक्ति-मार्ग के इस वास्तविक अर्थ को भूल गये हैं कि "भगवान प्रत्येक प्राणी में समाया हुआ है, इसलिए प्राणियों की सेवा करना ही भक्ति का सबसे बड़ा लक्षण है।" गुजरात के महान भक्त नरसी मेहता के एक भजन की प्रथम पंक्ति में ही कहा गया है कि "वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाणे रे।" 'सच्चा विष्णु भक्त (वैष्णव) तो वही है जो पराये दुःख को अनुभव

करके उसको यथाशक्ति मिटाने में सहायक बनता है ।' केवल जिह्वा से भगवान के नाम की रट लगाये रहना अथवा घण्टा-घड़ियाल बजा कर दिन में दो-चार बार आरती कर देना तब तक सार्थक नहीं माना सकता जब तक वास्तविक दीन-दुःखी लोगों की दशा सुधारने के लिए भी कुछ प्रयत्न न किया जाय ।

हिन्दुओं में ही नहीं मुसलमान धर्म के ज्ञाताओं का भी ऐसा ही मत है । इसका प्रतिपादन करने के लिए एक कथा प्रसिद्ध है कि "अबूबिन अदहम नाम के सन्त दीन-दुखियों की सेवा में सदैव संलग्न रहते थे, चाहे ईश-प्रार्थना का समय भी निकल जाय । एक दिन आधी रात के समय चाँदनी में कुछ लिखता हुआ एक 'फरिश्ता' उनको दिखाई पड़ा । सन्त ने उससे कि तुम क्या लिख रहे हो ? उत्तर मिला कि इस पुस्तक में ईश्वर भक्तों की सूची लिखी जा रही है । सन्त पूछा कि जरा महरबानी करके यह देख दीजिये कि मेरा नाम भी उसमें है या नहीं ? फरिश्ते ने तमाम किताब देख कर कहा—आपका नाम तो इसमें नहीं है । सन्त चुप हो गये और फरिश्ता भी चला गया । दूसरे दिन वह फिर उसी स्थान पर दिखाई पड़ा और उसके हाथ में दूसरी छोटी किताब थी । पूछने पर मालूम हुआ कि इसमें उन व्यक्तियों की नामावली है जिनको स्वयं ईश्वर प्यार करते हैं । यह कह कर उसने किताब को खोला तो सबसे प्रथम अबूबिन अदहम का ही नाम लिखा था ।"

यह कथा ईश्वर-भक्ति के सच्चे स्वरूप को बहुत स्पष्ट शब्दों में प्रकट करती है । जो लोग ईश्वर से प्रेम रखते हैं, उसकी पूजा, उपासना प्रार्थना में समय व्यतीत करते हैं और इस तरह अनेक बुरे कामों से बचे रहते हैं, वे अवश्य प्रशंसनीय है । पर जिन भक्तों को ईश्वर भी प्यार करता है, जिनका महत्व वह भी स्वीकार करता ने वही माने जा सकते हैं जो पीड़ित मानवता की सेवा के लिए हृदय से निःस्वार्थ कार्य

करते हैं, बिना किसी प्रकार की स्वार्थ-भावना के समाज की प्रगति, उत्थान के लिए अपनी योग्यता और शक्ति को खर्च करते हैं। ईश्वर-भक्ति का सर्वोपरि लक्षण यह है कि मनुष्य अपनी शक्ति और साधनों का एक अंश अवश्य ही दूसरों की भलाई के लिए-समाज के उपकारार्थ खर्च करे।

भक्ति का स्वरूप और उसकी प्राप्ति--

भक्ति का यह परोपकार युक्त और प्रेममय रूप ही सर्वोत्कृष्ट और मनुष्य को देवता बना देने वाला है। जब मनुष्य अपने स्वार्थ को त्याग कर दूसरों के हित की कामना करता है, उनका कष्ट मिटाने के लिये स्वयं श्रम करना, कष्ट सहना स्वीकार करता है, और इसके उप-लक्ष्य में किसी प्रकार की कामना नहीं रखता, तभी वह 'भक्त' की पदवी का अधिकारी बनता है। ऐसा भक्त चाहे बिल्कुल सामान्य वेष में रहे, माला, चन्दन, तिलक आदि कुछ भी धारण न करे, तो भी भगवान की दृष्टि में वही सर्वाधिक शुद्ध और पवित्र प्रतीत होता है। उसी को शाश्वत शांति और आत्म-सुख का उपहार प्राप्त होता है। इस प्रकार की भक्ति की महिमा 'श्रीमद्‌भागवत' में भी वर्णन की गई है जिसे भक्ति-मार्ग का सर्वोपरि ग्रन्थ माना गया है और जिसका सम्मान सामान्य जन से लेकर बड़े से बड़े विद्वान् भी करते हैं। उसमें देवहूति और भगवान कपिल के सम्वाद में भक्त के लक्षणों का वर्णन करते हुए तीसरे स्कन्द के अध्याय २९ में कहा है—

निषेवितेनानिमित्तेन स्वधर्मेण महीयसा।
क्रियायोगेन शस्तेन नातिहिंस्रेण नित्यशः॥
मद्धिष्ण्य दर्शन स्पर्श पूजास्तुत्यभि वन्दनैः।
भूतेषु मद्‌भावनया सत्त्वेनासङ्गमेन च॥

महतां बहुमानेन दीनानमनुकम्पया।
मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु यमेन नियमेन च ॥
आध्यात्मिकानुश्रवणान्नामसङ्कीर्तनाच्च मे।
आर्जवेनार्यं सङ्गेन निरहंक्रियया तथा ॥
मद्धर्मणो गुणैरेतैः परिसंशुद्ध आशयः।
पुरुस्याञ्जसाभ्येति श्रुतमात्रगुणं हि माम् ॥

"भगवान कपिल ने देवहूति से कहा—हे माता! निष्काम भाव से अपने नित्य-नैमित्तिक कर्तव्यों का पालन कर नित्य प्रतिहिंसा रहित, उत्तम क्रिया योग का अनुष्ठान करने, मेरी प्रतिमा का दर्शन, स्पर्श, पूजा, स्तुति और वन्दना करने, सब प्राणियों में मेरी (भगवान की) भावना करने, धैर्य और वैराग्य के अवलम्बन, महापुरुषों का सम्मान, दीनों पर दया और समान स्थिति वालों के प्रति मित्रता का व्यवहार करने, यम नियमों का पालन, अध्यात्मशास्त्रों का श्रवण, भगवान के नामों का कीर्तन करने से, तथा मन की सरलता सत्पुरुषों के सङ्ग और अहंकार के त्याग से भक्तजनों का चित्त शुद्ध होता है और वह भगवान की तरफ आकर्षित होकर सच्चे धर्म का अधिकारी बनता है।"

ऊपर के वर्णन पर अच्छी तरह ध्यान देने से मालूम होता है कि वर्तमान समय में भक्ति-मार्ग एकाङ्गी रहा गया है। 'भगवान की प्रतिमा का दर्शन स्पर्श, पूजा, स्तुति, वन्दना और नाम कीर्तन' आदि तो किये जाते हैं, पर उनके सहकारी अथवा आधारभूत कर्म जैसे सब प्राणियों को भगवान का अंश जान कर आत्मवत् समझना, महापुरुषों का सम्मान दीनों पर दया, बराबरी वालों से सच्ची मित्रता आदि की की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता। इसके बजाय अधिकांश व्यक्ति दूसरों का सत्त्व अपहरण करने, उनके साथ छल-कपट का व्यवहार करने, क्रूरतापूर्ण कार्यों द्वारा दूसरों को कष्ट पहुंचाने में भी किसी प्रकार

का संकोच नहीं करते, और फिर भी वे अपने भक्त कहते रहते हैं। भागवतकार ने आगे चलकर स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि बिना परोपकार वृत्ति के केवल मूर्ति की पूजा-अर्चा निरर्थक है—

यथा वातरथो घ्राणमावृंक्ते गन्धआशयात् ।
एवं योगरतं चेत आत्मानविकारि यत् ॥
अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा ।
तमवज्ञाय मांमर्त्यः कुरुते ऽर्चाविडम्बनम् ॥
यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद् भस्मन्येव जुहोति सः ॥
द्विषतः परकामे मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ।
भूतेषु बद्ध वैरस्य न मनः शान्ति मृच्छति ॥

"जिस प्रकार पुष्प की गन्ध वायु द्वारा उड़ कर मनुष्य की नासिका तक पहुँचती है उसी प्रकार भक्तियोग में तत्पर और राग-द्वेष विकारों से शून्य चित्त परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। भगवान आत्मरूप से सभी जीवों में स्थिर रहते हैं, इसलिये जो सर्वभूतस्थित परमात्मा का अनादर करके केवल प्रतिमा के रूप में ही उसका पूजन करते हैं, वह पूजा स्वाँग मात्र है। जो इस प्रकार जीवित परमात्मा की उपेक्षा करके प्रतिमा पूजन में ही लगा रहता है वह मानों भस्म में ही हवन करता है। जो भेददर्शी और अभिमानी पुरुष दूसरे जीवों के साथ बैर बांधता है, और इस प्रकार उनके शरीरों में विद्यमान मुझ आत्मा से ही बैर करता है, उसके मन को कभी शान्ति नहीं मिल सकती।"

इस उद्धरण में भागवतकार ने 'भक्ति' का लक्षण सबका आदर करना, सबसे प्रेम भाव रखना, किसी को शत्रु मानकर चिन्तन न करना बतलाया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार की भावनाओं के बिना मनुष्य कितना भी पूजा-पाठ करे वह सब ढोंग ही है। एक तरफ भगवान के प्रति आदर, श्रद्धा का भाव दिखलाना और दूसरी तरफ

उसी की प्रति-मूर्ति अन्य प्राणियों से द्वेष करना, उनका अपमान करना, स्पष्टतया परस्पर विरोधी बातें हैं। इस प्रकार की दुरंगी नीति वाला मनुष्य भगवान को कभी प्रिय नहीं हो सकता। वरन् वे तो ऐसे ढोंगी, भक्ति को बदनाम करने वाले व्यक्ति को किसी प्रकार का शुभ फल न देकर दण्ड के योग्य ही मानेंगे। इसीलिए 'भागवत' में कहा गया है—

अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयानघे।
नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः॥
अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्म कृत।
यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्व वा स्थितम्॥
आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यन्तरो दरम।
तस्य भिन्नदृशा मृत्युर्विदधे भयमुल्वणम्॥
अथमां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम्।
अर्चयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याभिन्नेन चक्षुषा॥

अर्थात्—"जो दूसरे जीवों का अपमान करता है वह यदि बहुत-सी बढ़िया-घटिया सामग्रियों से अनेक प्रकार के विधि विधान के साथ मेरी मूर्ति का पूजन भी करे, तो भी मैं उससे प्रसन्न नहीं हो सकता। मनुष्य को चाहिये कि वह अपने धर्म का अनुष्ठान करता हुआ तब तक भगवान भी प्रतिमा आदि का पूजन करता रहे जब तक उसे अपने हृदय में एवं सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित परमात्मा का अनुभव न हो जाय। जो व्यक्ति आत्मा और परमात्मा के बीच थोड़ा भी अन्तर करता है उस भेददर्शी को मैं मृत्युरूप से महान भय उपस्थित करता हूँ। अतएव समस्त प्राणियों के भीतर निवास करते हुए उन प्राणियों के ही रूप में स्थित मुझ परमात्मा का यथायोग्य दान, मान, मित्रता के व्यवहार तथा समदृष्टि के द्वारा पूजन करना चाहिये।'

जो लोग सदैव पुराणों पर 'पाषाण' और 'काष्ठ पूजा' का ही आक्षेप करते रहते हैं उन्हें उपर्युक्त उद्धरण से समझना चाहिये कि उनमें केवल मूर्ति पूजा का विधान ही नहीं बतलाया गया है, वरन् कुछ और भी है। 'भागवत' जैसे पुराण में, जिस पर न मालूम कितने और कैसे आक्षेप किये जाते हैं, स्पष्ट कहा गया है कि 'जब तक मनुष्य अपने हृदय में तथा समस्त प्राणियों में पाये जाने वाले परमात्मा का अनुभव करने की स्थिति को प्राप्त न हो जाय तब तक वह ईश्वर की प्रतिमा का पूजन करके ही धर्मानुष्ठान करता रहे।"

यही बात कितने ही अन्य पुराणों और सनातन धर्म ग्रन्थों के में कही गई है। उनमें साफ-साफ बतलाया गया है कि 'अप्सु देवाः बालानाम् दिवि देवता मनीषिणाम्"—अर्थात् बाल बुद्धि के (अशिक्षित और अनपढ़) लोगों के लिए तीर्थों का जल और पाषाण आदि की मूर्तियाँ ही ईश्वर के रूप में उपासना के योग्य होती हैं। विद्वान् मनुष्य सूर्य, अग्नि, वायु आदि की ईश्वर रूप में उपासना करते हैं, और जिनको ज्ञान दृष्टि अथवा योग-दृष्टि प्राप्त हो गई है वे केवल आत्मा को ही पर ब्रह्म स्वरूप स्वीकार करते हैं।" सच्चे भक्त का लक्षण यही बतलाया गया है कि वह सब जीवों में परमात्मा का अस्तित्व समझकर उनकी सेवा, सहायता, उपकार का प्रयत्न करता रहे, मूर्ति पूजा भले ही करता रहे या न भी करे। उपरोक्त उद्धरण के अन्त में भगवान कपिलदेव ने समस्त ज्ञान का सारांश बतलाते हुए अपनी माता देवहूति से यही कहा है—

"सब प्रकार के लोगों की अपेक्षा मुझे वे व्यक्ति ही उच्च और श्रेष्ठ जान पड़ते हैं जो अपने सम्पूर्ण कर्म, उनके फल तथा अपने शरीर को भी मुझे ही अर्पण करके भेदभाव छोड़कर मेरी उपासना करते हैं। इस प्रकार मुझे ही चित्त और कर्म समर्पण करने वाले अकर्ता और समदर्शी पुरुष से सर्वोपरि और कोई नहीं दीख पड़ता।

अतः यह मान कर कि जीव रूप से साक्षात् भगवान ही सब में अनुगत हैं, समस्त प्राणियों को बड़े आदर के साथ मन से प्रणाम करे।''

विष्णु भगवान के परम भक्त कहे जाने वाले प्रह्लाद जी ने भी दैत्य बालकों को यह उपदेश दिया था कि भगवान को प्राप्त करके संसार सागर से पार हाने का उपाय समस्त प्राणियों में ईश्वर के दर्शन करके उनके साथ वैसा ही व्यवहार करना है। जो इस सिद्धान्त के अनुसार व्यवहार करेगा उसे संसार की श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सभी वस्तुयें स्वयंव प्राप्त हो जायेंगी। उन्होंने कहा—

न ह्यच्युतं प्रीणयतो वह्वायासो ऽसुरात्मजाः।
आत्मत्वात् सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः॥
परावरेषु भूतेषु ब्रह्मान्तस्थावरादिषु।
भौतिकेषु विकारेषु भूतेष्वथ महत्सु च॥
गुणेषु गुणसाम्ये च गुणव्यतिकरे तथा।
एकएवपरोह्यात्मा भगवानीश्वरोऽव्ययः।
केवलानुभवानन्द स्वरूपः परमेश्वरः।
माययान्तर्हितैश्वर्य ईयते गुणसर्गया॥
ज्ञानं तदेतदमलं दुरवापमाह
नारायणो नरसखः किल नारदाय।
एकान्तिनां भगवतस्तदकिन्चनानां
पादारविन्दरजसाऽऽप्लुत देहिमांस्यात्॥

''प्रह्लाद जी ने अपने सहपाठियों से कहा—मित्रो! भगवान को प्रसन्न करने के लिए कोई बहुत बड़ा परिश्रम या प्रयत्न नहीं करना पड़ता, क्योंकि वे समस्त प्राणियों के आत्मा हैं और सर्वत्र सबकी सत्ता के रूप में स्वयं सिद्ध वस्तु हैं। ब्रह्मा से लेकर तिनके तक छोटे-बड़े समस्त प्राणियों में, पञ्चभूतों से बनी वस्तुओं में, सूक्ष्म तन्मात्राओं में, महत्तत्व में, तीनों गुणों में और गुणों की साम्यावस्था प्रकृति में

एक ही अविनाशी परमात्मा विराजमान हैं। वे ही समस्त सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यों की खान हैं। वे केवल अनुभव स्वरूप, आनन्द स्वरूप एक मात्र परमेश्वर ही हैं। गुणमयी माया के द्वारा ही उनका ऐश्वर्य छिप रहा है, इसके निवृत्त होते ही उनके दर्शन हो जाते हैं। यह निर्मल ज्ञान सर्वाधिक महत्त्व का है। इसका उपदेश सर्व प्रथम भगवान नर-नारायण ने नारद जी को किया था। पर जो लोग भगवान के अनन्त प्रेमी और अकिञ्चन (सम्पतिहीन) सच्चे भक्तों की चरणरज को शिरोधाय करते हैं (अर्थात् उनके उपदेश को स्वीकार करके व्यवहार में लाते हैं) उनको यह ज्ञान सहज ही में मिल जाता है।"

प्रह्लाद ने भगवान को समस्त ऐश्वर्यों, धन, सम्पत्ति, महल, राज्य आदि का भण्डार बताया, पर अन्त में यह भी कह दिया कि जो कोई अपना जीवन दीन-हीन और अत्यन्त गरीब, उपेक्षणीय लोगों की सेवा करने में लगा देता है उसको सहज में ही भगवान के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। उसका सब प्रकार का भ्रम मिट कर वह 'परम शक्तिशाली और सामर्थ्यवान' बन जाता है। मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने और सब तरह की सांसारिक सफलता प्राप्त करने का मार्ग यह नहीं है कि मनुष्य किसी एकान्त कोने में घुस कर केवल भगवान का नाम लेता रहे, उनकी प्रतिमा पर फूल-पत्ता चढ़ाता रहे, वरन् समाज के पददलित अङ्ग—गरीब लोगों के उद्धार—उत्थान के लिये प्रयत्न करते रहना ही भगवान को प्रसन्न करने और प्राप्त करने का सच्चा उपाय है।

पुराणों में जगह-जगह जो समदर्शी और आत्मवेत्ता होने का उपदेश दिया गया है, वह केवल ग्रन्थ में पढ़ लेने अथवा कथा सुन लेने मात्र की वस्तु नहीं है वरन् उसके अनुसार सदैव आचरण करने—उन सिद्धान्तों के अनुसार हमेशा व्यवहार करने से ही मनुष्य को मानव

जीवन की वास्तविकता का पता लग सकता है और वह दूसरों के साथ स्वयं भी सर्वोच्च गति को प्राप्त कर सकता है। हमें स्मरण रखना चाहिये कि इस सच्चे धर्म का पालन ही इस लोक को स्वर्ग लोक में परिणित कर सकता है, और तभी हम भगवान के ऐश्वर्य के प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं।

भक्ति और कर्तव्यनिष्ठा —

इतना ही नहीं कि भक्ति का रूप श्रद्धा, दया, परोपकारमय है, वरन् वह कर्तव्यनिष्ठा पर भी बहुत अधिक जोर देती है। अनेक व्यक्तियों का ख्याल है कि भक्ति-मार्ग पर चलने वाले मनुष्य स्वभाव से ढीले, कठिनाइयों से परांमुख और संघर्षमय जीवन के अयोग्य होते हैं। अपने इष्ट देव की कृपा पर ही पूर्णतया आश्रित रहने के कारण वे उद्योग, श्रम, साहस आदि गुणों की दृष्टि से पिछड़ जाते हैं और प्रायः भाग्यवादी बन कर जीवन संग्राम में असफल ही सिद्ध होते हैं। इतिहास के पाठक बतलाते हैं कि विदेशी मुसलमानों के आरम्भिक आक्रमणों के समय सोमनाथ और मथुरा जैसे तीर्थ स्थानों में उन देवताओं के भक्तों और पुजारियों ने आक्रमणकारियों के प्रतिरोध का सामान्य प्रयत्न भी नहीं किया और अन्तिम समय तक यही कहते रहे कि "भगवान स्वयं इन दुष्टों का नाश कर देंगे।" उनकी अकर्मण्यता और कर्तव्य विमुखता का परिणाम यह हुआ कि महमूद गजनवी अनेक बार सोमनथ और मथुरा के विशाल मन्दिरों को तोड़ और लूट कर करोड़ों का धन ले गया और उसने धार्मिक जनों की घोर दुर्दशा कर डाली।

पर सच पूछा जाय तो यह भक्ति कर विकृत रूप है। 'कल्कि-पुराण' में इस सम्बन्ध में जो अभिमत प्रकट किया गया है, वह इससे सर्वथा भिन्न प्रकार का है। उसमें कहीं यह नहीं कहा गया है कि भक्त को लँगोटी पहिन कर या शरीर भर में तिलक-छापा लगा कर

केवल भगवान का नाम जपते रहना चाहिये और सांसारिक कर्तव्यों की उपेक्षा कर देनी चाहिये। इसके विपरीत 'कल्कि' ने यही उपदेश दिया है कि मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म और ईश्वर को प्रसन्न करने का उपाय प्राणपण से अन्याय और पाप कर्मों का विरोध करना उनको नष्ट करने के लिए जूझना ही है। इसका एक बहुत बड़ा उदाहरण राजा 'देवापि' और 'मरु' के साथ हुआ कथोप कथन है। वे लोग बहुत वर्षों से भगवान की प्राप्ति के लिए तपस्या कर रहे थे। जब अनेक ऋषि-मुनियों के साथ वे 'कल्कि' के समीप आये तो उनका दर्शन करके उन्होंने अपने जन्म को सफल समझ लिया। उनको भक्ति-मार्ग द्वारा भगवान की उपासना करते हुए बहुत अधिक समय हो गया था और अब उनका वह उद्देश्य पूरा भी हो चुका था, इसलिए उन्होंने कल्कि जी के पूछने पर यही कहा—

मरुणाऽनेन मुनिभिरेभिः प्राप्य पदाम्बुजम्।
तव काल करालास्याद्या स्यम्‌ ात्मवतां पदम्॥

देवापि ने कहा – मैंने मरु और इन समस्त मुनियों के साथ आपके चरण कमलों के दर्शन प्राप्त कर लिये हैं। इसलिये हमारा विश्वास है कि अब हमको काल के कराल गाल में—भव-बन्धन में नहीं गिरना पड़ेगा और हमको आत्मवेत्ता-ब्रह्मज्ञानियों का पद प्राप्त हो जायगा।"

इस प्रकार 'देवापि' और 'मरु' ने भक्तों की परम्परानुसार भगवान से जीवन मुक्ति और वैकुण्ठ की प्राप्ति का 'वरदान' ही माँगा। उनका आशय यही था कि हम अनेक वर्षों से भगवान का अनुग्रह प्राप्त करने के निमित्त जप-तप कर रहे थे। आज आपका साक्षात्कार हो जाने से हम कृतार्थ हो गये और अब आप हमको अपने लोक में स्थान दीजिए।

पर 'कल्कि' ने उनकी इस भावना को समय और परिस्थिति के प्रतिकूल समझा। क्योंकि वे देख रहे थे कि इस समय समस्त जगत में पाप और पाखण्ड व्याप्त है, इसलिये भगवान के सच्चे भक्तों का कर्तव्य है कि उसके सुधार का प्रयत्न करें जिससे अन्य जीवों के लिये भी भक्ति और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो। यदि केवल दस-पाँच व्यक्ति पुण्यमय जीवन बिता कर मुक्ति के अधिकारी बन गये और संसार के शेष मनुष्य उसी प्रकार पाप-कर्मों में लिप्त रह कर नारकीय-जीवन का अनुभव करते रहे, तो इसका क्या महत्त्व हो सकता है ? इसलिए उन्होंने उन दोनों से कहा—

युवां परम धर्मज्ञौ राजानौ विदिता बुभौ।
मदादेश करौ भूत्वा निज राज्यं भरिष्यथः॥
हत्वा कृतं युगं कृत्वा पालयिष्याम्यं हप्रजाः।
तपोवेशंवृतं त्यक्त्वा समारुह्य रथोत्तमम्॥
युवां शस्त्रास्त्र कुशलौ सेनागण परिच्छदौ।
भूत्वा महारथौ लोके मया सट चरिष्मथ॥

"तुम दोनों धर्मतत्व के बड़े ज्ञाता राजवंशीय पुरुष हो। इस समय मेरे आदेश को स्वीकार करके राज्य कार्य करो। मैं पापियों का संहार करके सत्ययुग की स्थापना तथा प्रजापालन की सुव्यवस्था करूँगा। इस अवसर पर तुम भी तपस्वी वेष को त्याग कर उत्तम रथ पर सवार हो जाओ। तुम लोग अस्त्र-शस्त्र के संचालन में कुशल हो और बड़े योद्धा हो इसलिए इस सत्ययुग की स्थापना के अभियान में हमारे सहयोगी बन कर रहना।"

कल्कि-चरित्र का यह प्रकरण 'भगवत गीता' में वर्णित भगवान कृष्ण और अर्जुन के सम्वाद से मिलता-जुलता है। वहाँ भी अर्जुन सांसारिक कर्तव्य की अपेक्षा बन में रह कर तपस्या करने को ही महत्त्व दे रहा था। उसने यहाँ तक कह दिया था—

गुरून्हत्वा हि महानुभावान् श्रेयोभोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।

अर्थात् "इन गुरुजनों से साथ संग्राम करके उनकी हिंसा करने की अपेक्षा तो भिक्षुक बन कर जीवन निर्वाह करना ही अच्छा है।" पर भगवान कृष्ण ने इस भावना को गर्हित और कर्तव्य विमुखता की द्योतक बतला कर कहा—"क्लैव्यं मास्म गमः पार्थ नैयत्त्वय्युपपद्यते।" 'हे अर्जुन ! इस प्रकार कर्तव्य से भागना तुमको शोभा नहीं देता।' धर्म, भक्ति या ज्ञान का यह तात्पर्य नहीं कि सकट के समय, कठिनाई या हानि-लाभ की आशङ्का से कर्तव्य पालन से हटने की चेष्टा की जाय। वह भक्ति झूठी है जो मनुष्य को निष्क्रियता की ओर ढकेलती है। इसके विपरीत सच्ची भक्ति का लक्षण तो यह होना चाहिये कि जब स्वयं भगवान हमारा रक्षक है और हम प्रत्येक कार्य उसी के इङ्गति (इशारे) पर करते हैं तो हमको भय किस बात का ? 'गीता' में भगवान ने स्वयं स्पष्ट कर दिया है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानिमायया।
तमेव शरणं गच्छा सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात् परां शान्ति स्थानं प्राप्यसि शाश्वतम्॥

(अ० १८-६१, ६२)

"हे अर्जुन ! मनुष्य के शरीर रूप यन्त्र में आरूढ़ होकर अन्तर्यामी परमेश्वर सब प्राणियों को अपनी माया के द्वारा भ्रमित करता है, नचाता रहता है। इस लिए जो मनुष्य सब प्रकार से अनन्य भाव से उस परमेश्वर की शरण में जाता है वह उसकी कृपा से सच्ची शांति और स्थिरता को प्राप्त होता है।"

सच्चे भक्त की स्थिति—मानसिक-भावना ऐसी ही होती है। वह अच्छी तरह समझता है कि इस संसार में किसी एक व्यक्ति की, चाहे वह भौतिक दृष्टि से कितना भी बड़ा और शक्तिशाली क्यों न

हो—सिकन्दर और नैपोलियन की तरह सर्वत्र विजय प्राप्त करने वाला क्यों न हो, कोई हस्ती नहीं है। ईश्वरीय शक्ति देखते-देखते बड़े-बड़े सम्राटों और चक्रवर्तियों को मसल कर रख देती है। इसलिए यह अपने को उसी विश्व नियन्ता के आश्रित समझ कर और उसी के विधान को सर्वोपरि मान कर निर्भय हो जाता है। वह फिर सांसारिक दृष्टि से कैसी भी स्थिति में रहे, चाहे अशेष धन सम्पदा का स्वामी बन जाय और चाहे अपनी इच्छा से खेतों में से दाना बीन कर उदर पोषण करे, उसे अशान्ति, क्लेश, भय नहीं हो सकता।

ऐसे व्यक्ति की आत्मा सदैव निर्भय, निर्द्वन्द्व और उच्च अवस्था में रहती है। पर ऐसी शान्ति का अर्थ जो लोग निष्क्रियता, दीनता-हीनता लगाते हैं, वे अवश्य ही बड़ी गलती करते हैं। ईश्वर कभी अपने भक्तों को दुर्दशा, हीनावस्था में नहीं रखना चाहते। वे इस ससार रूपी कर्मक्षेत्र में उनको पूर्ण उद्योग, प्रयत्न करने का आदेश देते हैं और साथ ही विश्व-संचालक शक्ति का ध्यान (उपासना) करने की प्रेरणा करते हैं। जो कोई व्यक्ति इनमें से केवल एक ही मार्ग का अनुसरण करना चाहता है, उसका आचरण ईश्वरीय-विधान के प्रतिकूल माना जायगा और अन्त में उसे हानि उठानी पड़ेगी। 'गीता' का यही सिद्धान्त है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पित मनो बुद्धिर्मामिवैष्यस्यसंशयम्॥

"इसलिये हे अर्जुन! तू सदैव मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार जब तू अपने मन और बुद्धि को भगवदार्पण कर देगा तो निश्चय ही परम पद को प्राप्त कर लेगा।"

भगवान अपने भक्त से कभी यह नहीं चाहते कि वह लौकिक कर्मों को त्याग कर - घर-गृहस्थी की तरफ से लापरवाह होकर केवल माला ही फेरता रहे। अथवा साधु-वेष धारण करके भजन-पूजा के

नाम पर दूसरों के ऊपर भारस्वरूप बन जाय। वरन् वे भक्ति और में पूरी तरह समन्वय रखने को ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग बतलाते हैं। वे कहते हैं कि न तो संसार के माया-मोह में, लोभ-लालच में इतने निमग्न हो जाओ कि तुमको आत्मा का भी ख्याल न रहे और धन, अधिकार की खातिर आत्मा का पतन करने वाले कार्य करने लग जाओ, और न जप-तप, भजन-उपासना में ही इस तरह लीन हो जाओ कि जीवन-निर्वाह के साधनों के लिए भी तुमको दूसरों का मुख ताकना पड़े। बुद्धिमान का लक्षण यही है कि धर्म और कर्म दोनों पक्षों को अपनी परिस्थिति के अनुसार सँभालता रहे और सबका सूत्रधार उसी भगवान को समझ कर जैसी भी स्थिति आ जाय उसमें शान्त और निर्भय बना रहे।

इस सिद्धान्त की दृष्टि से 'कल्कि-पुराण' में वर्णित राजा शशिध्वज का उपाख्यान निस्सन्देह बहुत अधिक प्रेरणाप्रद हैं। वह भगवान का दृढ़ भक्त था और कल्कि जी को भगवान का अवतार भी मानता था। पर जब वे दिग्विजय करते हुए उसके राज्य में पहुँचे तो उसने एक क्षत्रिय और राज्य का रक्षक होने की हैसियत से युद्ध करने में जरा भी आनाकानी नहीं की। यद्यपि उसकी रानी ने यह शंका की कि "कल्कि जी तो विष्णु ने अवतार हैं और हम विष्णु भगवान के उपासक 'वैष्णव' हैं। ऐसी दशा में आप उनके ऊपर शस्त्र-प्रहार कैसे करोगे ?"

पर राजा शशिध्वज का दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में सदैव बहुत स्पष्ट रहा। उसने यही कहा कि "जब कल्कि जी मानव रूप में नर-लीला करते हुए हमारे सम्मुख आक्रमणकारी के रूप में उपस्थित हुए हैं तो हमको भी अपने धर्म-कर्तव्य का पालन करते हुए पूरी शक्ति से उनका सामना करना चाहिये। चाहे हम हृदय में कभी उनके प्रति शत्रु-भाव नहीं रख सकते, पर इस कारण अपने लौकिक कर्तव्य-पालन से पीछे हटना कदापि उचित नहीं।"

शशिध्वज निश्शंक भाव से युद्ध क्षेत्र में गया और वहाँ इतनी वीरता से लड़ा कि दैवी-अस्त्रों से युक्त कल्कि जी को वाण वर्षा करके संज्ञा-शून्य बना दिया और उनको पकड़ कर अपने स्थान में ले गया। जब इस प्रकार वह 'शत्रु पक्ष' पर विजय प्राप्त करके अपना कर्तव्य पालन कर चुका तब उसने एक सम्माननीय अतिथि के रूप में कल्कि जी की खूब सेवा-सुश्रूषा करके उनको स्वस्थ किया और उनके साथ अपनी पुत्री का विवाह करके सदा के लिए स्थायी सम्बन्ध स्थापित कर लिया। 'कल्कि पुराण' में कथा के रूप में वर्णित भक्ति का यह रूप निस्सन्देह बहुत ऊँचा और अनुकरणीय है।

'कल्कि' ने स्वयं भी हर जगह इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि जब तक संसार में पाप कर्मो और पापी मनुष्यों की अधिकता है, तब तक निरन्तर उनसे संघर्ष करते रहो। उन्होंने स्वयं भी अपना समस्त जीवन दुष्टों के दमन तथा सज्जनों की रक्षा में लगाया। उन्होंने अपने समस्त भक्तों को कर्तव्य-पालन की शिक्षा दी और इसी को ईश्वर की सबसे बड़ी पूंजी और भजन बतलाया। हृदय में ईश्वर का ध्यान और विश्वास रखना तो अत्यावश्यक है, क्योंकि वही प्रत्येक छोटी-बड़ी कठिनाई में धैर्य और साहस का आधार सिद्ध होता है। साथ ही बाह्य व्यवहार में देश-काल की परिस्थिति और आवश्यकता को दृष्टि गोचर रख कर समस्त कर्तव्यों का प्रयत्न पूर्वक पालन करना भी हमारा कर्तव्य है। धर्म और भक्ति का सच्चा लक्षण यही है।

नौवाँ अध्याय

'कल्कि-पुराण' का माया वर्णन

भारतीय इतिहास, पुराण और अन्य धर्मग्रन्थों में संसारी जीवों को भ्रमित करने वाली माया का वर्णन अवश्य पाया जाता है। हमारे अध्यात्म-शास्त्र में जीव को परमात्मा का अंश और शुद्ध-बुद्ध माना गया है। पर वही जीव इस संसार में आकर, विशेषतः सर्वश्रेष्ठ कही जाने वाली मनुष्य-योनि को पाकर धन, सम्पत्ति, परिवार की माया में ऐसा लिप्त हो जाता है कि अपने मूल स्वरूप को बिल्कुल भूल जाता है, और ऐसे-ऐसे कर्म करने लगता है जिनकी चर्चा करना भी उचित नहीं। इस अवस्था को देख कर अनेक लोग पूछा करते हैं कि परमात्मा का अंश होने पर भी जीव की ऐसी दुर्दशा, इतना पतन क्यों हुआ करता है ?

प्राचीन भारतीय अध्यात्मवेत्ताओं ने इसका कारण 'माया' को ही बतलाया है। उनके कथनानुसार 'माया' ने ईश्वर तथा जीव के बीच एक ऐसा पर्दा डाल रखा है जिससे वह अपने चैतन्य तथा शुद्ध रूप को भूल कर सांसारिक प्रपञ्चों में लिप्त होकर पतन की परिस्थितियों में पहुँच जाता है।

'कल्कि-पुराण' में माया का वर्णन अनन्त मुनि के उपाख्यान के रूप में किया गया है। जिस समय सिंहलद्वीप में राजकुमारी पद्मा के साथ 'कल्कि' का विवाह हो रहा था उसी अवसर वे राज-सभा में आ

पहुंचे । आकाशवाणी के अनुसार उनको 'कल्कि' के दर्शन करके मुक्ति-लाभ करनी थी । कल्कि जी ने उनसे कहा—

कृतं दष्टं त्वया ज्ञातं सर्व याह्य निवर्तकम् ।
अदृष्ट मकृतश्चेति श्रुत्वा हृषमनः मुनिः ॥

अर्थात्—"हमारे किये हुए समस्त कर्मों को तुमने देखा है और वे तुमको सब ज्ञात हैं । अदृष्ट (कर्मों, का खण्डन कोई नहीं कर सकता और बिना कर्म किये किसी को उसके फल की प्राप्ति भी नहीं होती । यह सुन कर अनन्त मुनि बहुत संतुष्ट हुए ।"

अनन्त मुनि ने बताया कि "मैं जन्म के समय क्लीव (नपुंसक) पैदा हुआ । इस पर मेरे पिता ने शिवजी की आराधना करके उनसे वर प्राप्त करके मुझे पुंसत्व प्रदान कराया । पिता के देहान्त होने पर मैं बहुत दुःखी हुआ और विष्णु भगवान की आराधना करने लगा । उन्होंने मेरी भक्ति से संतुष्ट होकर स्वप्न में मुझ से कहा—

"इस संसार में स्नेह, ममता आदि की भावना हमारी माया है । 'यह हमारे पिता हैं, यह हमारी माता है' ऐसी ममता से जिनका मन व्याकुल होता है, वह मेरी माया द्वारा शोक, दुःख भय, उद्वेग, जरा, मृत्यु आदि का क्लेश अनुभव किया करता है । भगवान की माया को देखने की कामना से मैं पुरुषोत्तम क्षेत्र में आश्रम बनाकर रहने लगा और अपनी सद्गति के विचार से भगवान की उपासना, ध्यान, जप आदि में अधिकांश समय लगाने लगा । एक दिन मैं बन्धु-बान्धवों सहित द्वादशी का पारण करने के लिए समुद्र में स्नान करने गया तो भयंकर लहरों में फँस कर दूर तक बह गया । दक्षिण दिशा में बड़ी दूर जाकर किनारे लगा । वहाँ एक ब्राह्मण ने मेरी रक्षा क और कुछ समय तक मुझे अपने घर में रख कर अपनी कन्या का विवाह मुझसे कर दिया । उस स्थान में भी बहुत वर्षों तक निवास

करके मैं एक प्रसिद्ध धनी-मानी बन गया और मेरे पांच पुत्र हो गये जिनमें से बड़े पुत्र का विवाह मैं धूमधाम के साथ करने लगा। इस उपलक्ष्य में मैं फिर समुद्र में स्नान करने गया, तो उसमें से बाहर निकलने पर मुझे फिर अपने सब पुराने बन्धु बान्धव दिखाई पड़े जो स्नान करके द्वादशी का पारण करने की तैयारी कर रहे थे। उन्होंने मुझसे कहा—"अनन्त! तुम ऐसे व्याकुल क्यों दिखाई पड़ रहे हो। क्या तुमने जल के भीतर या स्थल में कोई आश्चर्यजनक प्रसंग देखा है?"

अनन्त ने कहा—मैं कुछ कह नहीं सकता। मुझे श्री भगवान की माया ने विमूढ़ कर दिया है, जिससे मेरी इन्द्रियाँ व्याकुल हो रही हैं।" अब मैं अपने पुराने स्त्री-पुत्रों को सामने खड़ा देख रहा था और उधर मुझे अपनी नई भार्या, उसके पांच पुत्रों और बड़े पुत्र के विवाह की चिन्ता सता रही थी। इस प्रकार मुझे पागल के समान अवाक् खड़ा देख कर मेरी स्त्री घबड़ा गई और कहने लगी—'देखो, इनको क्या हो गया?'

उसी समय वहाँ एक तेजस्वी परमहंस आ गये। उन्होंने मुझ से कहा—'हे अनन्त! तुम्हारी चारुमती नाम की स्त्री, बुध आदि पाँच पुत्र तथा अटा-अटारियों से सुशोभित अपूर्व गृह, धन-भण्डार सब कहाँ गया? यहाँ तुम कैसे आ गये? आज तो तुम्हारे पुत्र का विवाह था और उसमें हमको भी निमन्त्रण दिया गया था? पर वहाँ तो तुम सत्तर वर्ष के वृद्ध दिखाई पड़ते थे और इस समय पच्चीस तीस के युवक जान पड़ रहे हो? और पास में तुम्हारी युवती पत्नी भी खड़ी है? यह क्या रहस्य है? क्या तुम वही अनन्त हो अथवा अन्य कोई हो? मैं भी क्या वही भिक्षुक हूँ अथवा अन्य कोई हूँ? हमारा तुम्हारा इस स्थान पर मिलना इन्द्र जाल के समान जान पड़ता है। तुम स्वधर्मनिष्ठ सम्मानीय गृहस्थ हो और मैं परमार्थ चिन्ता में तत्पर ब्राह्मण हूँ। पर इन सब लोगों के समक्ष हमारी बातें बालकों अथवा उन्मत्तों के

समान असङ्गत (वे सिर पैर की) जान पड़ती हैं। हे ब्रह्मन्! मुझे जान पड़ता है कि यह जगदीश्वर विष्णु की माया ही है। इससे ही त्रिलोकी के प्राणी मोहित हुए रहते हैं।"

पाठकों को भी यह वर्णन असङ्गत-सा ही जान पड़ेगा कि कोई व्यक्ति एक ही घण्टे के भीतर सत्तर वर्ष का वृद्ध और पच्चीस वर्ष का युवक कैसे दिखाई पड़ सकता है? साथ ही जितनी देर में अनन्त के पुरुषोत्तम क्षेत्र निवासी बन्धु-बान्धव स्नान करके द्वादशी के पारणे की तैयारी ही कर रहे थे, उतने ही समय में उसने नई स्त्री से विवाह, पाँच पुत्रों का जन्म और बड़े पुत्र के विवाह की तैयारियों की घटनायें एक स्वप्न की तरह कैसे देख लीं? वास्तव में इस उपाख्यान से लेखक का आशय यही है कि इस संसार में हम जो कुछ देखते, सुनते और करते हैं वह माया का एक खेल ही है। उसमें बहुत अधिक वास्तविकता मानना व्यर्थ है। यह दृश्य क्षण भर में किसी दूसरे रूप में बदल सकता है। इसलिए मनुष्य को सांसारिक व्यवहार करते समय अनित्यता और अस्थिरता की भावना सदैव, ध्यान में रखनी चाहिए और संसार के प्रपञ्चों में इतना अधिक लिप्त कभी नहीं हो जाना चाहिये कि जिससे जीवन के असली लक्ष्य परमार्थ और परलोक-सुधार में बाधा पड़ जाय।

ज्ञानी मनुष्य वही कहा जा सकता है जो दुनिया में रह कर और उसके समस्त व्यवहारों को करता हुआ भी यहाँ की माया के फन्दे में न फँसे और अपने को इस 'यात्री-निवास' में एक यात्री की तरह ही समझता रहे, जहाँ से न मालूम कब उठ कर चला जाना पड़ेगा। इसी भाव को प्रकट करने के लिये पुराणकार ने कहा है—

मायया मायया जीव-पुरुषः परमात्मनः।
संसार शरण व्यग्रो न वेदात्मगतिं क्वचित्॥

अर्थात्—"परमात्मा की माया द्वारा सब प्रकार से ढके-बँधे रहने से यह प्राणी संसार के प्रपञ्चों में लिप्त रहता है और अपने उद्धार का कुछ भी उपाय नहीं सोच पाता।"

अनेक व्यक्ति इस माया को जीतने के लिए कठोर तपस्या का अवलम्बन करते हैं। वे सब प्रकार के भोगों को त्याग कर इन्द्रियों का दमन करने का प्रयत्न करते हैं। पर इस प्रकार का आचरण उपयोगी नहीं होता। जो लोग इस मार्ग पर बहुत कठोरता के साथ चलते हैं प्रायः उनके शरीर का क्षय हो जाता है। तब या तो उनकी मृत्यु हो जाती है, जो एक प्रकार की आत्महत्या के सदृश्य होती है, अथवा वे जड़वत् बन कर निकम्मा जीवन बिताते हैं। अनेक पौराणिक वर्णनों में ऐसी तपस्याओं का वर्णन किया गया है जिनमें तपस्वी व्यक्ति का शरीर सूख कर लकड़ी हो गया, उसके शरीर पर मिट्टी जम गई और केवल साँस चलना ही जीवन का एक मात्र चिन्ह शेष रह गया। यदि इन बातों को सत्य ही मान लिया जाय, और हम जानते हैं कि प्राचीन समय में कुछ 'ज्ञान मार्गी' सम्प्रदायों और अवधूत आदि श्रेणी के संन्यासियों में ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था, तो भी इससे उन तपस्वियों का अथवा संसार का कुछ हित हुआ हो, ऐसा विदित नहीं होता।

आज भी उस प्राचीन परम्परा का अनुसरण करके कुछ लोग वस्त्र तक त्याग कर बिल्कुल नग्न रहने लगते हैं, कठोर शीत और शरीर को झुलसा देने वाली गर्मी को सहन करते हैं, गर्मी में जलती हुई बालू या पत्थरों पर खड़े रह कर जप करते हैं और जाड़े में ठण्डे जल में खड़े होकर ध्यान लगाते हैं, पर उनमें भी माया, मोह, अहङ्कार, क्रोध आदि की मनोवृत्तियाँ बनी ही रहती हैं। इस दृष्टि से ऐसी तपस्या आत्मोन्नति के लिए बेकार ही सिद्ध होती है और उससे मनुष्य परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त नहीं कर सकता। इस तथ्य का समर्थन करते हुए राज-सभा में उपस्थित राजाओं में अनन्त मुनि ने कहा—

"भगवान की माया से इस प्रकार व्याकुल और भ्रमित होकर मैंने स्त्री, पुत्र, धन-धान्य सबका त्याग कर वन में जाकर विधि-विधान सहित तप करना आरम्भ किया परन्तु किसी प्रकार से भी इन्द्रिय और मन को वशीभूत न कर सका। मैं वन में बैठ कर जब परमात्मा का ध्यान करता, उस समय भी स्त्री, धन तथा अन्यान्य सांसारिक बातें मुझे स्मरण हुआ करती थीं। मेरे अंत:करण में स्त्री, पुत्र, ऐश्वर्य आदि का स्मरण होने से दु:ख, शोक, भय आदि उत्पन्न होकर मेरा अन्त-रात्मा अति व्याकुल हो जाता और इससे, ध्यान, धारणा में विघ्न उपस्थित होने लगता। पुन: मैंने इन्द्रियों को नाश करने का सङ्कल्प किया। मैंने विचारा कि इन्द्रियों को नष्ट करते ही मन वश में हो जायगा।

"जब इस प्रकार सङ्कल्पपूर्वक मैं इन्द्रियों का दमन करने लगा तो उन इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवगण मेरी ओर देखने लगे और कहा—हम दश इन्द्रियों के दश देवता हैं। हमको छिन्न-भिन्न तथा नष्ट करना तुम्हें उचित नहीं। क्या इस प्रकार से मन को वशीभूत करके तुम अपना कल्याण कर सकोगे? कदापि नहीं। इन्द्रियों के छिन्न-भिन्न करने से तुम्हारे मर्म में व्यथा होने पर तुम मृत्यु को प्राप्त हो जाओगे। क्या तुम नहीं देखते कि जो अन्धे, बहरे और लूले-लङ्गड़े व्यक्ति एकान्त में पड़े रहते हैं उनका मन भी विषय-भोगों के लिए लोलुप होता है? जीव तो अपने-अपने 'कर्मों' के आधीन रहता है। मुक्ति और संसार-बन्धन का कारण मन है। जगदीश्वर की माया के अनुसार मन ही लोलुप जीव को संसार चक्र में घुमाता रहता है। इसलिए हे अनन्त मुनि! तुम मन को वशीभूत करने के लिए विष्णु भगवान् की भक्ति करो। भक्ति ही निरन्तर समस्त कर्म का नाश करके सुख और मोक्ष प्रदान करती है। हरि-भक्ति से द्वैत-अद्वैत का ज्ञान हो जाता है। हरिभक्ति आनन्द-सन्दोह देने वाली है। हे महा-

मते ! हरिभक्ति से ही जीवकोष का दमन होगा और भगवान का सान्निध्य प्राप्त करके तुम कृतार्थ हो सकोगे।"

पुराणकर्ता ने इस उपाख्यान द्वारा स्पष्ट रूप से कठोर व्रतों और शरीर को सुखा देने वाली तपस्या के स्थान पर भक्ति-मार्ग का प्रतिपादन किया है जैसा कि उसने इसके अन्त में अलङ्कारमयी रचना द्वारा व्यक्त किया है—

संसाराब्धि-विलासलालसमतिः श्री विष्णुसेवादरो।
भक्त्यानमिदं स्वभेद-रहितं निर्माय धर्मात्मना।
ज्ञानोल्लास-निशात-खड्गमुदितः सद्भक्ति दुर्गाश्रयः।
षड्वर्गं जयतादशेष जगतामात्म स्थितं वैष्णवः॥

अर्थात्—'जो धर्मात्मा वैष्णव विष्णु सेवा परायण होने पर भी विलास-कामना से संसार में आसक्त रहते हैं, वे इस आख्यान द्वारा अभेद ज्ञान-रूप उल्लसित तीक्ष्ण खड्ग को धारण कर भक्ति रूप दुर्ग के आश्रय से शरीर स्थित काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इन छः शत्रुओं को पराजित करें।

कठोरता पूर्ण ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग का यह विवाद बहुत पुराना है और हम इसका उल्लेख आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व होने वाले भगवान बुद्ध के चरित्र में स्पष्ट रूप से पाते हैं। उन्होंने आरम्भ में आत्मज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से कठोर तपस्या का ही सहारा लिया था और खान-पान का अत्यन्त कड़ा संयम करके शरीर को अशक्त बना डाला था। पर इससे भी जब किसी प्रकार की आत्मोन्नति के चिन्ह दृष्टिगोचर हुए तब उन्होंने समझा कि शरीर तो एक यन्त्र के समान है जिसमें संचालक मन, बुद्धि आदि हैं। इसलिए जब तक ज्ञान और भक्ति के समन्वय द्वारा मन को संयत और आज्ञाकारी न बनाया जायगा तब तक इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण की प्राप्ति होना असम्भव है। इसके बाद उन्होंने जङ्गल में रहकर तपस्या करने की

प्रणाली को त्याज्य मान लिया और लोकालय में रह कर सद्ज्ञान और सत्कर्म द्वारा अपना और दूसरों का उपकार करने को ही आत्मोद्धार का मार्ग स्वीकार किया।

इस अनन्त उपाख्यान में भी 'कल्कि' ने अनन्त मुनि को यही उपदेश दिया है कि 'बिना कर्म किये किसी को उसके फल की प्राप्ति नहीं हो सकती।' अगर तुम मोक्ष के अभिलाषी हो तो उसके लिए भी तुमको कर्म द्वारा ही उसके योग्य बनना पड़ेगा। हाँ, यह आवश्यक है कि उन कर्मों में तुम आसक्त मत बनो, फल की आशा त्याग कर केवल कर्तव्य भाव से उन्हें करते रहो। इस प्रकार अनासक्त कर्म योग का साधन ज्ञान और भक्ति के समन्वय से ही उत्तमता पूर्वक हो सकता है और 'गीता' में भगवान कृष्ण ने इसी का उपदेश दिया है। 'कल्कि पुराण' ने भी उसी सिद्धान्त को अनन्त मुनि की कथा के रूप में प्रकट किया है और इसका माहात्म्य बतलाते हुए कहा है—

अनन्तस्य कथामेतामज्ञान ध्वान्त नाशिनीम्।
मायानियन्त्रीं प्रपठञ्छृण्वन्बन्धाद्विमुच्यते॥

अर्थात्—"अनन्त की इस कथा के पाठ करने तथा सुनने से संसार की माया छूट जाती है, अज्ञान रूप अंधकार दूर होता है और बंधन से मुक्ति प्राप्त होती है।'

'भागवत' का पुरञ्जन-उपाख्यान्—

जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं माया के बन्धनों और उससे छुटकारा पाने के विषय में सभी पुराणकारों ने विचार किया है, क्योंकि यह अध्यात्म-मार्ग की एक मुख्य समस्या है। अध्यात्म केवल कहने सुनने की चीज नहीं है वरन् उसका असली उद्देश्य साँसारिक माया-मोह से ऊपर उठकर कर्तव्य-भावना से जीवन के कर्तव्यों का पालन करना ही

है। ऐसा होने पर ही मनुष्य को क्रमशः आत्मज्ञान अथवा अद्वैत ज्ञान होना सम्भव होता है। 'भागवत' का पुरञ्जन उपाख्यान भी इसी अभिप्राय से कहा गया है। उसमें कर्मकाण्ड को ही विशेषता देने वाले प्राचीन 'वर्हि' नामक राजा को नारद जी द्वारा ज्ञान-मार्ग का उपदेश दिया गया। नारदजी ने उसे पुरंजन नामक राजा का एक उपाख्यान सुनाया जो संसार की माया में अत्यधिक ग्रस्त होने के कारण बहुत अधिक दुःखों का भागी बना और अन्त में भगवान् की कृपा से ही उस दुरवस्था से छुटकारा पाने में समर्थ हुआ।

'राजा पुरञ्जन समस्त संसार में घूमते हुए अपने निवास योग्य स्थान ढूँढ़ रहा था। अन्त में उसे एक ऐसा नगर मिला जिसमें नौ द्वार थे और जो सब ओर से परकोटों, बगीचों, अटारियों, झरोखों और राजद्वारों से सुशोभित था। वहाँ एक सुन्दरी कन्या भी दिखलाई दे गई जिसके अनुपम सौन्दर्य ने उसे शीघ्र ही स्ववश कर लिया। बस, वह राजा उस कन्या को पत्नी रूप में ग्रहण करके सौ वर्ष तक उसी पुरी में निवास करता रहा। वह स्त्री और पुत्रों के कारण होने वाले मोह, प्रसन्नता एवं हर्ष आदि विकारों का सदैव अनुभव करता रहा, उसका चित्त तरह-तरह के कर्मों में फँसा हुआ था और काम परवश होने के कारण वह मूढ़ रमणी द्वारा ठगा गया था। उसकी रानी जो-जो काम करती थी, वही वह भी करने लगता था। जब वह मद्यपान करती तब वह भी मदिरा पीकर उन्मत्त हो जाता, जब भोजन करती तब आप भी भोजन करने लगता, और जब कुछ चबाती तब आप भी वही वस्तु चबाने लगता था। इसी प्रकार उसके गाने पर गाने लगता, हँसने पर हँसने लगता, बोलने पर बोलने लगता।

'इस प्रकार कामातुर चित्त से उसके साथ विहार करते-करते राजा पुरञ्जन की युवावस्था आधे क्षण के समान बीत गई। उस पुरञ्जनी से राजा पुरंजन को अनेक सन्तानें हुईं। इतने में उसकी आयु

का आधा भाग निकल गया। तत्पश्चात् वह अपने पुत्र तथा कन्याओं का विवाह करने, गृह, कोश, सेवक, मन्त्री आदि के देख-रेख में व्यस्त रहने लगा। उसने स्वर्गीय भोगों की कामना से अनेक यज्ञों की दीक्षा भी ली। इस प्रकार करते-करते वृद्धावस्था आ पहुँची।

"अब चण्डवेग नामक गन्धर्वराज ने, जिसके अधीन तीन सौ साठ महाबलवान गन्धर्व रहते थे, राजा पुरजन की पुरी को लूटना आरम्भ किया। तब पाँच फन के सर्प ने, जो उस पुरी का प्रधान रक्षक था, उसको ऐसा करने से रोका, और वह अकेला ही गन्धर्वों से वर्षों तक युद्ध करता रहा। इन्हीं दिनों एक काल-कन्या वर की खोज में त्रिलोकी में भटकती रही, फिर भी किसी ने उसे स्वीकार नहीं किया। वह काल-कन्या='जरा' बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण मानी जाती थी और कोई उसे स्वीकार करना नहीं चाहता था। अन्त में वह यवनराज 'भय' के पास गई और उससे अपनी व्यथा और कामना कह सुनाई। यवनराज भय ने उससे कहा—"मैंने योगदृष्टि से देख कर तेरे लिए एक उपाय सोचा है। तू सबका अनिष्ट करने वाली है इसलिए किसी को अच्छी नहीं लगती। तू मेरी सेना लेकर जा, इसकी सहायता से सबको अपने अधीन करके इच्छानुसार भोग कर सकेगी, और कोई तेरा सामना न कर सकेगा।

"अब कालकन्या ने पुरंजन की पुरी पर आक्रमण किया और वह बलात्कार से उस पुरी की प्रजा को भोगने लगी। इसके फल-स्वरूप राजा पुरञ्जन की सारी श्री नष्ट हो गई। उसने देखा कि गंधर्व और यवनों ने उसका समस्त ऐश्वर्य लूट लिया है, सारा नगर नष्ट-भ्रष्ट हो गया है, पुत्र, पौत्र, भृत्य और अमात्य, वर्ग प्रतिकूल होकर अनादर करने लगे हैं, स्त्री स्नेह-शून्य हो गई और मेरी देह को काल-कन्या 'जरा' ने वश में कर रखा है।

यह सब देखकर पुरंजन अपार चिन्ता में डूब गया और उसे विपत्ति से छुटकारा पाने का कोई उपाय न दिखाई दिय । वह अपनी देह, परिवार में 'मैं और मेरा' का भाव रखने से अत्यन्त बुद्धिहीन और दीन हो गया था । अब जब इनसे बिछुड़ने का समय आया तब वह अपने पुत्र, पुत्री, पौत्र, पुत्र--बधू, दामाद, नौकर घर आदि सबके लिए बड़ी चिन्ता करने लगा कि 'मेरे पश्चात् इन सबका क्या होगा ?' वह इसके लिए बहुत शोक करने लगा, पर उसका कुछ वश न चल सका और उसी समय यवन राज स्वयं आकर उसको बाँध कर ले गया ।'

"क्योंकि राजा पुरंजन की आसक्ति अन्त समय तक अपनी स्त्री में रही थी, इसलिए उसने आगामी जन्म में विदर्भराज के यहाँ कन्या के रूप में जन्म लिया । युवती होने पर उसका वैदर्भी का महाराज मलय-केतु के साथ विवाह कर दिया गया । जब उनके पुत्र और पुत्रियों को उत्पन्न करके महाराज मलयकेतु तपस्या हेतु वन को चले तो उनकी स्त्री भी साथ जाकर वहाँ भी उनकी सेवा करती रही । पर आयु पूरी हो जाने पर मलयकेतु का देहान्त हो गया तो वह अत्यन्त शोक करने लगी और एक चिता बनाकर स्वयं भी उनके साथ जलने को प्रस्तुत हो गई । उस समय पुरंजन का एक मात्र पुराना मित्र 'अविज्ञात' ब्राह्मण वेश में वहाँ आया और उसने शोक करती वैदर्भी से कहा—

"तू कौन है ?' किसकी पुत्री है ? जिसके लिए तू शोक कर रही है, यह लेटा हुआ पुरुष कौन है ? क्या तू मुझे नहीं जानती ? मैं वही तेरा मित्र हूं जिसके साथ पहले तू विचारा करती थी । सखे ! क्या तुम्हें यह याद नहीं आता कि किसी समय मैं तुम्हारा 'अविज्ञात' नाम वाला सखा था ? तुम पृथ्वी के भोग भोगने के लिए निवासस्थान की खोज में मुझे छोड़कर चले गये थे । आर्य ! पहले मैं और तुम एक दूसरे के मित्र और मानसरोवर निवासी हंस थे और सहस्रों वर्षों तक बिना स्थान के ही रहे थे । किन्तु मित्र ! विषय भोगों की इच्छा से

मुझे छोड़कर यहाँ पृथिवी पर चले आये । यहाँ घूमते-घूमते तुमने एक स्त्री का रचा हुआ स्थान देखा । भाई ! उस नगर में उसकी स्वामिनी के फन्दे में पड़ कर, उसके साथ विहार करते-करते तुम भी अपने स्वरूप को भूल गये और इसी से तुम्हारी यह दुर्दशा हो गई ।

"देखो, तुम न तो विदर्भराज की पुत्री हो और न यह मलयकेतु तुम्हारा पति है । जिसने तुम्हें नौ द्वारों के नगर में बन्द किया था उस पुरंजनी के पति भी तुम नहीं हो । पहले जन्म में तुम अपने को पुरुष मानते थे और अब सती स्त्री मानते हो—यह सब मेरी फैलाई हुई माया है । हम दोनों तो 'हंस' है, हमारा जो वास्तविक स्वरूप है, उसका अनुभव करो । मित्र ! जो मैं (ईश्वर) हूँ वही तुम (जीव हो । तुम मुझसे भिन्न नहीं हो और तुम विचारपूर्वक देखो तो मैं भी वही हूँ जो तुम हो ।"

इस प्रकार 'भागवत' में पुरंजन के उपाख्यान के रूप में जीवात्मा के संसार की माया में फंसने का वर्णन किया गया है । यह 'कल्कि-पुराण' के 'अनन्त उपाख्यान' से मिलता-जुलता ही है । 'अनन्त ब्राह्मण' और 'पुरंजन राजा'—दोनों ही विषयासक्त होकर स्त्री, परिवार और ऐश्वर्य की ममता से दुखी और दुरवस्था को प्राप्त हुए थे और अन्त में सच्चा ज्ञानोपदेश मिलने पर उससे छुटकारा पा सके । इन दोनों उपाख्यानों का आशय यही है कि मनुष्य को संसार में आकर अपना सब कार्य कर्तव्य पालन की बुद्धि से और अनासक्त भावना रख कर करना चाहिये । उसे सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि यह सब नाशवान् सांसारिक प्रपञ्च क्षणिक है किसी भी समय यह बदल सकता है या नष्ट हो सकता है । ज्ञानी पुरुष उसी को कहा जा सकता है जो इसके बीच में रहकर भी निर्लिप्तता का भाव रखे ।

'विष्णु--पुराण' का जड़भरत उपाख्यान—

पौराणिक कथानकों के अनुसार चौबीस अवतारों में से पाँचवे अवतार माने जाने वाले ऋषभदेव के पुत्र राजर्षि भरत बड़े योगी और ज्ञानी थे। वे अपना राज्य पुत्रों को देकर तपस्या हेतु वन में निवास करने लगे थे और बहुत वर्षों तक उन्होंने तपस्या और आत्म चिन्तन किया था। पर फिर भी एक हिरन के बच्चे की माया में पड़ जाने से उनको बन्धन में पड़ना पड़ा। इसकी जो कथा 'विष्णु-पुराण' में श्री पराशर ऋषि ने वर्णन की है उसका सारांश इस प्रकार है—

'राजा भरत ने भगवान का ध्यान करते हुए चिरकाल तक शालग्राम क्षेत्र में निवास किया था। गुणियों में श्रेष्ठ उन भरत ने अहिंसादि गुणों के पालन पूर्वक, मन को सयम में रखकर परम श्रेष्ठता प्राप्त की। वह आसक्ति रहित योगी और तपस्वी राजा प्रभु पूजन के निमित्त समिधा, पुष्प और कुशा मात्र एकत्र करते और इसके अतिरिक्त अन्य कोई कर्म नहीं करते थे। एक दिन उन्होंने नदी पर स्नान करते समय एक हरिणी को जल पीते देखा। वह उस समय आसन्न प्रसवा थी। उस समय जङ्गल में से सिंहनाद का भयङ्कर शब्द आया। बहुत ऊँचे स्थान तक उछालने के कारण उसके गर्भ का बच्चा निकल कर नदी में गिर पड़ा और हिरनी भी पृथिवी पर गिर कर मर गई। वह दृश्य देख राजर्षि भरत को बड़ी करुणा हुई और वे उस मृग शावक को अपने आश्रम में लाकर पालन-पोषण करने लगे। जब वह कुछ बड़ा हो गया तो चरते-चरते जङ्गल में भी चला जाता। भरत से भी वह बड़ा प्रेम रखता था और भरत को भी उस असहाय को देखकर उससे हार्दिक स्नेह उत्पन्न हो गया था। इसलिए जब कभी उसे जङ्गल से लौटने में देर होती तो वे उसके लिए चिन्तित होने लगते कि उसे कोई भेड़िया या सिंह खा न गया हो।

जो राजा भरत अपना विशाल राज्य, पुत्र, कलत्र सब कुछ छोड़ चुके थे वे एक हिरन के मोह में पड़ गये और इससे आत्म-ध्यान में विघ्न होने लगा। समय आने पर जब राजा भरत ने प्राण त्याग किया तो मृग-बालक उनके समीप खड़ा दुःखित भाव से उनको देखता रहा और वे भी उसकी चिन्ता करते रहे। इसके फलस्वरूप वे आगामी जन्म में मृग होकर ही जन्मे। पर उनको तपस्या के फल से पूर्व जन्म की याद बनी रही। उन्होंने उस योनि को भी सदा सूखी घास और पत्ते खाकर तपस्वी के समान ही बिताया और शीघ्र ही प्राण त्याग कर ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हुए।

"अपनी पुरानी भूल को याद करके इस जन्म में वह पूर्णतः अनासक्त और विरक्त जीवन व्यतीत करते। उनको पूर्व जन्म का ही सब कुछ ज्ञान था, इसलिए उन्होंने गुरु के यहाँ भेजे जाने पर भी उससे वेद तथा अन्य शास्त्र नहीं पढ़े। जब उनसे कोई प्रश्न किया जाता, तब वह सदा संस्कारहीन, स्वरहीन अथवा ग्रामीण वाक्य मिले अस्फुट वचन कहते थे। इससे उनका नाम 'जड़-भरत' पड़ गया और लोग प्रायः उनका अपमान किया करते थे। वह अति सामान्य अन्न कणों को बीन कर आहार करते हुए समय व्यतीत करते।

"एक दिन जड़-भरत के ग्राम के समीप होकर सौवीर नरेश कहीं जा रहा था। उसके सेवकों को राजा की पालकी ढोने वाले श्रमिकों की आवश्यकता हुई तो उन्होंने अन्य कुछ लोगों के साथ जड़ भरत को भी बेगार के लिए पकड़ लिया। जड़ भरत ने इसका कुछ प्रतिकार नहीं किया, वरन् वह इसको अपने किसी पापमय प्रारब्ध को क्षय करने का साधन समझकर पालकी उठाकर चलने लगे। पर जहाँ अन्य बेगारी मजदूर शीघ्रतापूर्वक चल रहे थे, जड़ भरत पृथ्वी को देखते हुए धीरे-धीरे पग उठा रहे थे। इससे पालकी की गति में असमानता आती थी और राजा को असुविधा जान पड़ती थी। उसने

कहा—'अरे यह क्या करते हो ? इस प्रकार विषम भाव से क्यों चल रहे हो ?' राजा द्वारा बार-बार टोके जाने पर श्रमिकों ने कहा—'हम में से यह एक व्यक्ति बहुत मन्द गति से चलता है। इसी कारण गति में समानता नहीं आती।' राजा ने कहा—'अरे, तूने तो अभी पालकी को बहुत थोड़ी दूर ही ढोया है, क्या इतने में ही थक गया ? देखने में तो तू इतना मोटा-ताजा है, फिर क्या तू इतना परिश्रम भी नहीं कर सकता ?' जड़भरत ने कहा—"राजन् ! मैं न तो मोटा-ताजा हूं और न मैंने आपकी पालकी ही उठाई हुई है, न मैं थका हूँ और न मुझे परिश्रम ही करना पड़ रहा है।" राजा ने कहा—'अरे, तू तो प्रत्यक्ष ही मोटा-ताजा दिखाई पड़ रहा है, इस समय भी यह पालकी तेरे कन्धे पर रखी है और भार वहन करने से परिश्रम भी होता ही है।"

जड़ भरत ने कहा—"राजन् ! तुम प्रत्यक्ष क्या देख रहे हो ? यही मुझे बताओ। तुम्हारा यह कहना बिल्कुल ठीक नहीं कि पालकी मेरे कन्धे पर रखी है। अब इस सम्बन्ध में मेरा मत सुनो। पृथ्वी पर दोनों पाँव, पाँवों पर जाघें, जाघों पर ऊरु और ऊरु पर उदर स्थित है। उदर पर वक्षःस्थल, बाहु और कन्धे हैं और उन कन्धों पर यह पालकी रखी है, तो इसका भार मेरे ऊपर कहाँ है ? इस पालकी में तुम्हारा बताया जाने वाला देह रखा है। यथार्थ में तो तुम वहाँ हो और मैं यहाँ हूँ।

'हे राजन् ! तुम या अन्यान्य सब प्राणी पञ्चभूतों द्वारा ही वहन किये जाते है और यह भूत-वर्ग भी गुणों के द्वारा प्रवाहित हो रहा है। यह सत्वादि तीनों गुण कर्मों के अधीन हैं और कर्मों की उत्पत्ति अविद्या अथवा माया से होती है। परन्तु आत्मा तो, जिसे 'मैं' कहा जाता है, शुद्ध, अक्षर, शान्त, गुणरहित तथा प्रकृति से परे हैं, तथा सब प्राणियों में एक ही तत्त्व ओत-प्रोत है, इसलिए उसकी न कभी वृद्धि है और न क्षय है। तब तुम किस आधार पर कह सकते हो कि

'तू तो मोटा-ताजा है।' यह पालकी यदि मेरे लिए बोझ-रूप हो सकती है तो यह तुम्हारे लिए भी उसी प्रकार हो सकती हैं। जिस पञ्च-भूत द्वारा यह पालकी बनी है, उसी से तुम्हारा, मेरा और अन्य सभी का शरीर भी बना हैं, जिसमें ममता का आरोप माना है।'

जड़ भरत के ये अध्यात्म-सिद्धान्त-प्रकाशक वचन सुनकर सौवीर नरेश तत्काल पालकी त्याग कर भूमि पर उतर आये। उन्होंने ब्राह्मण के चरण पकड़ लिए और कहा—"हे भगवन् ! आप इस छद्म वेश में कौन हैं ? यहाँ किस कारण आये हैं ? मुझे आपके विषय में जानने की बड़ी इच्छा हो रही है। जड़भरत ने कहा—"हे राजन् ! मैं कौन हूँ, यह कह नहीं सकता। इसके अतिरिक्त तुमने मेरे यहाँ आने का कारण पूछा तो आवागमनादि क्रियायें कर्म-फल भोगने के लिए ही होती हैं। धर्म-अधर्म से उत्पन्न सुख-दुःख का भोग करने के लिए ही यह शरीर बनता है। हे राजन् ! ये धर्म-अधर्म ही सब जीवों की समस्त अवस्थाओं के कारण होते हैं, फिर मेरे ही आने का कारण पूछने की क्या विशेषता है ?'

इस प्रकार 'जड़ भरत उपाख्यान' में माया का जीव को बंधन-ग्रस्त करने वाला प्रभाव दिखलाया है और अध्यात्म-सिद्धान्त की दृष्टि से उसके स्वरूप का विवेचन भी अच्छी तरह किया है। राजा भरत के चरित्र से यह उपदेश मिलता है कि मनुष्य चाहे कितना ही ऊँचा क्यों न पहुंच जाय सांसारिक माया-मोह यह अच्छे ज्ञानियों को थोड़ी-सी भूल हो जाने पर अपने पंजे में फँसा लेता है। यद्यपि राजर्षि भरत का मृग शावक की रक्षा का कार्य अत्यन्त दया भाव से प्रेरित था और उनकी सहृदयता की सब कोई प्रशंसा ही करेंगे। पर अपनी थोड़ी-सी हार्दिक कमजोरी के कारण वे उस मृग-बालक की सुरक्षा में आसक्त रहने लग गये और इसी बहाने माया ने उसको फांस लिया। हमको परोपकार और परमार्थ अवश्य करना चाहिये, पर उसकी उचित सीमा

का भी ध्यान रखना चाहिए। परोपकार एक साधन ही है, उसे साध्य नहीं बना लेना चाहिए।

'कल्कि पुराण' का माया-स्तव—

पर माया भली और बुरी दोनों तरह की होती है। जहाँ वह विषय-विकारों में फँसाकर मनुष्य को पतनोन्मुख करती हैं, वहाँ उसके प्रभाव से तरह-तरह के धर्म कार्य करके अनेक जीवों के साथ उपकार किया जा सकता है और उसके फलस्वरूप स्वयं भी उच्च गति को प्राप्त कर सकता है। वास्तव में भला-बुरा मनुष्य स्वयं होता है, माया तो उसके लिए एक निमित्त बन जाती है। यदि धन के सम्बन्ध में ही विचार करें तो मालूम होता है कि अनेक व्यक्ति उसे पाकर तरह-तरह के विकारों में ग्रस्त हो जाते हैं, अपने और दूसरों के पतन का कारण बनते हैं। पर अन्य व्यक्ति धन से बहुत से सत्कर्म करते हैं और अपने को तथा अन्य बहुत से जीवों को सुख पहुंचाते हैं। इसलिए धन को बुरा या भला कहना ठीक नहीं, उसका सदुपयोग या दुरपयोग मनुष्य की मनोवृत्ति पर निर्भर है।

यही विचार करके 'कल्कि पुराण' के लेखक ने यद्यपि आरम्भ में 'माया' की तुलना वेश्या से की है, पर अन्त में उसे एक दैवी विभूति ही बतलाया है और उसके द्वारा संसार के कल्याण का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इसमें राजा शशिध्वज द्वारा एक माया-स्तव कहलाया है। जिसमें माया के ऊँचे स्वरूप की कल्पना की गई है और उसे सबके लिए हितकारी कहा है—

'शशिध्वज ने कहा—'हे माया ! तुम शुद्ध सत्वगुणमयी, विशुद्धरूपिणी एवं ब्रह्मा, विष्णु, शिव की भी माता हो। वेद में तुम्हारी ही महिमा प्रतिपादित हुई है। तुम्हारी कुक्षि में भूतगण और पञ्च-तन्मात्रा स्थिति हैं। देव, गन्धर्व, सिद्ध और विद्याधर-गण तुम्हारी

बन्दना करते हैं। तुम लोक से परे हो, तुम्हारे स्वरूप में द्वैत-भाव लगाया गया है। व्यास आदि मुनिगण तुम्हारी वन्दना करते हैं। विष्णुजी तुम्हारा स्तव सङ्गीत गान करते हैं। तुम ही कलि रूपी समुद्र की कल्लोल में लहराती हो, जिससे समस्त प्राणी सांसारिक प्रपञ्च में पड़ जाते हैं सृष्टि के आदि, मध्य और अन्त में तुम ही विराजमान हो। तुम सब प्राणियों को आश्रय प्रदान करती हो। द्वैत अथवा पूर्ण भाव से उपासना करने पर तुमको प्राप्त किया जा सकता है। तुम देवता, तिर्यक और मनुष्य जाति में अनेक प्रकार से विभिन्न प्रकार से विभक्त हो रही हो। तुम सारे संसार की आधार हो। तुम ब्रह्म स्वरूपिणी हो। तुम्हारे प्रभाव से ही त्रिजगत भूतपञ्चक करके प्रकाशित हो रहा है। तुम्हारे प्रकाश के बिना काल, देव, कर्म उपाधि आदि विधाता का नियत किया हुआ कोई भाव प्रकाशित नहीं होता। तुम उसी प्रभा से प्रभावती हो रही हो।"

माया वास्तव में प्रकृति का ही एक नाम है। उस रूप में माया ही इज संसार का मूल है परमातमा तो अपमे मूल स्वरूप में पूर्णतः निस्पृह है। उसे जगत की रचना अथवा उसके कल्याण-अकल्याण से कोई प्रयोजन नहीं। संसार की उत्पत्ति, रचना और सञ्चालन माया द्वारा ही सम्भव होता है। काल, दैव, कर्म आदि ही वे बातें हैं जिनसे यह संसार स्थित जान पड़ता हैं, आगे बढ़ता रहता है और तरह-तरह के दृश्य उपस्थित करता है।

माया का मूल रूप शुद्ध और कल्याणकारी ही है, पर जब जीवात्मा विषयासक्त हो जाता है तब 'माया' उसके लिए पतनकारी बन जाती है। माया तो अग्नि, जल, वायु आदि जैसी शक्तियों की तरह है, जिनसे मनुष्य का जीवन कायम है और समस्त व्यवहार संभव हो रहे हैं, पर इन्हीं को अनेक लोग नाशकारी उद्देश्यों के लिए भी प्रयुक्त करते रहते हैं। अग्नि लगाकर किसी के घर को भस्मसात् किया

जा सकता है, जल में ढकेल कर मारा जा सकता है वायु को रोक कर प्राणान्त किया जा सकता है। इसी प्रकार माया का अच्छा और बुरा दोनों प्रकार का प्रभाव होता है, जिसे लोग अपनी रुचि के अनुसार ग्रहण करते हैं। विषयासक्त सौन्दर्य का अनुभव वेश्याओं के कुटिल हावभावों से करता है और पवित्र भाव वाला उसका दि॰ : दर्शन अपनी सती-स्वाध्वी धर्म-पत्नी के प्रेमपूर्ण हाव-भाव में करता है। एक माता अपने पुत्र को स्वर्गीय स्नेह प्रदान करके उसका हर तरह से कल्याण करती है और अनेक विरोधी भाव रखने वाली महिलायें या पुरुष झूँठा स्नेह प्रकट करके किसी सम्बन्धी का सर्वस्व अपहरण कर लेने भी संकोच नहीं करते।

इसीलिए पुराणकार ने माया को स्वर्गीय और नारकीय दोनों रूपों में बतलाया है। आगे चलकर उसके सर्वव्यापी विविध रूपों का वर्णन करते हुए 'माया-स्तव' में कहा गया है

"तुम चिदाभास रूप से भूमि में गन्ध, जल में रस, तेज में रूप पवन में स्पर्श और आकाश में शब्द—इस प्रकार अनेक रूपों से विराजमान होकर संसार में प्रवेश कर रही हो, अतएव तुम विश्वरूपिणी हो। तुम ब्रह्म रूपिणी सावित्री हो, भूतेश्वर की भवानी हो, नारायण की लक्ष्मी हो, इन्द्र की इन्द्रानी हो। हे माया ! समस्त गगन में तुम इसी प्रकार भासमान हो रहा हो। तुम्हीं स्त्रियों को शैशवावस्था में बाला, यौवनकाल में युवती और वृद्धावस्था में वर्षीयसी के रूप से परिणत करती हो। तुम काल से कल्पित हो, ज्ञान से परे और कामरूपिणी हो। एवं अनेक प्रकार की मूर्त्तियाँ धारण करके प्रकाशमान हो रही हो। यज्ञ और योग से तुम्हारी पूजा की जाती है। तुम उपासकों को वर और अभीष्ट प्रदान करती हो। सब लोग तुम्हारा सम्मान करते हैं। तुम्हीं चण्डी, दुर्गा, कालिका आदि नाम धारण करके समयानुसार अनेक रूप और वेशों में प्रकाशित होती हो।'

निस्सन्देह 'माया' विविध रूपधारिणी है। श्रीरामकृष्ण काली देवी से कहा करते थे—"माँ! तू ही गृहस्थ के घर का सती-साध्वी नारी है और तू ही बाजार के कोठे पर बैठने वाली वेश्या है। एक रूप में तू माता बनकर मुझे स्नेह प्रदान करती है और दूसरे रूप में पत्नी बनकर रुचिकर भोजन बनाकर खिलाती है। 'इसका आशय यही है कि संसार में कुछ भी यथार्थ रूप से भला-बुरा नहीं है, मनुष्य अपनी भावना से प्रत्येक वस्तु में भलाई-बुराई का भाव आरोपित कर लेता है। जो चांदनी रात सब को सुन्दर जान पड़ती है वही चोर को बुरी जान पड़ती है। संसार के सब मनुष्य में लड़ाई-झगड़ा, शत्रुता, सङ्घर्ष हत्या आदि का कोई कारण नहीं है, तत्त्व की दृष्टि से वे सब एक ही चैतन्य सत्ता के अंश रूप हैं और सबकी अन्तिम गति भी एक-सी होती है। पर केवल मनोवृत्तियों की भिन्नता के कारण एक मनुष्य अन्य लोगों को अपना विरोधी मानने लगता है और उनके साथ अधिक से अधिक क्रूरता का व्यवहार करता है। दूसरा मनुष्य उन्हीं परिस्थितियों में रहता हुआ सबको मित्र, आत्मीय मानता है और सबके हित साधन के लिए यथाशक्ति प्रयत्नशील रहा करता है। इसे हम 'माया' की लीला ही कह सकते हैं।

आजकल के नवाशिक्षित और विज्ञानवादी मनुष्य 'माया' को एक काल्पनिक और धर्म शास्त्रों में वर्णित कथा-कहानियों का विषय ही मानते हैं। निस्सन्देह अनन्त मुनि, पुरञ्जन, जड़भरत के उपाख्यान लोगों को माया का स्वरूप और उसका भला-बुरा प्रभाव समझने के लिए ही रचे गए हैं, पर उनमें प्रदर्शित सिद्धान्तों को गलत नहीं बतलाया जा सकता। मनुष्य भ्रम, स्वार्थ और मूढ़ता के वशीभूत होकर बिना किसी यथार्थ कारण के भय, क्रोध, काम आदि का वातावरण उत्पन्न कर लेता है और परिणाम स्वरूप अपने और दूसरों के लिए तरह-तरह के सङ्कट उत्पन्न कर लेता है। इसे यदि 'माया' की लीला कहें तो क्या अनुचित है?

हम तो यहाँ तक कह सकते हैं कि पुराणकर्त्ताओं के समय में तो 'माया' का प्रभाव मनुष्यों पर व्यक्तिगत रूप से ही हुआ करताथा, वे भूठ-मूठ के कारणों से दुःख या सुख का अनुभव करने लगते थे। पर आज तो बड़े-बड़े प्रगतिशील और सर्व-साधन सम्पन्न राष्ट्र भी वैसा ही उदाहरण उपस्थित कर रहे हैं। रूस और अमरीका में लड़ाई-झगड़े का कोई कारण नहीं है, दोनों ही जीवन-निर्वाह के साधनों और आवश्यक धन सम्पत्ति से सम्पन्न हैं, पर केवल संसार में 'प्रधानता' प्राप्त करने के लिए अपने समस्त साधनों को सैनिक तैयारी के लिए झोंक रहे हैं। उनके उदाहरण से चीन, फ्रान्स, इङ्गलैण्ड आदि अन्य अनेक देश भी उसी मार्ग पर चल रहे हैं। परिणाम यह होता है कि संसार के आधे साधन युद्ध की निरर्थक तैयारी में खर्च हो रहे हैं और फलस्वरूप इन्हीं देशों के करोड़ों व्यक्ति उचित भोजन और वस्त्र से भी वञ्चित रहकर दुःख सहन करते हैं तब वे तरह-तरह के अनैतिक और हानिकारक उपायों का अवलम्बन करके अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयत्न करने लगते हैं। इससे अन्य सैकड़ों प्रकार की समस्यायें और उलझनें पैदा होती हैं और मनुष्य स्वनिर्मित भय, भ्रम और मूढ़ता के कारण स्वर्ग सदृश्य पृथ्वी को नर्क के रूप में परिणित कर देते हैं।

वह बात हमीं नहीं कहते, स्वयं योरोप, अमरीका के अनेक विचारशील व्यक्ति अपने देशवासियों की स्वार्थपरतापूर्ण मनोवृत्ति और भौतिक यन्त्रों के लिए पागलपन की दौड़ को देखकर बड़े चिन्तित हो रहे हैं और बार-बार चेतावनी दे रहे हैं कि यदि वहाँ के कर्ता-धर्ता और प्रमुख व्यक्ति इस प्रकार की हानिकारक प्रवृत्ति के निरोध का का कोई प्रयत्न न करेंगे तो उनकी सभ्यता शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट होकर अतीत की वस्तु बन जायगी। इस सम्बन्ध में 'Human Destiny' (मनुष्य का भाग्य) नामक पुस्तक के लेखक "Lecomte Du

Nouy" (लकाम्ते द नांय) ने, जो स्वयं एक अच्छा वैज्ञानिक है, कई वर्ष पहले लिखा था—

"मानव जाति ने अभी अपने इतिहास के अन्धकारमय युगों में से एक को पार किया है। वह सबसे अधिक दुखान्त भी हो सकता है, क्योंकि संघर्ष संसार के कोने-कोने प्रवेश पा चुका है। मनुष्य को अपनी जिस सभ्यता पर इतना अधिक गर्व था उसकी दृढ़ता और स्थिरता को अभूतपूर्व हिंसा ने नष्ट कर दिया है। वर्तमान यान्त्रिक उन्नति का एक हानिकारक पहलू बड़े और खतरनाक युद्ध भी हैं। अब यह आवश्यक नहीं कि दुश्मन पड़ोस में हो, वह दुनिया के किसी भी कोने में हो सकता है। अब वायुयान और राकेटों द्वारा किसी भी स्थान पर कुछ ही घण्टों में मार की जा सकती है। इन युद्धों के कारण मनुष्यों को बड़ी दुर्दशा में रहना पड़ता है। राष्ट्र का अधिकांश धन शस्त्रों के निर्माण में खर्च हो जाता है और बहुसंख्यक लोगों को पूरा भोजन भी नहीं मिल पाता। यह तब तक होता रहेगा, जब तक मनुष्य विश्व बन्धुत्व की व्यापक भाषा में नहीं सोचेगा, जब तक सबके समान आदर्श न होंगे। अभी इस अवस्था तक पहुंचने में समय लगेगा, पर निराशा का कोई कारण नहीं है। यदि हम समय के लक्षणों को ठीक-ठीक समझ सकें तो हम यह कह सकते हैं कि मानव-जाति की मुक्ति 'धर्म' में ही मिलेगी।'

अमरीका की "New History Socity" (नवीन इतिहास समिति) के प्रमुख नेता डा० एच० सी० ऐंजिलब्रेट युद्धों के बड़े विरोधी हैं और उन्होंने "Merchants of death" (मृत्यु के सोदागर) नाम की पुस्तक में हथियार बनाने वाले पूंजीपतियों की चालों का पूरी तरह भण्डाफोड़ किया है। उनका कहना है कि ये गोला-बारूद बनाने वाले 'राजा लोग' अनेक देशों की सरकारों को अपने नियन्त्रण में ही नहीं रखते, वरन् उनकी नीति और कार्य प्रणाली को भी स्वयं

निर्धारित करते हैं। इस प्रकार वे गोला-बारूद बेचकर इतना नफा कमाते हैं जिस पर जल्दी विश्वास करना कठिन होता है। उन्होंने योरोप अमरीका के शासनों की स्वार्थपरता पूर्ण नीति की आलोचना करते हुए कहा था—

"हम सबके सिरों के ऊपर एक विश्व-व्यापी सङ्घर्ष का खतरा मँडरा रहा है। हम बराबर सुनते रहते हैं कि एक ओर विश्व युद्ध अनिवार्य है और लोग उसकी प्रतीक्षा करते ही रहते हैं। प्रत्येक देश में राष्ट्र की समस्त शक्तियाँ 'हत्या के साधनों' के प्रस्तुत करने में लगाई जा रहीं हैं, जिससे अन्य राष्ट्रों में रहने वाले अपने 'मानव-भाइयों' को मारा जा सके। शिक्षा-संस्थाओं के खर्च में कमी जा रही है और सार्वजनिक सेवा के विभिन्न मदों का व्यय भी घटाया जा रहा है, ताकि किसी प्रकार इन 'मौत के यन्त्रों' की कीमत चुकाई जा सके।"

"इससे भी शोचनीय बात यह है कि विभिन्न राष्ट्रों के बीच भय और घृणा की दीवारें खड़ी की जा रही हैं। अनेक देशों में तो स्वयं सरकार ही इस प्रकार के अविश्वास का भाव फैला रही है और सहृदयता तथा भ्रातृभाव के कुयें को विषाक्त बना रही है। समाचार पत्र भी घातक-प्रचार-कार्य में सरकार के सहयोगी बने हुए हैं। परिणाम यह होता है कि अनेक राष्ट्रों में सिवाय कठोर शब्द और निन्दा की बातों के सिवा और कुछ सुनाई नहीं पड़ता। यही दूषित भावना-प्रवाह किसी भी समय भी समय युद्ध के रूप में फूट पड़ने को तैयार रहेगा और जगह-जगह सामूहिक नर-संहार के वीभत्स दृश्य दिखलाई पड़ने लगेंगे। न मालुम कब तक लोग इस घातक प्रक्रिया में लगे रहेंगे और अन्त में एक दिन उनको होश आयेगा कि उन्होंने एक विकृत मस्तिष्क शराबी की तरह अपने ही घर में आग लगादी है और अनेक व्यक्तियों को जिनमें उनके प्रिय सम्बन्धी भी हैं, मार दिया है।'

यह एक चित्र है आधुनिक सभ्यता और विज्ञान का अहंकार करने वाले राष्ट्रों का। इस प्रकार विश्वव्यापी नर-संहार में सभी राष्ट्रों के अपार क्षति उठानी पड़ती है और अनेकों की तो कमर ही टूट जाती है। तब उनके साधनों का शोषण करके अन्य नृशंश राष्ट्रों का उत्थान होता है। आज सर्वाधिक बुद्धिमान और ज्ञान-विज्ञान में अग्रणी लोग ही जब इस प्रकार का विपरीत आचरण कर रहे हैं तो इसे दैवी-माया के प्रभाव के अतिरिक्त क्या कहा जाय? एक तरफ तो मनुष्य चन्द्रलोक तथा अन्य लोकों तक पहुँचने के असम्भव माने जाने वाले कार्य में सफलता प्राप्त कर रहा है और दूसरी तरफ अपनी सामाजिक-प्रणाली में ऐसा सुधार भी नहीं कर सकता जिससे जीवन निर्वाह की सामग्री का उचित बँटवारा हो सके और किसी 'मानव-भ्राता' को अकारण भूखा और नङ्गा न रहना पड़े। इसी परिस्थिति के कारण विभिन्न देशों की जनता में असन्तोष और विद्रोह की उत्पत्ति होती है और षड़यन्त्र, क्रान्ति तथा शासन-सत्ता के उलटने के दृश्य प्रतिदिन दिखाई पड़ रहे हैं। इन बुद्धिमान और विद्वान व्यक्तियों द्वारा अपने ही पैरों में आप कुल्हाड़ी मारने वाले कार्यों को यदि हम 'ईश्वरीय लीला' कहें तो इसमें क्या गलती है?

सत्य तो यह है कि गत पाँच सौ वर्षों से योरोप के 'गोरे लोग' अमरीका के मूल निवासी 'रेड इण्डियन्स' (लाल रंग वालों,) अफ्रीका के हबशियों काले रङ्ग वालों) और ऐशियाई देशों के अश्वेत लोगों की हत्या और शोषण कर रहे हैं। इन देशों के निवासी प्राकृतिक जीवन बिताने वाले और सीधे-साधे थे, जिनको दानव स्वभाव के गोरों ने बन्दूक, तोप और घातक अस्त्र-शस्त्रों के बल पर मनमाना लूटा, सताया और अनेकों का नाम निशान ही मिटा दिया। वे तो समझते थे कि हम इन सबको मिटाकर अथवा गुलाम बनाकर स्वयं ही स्वर्गीय भोग भोगेंगे, पर ईश्वर के दरबार में ऐसी नीति सदैव नहीं चल सकती। जिस दैवी-

सत्ता ने हिरनाकुश, रावण, कंस और दुर्योधन जैसे प्राचीन शोषण-कर्त्ताओं का मान मर्दन करके जड़मूल से नष्ट कर दिया वही अपनी माया से आज 'एटम बम' और 'हायड्रोजन बम' के अभिमानी राष्ट्रों की बुद्धि को विपरीत करके पारस्परिक सङ्घर्ष द्वारा उनके गत पाँच सौ वर्षों के पापों का दण्ड देने का आयोजन कर रही है। अगर हमको आँखें हों और पुरातन ऋषि-मुनियों के अध्यात्मज्ञान का एक अंश भी हमको प्राप्त हुआ हो तो हम योरोप अमरीका की घातक 'वैज्ञानिक उन्नति' में परमात्मा की माया के प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं।



दसवाँ अध्याय

अवतार का प्रचार और उसकी प्रतिक्रिया

संसार की वर्तमान अभूतपूर्व हलचल, चारों तरफ फैली हुई मार-काट, चन्द्रलोक-यात्रा तथा डाक्टरों के 'दिल बदल' जैसी ईश्वरीय सत्ता को चुनौती देने वाले आविष्कारों ने 'संसार भर के धार्मिक लोग' के दिमाग में एक उथल-पुथल पैदा करदी है। हमारे भारतीय बन्धु तो सदा से 'भगवान् की लीला' के आगे नमस्तक होते ही आये हैं और उसके आगे आत्म-समर्पण को ही उन्होंने उद्धार और रक्षा का एकमात्र मार्ग स्वीकार किया है। चाहे इन विचारों को 'आधुनिकता' के रङ्ग में रंगे हुए लोग 'दकियानूसी' ही क्यों न कहें, पर भारतीय-सस्कृति में पला हुआ व्यक्ति ऐसी सङ्कट की घड़ी में 'भगवान' से बढ़कर आश्रय और किसी को नहीं मान सकता। उसका यही आन्तरिक विश्वास होता है कि चाहे भौतिकता के अभिमानी कितनी ही उछल-कूद क्यों न मचा लें, पर जब दैवी-चक्र चलेगा तो क्षण भर में धराशायी होते ही दिखाई देंगे।

भारतीय-धर्म के अनुयायिओं की बात छोड़ भी दें तो आज योरोप, अमरीका के प्रगतिशील लोगों में से भी करोड़ों नर-नारी प्रति-दिन होने वाली सनसनीपूर्ण घटनाओं तथा हलचल से प्रभावित होकर किसी बहुत बड़े परिवर्तन की आशा करते हैं। ईसाइयों की 'बाइबिल' में एक स्थान पर कहा गया है—

'जब अन्त समय (युग-परिवर्तन का अवसर) आयेगा तब चारों तरफ लड़ाइयाँ होने लगेंगी और लड़ाई की अफवाहें सुनाई देने

लगेंगी। एक मुल्क दूसरे मुल्क के और एक राज्य दूसरे राज्य के के विरुद्ध खड़ा होगा। उस समय अकाल पड़ेंगे, महामारी फैलेगी और जगह-जगह भूकम्प आयेंगे। यह दशा आरम्भ में होगी और इसके बाद भी भयङ्कर कष्ट भोगने पड़ेंगे।' (रिवेलेशन)

'बाइबिल' की भविष्य वाणियों के वक्ता महात्मा जान को एक योगी पुरुष माना गया है। उनका जो चित्र ईसाई धर्म की पुस्तकों में प्राप्त होता है उसमें वे जटाजूट और श्मश्रू [लम्बी दाढ़ी] से युक्त कम्बल लपेटे हुए किसी प्राचीन ऋषि की तरह ही दिखाई पड़ते है। अब तो विद्वानों ने यहाँ तक सिद्ध कर दिया है कि भारतवर्ष में आकर उन्होंने नाथ सम्प्रदायों वालों से योग की शिक्षा प्राप्त की थी और उनका नाम भारतीय-मठों में सुरक्षित 'नाथ–नामावली' की हस्त-खित पुस्तकों में मौजूद हैं। उन्होंने 'बाइबिल' में 'रिवेलेशन' [दिव्य-वाणी] नाम का पूरा अध्याय ही लिखा है, जिसमें भविष्य-कथन के रूप 'युग–परिवर्तन' की समस्त घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और बतलाया है कि महायुद्ध और दैवी-प्रकोप से होने वाले नाश के पश्चात् दैवी-शक्ति (अवतार) का आविर्भाव होगा और वह अव्यवस्था को मिटाकर न्याय-शासन (रामराज्य) की स्थापना करेगी।

क्या अन्तिम समय आ पहुँचा ?

वर्तमान समय में युद्धों की अधिकता और भीषणता से घबड़ा-कर अधिकांश धार्मिक ईसाई महात्मा जान की प्राचीन भविष्यवाणी के सत्य होने में विश्वास करने लगे हैं और जगह-जगह यह विचार प्रकट किये जा रहे हैं कि अब 'संसार के उद्धारकर्ता' के प्रकट होने का समय बिल्कुल समीप आ पहुँचा है। इन विचारों का प्रचार करने वाले ईसाई धर्म के मासिक पत्र "New Jerusalem fellowship" (न्यू जरूशलम फैलोशिप) के मई १९६७ के अङ्क में श्री जान ब्रोकिस नामक सज्जन में निम्न सम्मत्ति प्रकट की है—

'क्या अन्तिम समय आ पहुंचा है। हमारे चारों तरफ अन्धकार गहरा होता जाता है, झण्डे झुक गये हैं, पाप की वृद्धि हो रही है और संसार 'न्यायकर्ता' (भगवान्' ने सम्मुख फैसले के लिए बढ़ता जा रहा है। लोगों में तरह-तरह के अनुचित कर्मों के साथ समझौते की प्रवृत्ति बढ़ रही है। अब धर्म विरोधी अभियान चोटी पर पहुँच चुका है। इस अवसर पर भगवान् ही सत्य-मार्ग दिखलाकर हमारी रक्षा कर सकते हैं, अन्यथा हम पूरी तरह से शैतानियत (दानव-राज्य) में डूब जायेंगे।'

'शैतान का सबसे बड़ा हथियार लोगों को बहकाना है। वह असत्य के सहारे ही अपने समस्त कार्यक्रमों को पूरा करता है। इस समय संसार के राष्ट्र इतने अधिक हथियार बन्द होते जाते हैं, जैसे पहले कभी नहीं थे, क्योंकि सबने इस 'असत्य' पर विश्वास कर लिया है कि हम जितना अधिक अणु-बम तैयार करके रखेंगे उतना अधिक शान्ति कायम रह सकेगी। इस समय युद्ध के समर्थकों द्वारा चारों तरफ प्रचार किया जा रहा है—'तुम्हारा विरोधी दहाड़ते हुए शेर की तरह चारों तरफ घूम रहा है कि वह किसको खा जाय। इसलिए तुम भी जल्दी से जल्दी अपनी रक्षा का उपाय करो।' ऐसे प्रचार के प्रवाह में बड़े-बड़े धार्मिकों और ईश्वर-भक्तों के भी वह जाने की सम्भावना हो जाती है।

'यह अत्यावश्यक है कि ऐसे अवसर पर हम शान्ति चित्त से विचार करें और सोचें कि हमारा क्या कर्तव्य है? हम जो कुछ निर्णय करेंगे वही हमारे भाग्य का फैसला करने वाला होगा। इस समय हम चौराहे पर खड़े हैं, और सही तथा गलत रास्ते का चुनाव करना हमारे ही ऊपर निर्भर है। अगर हम सत्य-मार्ग पर चले तो भगवान् के राज्य में पहुंच जायेंगे और गलत मार्ग ग्रहण किया तो धर्म विरोधी दल के भयङ्कर कुचक्र में फँसकर नष्ट हो जायेंगे।'

इस उद्धरण में धार्मिक ईसाइयों की चिन्तापूर्ण मन:स्थिति स्पष्ट प्रकट होती है। इस समय युद्ध की तैयारी करने वाले प्रमुख राष्ट्र ईसाई धर्म के अनुयायी ही माने जाते हैं। इङ्गलैण्ड, फ्रान्स, अमरीका, जर्मनी के सभी लोगों की गिनती ईसाई मजहब वालों में ही की जाती है और उन्हीं में से कुछ लोग इस तरह युद्ध का प्रचार करके समस्त संसार को युद्धाग्नि की भट्टी में झोंकने की तैयारी कर रहे हैं। वहाँ अधिकांश जनता ईसा-मसीह के प्रेम-सन्देश और क्षमा-भावना को समझते हुए भी झूठी राष्ट्रीयता के प्रवाह में बहकर युद्ध की तैयारी में सहयोग कर रही है। इसी से व्यथित होकर उक्त सज्जन ने अपने भाइयों को यह चेतावनी दी है।

संसार की समस्या को भगवान् ही सुलझायेगा—

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण और अवतार में विश्वास रखने वाले उद्‌गार पादरी जान मेलार्ड के हैं, जो इङ्गलैण्ड से Healing Life (हीलिंग लाइफ) नामक पाक्षिक पत्रिका प्रकाशित करते हैं और आध्यात्मिक विषयों पर अपने भाइयों का मार्ग दर्शन करते रहते हैं। उन्होंने वर्तमान सभ्यता और लोगों की स्वार्थपरता को लक्ष्य करके कहा है—

'संसार की समस्या मनुष्य की बुद्धि द्वारा नहीं सुलझाई जा सकती। यह विशाल कार्य मनुष्य की ताकत के बाहर है। वर्तमान अवस्था ऐसी उलझनपूर्ण है, और अन्याय, अत्याचार इतने बढ़ गए हैं कि उनका सुधार कर सकना साधारण मनुष्य के लिए असम्भव है। तो भी हम निराश अथवा उत्साहीन नहीं होते वरन् आशा से प्रसन्नचित्त हो रहे हैं। क्योंकि ऐसे ही समय में—ऐसी ही हालत में भगवान की शक्ति प्रकट होती है, संसार में एक महान् जागृति होती है और सच्चा कल्याण हो सकता है। हम में से बहुत से लोग धर्म-राज्य की

फिर से स्थापना होने की आशा कर रहे हैं। हम अच्छी तरह समझ रहे हैं कि आवश्यकता एक ऐसे 'अवतार' की है जिसमें ईश्वर का पूरा प्रकाश मौजूद हो। वही उन हृदयों को प्रकाशित कर सकता है जो ईश्वर के लिए व्याकुल होकर पुकार रहे हैं और जो पृथ्वी पर मनुष्य मात्र में भ्रातृभाव की स्थापना के अभिलाषी हैं। आज संसार के सभी देशों में ऐसे अनेक व्यक्ति ''दैवी अवतरण' की राह देख रहे हैं। एक अन्य लेख में पादरी मेलार्ड ने अवतार के विषय में अपनी दृढ़ श्रद्धा व्यक्त की है—

'एक महान प्रकाश के लिए हमको तैयार हो जाना चाहिये। उस अवसर के आने में अब अधिक देर नहीं है। हालत दिन पर दिन खतरनाक होती जाती है, आसमान में काले बादलों के दल इकट्ठे हो रहे हैं और इन बादलों के कारण प्रकाश की किरणें निरन्तर क्षीण पड़ती जाती हैं।

'पर ऐसे समय में दुनिया वाले क्या कर रहे हैं? हम में से अधिकांश ऐसे हैं जो भगवान् की इच्छानुसार चलने के बजाय भगवान को अपनी इच्छा के अनुकूल चलाना चाहते हैं। बहुतों को तो यह भी पता नहीं कि हमारे लिए और संसार के लिए भगवान के पास कोई विशेष योजना है। अनेक यह भी स्वीकार नहीं करते कि यह संसार ईश्वर का बनाया है और इसका न्याय तथा प्रेमयुक्त शासन वही परम पिता कर सकता है। इस समय हमारी एक-मात्र आशा भरोसा यही है कि परमात्मा की शक्ति फिर से प्रकट होकर संसार का कल्याण करेगी।'

यह सज्जन यह भी विश्वास करते हैं कि अब जो अवतार होगा वह सभी जातियों और देशों का होगा। वह ईसाइयों में ही होगा और ईसाइयों का ही मार्ग-दर्शन

करेगा ऐसी उनकी धारणा नहीं है । अन्य सच्चे धार्मिकों की भी ऐसी ही सम्मत्ति हो सकती है ।

आकाश की शक्तियाँ विचलित हो रही हैं-

इसी प्रकार श्री जे० एच० कोनीवियर नामक विद्वान ने अपनी "Civilisation or choas" (सभ्यता अथवा अव्यवस्था) नामक नामक पुस्तक में संसार में भीषण घटनायें होने के पश्चात् अवतार के आगमन की भविष्यवाणी की है उन्होंने 'बाइबिल' के 'लूक' शीर्षक अध्याय की एक भविष्यवाणी का उल्लेख करते हुए कहा है—

"उस समय सूर्य, चन्द्रमा और तारों में चिन्ह प्रकट होंगे, संसार के देशों में कष्ट और हलचल बहुत अधिक बढ़ जायगी, समुद्र और उसकी लहरें भी गर्जने लगेंगी । मनुष्य संसार में होने वाली घटनाओं को देख सकने का भी साहस न कर सकेंगे, क्योंकि उस समय आकाश की (दैवी) शक्तियाँ विचलित हो जायेंगी । इसके पश्चात् 'मानव-पुत्र' शक्ति तथा शोभा के साथ आकाश से उतर कर संसार का उद्धार करेगा :'

'इस उद्धरण की बातें जो 'ईश-पुत्र' महात्मा ईसा ने दो हजार वर्ष पहले कही थी, अवश्य सत्य होने वाली है और उसके बतलाये हुए चिन्ह दृष्टिगोचर होने लग गये हैं । ज्योतिष-विज्ञान के ज्ञाता सूर्य और चन्द्रमा में होने वाले नवीन परिवर्तनों को प्रत्यक्ष देख रहे हैं । एटम और हाइड्रोजन बमों के जल में परीक्षण किए जाने के कारण समुद्र में भी हलचल पैदा हो जाती है और करोड़ों जल:जन्तु नष्ट हो जाते हैं । समस्त देशों में इतने अधिक आन्दोलन और खूनी क्रान्तियाँ हो रही हैं कि उनसे आकाशी शक्तियाँ विचलित हो रही हैं । वे समस्त संसार पर आने वाले भयङ्कर परिणाम की सूचना दे रही हैं । इस नाशकारी घटनाओं के बाद 'मानव-पुत्र' पृथिवी पर अवतरित होगा ।'

आस्ट्रेलिया की रहने वाली एक आध्यात्मिक-भाव सम्पन्न महिला मिस एडिलवेयर ने वर्तमान संकटपूर्ण स्थिति से बचने के लिए एक खुले पत्र के रूप में अपने अनुयायिओं तथा सभी धर्म प्रेमी सज्जनों से कहा था कि 'अब पूर्ण रूप से मिलकर सहयोगपूर्वक काम करने का समय आ गया है। अब ऐसा जमाना आ रहा है कि आपको आपस के सब भेद-भाव और विरोधी विचार त्यागकर एकता पर ही जोर देना चाहिये। इस 'नये युग' में ऐसे लोगों का अस्तित्व कायम रह सकना कठिन होगा जिनमें आत्मिक शक्ति की कमी या अभाव पाया जायगा यद्यपि वे टिके रहने की कोशिश करेंगे पर उनको अधिक समय तक ठहर सकने में सफलता प्राप्त न होगी। आकाश से आने वाली 'विश्व-किरणें' उनके लिये 'तीव्र औषधि' काम करेंगी। स्थिति की भयङ्करता को देखते हुए हमारा एकमात्र कर्तव्यों यही है कि भगवान् पर पूर्ण विश्वास करके अपने को उसके भरोसे उसी प्रकार छोड़ दें जैसे बालक माता के विश्वास पर सर्वथा निश्चित हो जाता है। भगवान ऐसे ही बच्चे की-सी दृढ़ श्रद्धा रखने वाले लोगों को ही नवीन आकाश और नई दुनिया में स्थान देंगे।'

नई दुनिया की रचना अवश्यम्भावी है—

इस प्रकार सभी देशों के विचारकों में यह भाव फैल रहा है कि वर्तमान समय में मानव-सभ्यता अग्रसर होते-होते ऐसे स्थान पर आ पहुँची है जहाँ उसकी गति रुद्ध हो गई है और इसलिए उसमें तरह-तरह के दोष उत्पन्न होकर संसार को सङ्कटजनक परिस्थिति में डाल रहे हैं। जिस प्रकार बहता हुआ पानी किसी बड़े गढ़े में रुक जाता है तो कुछ ही समय में उसमें काई और तरह-तरह के हानिकारक कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार वर्तमान समय में कुछ थोड़े से लोगों के हाथ में संसार की समस्त शक्ति और साधन आ जाने से

समाज में असन्तुलन उत्पन्न हो गया है। इसके परिणामस्वरूप मानव-जाति सृष्टि रचना की दैवी योजना के अनुसार अपने लक्ष्य की तरफ नहीं बढ़ सकती, वरन् एक स्थान पर अटक कर किंकर्तव्य विमूढ़ हो गई है और ऐसे कार्य करने लग गई है जो ईश्वरीय नियमों के प्रतिकूल है। निश्चय ही ऐसी अवस्था अधिक समय तक कायम नहीं रह सकती। भारतवर्ष के अध्यात्मशक्ति सम्पन्न साधकों ने इस समस्या पर भली प्रकार विचार किया है और अब से कुछ वर्ष पूर्व ही भारत के महान आध्यात्मिक नेता श्री अरविन्द ने इस सम्बन्ध में एक घोषणा की थी—

'मुझे भय है कि जो लोग इस समय संसार की सङ्कटपूर्ण परिस्थिति पर दुःखी हो रहे हैं, उनको मैं कोई विशेष सान्त्वना की बात नहीं कह सकता। इस समय हालत बुरी है, निरन्तर अधिक बुरी होती जाती है और सम्भव है किसी भी समय वह अधिक से अधिक बुरी बन जाय। अब इस अशान्तिपूर्ण जगत में कोई भी बात, चाहे वह कितनी भी विपरीत अथवा असङ्गत क्यों न जान पड़ती हो, असम्भव नहीं, है।

'इस परिस्थिति में सबसे अच्छी बात यही है कि हम विश्वास रखें कि अगर संसार में एक नया और श्रेष्ठ युग आना है, तो उसके लिए हमारी सब बुराइयों को प्रकट होकर निकल ही जाना चाहिए। यह एक वैसी ही प्रणाली है जैसे योग-साधन में अपने भीतर की हीन वासनाओं को प्रकाश में लाकर उसके साथ सङ्घर्ष करके दूर कर दिया जाता है। शुद्धि का यही तरीका है। इसके सिवाय हमको यह कहावत भी याद रखनी चाहिए कि प्रभात होने से पहले रात्रि का अन्धकार सबसे अधिक घनीभूत हो जाता जान पड़ता है।

'मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि जिस नये संसार के आगमन की हम आशा कर रहे हैं वह उसी सामग्री का बना न होगा, जिसका

कि वर्तमान संसार दिखाई पड़ रहा है, वरन् उसका निर्माण भिन्न प्रकार के साधनों और तत्त्वों से ही होगा। इस समय बाहरी चीजों का ही ज्यादा महत्व है जब कि उस नये जगत में आन्तरिक शक्तियों की ही प्रधानता होगी। इसलिये यदि इस समय धन,सम्पत्ति, शान-शौकत जैसी बाहरी वस्तुओं में दोष उत्पन्न होकर वे नष्ट होती जाती हैं तो इस पर ज्यादा ध्यान देने या चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। इनके स्थान में लोगों को अपनी आत्मिक शक्तियों के विकास का उद्योग करना चाहिए जिससे वे नये-युग के उपयुक्त बन सकें।

'संसार की वर्तमान स्थिति पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह दुनिया अब बहुत पुरानी हो गई है और अब उसकी कायापलट होने की आवश्यकता है। उसकी एक-एक शृङ्खलायें जर्ज-रता के कारण टूट रही हैं। न तो आज कोई समाज ही अपने स्थान पर अडिग है और न कोई सरकार ही। समाज का बन्धन धीरे-धीरे अज्ञात किन्तु स्पष्ट रूप से टूटता जा रहा है। एक के बाद दूसरी सर-कारें असफल होती जा रही हैं। मानव-समाज खतरे में हैं। मनुष्य की आजादी, देशों तथा राष्ट्रों की स्वतन्त्रता नष्ट हो रही है। सम्पूर्ण विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ, पारस्परिक सम्बन्ध, सामंजस्य सभी हिल उठे हैं। निर्धनता, अत्याचार, अज्ञान भीरुता आदि का सारा जगत शिकार बन चुका है। संसार की इस अस्वाभाविक अवस्था के कारण गत चालीस वर्षों के भीतर दो बार भयङ्कर विश्व-युद्ध हो चुके हैं और तीसरे प्रलयकारी युद्ध की सम्भावना प्रतिदिन निकट आती चली जाती है।'

इस भयङ्कर अवस्था का—इस क्रमशः नाश की प्रक्रिया का इलाज आखिर क्या है? मानव-जाति को नष्ट-भ्रष्ट करने वाली इस व्यापक सङ्कटपूर्ण परिस्थिति को किस प्रकार बदला जा सकता है? सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में जानकारों ने इसके लिए अनेक प्रकार

के सुझाव सामने रखे हैं राजनैतिक नेताओं ने जितने भी उपाय इस अवस्था के मिटाने के लिए बतलाये हैं वे सभी असङ्गत हैं । वे सफल कैसे हो सकते हैं ? जब राजनीतिज्ञों का मस्तिष्क स्वयं अपनी भावनाओं पर ही नियन्त्रण नहीं रख सकता, तब सारे विश्व की व्यवस्था को सुधारने के लिए वह कैसे कोई उपाय खोज सकता है ?

यदि इन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विचारकों को छोड़ कर धार्मिक वर्ग पर निगाह डालते हैं तो मालूम होता है कि धर्म के स्वच्छ दर्पण पर, बीते हुये युगों की धार्मिक शिक्षा पर, पंडित, पुजारी पादरी, मुल्ला कहे जाने वाले लोगों ने अन्याय की छाया डाल दी है, जिससे मनुष्य की दिव्य-दृष्टि नष्ट हो गई है। सड़ी-गली प्रथायें, धर्म के नाम पर होने वाले झूठे पाखण्ड और समाज के टूटते हुए बन्धन सभी व्यर्थ हैं। न तो इनसे विश्व का कोई हित हो सकता है और न अब इसकी आवश्यकता है।

अन्त में श्री अरविन्द ने नये युग का स्वागत करते हुये कहा है—

"वह दिन कितना धन्य होगा जब मानवता एक नये युग में प्रवेश करेगी। वह युग जिसमें शान्ति होगी, प्रेम का शासन होगा, एकता होगी, सुख होगा और मानव-जीवन की सफलता होगी। उस दिन संसार के कण-कण में सुख और शान्ति व्याप्त हो जायगी। उस युग का एक दिन भी पिछले युगों की शताब्दियों की तुलना का होगा।"

पर यह भी निश्चित है कि इस नवयुग में प्रवेश करने से पूर्व मनुष्य जाति को एक बार अग्नि-परीक्षा में होकर गुजरना पड़ेगा। युग परिवर्तन के समय क्रान्ति का होना अनिवार्य है। जब एक युग मृत्यु के मुख में विलीन होता है तथा नया युग कर्म क्षेत्र में प्रवेश करता है, तब

दोनों में तुमुल-संग्राम होना स्वाभाविक ही है। 'कल्कि पुराण' में इसी भीषण सङ्घर्ष का रूपकों तथा कथाओं के रूप में उल्लेख किया गया है। जो व्यक्ति इस सङ्घर्ष में धर्म-पक्ष का सफलतापूर्वक नेतृत्व करके वर्तमान अन्याय, अनीति और भ्रष्टाचार का अन्त कर सकेगा उसे 'अवतार' मानने से कौन इन्कार करेगा ?

युग-परिवर्तन तथा 'अवतार' अवश्यम्भावी हैं-

यद्यपि राजनीति के क्षेत्र में चालबाजी और कूटनीति को प्रशंसनीय बतलाया गया है तो भी कितने ही राजनीतिज्ञ सत्य के उच्च आदर्श को पूर्णतया ठीक समझते हैं और अवसर आने पर उसका प्रतिपादन और समर्थन भी करते हैं। गत वर्षों में भारतीय-राष्ट्र के कर्णधार पं० जवाहरलाल नेहरू और अमरीका के प्रेसीडेण्ट केनेडी इसी कोटि के महापुरुष हुये हैं। यद्यपि अमरीका अस्त्र शस्त्र की दौड़ में सबसे आगे है और उसने इस कार्य में कितना धन खर्च किया होगा इसकी कोई गिनती नहीं की जा सकती। पर प्र० केनेडी विश्व शान्ति के सिद्धान्त को कल्याणकारी मान निश्वस्त्रीकरण के लिये तैयार हो गये थे और उन्होंने अपने प्रतिद्वन्दी रूस से कहा था कि 'अब तक तुम शस्त्र-निर्माण में हमारे साथ दौड़ लगाते रहे तो अब निशस्त्रीकरण में भी हमारे साथ दौड़ो।' पर अमरीका के सबसे बड़े पूँजीपति, जो हथियारों का व्यापार करके प्रति वर्ष अरबों रुपया कमाते हैं ऐसी बात को कब सहन कर सकते थे ? परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही समय बाद केनेडी की गुप्त घातक द्वारा हत्या करदी गई। विश्व-शन्ति के नाम पर एक महामानव का बलिदान हो गया।

पुरानी दुनिया अवश्य मरेगी-

प० जवाहर लाल नेहरू जी भी बहुत सयय से राजनीतिक आन्दोलन के साथ नये युग और नये संसार के निर्माण की चर्चा करते

आये थे। वे इतिहास के बहुत बड़े ज्ञाता थे और प्राचीन घटनाओं के प्रकाश में आगामी घटनाओं के स्वरूप का बहुत कुछ सही अनुमान कर सकते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि वर्तमान दुनिया अब ज्यादा दिन तक इस हालत में नहीं रह सकती और मानव-जाति शीघ्र ही एक नये युग में प्रवेश करेगी। इसका विवेचन करते हुये उन्होंने २५ वर्ष पूर्व लिखा था—

"इस समय दुनिया में बड़े जोरदार परिवर्तन हो रहे हैं, तो भी दिन पर दिन यही दिखलाई पड़ता है कि वे आने वाली घटनाओं के लक्षण मात्र हैं। हम इस समय एक ऐसे महान् क्रान्तिकारी युग में जीवित हैं जिसकी तुलना का युग अब तक के इतिहास में शायद ही मिल सके। यह क्रान्ति अपना नियत कार्यक्रम पूरा करके ही रहेगी। तब तक हमारी पृथिवी पर शान्ति या समझौते की कोई आशा नहीं।

'हमें समझ रखना चाहिये कि पुरानी दुनिया अवश्य मरेगी, चाहे यह बात हमको पसन्द हो या न हो। जो लोग इस पुरानी दुनिया के सबसे बड़े समर्थक थे, नष्ट होकर भूतकाल की चीज बन चुके हैं। हमको यह भी समझ लेना चाहिये कि एक युग समाप्त हो चुका है और इस खून-खराबी के बीच में होकर हम नये युग में प्रवेश कर रहे हैं। मैं यह तो नहीं कह सकता कि यह नया युग अवश्य ही बहुत अच्छा होगा, पर मैं इतना जानता हूँ कि वह बिल्कुल भिन्न प्रकार का होगा। संसार के नर-नारी भाग्य के खिलौने बन गये हैं और नाश के भँवर में खिचते चले जा रहे हैं। हम नहीं जानते कि हम किधर जा रहे हैं। फिर भी इतना तो हम कह ही सकते हैं कि हमारी आज की दुनिया हमारी आँखों के सामने ही तेजी से बदल रही है, और कोई नहीं कह सकता कि इसकी जगह हमें क्या देखने को मिलेगा।"

नेहरूजी ने एक अन्य अवसर पर इस महान् परिवर्तन के सञ्चालनकर्ता (अवतार) के विषय में भी अपने विचार प्रकट किये थे—

"मनुष्य-समाज के उद्धार के लिये समय-समय पर इस देश और दूसरे देशों में भी महापुरुष पैदा होते रहते हैं। पर ऐसे किसी महापुरुष की अपेक्षा वह भावना बड़ी है, जिसको वह अपने जीवन के व्यवहार में पूरी करके बनाता है। ऐसे महापुरुषों को लोग 'अवतार' कहते हैं। इस युग का 'अवतार' वह भावनाएँ ही है, जो कि मनुष्य-समाज के सुधारने के लिये प्रकट हो रही हैं। आज भी वह भावना जिसको अवतार कहा जा सकता 'सामाजिक-न्याय' की है। आइये, इस भावना रूपी अवतार के सन्देश को हम सुनें और उसके द्वारा होने वाली सामाजिक क्रान्ति के हम उपयुक्त साधन बनें। इससे मनुष्य का जीवन बदल जायगा और यह संसार मनुष्यों के निवास के योग्य अधिक उपयुक्त बन जायगा।"

नेहरूजी ने अवतार को प्रधानतया भावना के रूप में बतलाया हैं और उसमें कुछ गलती नहीं है। जब तक लोगों की भावनायें जागृत नहीं होंगी तब तक वे किसी महापुरुष के पीछे चलने को तैयार न होंगे। यह जनता की भावना ही हैं जिसके आधार पर वे एक अपने जैसे नर-तन धारी को अपने से बहुत ऊँचा, ईश्वर के समान मान लेते हैं। पर उपर्युक्त उद्धरण में जो यह कहा गया है कि भावना अवतार से बड़ी होती है, उसमें दो पक्ष हैं और दोनों ही ठीक हैं। जैसे ईश्वर को निराकार माना जाता है और अधिकांश ज्ञानी पुरुष निराकार-पक्ष का ही समर्थन करते हैं, पर सामान्य मनुष्य निराकार ईश्वर की उपासना अर्चना, भक्ति ठीक ढङ्ग से नहीं कर सकता, इसलिए वह उसके साकार रूप को ही मानता है, चाहे उसमें वास्तविकता का अंश कितना ही हो। यही बात 'अवतार' के विषय में है। चाहे भावना ही मुख्य वस्तु

हो, पर जन-सामान्य उस सूक्ष्म और केवल बुद्धिगम्य तत्त्व को ठीक तरह हृदयंगम नहीं कर सकते, इसलिये भावना को तभी स्वीकार करते हैं जब उसकी प्रेरक शक्ति को प्रत्यक्ष रूप में देख लेते हैं। दोनों स्थितियों में कार्य एक ही होता है पर ज्ञानी भावना की उच्चता से अधिक प्रभावित होता है और सामान्य बुद्धि वाला उसके सञ्चालक अथवा नेता को प्रमुख मानकर उसका अनुसरण करता है।

सूर्योदय पूर्व दिशा में ही होगा--

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर एक दिव्य दृष्टि रखने वाले महामानव थे। वे मानवता के पतन को देखकर बड़े खिन्न होते थे और आध्यात्मिकता की भाषा में लोगों को पाप से मुक्त होने की प्रेरणा देते रहते थे। वे संसार की वर्तमान अवस्था को बहुत बचनीय और एक धार्मिक व्यक्ति की दृष्टि से कलङ्कपूर्ण मानते थे। उनकी सम्मति थी कि—

'पाप के भार से लदी हुई वसुन्धरा की कलुषित धूल पर आज नभ से रक्त की धारा बरस रही है। पाप का पंक हलाथे मानस को कलुपित कर रहा है और रुधिर के चिन्ह हमारे हाथों पर दीख पड़ने लगे हैं। रुधिर के इन धब्बों को हम कब तक धोते रहेंगे ?'

निस्सन्देह युद्ध और किसी भी देश के निरपराध व्यक्तियों का हत्याकाण्ड धार्मिक कहलाने वोले मनुष्य के लिए कलंक स्वरूप ही है। ऐसे व्यक्ति कभी भगवान की दृष्टि में पाप मुक्त नहीं माने जा सकते।

महाकवि ने 'अवतार' के सम्बन्ध में भी यह विश्वास प्रकट किया है कि वह भारतवर्ष में ही प्रकट होकर संसार के उस भ्रम और अज्ञान को दूर करेगा, जिसके कारण आज यह दुनिया सर्वनाश के

अथाह के गढ़े में कूदने की तैयारी कर रही है। उन्होंने अपनी ८० वीं वर्षगाँठ पर एक सन्देश देते हुये कहा था—

"एक समय था जब कि मैं यह विश्वास करता था कि सभ्यता का स्रोत योरोप के भीतर से उत्पन्न होगा। पर आज मैं इस नाशवान जगत को छोड़ने की तैयारी कर रहा हूं, मेरे उस दृढ़ विश्वास के टुकड़े-टुकड़े हो चुके हैं। आज मेरी एकमात्र अन्तिम अभिलाषा यही है कि 'उद्धारकर्ता' का आविर्भाव इस 'अकिंचन देश' में ही होगा। पूर्व दिशा से ही उसका सन्देश समस्त संसार में फैलेगा और मानव-जति ने हृदयों को पूर्णतया आशा से भर देगा।"

'जैसे-जैसे मैं आगे बढ़ता जाता हूं, पीछे की तरफ मुझे आधुनिक सभ्यता का भवन टूटकर खण्डहर बनता दिखलाई पड़ता है। वह मानवीय असफलता के एक बहुत बड़े घूरे की तरह जान पड़ता है। पर यह देखकर भी मैं मनुष्य में अश्रद्धा नहीं कर सकता। ऐसा करना बहुत बडा पाप होगा। इसके विपरीत मैं आशा करता हूँ कि जब पश्चिम के सत्ताधारियों का युद्धोन्माद समाप्त हो जायगा और संसार का वातावरण स्वच्छ होकर सेवा और त्याग की भावना का उदय होगा, तो संसार के इतिहास में एक नया ही अध्याय आरम्भ होगा।

"सम्भवत: प्रभात इसी पूर्वीय क्षितिज पर होगा, जहाँ से सूर्योदय होता है। तब एक नया दिन आयेगा जब कि मनुष्य समस्त विघ्न-बाधाओं को नाँघकर अजेय भाव से फिर अपने प्राचीन गौरव के मार्ग पर अग्रसर होगा और अपने खोये हुये उत्तराधिकार को प्राप्त करेगा।"

भारतीय सन्तों के उद्गार—

भारत के धार्मिक क्षेत्र वाले व्यक्ति तो, चाहे वे बड़े हों या छोटे, विद्वान् हों या सामान्य, किसी न किसी तरह प्रत्यक्ष अवतार में विश्वास रखते ही हैं। जब तक देश में राम-कृष्ण और शिव की भक्ति धारा प्रवाहित है, तब तक यहाँ 'अवतारों' में श्रद्धा का अभाव नहीं हो

सकता। जिन लोगों का अटल विश्वास है कि भगवान हाथी के पुकारने पर उसकी रक्षार्थ आये थे, उन्होंने ध्रुव, प्रह्लाद जैसे बालकों की प्रार्थना को स्वीकार किया था, द्रौपदी की लाज बचाने को एक के स्थान पर हजारों साड़ियाँ उपस्थित करदी थीं, वे यह क्यों नहीं मानेंगे कि यदि भक्तों पर आपत्ति आयेगी तो भगवान आज भी उनकी रक्षार्थ उसी प्रकार अवश्य खड़े होंगे ? इस लिए यहाँ के धार्मिक जन और साधु-महात्मा सदैव भगवान के आगमन की राह देखते ही रहते हैं और आज कल तो संसार में दानवता की प्रबलता देखकर उनका विश्वास और भी सुदृढ़ हो रहा है।

सूरदास आदि प्राचीन सन्तों के सतयुग और अवतार सम्बन्धी भविष्य कथनों की चर्चा तो लोग करते ही रहते हैं, पर आजकल भी अनेक भगवद्-भक्त, तपस्वी महापुरुष यही कहते कि संसार की दुर्दशा को मिटाने और धर्म राज्य की स्थापना करने के लिए 'दैवी-शक्ति' का आविर्भाव शीघ्र ही होगा। इस सम्बन्ध में पञ्जाब प्रदेश के एक महापुरुष का नीचे उद्धृत विवेचन हमको विशेष रूप से युक्तियुक्त जान पड़ता है जो हमने अपने 'सतयुग' मासिक पत्र में अब से कितने ही वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था—

'प्रत्येक युग में दूसरा युग वर्तता है, यह प्रकृति का नियम है। सतयुग में भी कलियुग वर्ता था। इसी प्रकार अब कलियुग में सतयुग वर्तेगा। सृष्टि की वर्तमान अवस्था ऐसी हो गई है कि यदि अब सतयुग न आवे तो यह अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकती। मनुष्यों की शक्तियाँ और मनोवृत्तियाँ ऐसी हीन होती जा रही हैं कि अब यदि नया युग न आवे तो मानव-जाति सौ-दो सौ वर्ष में नष्ट प्रायः हो सकती है। और यह भगवान को इष्ट नहीं। इसलिये काल-चक्र के कायम रहने के लिये भगवान बीच में 'सतयुग' रूपी टेका (सहारा) लगाकर इसे स्थिर रखने की व्यवस्था करेंगे।

"घोर कलियुग का एक मुख्य कारण संसार की जन-संख्या का बहुत अधिक बढ़ जाना भी है। संसार में शान्ति स्थापना करने के लिए सबसे पहली बात यह है कि यह बढ़ी हुई जनसंख्या कम हो। इसके लिये मनुष्य यदि विवेक से काम लेवें तो स्वयं भी सतयुग ला सकते हैं। और यदि उन्होंने विवेक और संयम से काम न लिया तो भगवान अपनी प्रकृति द्वारा स्वयं नये युग की स्थापना करेंगे।

"ऐसा परिवर्तन होने से रोटी का झगड़ा खतम हो जायगा और तब दूसरे देशों को विजय करने की लालसा ही शेष नहीं रहेगी। सबको स्वराज्य प्राप्त हो जायगा, मजहबों के झगड़े खतम हो जायेंगे, ऊँच-नीच का प्रश्न हल हो जायगा। इसलिये सामाजिक वैमनस्य भी न रहेगा। सबको मनुष्य समझा जायगा। भ्रातृभाव की स्थापना हो जायगी। और राजनैतिक तथा आर्थिक गुत्थियाँ ऐसी हल हो जायेंगी कि न तो कोई भूखा रहेगा न किसी पर अन्याय हो सकेगा। फिर एक बार धर्म-राज्य स्थापित हो जायगा।"

श्री विश्वरञ्जन ब्रह्मचारी ने 'जीवन-लक्ष्य' नामक बंगला ग्रन्थ में लिखा है—

"जगदीश्वर की जिस प्रकार की प्रेरणा मिली है उससे अब हमको हताश होने का कोई हेतु नहीं। इस घोर मिथ्यायुग (कलियुग) में ही सत्य-युग का प्रकाश बिखर जायगा। अब पुनः इस देश में ऋषि-युग आयेगा। फिर यज्ञधूम से भारत-गगन पवित्र होगा। पुनः त्यागी, तपस्वीयों ब्राह्मणों के प्रणवनाद से, अमोघ आशीर्वाद से लोगों के प्राण संजीवित हो उठेंगे। फिर यह भारत ही समग्र वसुधा को ज्ञान-प्रकाश द्वारा 'अमृत' का पथ-प्रदर्शन करा देगा—लक्ष्य वस्तु का का अनुसन्धान बता देगा। वह दिन आयेगा, अवश्य ही आयेगा।"

हिमालय के सिद्ध महात्मा स्वामी शान्तानन्दजी ने यह आशाजनक सन्देश दिया है कि 'साधना में संलग्न कलि जीव इस समय

विकास-क्रम के उच्च शिखर पर आरोहण करके आगामी धर्म-युग के आगमन के अवसर पर भगवत्-चरण वन्दना की प्रतीक्षा में हैं। प्रभु प्रेम-भक्ति-शरणागति रूपी नौका को स्वयं कर्णधार बनकर पार लगायेंगे। हमें बालक बन कर उस परम-पिता का आश्रय ही ग्रहण करना आवश्यक है।"

राधास्वामी सम्प्रदाय के प्रधान गुरू स्वामी ब्रह्मशंकर (हजूर महाराज) ने भी आध्यात्मिक-जगत की सूक्ष्म गति का निरीक्षण करके बतलाया है कि 'हमारा विश्वास है कि निकट भविष्य में ही आध्यात्मिक क्षेत्र में से निकलकर शक्तिशाली लहरें पृथिवी पर आधिपत्य जमाने वाली हैं। इस समय हम जितनी आपत्तियों का अनुभव कर रहे हैं, तब वे सब गायब हो जायेंगे और 'सतयुग' से भी बढ़ कर प्रेम, आनन्द और कल्याण की दशा सर्वत्र व्याप्त हो जायगी। जो आध्यात्मिक शक्तियाँ इस समय छिपी पड़ी हैं तब वे बहुत कुछ प्रकट हो जायेंगी।'

बङ्गाल के भगवन्नाम प्रचारक तथा पतितोद्धारक महाप्रभु जगद्बन्धु के उद्गार हैं—"माँ! महाप्रलय आने वाली है। तेरे नाम की रट लगे तो काल-पाश का जाल कटे और सृष्टि की भी रक्षा हो। कलियुग की अवधि पूरी हो चुकी अब तनिक भी देर न लगा। अब हजार वर्ष मेरी लीला चलेगी। इस बार मैं सबको भगवान का नामामृत चखाऊँगा, तभी मेरा नाम 'जगद्बन्धु' सार्थक होगा। मेरे इस महाव्रत का उद्यापन इसी बीसवीं शताब्दी के भीतर पूर्ण रूप से हो जायगा।'

पूर्वीय-भारत के एक प्रसिद्ध आध्यात्मिक नेता स्वामी असीमानन्द सरस्वती का कहना है कि—'संसार में जितने भी दल, मजहब, जातियाँ हैं वे सब मेरे ही हैं। जब ऐसे विभिन्न प्रकार के व्यक्ति मेरे पास आते हैं तो वे सब मुझे अपने आत्मस्वरूप ही जान पड़ते हैं। मुझे इस

समय भगवान की अनुपम सत्ता प्रसारित होती जान पड़ती है और वह दिन समीप ही है जबकि समस्त संसार प्रेम, समता और भ्रातृभाव के सन्देश से गूँज उठेगा। यह दैवी-संगीत इस भारत-भूमि से ही आरम्भ होगा।'

ईश्वर एक ही रहेगा—

सर्व धर्म सम्मेलन' के सभापति सर फ्रान्सिस यंगहस्वैण्ड ने एक घोषणापत्र द्वारा नवयुग आगमन का सन्देश दिया है और इसके लिये धार्मिक मतभेदों को त्यागने की सम्मति दी है —

'संसार का पुनर्संङ्गठन सूक्ष्म-जगत में आरम्भ हो गया है। इसके पहले एक श्रेष्ठ संसार की रचना के लिए इतना अधिक उत्साह और तत्परता कभी दिखलाई नहीं पड़ी थी। संसार में नवीन युग की स्थापना के लिये सबसे आवश्यक बात सब धर्मों के अनुयायिओं की आध्यात्मिक प्रेरणा ही है। जिस प्रकार यह 'नवयुग' किसी एक देश के निवासियों की कोशिश से नहीं आयेगा वरन् उसके लिये सभी देश वालो को चेष्टा करनी पड़ेगी, इसी प्रकार यदि संसार के सब धर्मों के अयुयायी विश्व-कल्याण के लिये आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न करना चाहते हैं तो उनको भी मिलकर एक होना पड़ेगा। इस सम्बन्ध में फ्रान्स के महान दार्शनिक 'हेनरी-वर्गसाँ' का यह कथन बहुत ही महत्व का है कि 'तमाम मनुष्यों का ईश्वर एक ही है। उसकी एक ही झलक द्वारा, जो सबको प्राप्त हो सकनी सम्भव है—पारस्परिक कलह और युद्ध का अन्त हो जायगा।'

बर्गसन के कथन से एक बहुत महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह भी निकलता है कि नये 'अवतार' को संसार में नया युग स्थापित करने के लिये किसी प्रकार की हिंसा और मार-काट का आश्रय नहीं लेना

पड़ेगा। वरन् उनके आध्यात्मिक प्रभाव से ही सब युद्ध-प्रिय व्यक्ति अभिभूत हो जायेंगे और संसार में शान्तियुग का आगमन सम्भव हो जायगा। हिन्दू धर्म में जितने अवतारों का वर्णन है उनमें बुद्धदेव के अतिरिक्त सबको दुष्ट-दमन करके ही धर्म की रक्षा करनी पड़ी है। पर मालूम होता है कि नया अवतार, जिसे बर्गसाँ सम्भवतः ईसामसीह का द्वियीय आगमन मानता हो और भारतवासी जिसका नामकरण 'कल्कि' करना पसन्द करते हैं, अपनी आध्यात्मिक शक्ति और प्रेम-भावना द्वारा ही सभी देशों और धर्मों के अनुयायिओं को स्ववश कर लेंगे।

'कल्कि पुराण' में उनके युद्धों का जो वर्णन किया गया है उसे अधिकाँश विचारक अलंकारात्मक मानते हैं और उसमें दिये गये योद्धाओं नामों का अर्थ भी भिन्न रूप से करते हैं। उदाहरण के लिये एक धर्मप्रेमी सज्जन ने 'शशिध्वज' का अर्थ 'चन्द्र जिसकी ध्वजा में हो' अर्थात् वाणासुर या महाकाल किया है। इसी प्रकार 'रुधिराश्व' अर्थ 'जिसका घोड़ा रक्त जैसा लाल हो' होता है। इसका आशय प्रातः और संध्या के उस समय से है जबकि आकाश में लाली छा जाती है। 'शैयाकर्ण' अर्थात् 'जिसके दोनों कान शैया जैसे हों अर्थात् 'दिवस' 'सुशान्ता' अर्थात् जिसकी गोद में महाशान्ति प्राप्त होती हो अर्थात् कालरात्रि मृत्यु। इसी प्रकार 'कल्कि' की पत्नी 'पद्मा' के माता पिता के लिए 'ब्रहद्रथ' का अर्थ 'मन', 'कौमुदी' का इच्छा और 'सिंहल' का 'वक्षस्थल' लगाया गया है।

हम यह नहीं कहते कि पाठक इन्हीं अर्थों को ठीक मान लें, पर इसको लिखने से हमारा प्रयोजन इतना ही हैं कि 'कल्कि पुराण' में 'कल्कि' के युद्धों का जो वर्णन किया गया है उसे स्थूल जगत से ही सम्बन्धित नहीं समझना चाहिए चाहिए। अनेक उच्चकोटि के विद्वानों ने भी यह सम्मति प्रकट की है कि 'कल्कि' के हाथों में जिस

खड्ग (तलवार) का होना शास्त्रों में लिखा गया है, वह लोहे से बनी साधारण तलवार नहीं है वरन् 'ज्ञान रूपी खड्ग' है, जिससे संसार भर के लोगों के मस्तिष्क को एक ही साथ बदला जा सकता है। इसको अलंकार की भाषा में 'मस्तष्क काटना' भी लिख सकते हैं। इसलिए हमको बर्गसाँ के इस कथन में बहुत कुछ सार दिखाई पड़ता है कि निकट भविष्य में कोई ऐसा महामानव प्रकट होना सर्वथा सम्भव है, जिसकी एक ही झलक लोगों की पारस्परिक कलह और युद्धों का अन्त कर देगी।

अवतादवाद की प्रतिक्रिया—

'अवतार' के प्रकट होने की इस नवीन भावना ने हमारे देश में गत पचास वर्षों के भीतर विशेष जोर पकड़ा है और इसी बीच में अनेक विचारकों, साधकों और धार्मिक सज्जनों का ध्यान इधर आकर्षित हुआ है। हिन्दी भाषी सामान्य पाठकों में इसका प्रचार 'चेतावनी' नामक छोटी-सी पुस्तिका से हुआ, जो सन् १९३० के आस-पास प्रकाशित हुई थी। इसमें महाभारत के एक श्लोक के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया था कि वर्तमान कलियुग १ अगस्त १९४३ को समाप्त होकर उस 'समय से 'सतयुग' आरम्भ हो जायगा। लोगों को यह बात कुछ अनोखी-सी जान पड़ी। क्योंकि आमतौर से वे यही सुनते आये थे कि कलियुग चार लाख ३२ वर्ष का होता है और उसमें से अभी पाँच हजार वर्ष के लगभग ही व्यतीत हुये हैं। इसलिये जहाँ सर्व-साधारण इस पुस्तिका को कौतूहलपूर्वक पढ़ने लगे वहाँ पुराने ढङ्ग के पण्डित उसका 'विरोध' भी करने लग गये और 'सतयुग और कल्कि अवतार' की बात का प्रचार करने वालों तथा उस पर विश्वास करने वालों को 'मूर्ख' की पदवी देने लगे। इस वाद-विवाद में उक्त पुस्तिका का प्रचार काफी हो गया और जगह-जगह उसकी चर्चा सुनाई पड़ने लगी।

पर यह ख्याल ठीक नहीं कि 'कल्कि' का प्रचार 'चेतावनी' के लेखक ने ही आरम्भ किया। कल्कि अवतार' का उल्लेख तो 'भागवत' तथा सभी पुराणों से मिलता है और साथ में यह भी कह दिया है कि वह भविष्य में होगा। इस आधार पर हमेशा ही उनके प्रकट होने की भावना किसी न किसी व्यक्ति के मन में उत्पन्न हो जाती थी, और उसकी बातें सुनकर सर्व-साधारण में उसकी चर्चा होने लग जाती थी।

इस प्रकार की चर्चाओं का फैलने या फैलाने का तरीका पुराने जमाने में यह था कि ऐसा व्यक्ति एक चिट्ठी लिखकर बाँटता रहता था कि भगवान ने मुझे अवतार लेने का सन्देश दिया है और उसका प्रचार करने का आदेश दिया है। इसलिए जिसे यह चिट्ठी मिले वह भी इस प्रकार की कम से कम दश चिट्ठी लिखकर बाँट दे। जो ऐसा न करेगा उसे पाप लगेगा।' पिलखुवा (मेरठ) निवासी भक्त राम शरण दासजी ने अवतार सम्बन्धी एक लेख में बतलाया है कि 'जब मैं बाल्यावस्था में अपने माता-पिता के साथ तीर्थ-यात्रा को गया था तो सम्भल (मुरादाबाद) में हमने बाजार में एक छोटी सी पुस्तक बिकती देखी जिसका नाम था 'भगवान का अवतार हो गया है।' इसके कुछ समय बाद जब मैं एक पाठशाला में पढ़ता था तो किसी मनुष्य ने मुझे एक चिट्ठी दी। उसमें लिखा था 'एक पहाड़ पर सर्प निकला। उसने कहा कि अब भगवान का अवतार हो गया है और वे दुष्टों को मारेंगे' आखीर में लिखा था कि 'जो इसे पढ़े इसी प्रकार की दश चिट्ठी बाँटे, नहीं तो गोहत्या का पाप लगेगा।' हमने गोहत्या के पाप से डरकर दस चिट्ठियाँ लिखकर बाँटी।

अब भी इस प्रकार की एक सूचना हमारे सामने है। यह एक छपे पर्चे के रूप में है जो लगभग एक मास पूर्व हमको एक बालक से मिल गया था। इसमें लिखा है—

'साक्षात् बैकुण्ठनाथ भगवान बालाजी (आन्ध्र प्रदेश) के मंदिर में एक बड़ा सर्प बाहर से आया। उस समय भगवान की पूजा करने वाले वहीं पर थे। वे उस सर्प को देखकर भय से अन्दर ही किवाड़ की आड़ में छिप गये। तब सर्पराज ने एक वृद्ध पुरुष का रूप धारण करके, उन छिपने वाले भक्तों को सामने बुलाकर कहा, मेरे प्यारे भक्तो! तुम मेरे से मत डरो, मैं कुछ ही दिनों के भीतर कलियुग में अवतार धारण करूँगा और दुष्ट पाप-कर्म करने वालों को कुचल कर न्याय का पालन करूँगा।' और भी कई बातें लिखी हैं। और अन्त में यह भी कह दिया गया है कि जो 'इसकी २ हजार या कम से कम २५ प्रतियाँ बाँटेगा तो २५ दिन में उसकी मनोकामना पूर्ण होगी।'

धार्मिक बातों के प्रचार करने का यह एक पुराना तरीका है। इन बातों के सत्य अथवा झूंठ होने के सम्बन्ध में विवाद उठाना तो निरर्थक है, पर इससे इतना प्रकट हो जाता है कि भारतीय जनता की मनोभावना पर 'अवतार' का प्रभाव बहुत समय से चला आया है।

दिल्ली का 'निष्कलङ्की-दल–

इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण दिल्ली और आस-पास के स्थानों में पाया जाने वाला 'निष्कलङ्की-दल' है। इसकी स्थापना को तो अब अस्सी वर्ष अगभग हो गये होंगे पर सन् १९३८—३९ के लगभग जब सतयुग-आन्दोलन बढ़ा तो इसकी भी अनेक शाखायें खुल गईं और जगह-जगह धूमधाम से कीर्तन-समारोह होने लग गये। इस प्रकार का एक कीर्तन, जो रात भर होता रहा, मैंने भी दिल्ली में देखा था। करीब ४०—५० नवयुवक, अधेड़ और वृद्ध बड़े जोश और भक्ति-भाव से 'कल्कि भगवान' के एक बड़े चित्र के सम्मुख घण्टों तक तरह-तरह के भजन गाते रहे। उनके उत्साह, तल्लीनता और आन्तरिकता को देखकर यही प्रतीत होता था कि उनको 'कल्कि' के प्राकट्य का पूरा विश्वास है और वे उनके नाम पर कुछ त्याग, परमार्थ करने

करने को सहर्ष तैयार है। जब मैं वहाँ पर पहुंचा तो वे गा रहे थे—

बोलो जय जय जय कल्कि प्यारे।
मुकुट की शोभा अति प्यारी है जय जय जय सम्भल वारे ।
मस्तक पर मलयागिरि चन्दन जय गौअन के रखवारे ॥
कानन कुण्डल अति प्रिय लागें जय घोड़े चढने वारे॥
कल्कि-मण्डल नित प्रति गावे, प्रकटो युग पलटन हारे॥

मैंने देखा कि उनमें से अधिकांश श्रमजीवी वर्ग के अल्पशिक्षित व्यक्ति थे, जो उच्च धार्मिक सिद्धान्तों के विषय में प्रायः अनजान थे। पर इस प्रकार कीर्तन और अवतार में भक्ति-भाव पैदा हो जाने से उनका थोड़ा बहुत सुधार अवश्य हुआ था और भावों में शुद्धता आई थी। अनेक व्यक्ति इस तरह के आयोजनों को व्यर्थ और समय का अपव्यय बतलाते हैं, पर मैं नहीं समझता अगर वे महीना में एकाध दिन ऐसे कीर्तन में सम्मिलित हो जाते हैं तो इसमें लाभ के बजाय कोई हानि कही जा सकती है। भारत के सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल भी उस दल के सञ्चालकों से परिचित थे और उन्होंने इस सम्बन्ध में एक लेख बङ्गला भाषा की मासिक पत्रिका 'बङ्गवाणी' में सन् १९२४ में प्रकाशित कराया था। उसमें उन्होंने इस दल की कार्यवाही में कोई हानिकारक बात नहीं बतलाई थी। उस लेख में कहा गया है—

'दिल्ली में एक 'निष्कलङ्की दल' का आविर्भाव हुआ है। आज प्रायः ३० साल से यह दल दिल्ली में है 'सतनामी सम्प्रदाय' की तरह यह दल भी बहुत ही क्षुद्र' (अल्पसंख्यक) है। आज तीस साल से यह दल भारत में सतयुग लाने के लिये परमात्मा से प्रार्थना करता आया है। वे विश्वास करते हैं कि कलियुग समाप्त हो गया है और शीघ्र

ही कल्कि भगवान प्रकटहोंगे। किन्तु इस 'शीघ्र' का अर्थ क्या है—अर्थात् किस ठीक समय पर. भगवान प्रकट हो जावेंगे, यह बात वे लोग नहीं कह सकते।

'वे यह भी कहते हैं कि इस अवतार का आचरण ऐसा होगा कि जिस पर देश विदेश में कोई उँगली न उठा सकेगा। अन्यान्य युगों के अवतारी पुरुषों के आचरण ऐसे नहीं थे कि उनमें कोई दोष न दिखाया जा सके। पर इस बार उनका आचरण ठीक भगवान की तरह कलंकरहित होगा। इसी कारण उनको 'निष्कलङ्की अवतार' कहा जाता है। नये अवतार तलवार धारी होने पर भी किसी को अपने हाथ से नहीं मारेंगे। वे किसी के विरुद्ध अस्त्र-शस्त्र ग्रहण न करेंगे। खल प्रकृति के लोग आपस में ही लड़-भिड़कर खत्म हो जायेंगे। जो बचेंगे उनको रोग-महामारी और अकाल हजम कर जायेंगे। तरह व्यथित पृथ्वी भारमुक्त हो जायगी और केवल सतोगुणी प्रकृति के जीव ही बचेंगे।'

'निष्कलंकी दल' के संस्थापक पं० से बालमुकुन्दजी एक दिन मेरी (श्री सान्याल की) मुलाकात हुई थी। उनको पबलिक 'हनूमान जी' कहा कहती थी। वे कभी-कभी दिल्ली की सड़को पर पुकार उठते थे—'भगवान का अवतार हो गया है। पापी लोगो! सावधान। सज्जनो! अन्तः-करण से भगवान की शरण हो जाओ। जो पाप कर चुके हो उसके लिये माफी मांगो और आगे के लिए तोबा करो। मगर पापियों का निस्तार नहीं।'

श्री० सान्याल की भेंट बालमुकुन्द जी से सन् १९१४–१५ के लगभग हुई थी। पर वे सन् १८८५ के आसपास से ही दिल्ली में 'कल्कि अवतार' की उपासना और प्रचार कर रहे थे। उन्होंने अपने घर में कल्कि भगवान की एक पीतल की मूर्ति स्थापित कर रखी थी। नित्य प्रति उसकी पूजा करते और यह भजन गाते—

आवन-आवन कह गये जी तुम कर गये कौल अनेक ।
माधुरी मूरत मुख रेख, सम्भल वाले आना हमारे देश ।।
देखत-देखत बाट थारी म्हारे रूपा हो गये केश ।
गिनत-गिनत म्हारी घिसी अँगुरियों की रेख ।।
माधुरी मूरत लम्बो केश ।
सम्भल वाले आना हमारे देश ।।

बालमुकुन्दजी बड़े गोभक्त भी थे और वास्तव में उनके प्रचार कार्य का मुख्य उद्देश्य गो रक्षा ही था। वे प्रायः हनुमान जी की सी गदा कन्धे पर रखकर शाम के वक्त बाजारों में निकलते और यह ऐलान करते थे—

'सृष्टि तू गौओं से द्रोह करना छोड़ दे वरना तुझे विनाशकारी महाभारत का सामना करना पड़ेगा। कल्कि भगवान गौओं की रक्षा विरद के साथ घोर विध्वंसकार रूप में आ रहे हैं। वे सतयुग की स्थापना करेंगे। जो लोग भगवान के नाम के नशे में चूर होंगे वे आत्मिक ऐश्वर्य से भरे पूरे हो जायेंगे। माद्दा-परास्त (भौतिकवादी) कूड़ा-करकट की तरह झाड़ू से बुहारे जायेंगे।'

बालमुकुन्दजी का यह भी कहना था कि 'भगवान महाराज' के प्रकट होने के पहले हजारों व्यक्ति ऐसे निकलेंगे जो कहेंगे कि हमीं कल्कि हैं। सच बात प्रायः यह भी देखने में आई कि 'गुरुगीरी' की कामना वालों को कल्कि भगवान के नाम से विशेष घबराहट होती है, क्योंकि वे स्वयं 'भगवान' बन कर चेलों को मूड़ना चाहते हैं। 'कल्कि' के प्रकट होने पर ये सब 'नकली भगवान' खतरे में पड़ जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं।'

ठाकुर दयानन्द का अरुणाचल मिशन—

विश्व-प्रेम के प्रचारक ठाकुर दयानन्द का आविर्भाव आसाम के

'सिलचर' नामक स्थान हुआ था और वहीं उन्होंने सन् १९०९ में 'अरुणाचल आश्रम' की स्थापना की। इसमें 'आनन्दमयी' (काली) और 'अरुणाचलेश्वर' (शङ्कर) की मूर्तियां) स्थापित की गईं। वे ब्राह्मण और अछूत, स्त्री तथा पुरुष, छोटे तथा बड़े के भेदभाव के विरुद्ध थे और उन्होंने अपने कार्यक्रम में सब को भाग लेने का समान रूप से अधिकार दिया था। उनका मुख्य उद्देश्य 'संकीर्तन' द्वारा जनता में आध्यात्मिक भावों की वृद्धि करना था।

उनके आश्रम में कितने ही आधुनिक शिक्षा प्राप्त नवयुवक सम्मिलित हो गये। उनमें से अधिकांश ने संन्यास ग्रहण कर लिया। कुछ महिलायें भी सन्यासिनी बन गईं। जब इनका दल गाँवों में घूमकर भगवद्-भक्ति के साथ ही समाज-सुधार, समान अधिकार, राजनैतिक, स्वाधीनता आदि का प्रचार करने लगा तो सरकारी अधिकारियों की वक्रदृष्टि इन पर पड़ी। उधर 'ऊँची जातियों' के कितने ही लोग, विशेषत: 'ब्राह्मण पण्डित' नामधारी भी इनकी अस्पृश्यता निवारण, नारी स्वतन्त्रता जैसी 'समाज विरोधी' मानी जाने वाली प्रवृत्तियों के विरोधी बनकर सरकारी अफसरों को और भी भड़काने लगे। परिणाम यह हुआ कि दो चार वर्ष के भीतर सरकार ने पुलिस और सेना द्वारा इनका आश्रम भङ्ग करा दिया और बहुसंख्यक लोगों को पकड़कर जेल भेज दिया।

पर ठाकुर दयानन्द पर इन घटनाओं का कुछ प्रभाव न पड़ा। वे जेल में रहकर 'भगवान' का कार्य करते रहे। छुटकारा पाने पर उन्होंने फिर संकीर्तन प्रचार आरम्भ किया और देश विदेशों में विश्व-शान्ति का आन्दोलन करने लगे। ठाकुर दयानन्द ने विश्व-प्रेम का जो पौधा लगाया था वह साठ वर्ष का दीर्घकाल व्यतीत हो जाने पर भी अभी तक पनप रहा है। उनका 'अरुणाचल मिशन' कई स्थानों में अपनी शाखायें स्थापित करके मनुष्य मात्र में भ्रातृभाव के सिद्धान्त का प्रचार

कर रहा है। उन लोगों का विश्वास है कि 'यद्यपि ठाकुर के भौतिक शरीर का तिरोधान अब से बीस वर्ष पूर्व हो चुका है, पर वे वास्तव अमर है और निरन्तर अपने भक्तों के द्वारा 'विश्व-प्रेम' की ज्योति को प्रकाशित रखेंगे।' ये सब 'भक्तगण' ठाकुर दयानन्द को एक दैवी सत्ता के रूप में ही मानकर अभी तक उनके 'मिशन' को जीवित रखे हुए हैं।

माता आनन्दमयी—

यद्यपि माता आनन्दमयी ने सार्वजनिक रूप से 'अवतार' जैसी कोई घोषणा या कार्य नहीं किया है और वे अपने अनुयायिओं को धार्मिक उपदेश ही दिया करती हैं, पर उनके सम्बन्ध में उनके सहकारियों ने कितनी ही ऐसी चमत्कारपूर्ण बातें प्रचारित कर रखी हैं, जिनसे हजारों लोग उनको आदि शक्ति जगदम्बा का अवतार ही मानते हैं। कहा जाता है कि—'विवाह होकर अनेक वर्ष तक पति के साथ रहने पर भी कभी उनका दाम्पत्य सम्बन्ध सम्भव न हो सका।'

माता आनन्दमयी के आध्यात्मिक उपदेश काफी सारगर्भित होते हैं, यद्यपि वे बाल्यावस्था में पढ़ी-लिखी अथवा सुशिक्षिता नहीं थीं। जिस प्रकार श्री रामकृष्ण परमहंस अनपढ़ होने पर भी आत्म-ज्ञान की ऊँची से ऊँची शिक्षा देते रहते थे और सामान्य बातचीत में ही धर्म के सूक्ष्म तत्त्वों का निरूपण कर देते थे, कुछ उसी प्रकार की स्थिति माता आनन्दमयी की है। इसलिये अनेक बड़े-बड़े शिक्षित और पदाधिकारी व्यक्ति और उच्च पदाधिकारी व्यक्ति उनके अनुयायी बन गये हैं, जिनमें एक बहुत बड़ा भाग बङ्गालियों का ही है।

सत्य समाज का अवतारवाद—

'अवतारवाद' का सबसे नया उदाहरण वर्धा (मध्य प्रदेश) के 'सत्य समाज' और उसके सञ्चालक 'स्वामी सत्यभक्तजी' का है। हम तो समझते थे कि गत तीस वर्षों में कई सौ 'अवतारों' के हो जाने पर

अब यह आन्दोलन समाप्त हो गया होगा, पर 'सत्य-समाज' के मुखपत्र 'जङ्गम' को देखने से पता चलता है कि उसके सञ्चालक स्वामी सत्यभक्त जी ने इन दो चार वर्षों में ही 'अवतार' की पदवी धारण की है। वैसे हमने स्वामीजी की लिखी पुस्तकें बहुत वर्षों पहले से पढ़ी हैं और उनके धार्मिक विषयों के बुद्धिवादी विवेचन से सभी पाठक बहुत प्रभावित होते हैं। वे धर्म के उसी रूप को मानते हैं जो तर्क और विज्ञान की कसौटी पर सत्य और उपयोगी सिद्ध हो सके। पर न मालूम क्या सोचकर इधर कुछ समय से वे और उनके 'भक्तगण' उन्हें अवतार अथवा पैगम्बर के रूप में प्रकट करने की चेष्टा कर रहे हैं। दिसम्बर १९६८ में 'सङ्गम' पर जो 'जयन्ती विशेषाङ्क' प्रकाशित हुआ है उसमें पृष्ठ २७० प: एक कविता में कहा गया है—

नर-नारायण दयामय सत्यभक्त सरताज।
जन्म धार कर रख लई विश्व-जनों की लाज॥
सत्य शरण का कर दिया सद्गुरु ने उद्धार।
सर्वेश्वर हैं दास के सत्यभक्त अवतार॥

दिसम्बर १९६७ के अङ्क में भी 'अवतार' शीर्षक कविता प्रकाशित हुई है जिसकी कुछ लाइनें इस प्रकार हैं—

वसुधा पर गुञ्जित कलित नियति क्षण,
विहग वृन्द उड़ा करने नभ चीर पोषण॥
भानुरश्मि दौड़ी करने छिन्न सानी को,
बिखेरने अमिट स्नेहोज्ज्वल वाणी को॥
जागृतार्थ सत्येश्वर इत सत्यभक्त प्रकटा।
बन मानवता हमदर्दी दुर्गुणों पर झपटा।
सत्य-समाज प्रवर्तक आया फैलाने सुवास।
सन् अठारह सौ निनानवे के एकादश मास॥
युग-युग जीवो युग पुरुष सत्य ज्योति दातार।
युग सृष्टा युग देव तुम सत्यभक्त अवतार॥

हम स्वामी जी से बहुत समय से परिचित हैं। हममें और उनमें नाम की साम्यता भी है, जिससे भ्रम में पड़कर अनेक व्यक्ति दोनों को एक समझने लगते हैं। इसलिए एक शुभ चिन्तक की हैसियत से हम उनको बतलाना चाहते हैं कि 'पुराणों' में जैसी 'अवतारों' की महानता' गाई है, वैसी ही समय-समय पर उनकी छीछालेदर भी की गई है। इस 'शौक' को त्याग देने में ही भलाई है पुराने जमाने में तो ऐसी बातें किसी हद तक चल भी जाती थीं पर इस बीसवीं शताब्दी में 'अवतार' बनने वालों की व्यङ्ग-विद्रूप और जिल्लत के सिवा और कुछ नहीं मिल सकता।

जिनकी नीयत पर हमको सन्देह नहीं–

सन् १९३९ से १९५० तक 'सतयुग' को प्रकाशित करते हुए अनेक 'अवतारी' सज्जनों का परिचय मिला था जिनमें से कुछ प्रमुख का वर्णन हमने यहाँ तक किया। इसके अतिरिक्त पञ्जाब के स्वामी भोलानाथ जी तथा पटना के 'श्रीनिबास' आदि और भी दो-चार सज्जन ऐसे थे जिनकी नीयत पर हम सन्देह नहीं करते। वे चाहे 'अवतार' हों या न हों, पर हमारा ख्याल है कि वे किसी अन्तः प्रेरणा से ही अपने को ऐसी 'दैवी-सत्ता' समझ बैठे या दूसरों के द्वारा कहे जाने लगे। उन्होंने लोगों को धर्म और सदाचार की शिक्षा भी दी। यद्यपि उनकी बातों की आलोचना की जा सकती है और अनेक 'बुद्धिवादी' उन पर तीक्ष्ण व्यंग-प्रहार कर भी चुके हैं, तो भी हम उन पर दोषारोपण नहीं करते। हम यही मानते हैं कि किसी सामायिक प्रेरणा, सदुद्देश्य के प्रति उत्साह अथवा भ्रम हो जाने के कारण ही वे ऐसा करने लग गये।

ढोंगी अवतारों का पोलखाता--

'पर 'अवतार' की गद्दी पर दावा करने वालों में एक बड़ी संख्या ऐसे व्यक्तियों की है जो आचरण, चरित्र, उद्देश्य की दृष्टि से किसी प्रकार एक 'आध्यात्मिक गुरु' या 'दैवी पुरुष' नहीं माने जा सकते

उन्होंने केवल ढोंग और प्रोपैगेण्डा के जोर से अपने को इस रूप में प्रसिद्ध कर दिया और इस आधार कुछ लोगों के अनुयायी बनाकर अपने को पुजवाते। और रकम इकट्ठी करके ऐश आराम की जिन्दगी व्यतीत करते रहे। हम इस प्रकार के अनाधिकार कार्यों की अधिक चर्चा करना अच्छा नहीं समझते, पर वे लोग जिस प्रकार धोखाधड़ी का व्यवहार करके धर्मप्रेमी जनता को भ्रम और भुलावे में डाल रहे हैं वह धर्म तथा नैतिकता की दृष्टि से पतनकारी है। धर्म-भाव का ह्रास तो अनेक कारणों से हो ही रहा, ये स्वार्थी लोग केवल 'धर्मध्वजी' का ही 'भगवान्' का रूप धारण करके उसे और भी बदनाम कर रहे हैं। इसलिए हम 'अवतार वाद' की प्रतिक्रिया के इस पहलू पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक समझकर कुछ नमूने यहाँ उपस्थित करना चाहते हैं।

ब्रह्म कुमारियों के दादा गुरु--

इस समय हमारे देश में जो लोग 'अवतार' या उससे भी बढ़कर साक्षात् ब्रह्मा और विष्णु-शिव होने का दावा कर रहे हैं उनमें सबसे प्रसिद्ध 'ब्रह्मकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय' के संस्थापक दादा लेखराज हैं, जिनका पूर्व नाम खूबचन्द कृपलानी था और अब अपने को 'त्रिमूर्ति ब्रह्मा' कहते हैं। इन्होंने सरकारी नौकरी से रिटायर होकर सन् १९३७ में 'ओम् मण्डली' नाम की संस्था की स्थापना की। इनकी योजना सम्भवत: आरम्भ से ही स्त्रियों द्वारा अपनी संस्था का कार्य-सञ्चालन कराना भी, इसलिये ये हमेशा अनेक स्त्रियों को प्रभावित करने की चेष्टा करते रहे। सबसे पहले इन्होंने एक विधवा स्त्री माया देवी को चेली बनाया और वह इनका प्रचार करने लगी कि 'ये हमारे भगवान हैं, हम इनकी गोपियाँ हैं। परन्तु कुछ लोगों ने इन पर इलजाम लगाये जिनके कारण इन पर लाहोर की अदालत में मुकदमा चला और इनको माफी माँगकर पीछा छुड़ाना पड़ा। सन् १९४० ये बिहार के एक गाँव में रहने लगे और वहाँ भी अनेक स्त्रियों की चेली

बना लिया। वहाँ के एक हरिजन की स्त्री 'धनिया' को लेकर चल दिये। जिसके लिये उसके पति ने मुकदमा चला दिया। धनिया और दादा लेखराज दोनों को अदालत से क्षमा माँगनी पड़ी।

फिर आप हैदराबाद (सिन्ध) में जाकर जम गये और वहाँ अपनी संस्था का कार्य खूब फैलाया, जब इस रास-लीला की ओट में दुराचार बहुत अधिक फैलने लगा तो सिन्ध के प्रसिद्ध लोक सेवी साधु टी० एल० वास्वानी ने इनके कार्यालय पर धरना दिया। इसके लिए वास्वानी को जेल भी जाना पड़ा।

देश का विभाजन होने पर ये भारत चले आये और आबू पहाड़ पर एक कोठी लेकर संस्था का कार्य चलाने लगे। इसमें इनको अच्छी सफलता मिली। इस समय देश भर में इनकी संस्था की १३० शाखायें काम कर रही हैं जिनके सञ्चालन में चार-पाँच सौ स्त्रियाँ और कुछ पुरुष भी भाग ले रहे हैं। समय-समय पर ये आध्यात्मिक विषयों का प्रचार करने के उद्देश्य से चित्र-प्रदर्शनी भी करते रहते हैं। पर इनकी बातें ऐसी अंट-शंट और अपनी अजीब-भाषा में होती हैं कि कोई उनका आशय जल्दी समझ नहीं सकता। उदाहरण के लिये इन्होंने अपना परिचय देते हुए लिखा है—

"श्री कृष्ण की आत्मा ५००० वर्षों में ८४ जन्म लेती है—सतयुग (१२५० वर्ष) में सूर्यवंशी देवता कुल में सतोप्रधान एवं पूज्य महाराजान् के रूप में आठ जन्म, (त्रेतायुग १२५० वर्ष) में, चन्द्रवंश में राज्य-भाग्य सहित १२ सती गुणी जन्म, द्वापर और कलियुग (१२०० वर्ष) में शिरोमणि भक्त राजा अथवा प्रजा के रूप में ६३ जन्म। अब 'सङ्गम-काल' में, जबकि वह अपने ८४ वें जन्म के भी अन्तिम काल में है तो उस वृद्ध तन में परम पिता परमात्मा ज्योति-लिङ्गम शिव ने प्रवेश किया है और उनका नाम 'ब्रह्मा' रखा है। यही 'ब्रह्मा' स्थापन हो रहे सतयुग के आदि में पुनः श्रीकृष्ण के रूप में जन्म लेगे।"

इस प्रकार दादा लेखराज इस समय मनुष्यों के लिए 'ज्ञान और योग' की शिक्षा देकर मुक्ति प्रदान करने के ठेकेदार बन गये हैं। पर वह अपनी 'ब्रह्म कुमारियों' द्वारा अपने चंगुल में फँसने वालों को कैसा 'योग' सिखा रहे हैं, इस सम्बन्ध में ज्यादा न लिखना ही अच्छा है।

मेहर बाबा का अद्‌भुत मौन-व्रत-

अहमदनगर (महाराष्ट्र) में रहने वाले मेहर बाबा के (जो जन्म से पारसी हैं) के सम्बन्ध में शिकायत तो कोई सुनने में नहीं आई पर तीस चालीस वर्ष से 'मौनी' बनकर अवतार का ढोंग उन्होंने भी खूब किया है। जिस समय वे पूना के कालेज में पढ़ते थे एक वृद्धा फकीरनी 'बाबा जान' के सम्पर्क में आकर वे कोई योग क्रिया करने लगे जिससे दिमाग में खराबी आ गई और पढ़ना-लिखना सब छोड़ बैठे। कुछ समय पश्चात् 'अध्यात्म-मार्ग' में ठोकरें खाने पर वे 'सिद्ध योगी' बन गये। उन्होंने मौन-व्रत धारण कर लिया और घोषित किया कि जिस दिन मैं अपना मौन भंग करूँगा उसी दिन संसार में खण्ड-प्रलय होकर नवीन युग की स्थापना होगी। इसलिये जो लोग अपना कल्याण चाहते हैं और उस भयङ्कर काल में सुरक्षित रहकर सतयुग के नागरिक बनना चाहते हैं वे मेरे आदेशानुसार काम करें।"

मेहर बाबा ने गत तीस-चालीस वर्षों में इतने बार अपना मौन तोड़ने और उसी दिन 'नया युग' आरम्भ होने की घोषणायें की हैं कि समाचार पत्रों के पाठक उनको एक तरह का मजाक समझने लगे हैं। सन् १९५८ में अपने ऐसी घोषणा एक पर्चे के रूप में छपवाकर सर्वत्र बँटवाई जिसमें कहा गया था—

"मैं सिखलाने के लिए नहीं बल्कि जगाने के लिये आया हूँ। अनादि काल से मै सिद्धान्तों तथा उपदेशों के मुताबिक चलना सिखाता आ रहा हूँ, लेकिन इन्सान ने इसकी कोई परवाह नहीं की। इसलिए

मैंने अपने वर्तमान अवतारिक स्वरूप में मौन धारण कर रखा है। जितनी बातें तुमने मुझसे चाहीं उतनी तुम्हें बताई गईं। अब उनके मुताबिक जीवन बिताने का समय आ गया है। मेरी कृपा से तुम्हें अपना संकुचित-भाव त्यागना सम्भव है। मैं उसी कृपा की धारा बहाने आया हूँ।"

वह समय भी कभी का बीत गया, पर मेहर बाबा का मौन उसी प्रकार कायम है। वे जब संसार में हलचल को बढ़ते देखते हैं तभी ऐसा ही 'मौन तोड़ने' का वायदा कर देते हैं। ऐसे ही वायदे करते-करते हाल ही में उनका अन्त हो गया, पर दुनिया की दुर्दशा जैसी की तैसी मौजूद है।

कल्कि अवतार के गुरु

'अवतारवाद' में बड़ा आकर्षण है और उसमें बड़े-बड़े दावेदार पैदा हो जाते हैं। हवड़ा के बंगाली स्वामी जगदीश्वरनन्द को जब 'अवतार' की आवश्यकता जान पड़ी तो उन्होंने कुछ जोड़-तोड़ करके एक कल्कि मन्दिर बना दिया। उनका कहना है कि कल्कि भगवान सूक्ष्म जगत में अनेक बार उनके सामने सूक्ष्म रूप में प्रकट होते रहते हैं। उनका जन्म सन् १९८५ में होगा और उनके माता-पिता इसी समय मथुरा में निवास कर रहे हैं। स्वामी जगदीश्वरानन्द के आश्रम में रहने वाली संन्यासिनी महागौरी कल्कि देव की बाल्यावस्था में उनकी गुरु होगी। कल्कि भगवान के प्रभाव से इसी समय समस्त देवता और प्राचीन युगों के ऋषि मुनि जगदीश्वरानन्द जी के आश्रम में आकर उनको अपना परिचय देते रहते हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में 'डायरी' लिखने के ढंग पर कल्कि भगवान के प्रकट होने की पचासों घटनायें लिखी हैं और उनको इकट्ठा करके पाच-छः सौ पन्ने की एक अंग्रेजी पुस्तक छाप डाली है।

पर इस प्रकार की कहानियों से किसी का कोई लाभ हो सकेगा यह हमको नहीं जान पड़ता। अधिक से अधिक उनको कुछ अनुयायी मिल सकते हैं, और उनकी सहायता से आश्रम का काम चल सकता है। पर लोगों के अध्यात्मिक भावों को ऐसी मनगढ़न्त बातें बहुत अधिक सुनने से धक्का ही लगता है, और वे उसकी सभी बातों पर अविश्वास करने लगते हैं।

कादियाँ के गुलाम अहमद—

अनेक पाठकों के लिए यह एक आश्चर्य का विषय जान पड़ेगा कि अवतार के विषय में एक मुसलमान का नाम कैसे आ गया। पर आजकल की कृत्रिमतापूर्ण दुनिया में सब कुछ सम्भव है। हम उनको बतलाना चाहते हैं कि एक नहीं बीसियों मुसलमान सैकड़ों वर्ष से हिन्दुओं से धर्मगुरु बनने की कोशिश करते रहते हैं और उन्हीं में से कई आजकल 'कल्कि अवतार' की गद्दी का दावा कर रहे हैं। इनमें से आगा खाँ का नाम तो जनता में बहुत प्रसिद्ध है और गुजरात तथा दक्षिण अफ्रीका में कई लाख हिन्दू उनके अनुयायी बन चुके हैं। गुलाम अहदम ने भी शायद इन आगाखाँ के उदाहरण से ही प्रेरणा लेकर यह जाल फैलाया हो।

जो कुछ हो अब से बहुत वर्ष पूर्व गुलाम अहमद के कई प्रचारक हमसे प्रयाग के कुम्भ मेला के अवसर पर मिले थे और उनके कुछ पर्चे देकर 'सतयुग' में उनके सम्बन्ध में कुछ प्रकाशित करने का अनुरोध किया था। उन पर्चों में स्पष्ट रूप से लिखा था कि गुलाम अहमद भगवान कृष्ण के अवतार हैं और वहीं अब कल्कि अवतार होंगे—

"प्रिय हिन्दू भाइयो ! हम सब एक ही देश में फले फूले हैं और हमारी बोलचाल की भाषा भी प्रायः एक ही है। परमात्मा के बनाये चांद और सूर्य हम सबको समान रूप से प्रकाशित करते हैं। जब

ईश्वर की दयालुता ने हम सब में कोई भेद नहीं किया तो फिर हमारा ईश्वर के प्रेम करने में क्यों भेद हो ?

'इस समय भगवान का जो अवतार हुआ है वह किसी खास जाति का नहीं है। वह 'मेंहदी' भी हैं क्योंकि मुसलमानों को मोक्ष का आदेश लाया है। वह 'ईसा' भी है क्योंकि ईसाइयों के उद्धार की सामग्री लाया है । वह 'निष्कलङ्क अवतार' भी हैं, क्योंकि आपके लिए, हाँ मेरे हिन्दू भाइयो ! आपके लिए ईश्वरीय प्रेम के प्रकाश को लाया है। इस 'निष्कलंक अवतार' का शुभ नाम श्री 'मिर्जा गुलाम अहमद' है, जो कादियाँ जिला गुरुदासपुर (पञ्जाब) में प्रकट हुए हैं। ईश्वर ने उनके हाथ पर अपने हजारों चिन्ह प्रकट कराये हैं । उनके द्वारा संसार को न्याय तथा सत्य से परिपूर्ण करता चलता है।

इस प्रकार की न जाने कितनी दम दिलासा की बात उन पर्चों में दी गई हैं। कितने ही प्रान्तों में बहुसंख्यक हिन्दू उनको अवतार मानने भी लग गये हैं। पर यह आश्चर्य की बात ही मानी जायगी कि स्वयं हिन्दुओं में इतने 'अवतार' होते हुए भी वे अन्य धर्म वाले अव-तारों के 'भक्त' बनने को भी तैयार हो जाते हैं । हम तो इसे उनका अद्भुत 'अवतार प्रेम' ही कह सकते हैं !

अवतारों की भीड़—

महाभारत में युग परिवर्तन का जो ग्रहयोग लिखा है वह अनेक विद्वानों के कथनानुसार सन् १९४३ में आया था। उसी को आधार बनाकर 'चेतावनी' पुस्तिका द्वारा 'कलियुग का अन्त और सतयुग आगमन' का आन्दोलन देश भर मे फैलाया गया था। उससे कुछ ऐसी हवा बहने लगी कि चारों ओर से अवतार निकल पड़े। जिन लोगों में एक चिट्ठी लिख सकने की भी योग्यता नहीं थी और जो सामान्य नोन-तेल बेचने की दुकान करके या मामूली नौकरी या मज-दूरी करके जीवन-निर्वाह करते थे वे भी अपने को 'अवतार' घोषित

करने लग गये। हमने साधारण सरकारी नौकरों और भीख मांगने वाले साधुओं को 'अवतार' होने का दावा करते देखा था। इस तरह के सब लोगों की संख्या पाँच सौ से भी ऊपर हो तो कोई आश्चर्य नहीं। उनमें से सौ-पचास को तो हम स्वयं जान गये थे। ऐसे लोगों में से कुछ को सफलता भी मिल गई और वे हजार-पांच सौ अनुयायियों के सहारे अभी तक अपना नाम कायम रखे हुये हैं। अधिकांश उस उत्साह की लहर के ठण्डा हो जाने पर जहां के तहां पहुँच गये। अनेक अवतार बनते-बनते ही काल के गाल में समा गये। इस प्रकार स्वार्थी अथवा अविवेकी लोगों ने उस समय 'अवतार' के नाम पर एक तमाशा खड़ा कर दिया और एक उच्चकोटि के धार्मिक और शास्त्रीय विषय को सर्व साधारण की निगाह में हास्यास्पद बना डाला।

इससे प्रकट होता है कि यहां की जनता ऊपर से 'धर्म-धर्म' पुकारते रहने पर भी वास्तव में धर्म से कितनी परे और केवल अन्ध-विश्वास के आधार पर चलने वाली है। अन्यथा यह कैसे सम्भव था कि सामान्य साधुओं से लेकर मोटर ड्राइवर और मजदूर तक अपने को 'भगवान का अवतार' कहने का साहस करने लगते। ईसाई, मुसलमान, यहूदी, पारसी आदि किसी धर्म वालों में अभी तक ऐसी छूट नहीं है कि हर एक अपने को 'भगवान' बता सकें। उनमें ऐसा करते ही उस व्यक्ति पर चारों तरफ से लानत-मलामत की बौछार होने लगेगी और उसका समाज में रह सकना भी असम्भव हो जायगा। पर जो हिन्दू आध्यात्मिकता के सब से अधिक जानकार बनते हैं वे धार्मिक-क्षेत्र में हर प्रकार के ढोंग और धूर्तता को सहन ही नहीं कर लेते वरन् उसे सहयोग देने को भी तैयार हो जाते हैं। यह अवस्था कदापि श्रेयस्कर नहीं मानी जा सकती।

हमने इस तरह के नकली अवतारों में से दो-चार का वर्णन ऊपर दिया है। अब से २५-३० वर्ष पहले इस तरह के बीसियों बनावटी लोगों का हाल हमने अपने 'सतयुग' मासिक पत्र में प्रकाशित किया था। उनकी लीलाऐं इतनी अधिक हैं कि यदि पूरा लिखा जाय तो व्यर्थ में

पचासों पन्ने भर जायेंगे । इस लिये आगे हम बहुत संक्षेप में ही ऐसे कुछ 'अवतारों' का परिचय देते हैं ।

[१] कृष्णानन्दजी दादा धूनी वाले--

सुना जाता है कि धूनी वाले दादाजी वास्तव में उच्च कोटि के साधक और सन्त थे । परन्तु उनके देह त्याग के पश्चात् उनके कुछ शिष्यों ने उन्हें साक्षात् शंकर का अवतार बताना शुरू कर दिया—

इस पर भक्त कहें दादा के यहां यही है शिव अवतार ।
आदि मैथुनी-सृष्टि-पिता ये बाबा आदम के दातार ॥
आदिम एडम यही इन्हीं को स्वयं प्रभु ने कहा पुकार ।
मानो चहे न मानो कोई दादा निश्चय हैं अवतार ॥

[२] स्वामी प्रणवानन्द—

बंगाल के स्वामी प्रणवानन्दजी के सम्बन्ध में 'कल्याण' के एक अंक में लिखा है कि आरम्भ में वह बहुत वर्षोंतक साधन और तपस्या करते रहे और एक निस्पृह साधु पुरुष थे । पर कुछ समय पश्चात् उनकी तरफ से 'पूजाराधना पद्धति' पुस्तिका प्रकाशित की गई जिसमें लिखा था—"इस युग में फिर मुक्ति-पिपासु भक्त नरनारी के आर्तनाद से भगवान स्वयं जगद्गुरु रूप में स्वामी प्रणवानन्द के शरीर में अवतीर्ण हुए हैं । लाखों भक्त नर-नारियों ने उनके चरण-कमल की शरण लेकर, जीवन सार्थक किया है । चारों ओर यह समाचार बिजली की भाँति फैल गया है ।"

[३] हंसावतार—

इन दिनों 'हंसावतार' जी की दिल्ली आदि नगरों में बड़ी धूम रही । उनके जूतों पर बताशे चढ़ाये जाते थे, जिन्हें 'भक्त लोग' खाते थे । इनका यह कार्य पिछले पच्चीस तीस वर्ष से चल रहा था । उसी समय उनके प्रचारक ने हमारे एक परिचित सज्जन से कहा था—"जो त्रेता में राम बने थे और द्वापर में कृष्ण बने थे वही भगवान अब 'हंसावतार' है । इनके बिहार, बंगाल में लाखों शिष्य हैं, जो इनके बताये 'सोहं' मंत्र का जप करते हैं । यह असली मंत्र है । इस जप से

तमाम संसार में परिवर्तन हो रहा है। राक्षस भी इसी से मारे जा रहे हैं।"

[४] आनन्द-मार्ग के संस्थापक—

अभी हमने समाचार पत्रों में 'आनन्द मार्ग' के विषय में पढ़ा था कि दिल्ली और भारतवर्ष के अनेक नगरों में ही उसका प्रचार नहीं हो रहा है वरन् जर्मनी तक में उसकी शाखायें स्थापित हो गई हैं।" यह "आनन्द मार्ग" रेलवे की नौकरी से रिटायर होने वाले एक सज्जन ने पच्चीस-तीस साल पहले चलाया था और उनका कहना था—

"आनन्द मार्ग में भगवान की साकार और निराकार दोनों शक्तियों को माना गया है। जब हम भगवान् को सर्वशक्तिमान मानते हैं तो अवतार से इनकार कैसे कर सकते हैं?"

[५] अखिल ब्रह्माण्डपति—

हमको 'कल्कि ब्रह्मवाणी' नाम की मासिक पत्रिका का एक विशेषांक प्राप्त हुआ था, जिसके ऊपर यह पद्य दिया गया है—

विश्व-शान्ति का दिव्य-भाव मानव मन में साकार हुआ।
व्याकुल वसुधा की पुकार से पुनः 'कल्कि अवतार' हुआ।।

इस 'कल्कि अवतार' का जन्म सन् १९२१ बाराबंकी में(उ०प्र०) के एक गाँव में हुआ' था। वे ही आजकल अपने को 'अखिल ब्रह्माण्डपति' कहने लगे हैं और कुछ मूर्खों को 'भारतपति' 'एशियापति' 'आस्ट्रेलिया-पति' आदि की उपाधियाँ दे रहे हैं।

इसी प्रकार के अवतार नाम धारियों के बीसियों किस्से हमारे पास मौजूद हैं जिनमें से कुछ को तो पूरा पागल या ठग ही कहा जा सकता हैं। कोटपूतली (राजस्थान) के एक मजदूर ने एक पर्चा छपाया और उसमें लिखा—"हम हैं श्रीमहान भगवान और हमको ही कल्कि भगवान कहते हैं।" अम्बाला (पंजाब) के एक रिटायर्ड रेलवे गार्ड ने घोषणा की "माघ बदी अष्टमी को भगवान प्रकट होंगे और मैं राधा बन जाऊँगी।" खानदेश (महाराष्ट्र) के रामदास भील ने अपने को 'अवतार' और

'भीलों का राजा' घोषित कर दिया। मान्धाता (मध्य प्रदेश) में एक साधु मायानन्द चैतन्य अपने को 'बुद्धावतार' कहने लगे। दरभंगा की तरफ का एक बालक कृष्ण के समान वेषभूषा बनाकर मध्य प्रदेश के रायपुर आदि स्थानों में भेंट-पूजा ग्रहण करने लगा। इस प्रकार 'चेतावनी' की 'भविष्यवाणी' को आधार बना कर सन् १९४३ के आसपास देश में 'अवतारों' की बाढ़ ही आ गई।

नकली अवतारों से बचो--

उपर्युक्त नकली अवतारों की लीलाओं को पढ़ते-पढ़ते पाठक कहीं मुझे भी कोई 'अवतारी' न समझने लग जायें! शायद वे कहें कि ये भी विभिन्न अवतारों से मिलजुल कर अपना स्थान बनाने की चेष्टा में लगे होंगे! अन्यथा इतने अवतारों को ढूँढ़ते फिरने की क्या आवश्यकता थी? इस सम्बन्ध में मैं बतलाना चाहता हूँ कि दिल्ली के 'अवतार-भक्तों' ने मुझे भगवान का अवतार तो नहीं पर उनका कोई छोटा-मोटा सहकारी अवतार बनाने का प्रस्ताव अवश्य किया था! पर मैंने अपने को किसी भी प्रकार 'अवतार' के योग्य नहीं समझा और इस कारण मैं आज तक सामान्य मनुष्य ही बना रहा। इतना ही नहीं 'सतयुग' मासिक पत्र में अनेक छोटे-बड़े अवतारों का परिचय देते हुए मैं पाठकों को इस सम्बन्ध में सावधान भी करता रहता था कि वे ऐसे मामलों में अपनी विवेक बुद्धि से काम लें और किसी 'नकली भगवान' के फेर में न पड़ें। वास्तव में यदि कभी 'अवतार' होगा तो उसको यह प्रचार कराने की जरूरत न पड़ेगी कि 'वह अवतार है।' वरन् सारा संसार खुद ही उसे जान जायगा और उसके सम्मुख झुक जायगा। 'मई' १९४२ के अंक में "अवतार के सम्बन्ध में एक भ्रम पूर्ण धारणा" लेख के अन्त में हमने लिखा था—

"हम यह नहीं कहते कि 'अवतार' एक व्यर्थ कल्पना है; पर जिन लोगों ने उसको कहानी किस्से की चीज, या एक 'गुप्त भेद' बना डाला है, उनकी भर्त्सना हम अवश्य करते हैं। यह कहना कि 'अवतार को' किसी रेगिस्तान या पहाड़ में छिपाकर रखा गया है" ना समझीकी बात

है। अभी तक परशुराम, रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र, गौतमबुद्ध आदि जितने 'अवतार' बतलाये गये हैं, उनमें से कोई अठारह बीस साल की उम्र तक छिपाकर नहीं रखा गया था। तब 'कल्कि अवतार' के विषय में ही ऐसी बात फैलाने की क्या आवश्यकता है? इसे हम न तो धार्मिकता कह सकते हैं और न भक्ति-भाव।"

अगस्त १९४३ के 'सतयुग' में "सच्चा अवतार अभी दूर है" शीर्षक लेख में तरह-तरह के अवतारों के प्रकट होने का रहस्य इन शब्दों में प्रकट किया गया था—

"यों कहने के लिए अवतारों की कमी नहीं है। एक नहीं पचासों बड़े और छोटे, मोटे और पतले, अमीर और गरीब, साधू और गृहस्थी, शिक्षित और अशिक्षित, सुन्दर और बदसूरत, हिन्दू और मुसलमान—सारांश यह कि सब तरह के और सब श्रेणियों के व्यक्ति अवतार बनने को लालायित हो रहे हैं। पर शोक के साथ कहना पड़ता है कि वे भी हम साधारण मनुष्यों की तरह नोन, तेल, लकड़ी की समस्या में ही उलझे रहते हैं। वे भी धनवानों की खुशामद करके कुछ पाने की चेष्टा करते रहते हैं। वे दूसरों का उद्धार क्या करेंगे, स्वयं उनका उद्धार सर्व साधारण से दान पाये बिना असम्भव है।

"ऐसी दशा हमारे देश की ही नहीं है। सदा से जब कभी संकट का समय आया है और लोग व्याकुल होकर किसी 'उद्धारकर्ता' को खोजने लगते हैं तो ऐसे अवसर से लाभ उठाने वाले अनेक लोग उठ खड़े होते हैं। ऐसे मनुष्यों की करतूतें देखकर ईसामसीह ने कहा था—

"झूँठे नबियों (पैगम्बरों या अवतारों) से खबरदार रहो। वे भेड़ की खाल ओढ़ कर आते हैं, पर वास्तव में हिंसक भेड़िये होते हैं। तुम उनके कर्मों से उन्हें पहिचानो।"

"जब हम किसी रास्ते चलते हुए व्यक्ति को अपने लिये 'अखिल ब्रह्माण्डपति' 'त्रिलोकेश्वर' 'परमात्मा का मंत्री' आदि विशेषण प्रयोग करते देखते हैं, या किसी को जीवन और मृत्यु का ठेकेदार बनते पाते हैं या किसी को स्वर्ग लोक का टिकिट बेचते सुनते हैं, तो हमको यही

विचार आता है कि हो न हो उक्त व्यक्ति के दिमाग का कोई पुर्जा ढीला पड़ गया है ! अथवा किसी कारण वश उसे कोई मानसिक धक्का लगा है जिससे ऐसी 'सनक' सवार हो गई है। ऐसे व्यक्ति हमारे देश में ही नहीं पाये जाते। योरोपियन मनोविज्ञान ज्ञाताओं ने अपने ग्रन्थों में ऐसे अनेक दिमागी बीमारों या खब्तियों का जिक्र किया है और उनकी पूरी तरह से जाँच पड़ताल करके यह निष्कर्ष निकाला है कि वे लोग अवतार तो क्या किसी पागलखाने में निवास करने योग्य हैं। एक समय जरूशलम में ही ऐसे चार व्यक्ति थे जो ईसामसीह का अवतार होने का दावा करते थे।

"हम 'अवतार' के विरोधी नहीं है। धन्य है वह युग जिसमें ऐसा कोई महापुरुष पृथ्वी पर चरण रखता है और सौभाग्यशाली हैं वे लोग जो उसके सदुपदेशों से अपना जीवन कृतार्थ करते हैं। ऐसा महामानव अपनी लोकोत्तर प्रतिभा, अतुल त्याग और विश्वकल्याण की अमोघ कामना के आधार पर इस पद को प्राप्त करते हैं। वे राम की तरह राजसिंहासन को ठुकरा देते हैं और धर्म रक्षार्थ काँटों भरे मार्ग पर सहर्ष चलते हैं। वे कृष्ण की तरह छोटे से छोटे 'ग्वाल-बालों' के साथ भ्रातृभाव का व्यवहार करते हैं और सर्वोच्च पदवी पाकर भी लोक हित के लिये सारथी का दर्जा स्वीकार कर लेते हैं। वे बुद्ध की तरह राजसी भोगों को त्याग कर कठिन तपस्या द्वारा अपने शरीर को सुखा डालते हैं और अपनी साधना का फल स्वेच्छा से जनता के उद्धार के लिये अर्पण कर देते हैं। कहाँ वे अवतार और कहाँ आजकल के ये 'स्वयम्भू अवतार' जिनका प्रधान लक्षण शिष्यों से दक्षिणा वसूल करके आराम की जिन्दगी व्यतीत करना ही है।"

हमको ये शब्द धर्म के नाम पर अधर्म का प्रसार होते देखकर ही विवशतापूर्वक लिखने पड़े थे। अवतार कब होगा, कहाँ होगा, क्या करेगा, आदि बातों के सम्बन्ध में भावुकतावश कोई अनुमान लगावे तो उसमें कोई खास बुराई नहीं, पर कुछ भी योग्यता, शक्ति और उच्च आदर्श न होते हुए अपने को 'परमात्मा' या 'ईश्वर' कहने लगना कहाँ

तक उचित है ? हमको यह देख कर आश्चर्य होता है कि संसार में अगर कोई व्यक्ति नकली थानेदार, कलक्टर, रेलवे का टी.टी.आई. भी बनकर लोगों को धोखा देता है तो उसे गिरफ्तार किया जाता है और कड़ी कैद की सजा दी जाती है, पर "नकली भगवान" बनने की कोई सजा नहीं ! श्रीमद्भागवत में एक कथा आती है कि करुष देश के राजा पौण्ड्रक ने घोषणा की थी कि मैं भगवान विष्णु का अवतार 'वासुदेव' हूँ । श्रीकृष्ण को वासुदेव कहना या मानना बिल्कुल गलत है । उसने अपने दो नकली हाथ लगाकर उनमें शंख, चक्र, गदा पद्म भी धारण कर लिये थे । उसने अपना दूत द्वारका भेजकर कृष्ण जी से कहलवाया—

वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः ।
भूतानामनुकम्पार्थं त्वं तु मिथ्याभिधांत्यज ।।

अर्थात्—एक मात्र मैं ही वासुदेव हूँ, दूसरा कोई नहीं हो सकता । प्राणियों पर कृपा करने के लिए मैंने ही अवतार ग्रहण किया है । तुमने तो झूठमूठ अपना नाम 'वासुदेव' रख लिया है, अब उसे छोड दो ।"

श्रीकृष्ण ने दूत द्वारा उत्तर भिजवाया कि मैं तुम्हारे पास आकर ही 'वासुदेव' नाम तथा विष्णु के चिन्हों को छोड़ूँगा । दूसरे ही दिन वे रथ पर चढ़कर उसके सामने पहुँच गये और कुछ देर युद्ध करके उसको इष्ट-मित्रों तथा सेना सहित यमपुर भेज दिया । 'नकली अवतार' बनने के शौक में पौण्ड्रक अपने प्राण और राज्य सब कुछ खो बैठा । हम भी 'अवतार' बनने के शौकीनों को बतला देना चाहते हैं कि आज नहीं तो कल उनकी भी बुरी हालत हो सकती है ।

यह दशा देश, धर्म, समाज और व्यक्ति के लिए हितकर नहीं कही जा सकती । संसार को इस समय निस्सन्देह 'अवतार' (मार्गदर्शक) की बड़ी आवश्यकता है—उसके बिना हमारा अस्तित्व कायम रह सकना कठिन है । पर उसके लिए ऐसे स्वाँग रचने या 'सनक' में पड़ने की आवश्यकता न होगी, वरन् जब वह प्रकट होगा तब उसे पहचानने में किसी को देर न लगेगी ।

———

ग्यारहवाँ अध्याय

अवतार की आवश्यकता और हमारी आशा–

अब तक हमने जो लिखा है यदि उस पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय तो उस सबका यही निकर्ष निकलेगा कि यदि संसार में किसी को 'अवतार' कहा जाय तो उसका मुख्य उद्देश्य मानव जाति का मार्ग-दर्शन करना ही है। वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी पर डेढ़ अरब वर्ष से जीवन का विकास हो रहा है और इस बीच में छोटे से छोटे प्रत्यक्ष में जड़ जान पड़ने वाले–जीवधारी से लेकर मनुष्य तक के उत्पन्न होने में अनेक 'युग' व्यतीत हो चुके हैं। इन विभिन्न युगों के प्राणियों की जांच करने पर विद्वान् लोग इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि प्रत्येक भूगर्भीय-काल में ऐसे जीव उत्पन्न हुए, जो अपने समय में सृष्टि के सर्वोत्तम प्राणी समझ जाते थे। फिर भी आगामी 'युग' में उनसे भी और अच्छे प्राणी उत्पन्न हो गये। हमारे यहाँ मत्स्य, कूर्म (कछुआ), वाराह, नरसिंह आदि को जो अवतार की पदवी दी गई है, उसका मुख्य कारण यही है कि उस युग में सबसे अच्छे (विकसित) प्राणी वे ही थे।

सृष्टि के आरम्भ से लाखों तरह के जीवों का आविर्भाव होते–होते वर्तमान युग में बुद्धि, विवेक और ज्ञान से सम्पन्न मनुष्य का आविर्भाव हुआ है। हमारे यहां जो यह कहा जाता है कि ८४ लाख योनियों में भ्रमण करके मनुष्य का शरीर मिलता है, वह बहुत कुछ सत्य ही है। जहाँ तक पता लगाया गया है मनुष्य को पृथ्वीतल पर उत्पन्न हुए दस–पांच लाख वर्ष से अधिक समय नहीं हुआ। इसके पहले करोड़ों वर्षों में जीवात्मा क्रमशः जलचर, थलचर, नभचर, कीड़ा, मकोड़ा, पतिंगा, मछली, सांप, चौपाये, पक्षी आदि अनेक रूपों में प्रकट हो चुका है। उन योनियों में से गुजर कर ही वह मनुष्य के दर्जे तक पहुंचा है। और आगे चलकर उसके और भी उन्नति करने की पूरी संभावना है।

मानव-जाति के नष्ट होने की संभावना—

जब तक जी वाला पशु—पक्षी की योनियों तक सीमित था, उसे खाने, पीने, सोने, प्रजनन आदि की प्रेरणा स्वयं प्रकृति से ही प्राप्त होती थी। उसके विपरीत वह न तो कुछ सोच सकता था और न कर सकता था। उसका कार्य क्षेत्र और प्रभावक्षेत्र अत्यन्त सीमित था। पर जब से मानव का आविर्भाव होकर उसने विचार शक्ति प्राप्त की है तब से वह प्रकृति से प्रेरणा नही लेता वरन् निरन्तार उस पर अधिकार जमाकर व्यक्तिगत और सामूहिक हित के लिये उसका प्रयोग करने की चेष्टा कर रहा है। इसके फल से अनेक समस्यायें और उलझने पैदा होती हैं, जिनके कारण मनुष्यों में मतभेद, कलह और संघर्ष की वृद्धि होने लगती है। यह स्थिति बढ़ते—बढ़ते अब कहाँ तक पहुंच चुकी है, इस सम्बन्ध भारत के महान् विचारक श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने लिखा है—

"हम मानव जाति के इतिहास में एक सबसे अधिक निर्णायक समय में रह रहे हैं। मानव इतिहास के अन्य किसी भी समय में इतने लोगों के सिर पर इतना अधिक बोझा नहीं था और न वे इतने अधिक अत्याचारों और मनोवेदनाओं से कष्ट पा रहे थे। हम इस समय ऐसे संसार में जी रहे हैं जिसमें विषाद सर्वव्यापी हैं परम्परायें, संयम और कानून सर्वथा शिथिल हो गये हैं। संसार गलतफहमियों, कट्टरताओं, और संघर्षों से विदीर्ण हो गया है। सारा बातावरण संदेह, अनिश्चितता और भविष्य के भय से भरा है। जड़ता के कारण सारे संसार में एक ऐसी भावना जाग रही है जो वास्तव में क्राँतिकारी है। 'क्रान्ति' शब्द का अर्थ सदा भीड़ की हिंसा और शासक वर्ग की हत्या ही नहीं समझा जाना चाहिए। सभ्य—जीवन के मूल आधारों में तीव्र और प्रबल परिवर्तन की उग्र लालसा भी क्रान्ति का ही रूप है।

किसी भी समय को परिवर्तन के कारण 'क्रांतिकारी' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि परिवर्तन तो इतिहास में सदा होता ही रहता है।

पर जब परिवर्तन की गति अत्यन्त तीव्र हो जाती है तब उसे 'क्रान्तिकारी' कहा जाता है। वर्तमान युग क्रान्तिकारी है, क्योंकि इसमें परिवर्तन की गति बहुत तीव्र है। चारों ओर हमें वस्तुओं के टूटने-फूटने और सब प्रकार की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक संस्थाओं में उथल-पथल की आवाज सुनाई दे रही है। बुद्धिमान और अनुभूतिशील मनुष्यों का विश्वास है कि इस समय राजनीति, अर्थशास्त्र और उद्योग-धन्धों से सम्बन्ध रखने वाली संस्थाओं (नियमों) में कहीं न कही कुछ बड़ी गलती है। यदि मनुष्यता को बचाना है तो हमें इस गलती को दूर करना होगा।

"विज्ञानवेत्ता हमें वे विभिन्न संभावनाऐं बतलाते हैं जिनसे यह पृथ्वी नष्ट हो सकती है। उदाहरणार्थ कभी सुदूर भविष्य में चन्द्रमा के बहुत निकट आजाने या सूर्य के ठण्डा पड़ जाने से यह नष्ट हो सकती है। कोई पुच्छल तारा या उल्का पृथ्वी से आकर टकरा सकता है, या स्वयं धरती में से ही कोई जहरीली गैस निकल सकती है। परन्तु ये सब संभावनाऐं तो बहुत दूर की हैं, जब कि अधिक सम्भावना इस बात की है कि मानव जाति अपसे ही जान बूझकर किये गये कार्यों से या अपने मूर्खतपूर्ण स्वार्थ के कारण स्वयं ही अपना सर्वनाश कर लेगी।"

वास्तव में यह बड़े खेद और लज्जा की बात है कि मनुष्य अपने को 'बुद्धि-सागर' समझता हुआ भी अपने पैरों में आप ही कुल्हाड़ी मार रहा है और इस प्रकार अपनी मूर्खता का स्वयं प्रदर्शन कर रहा है। सेमुअल बटलर नामक विद्वान् ने इस दशा को देखकर कहा है कि 'मनुष्य के सिवाय और सब प्राणी यह समझते है कि उनका उद्देश्य जीवन का आनन्द लेना ही है। इसी से वे घास-पात, गड्ढ़ों और नदियों का जल जैसे अत्यन्त साधारण साधन पाकर भी सदा उछलते-कूदते और किलोल करते रहते हैं। पर मनुष्य उनसे हजारों गुना श्रेष्ठ साधन रखते हुए भी क्रोध और आवेश में भरकर विनाश का तांडव चलने दे रहा है। यदि वह इस तरफ से शीघ्र ही सावधान नहीं हुआ

तो निश्चय ही नाश के गहरे गढ़े में एक ऐसी छलांग लगा लेगा जिससे उसकी अब तक की समस्त उपलब्धियाँ और उन्नति नष्ट हो जायगी और वह सैकड़ों वर्षों के लिये वर्बरता के युग में पहुंच जायेगा।

नये नेतृत्व की आवश्यकता—इस शोचनीय अवस्था का मुख्य कारण यही है कि मानव-जाति का मार्ग दर्शन करने वाला कोई सच्चा नेता इस समय नहीं है। आजकल जिन लोगों के हाथ में राष्ट्रों की बागडोर है वे प्राय: अपने संकीर्ण स्वार्थों में फंसे रहने के कारण वास्तविकता की तरफ से आँखें फेरे हुए हैं। वे मानते हैं कि इस समय संसार ने इतनी वैज्ञानिक और आर्थिक उन्नति करली है कि अगर सब देशों के कर्णधार मिल-जुलकर चलें और समझदारी से काम लेकर सेना और अस्त्र-शस्त्रों में किये जाने वाले अपार खर्च को समाप्त करदें तो दुनिया का प्रत्येक मनुष्य सुखी और सन्तुष्ट जीवन बिता सकता है। पर जातीय अहंकार अथवा दूसरों का शोषण करने की पुरानी मनोवृत्ति उनका पीछा नहीं छोड़ती और वे जान बूझ कर नाश के मार्ग पर ही अग्रसर हो रहे हैं।

यह भयंकर दृश्य देखकर मानवता के अनेक शुभचिन्तक इसके सुधार की तरह-तरह की योजनाएं बना रहे हैं, जिनका अनुसरण करने से सबके साथ न्याय हो सके और दुनिया के लोग लड़-भिड़कर नष्ट हो जाने के बजाय अपने परिश्रम और सहयोग के द्वारा इस पृथ्वी को स्वर्ग बना सकें। यद्यपि ऐसे शुभ विचार वालों के हाथ राज्य की शक्ति न होने से अभी वे अपने विचारों को व्यवहारिक रूप नहीं दे सकते, तो भी उनके विचारों का प्रचार किया जाना आवश्यक है। ऐसा करने से जन समुदाय सच्चे मार्ग को समझने लगेगा और समय आने पर उनको अमल में लाने की भी चेष्टा करेगा। इस सम्बन्ध में अमरीका की 'निओ-क्रिश्चियन' नामक संस्था ने यह प्रश्न किया था कि 'ऐसा कौनसा उपाय है जो इस समय विनाशोन्मुख मानव-समाज को आशा का सन्देश दे सके?' फिर स्वयं ही इसका उत्तर देते हुए उसने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया—

"क्या शिक्षा द्वारा यह कार्य पूरा हो सकता है, क्योंकि आधुनिक समाज में सभ्यता का सबसे बड़ा प्रसाद यही माना गया है ? पर आजकल बाह्य-शिक्षा का बहुत अधिक प्रचार हो जाने पर भी उसमें 'जीवन-विद्या' का वह गुण नहीं पाया जाता जिससे मनुष्य में नैतिकता तथा सामाजिक एकता की वृद्धि होती हो ।"

'क्या मजहब इस समस्या को हल कर सकता है ? आजकल के कट्टरपंथी और जीवन-शून्य 'धार्मिक' कहे जाने वालों में वह शक्ति और साहस नहीं होता जिससे स्वार्थपरता और अन्ध–विश्वास की ताकतों का मुकावला किया जा सके । इन्हीं दोनों ने मनुष्य जाति को गुलाम बना रखा है ।"

"क्या राजनीति हमारा मार्ग–दर्शन कर सकती है ? किसी भी राष्ट्र के 'प्रतिनिधि' कहे जाने वाले आजकल अपनी स्वार्थ सिद्धि में ही लगे रहते हैं और लोक कल्याण के आदर्श के सर्वथा पीछे डाल देते हैं। वे लोग इस समय जनता का विश्वास कदापि प्राप्त नहीं कर सकते ।"

"क्या अर्थशास्त्र संसार की रक्षा कर सकता है ? अर्थशास्त्री आय-व्यय के कोरे सिद्धान्तों में डूवे रहते हैं और मानव-जीवन के वास्तविक मूल्यों की तरफ से आँखें बन्द कर लेते हैं । इसलिए वे उन शक्तियों को बिल्कुल नहीं समझते जो मनुष्य के भीतर काम करती रहती हैं"

"तब संभवतः परिवार का उदार आदर्श मानव–सभ्यता की रक्षा कर सकेगा ? यद्यपि परिवार हमारे समाज का मूलभूत आधार माना गया है, पर अब उसमें अपनी रक्षा और धन की भावना ही प्रमुख बन गई है ।"

"क्या संस्कृति की वृद्धि होने से हमारा उद्धार हो सकेगा ? यद्यपि संस्कृति का महत्व बहुत अधिक है, पर वह मनुष्य की अन्तरात्मा तक प्रवेश नहीं कर सकती । आजकल संस्कृति का महत्व बाह्य सौष्ठव की वृद्धि करना रह गया है । केवल उसके द्वारा मानव को स्वार्थपरता पर विजय प्राप्त करके आध्यात्मिकता की स्थिति प्राप्त करना संभव नहीं ।"

"शायद विज्ञान मानवता के लिये मुक्तिदाता सिद्ध हो सके ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि विज्ञान मानव–समाज की सर्वोच्च सफलता है। इस क्षेत्र में इस समय भी मनुष्य अभूतपूर्व चमत्कार दिखला रहा है। अगर मनुष्य केवल देह रूपी यंत्र तक ही सीमिति होता तो विज्ञान से उसकी उचित व्यवस्था हो सकती थी। पर मानव की सत्ता इससे कुछ अधिक है। उसमें भावनात्मक, मानसिक, आध्यात्मिक शक्तियाँ भी पाई जाती हैं, जिनमें विज्ञान अभी तक प्रविष्ट नहीं हो सका है। इसलिये वह समाज का उद्धार नहीं कर सकता।"

इस प्रकार जब हम मानवता की प्रगति के सब क्षेत्रों पर दृष्टिपात कर चुकते हैं तो हम को सर्वत्र निराशा ही जान पड़ती है। पर यह दोष इन सब उपायों का नहीं है। ये ही सब मिलकर हमारे सर्वाङ्ग-पूर्ण जीवन के आधार बनते हैं। वास्तव में दोष तो उन 'नेताओं' अथवा 'संचालकों' का है जो इन सामाजिक-शक्तियों का ठीक संचालन नहीं करते।

अन्त में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस समय मानवता को एक 'नवीन नेतृत्व' की आवश्यकता है। पुराने नेता असफल सिद्ध हुये हैं। हमारे वर्तमान नेता केवल नाम के नेता हैं। वे तरह-तरह के सिद्धान्त उपस्थित करते हैं, आदर्शों की बातें करते हैं, पर उनमें मानव-समाज को ठीक मार्ग पर चला सकने की समझ, बुद्धिमत्ता और शक्ति नहीं है। अथवा यों कहना चाहिये कि वे स्वयं अपने तुच्छ स्वार्थों में लिप्त रहते हैं। तब एक अन्धा दूसरे अन्धे का रास्ता कैसे दिखला सकता है ?

अवतार (विश्व नेता) की विशेषताएँ—

अब एक ऐसे नेता के प्रकट होने की आवश्यकता है जो समस्त सामाजिक धाराओं अर्थात् विज्ञान, राजनीति, संस्कृति, मजहब, परिवार, आर्थिक व्यवस्था को एकसूत्र में समन्वित कर सके। एक ऐसे नेता की आवश्यकता है जो जीवन और मानव-प्रकृति के संतुलित रूप को समझकर इन सब विभागों का एकीकरण कर सके और वह भी केवल

सिद्धान्त रूप में नहीं वरन प्रत्यक्ष जीवन-व्यवहार में । उसके विचारों की गहनता, उसके मस्तिष्क की महानता और हृदय की उदारता उसे अपने अनुयायियों से पृथक दिखला देगी । उसका अपना जीवन ही ऐसा होगा कि वह जनता का सच्चा शिक्षक, आध्यात्मिकता का उदाहरण और जीवन-विद्या का वैज्ञानिक होगा । राजनीतिक दृष्टि से वह विश्व-नागरिक होगा, आर्थिक दृष्टि से मानवीय गुणों को भौतिक सम्पति से अधिक महत्व देने वाला होगा । उसका परिवार वास्तविक रूप में समस्त संसार होगा । वह जीवन विद्या का सबसे बड़ा ज्ञाता होगा ।

हमको खोज करनी चाहिए कि क्या ऐसा नेता वर्तमान समय में मिल सकता है ? प्राचीन समय में बुद्ध, कनफ्यूशस, ईसा, स्पिनोजा आदि ऐसे नेता उत्पन्न हुए थे, पर लोगों ने उनका महत्व कितनी ही पीढ़ियों के बाद जान पाया । क्या इस बार हम ऐसी ही भूल करेंगे ? निश्चय ही महान नेताओं के चरित्र प्रेरणादायक होते हैं, पर मानवता उद्धार सुखद संस्मरणों से ही नहीं हो सकेगा । हमको ऐसे नेता के प्रत्यक्ष मार्ग-दर्शन की आवश्यकता है । हमको आशा करनी चाहिए कि ऐसा नेता अपनी वर्तमान पीढ़ी में मिल सकेगा जो इस सर्वनाशी संकट से मानव-समाज को सुरक्षित आश्रय-स्थल तक पहुँचा सके ।

'अवतार' क्या नहीं कर सकता—

ऐसे 'नेता' को हम 'अवतार भी कह सकते हैं । इन दोनों शब्दों में केवल लौकिक और धार्मिक भावनाओं का अन्तर है । जो इस समस्या पर केवल सांसारिक दृष्टि से विचार करते हैं, उनको ऐसा व्यक्ति सामाजिक अथवा राजनीतिक 'नेता' जान पड़ता है । कितने ही राजनैतिक नेता अथवा विजेता भी इस दृष्टिकोण से अपने जो ईश्वर कहने लगते हैं । पौराणिक काल में हिरण्यकश्यप का अपने को ही 'भगवान' बतलाना और राम नाम लेने पर अपने पुत्र प्रह्लाद को मारने का प्रयत्न करना शायद इसी भाव का द्योतक हो । वर्तमान समय में भी नैपोलियन और हिटलर की आश्चर्यजनक विजयों को देख कर उन देशों के कुछ अन्ध विश्वासी इनको 'दैवी अवतार' मानने लग गये थे । पर 'अवतार' ऐसा क्षणस्थायी

और भीषण कर्म करने वाला नहीं होता। 'अवतार' की विशेषताओं पर एक धार्मिक दृष्टि कोण से विचार करने वाले विद्वान् ने लिखा है—

"महापुरुषों का अवतार संसार की सबसे बड़ी घटनाओं में से होता है। मानव-जाति के प्रत्येक महान संकट में, जब सत्य का अनुभव धुंधला पड़ जाता है और मनुष्य न्यायनिष्ठ-कार्य करने में अक्षम हो जाता है—जब कभी मानवता अपने असत् कर्मों के दलदल में फँस जाती है—जब कभी वह अपनी ही उत्पन्न की हुई उलझन के कारण किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाती है—जब कभी उसे मुक्ति दिलाकर नये पथ पर नये सिरे से गति देने की आवश्यकता होती है, तभी किसी महान आत्मा का मानव रूप में 'अवतार' होता है। मानवता 'उसे' भूल जाती है, पर 'वह' संकट के अवसर पर मानवता को सहायता देने की बात को नहीं भूलता।"

युग-परिवर्तन का आशय—

किसी ऐसे महापुरुष का आविर्भाव मानव-जाति के लिये 'नवयुग' का प्रारम्भ है। नई व्यवस्था और नई सभ्यता जिसका वह पूर्वाभास देता है, तब कल्पना की बातें नहीं रहतीं बल्कि जीवन का सत्य बन जाती हैं। अपने विचार, जीवन और कार्यों से वे नवयुग की सृष्टि और स्थापना करते हैं। अतः उनका व्यक्तित्व भी एक बहुत बड़ी चीज होता है। वह सर्वथा कर्मशील रहते हैं और इसी माध्यम से सारी जाति के चिंतन, जीवन और कर्मो को प्रभावित करते हैं। उनके विचार और चिन्तन समस्त जगत में व्याप्त हो जाते हैं। प्रत्येक भूभाग की ग्रहणशील आत्माएँ उनकी वाणी को ग्रहण करती है और वह वाणी उनके जीवन-कार्यों में अभिव्यक्ति पाती हैं। इन प्रमुख विचारकों के चिन्तन और विचार फिर उनके चारों ओर रहने वाले साथियों के पास पहुँचते हैं और इस प्रकार मानव-जाति के चिन्तन और विचारों का धरातल ऊँचा होता जाता है। चिन्तन और विचारों के परिवर्तन के साथ कार्य भी बदलते जाते हैं। इस तरह क्रमशः नई अवस्थाओं की सृष्टि होती है, नये सम्बन्ध स्थापित होते हैं, नई संस्थाएं

अस्तित्व में आती रहती हैं, और एक बिलकुल नई व्यवस्था दृष्टिगोचर होने लग जाती है। यही 'युग-परिवर्तन' होता है।

नवयुग-आगमन का यही एक तरीका है। इसका प्रारम्भ छोटा, अस्पष्ट और प्रायः अनाकर्षक होता है, लेकिन इसका परिणाम बहुत दूरव्यापी होता है। किसी भी 'महापुरुष' की यही कार्य प्रणाली होती है। आरम्भ में वे अकेले ही चुपचाप और शान्ति पूर्वक कार्य आरम्भ कर देते हैं। धीमी उन्नति से कभी अधीर नही होते। वे एकदम निश्चित और सन्देह रहित होते हैं, क्योंकि उनके हाथों में सब से शक्तिशाली यन्त्र—उनका चिन्तन होता है। मनुष्यों के विचार, जीवन पद्धति और कार्य पूर्ण रूप से उनकी पकड़ में होते हैं। आरम्भ में वह अपने को पर्दे के पीछे अपरिचित और अनजान रखते हैं। पर जैसे-जैसे आध्यात्मिक पुनर्जागरण होता जाता है वैसे-वैसे ही अधिक संख्या में लोग उनकी तरफ आकृष्ट होते जाते हैं। जब सम्पूर्ण जाति ऊंचे दर्जे की आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त कर लेती है सब कोई उनके महान उद्देश्य की सराहना करने लग जाते हैं।

अगर ऐसे 'महापुरुष' के अवतरण की आवश्यकता भूतकाल में महान थी तो आज वह महानतर हैं। सच पूछा जाय तो इस समय वह महानतम् होती जाती है। मनुष्य को कभी भी आध्यात्मिक-प्रकाश की आवश्यकता इससे अधिक नहीं थी। प्राचीन युग में संसार के भिन्न-भिन्न खण्ड बहुत कुछ एक दूसरे से पृथक और स्वावलम्बी थे। उनमें प्रायः एक ही जाति और नस्ल के लोग रहते थे। इसलिये उस समय उनके अस्तित्व की समस्या आज से कहीं कम जटिल थी। आज सारा संसार स्थल जल और आकाश के रास्ते एक हो गया है। हर राष्ट्र एक दूसरे से मिल गया है, एक दूसरे के जीवन में प्रवेश कर गया है। राष्ट्रों के हित परस्पर मिश्रित हो गये हैं। वैयक्तिक समस्याओं का तब तक सही हल नहीं हो सकता जब तक सारे राष्ट्र की समस्या हल नहीं की जाय और प्रत्येक राष्ट्रीय-समस्या विशाल अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का एक अंग है। इसलिये समस्त विश्व की समस्या का हल होना, पृथ्वी पर

स्वर्गीय-राज्य की स्थापना ही इसका एक मात्र हल है। इस कार्य को कोई दैवी व्यक्ति ही कर सकता है।

सब समस्याओं का एक ही हल--

पर 'दैवी सत्ता' सब काम अपने हाथ से ही नहीं किया करती। ईश्वर भक्तों की यह निश्चित धारणा है कि 'जब कभी ईश्वर किसी रूप में पृथ्वी पर प्रकट होते हैं तब वह अकेले नहीं आते। प्रत्येक देश में कुछ ऐसे 'दैवी कार्यकर्ता' होते हैं जो 'अवतार' के साथ--और कुछ पहले भी उनके आगमन का संदेश लेकर भूमि तैयार करने लगते हैं, जिसमें वह बीज बोकर नई फसल तैयार कर सकें।' इस सिद्धान्त के अनुसार 'अवतार' मुख्यत: कुछ विशेष व्यक्तियों को प्रेरणा देंगे, जनता का मार्ग-दर्शन करेंगे, तो उसके प्रभाव से परिवर्तन और नव निर्माण का चक्र स्वयं घूमने लगेगा।

यह तो प्रत्यक्ष ही है कि इस समय समस्त मनुष्य जाति बड़े शोक, कष्ट, अभाव, भुखमरी की परिस्थितियों में ग्रस्त है। आप किसी भी तरफ निगाह उठा कर देखिये प्रगति का द्वार अवरुद्ध ही मिलेगा। समस्त मानव जाति एक विश्व व्यापी संकट का अनुभव कर रही है। जीवन का प्रत्येक विभाग अस्त-व्यस्त हो गया है। अब यह अच्छी तरह प्रकट हो गया है कि कोई भी जातियाँ राष्ट्र इन समस्याओं को अकेला हल नहीं कर सकता। कारण यह कि इस युग में समस्त मनुष्य और जातियाँ, समस्त व्यापार और उद्योग-धन्धे एक दूसरे के आश्रित हो गये हैं। इससे सभी राष्ट्रों को अब यह अनुभव होता जा रहा है कि संसार में वे मनमानी नहीं कर सकते, वरन् उनके बराबर इस बात का ध्यान रखकर होगा कि अन्य लोग उनके विषय में क्या सोचते हैं और कैसी सम्मति रखते हैं। यद्यपि इस समय संसार में बड़ी हलचल और अशान्ति की स्थिति दिखलाई पड़ रही है फिर भी एक अदृश्य शक्ति विभिन्न देशों के निवासियों को इस बात के लिये बाध्य कर रही हैं कि वे परस्पर में सहयोग की वृद्धि करें, एक तरह के विचार रखें, एक तरह से बात करें और समान रूप से कार्य करें। उनके सामने ऐसी

परिस्थितियां उत्पन्न होती जाती हैं कि यदि वे अपने पृथक-पृथक परस्पर विरोधी मार्गों का त्याग न करेंगे तो उनका सर्वनाश हो जायगा।

विश्वबन्धुत्व की भावना-

ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है जो इस प्रकार की 'विश्व-बन्धुत्व' की भावना को—संसार व्यापी सहयोग, मेल-मिलाप की चर्चा को एक असम्भव बात अथवा मन को खुश करने बाला स्वप्न मात्र मानते हैं ऐसे लोगों से हम कहना चाहते हैं कि जब मनुष्य पृथ्वी के गर्भ में घुसकर सोना और रेडीयम जैसी बहुमूल्य चीजें निकाल लाता है, अथाह समुद्र में गोता लगाकर अनमोल मोती ढूँढ़ लाता है, आकाश में उड़ सकता है, उपग्रहों और ग्रहों तक की छलाँग मार सकता है, अगर वह देश और काल पर विजय प्राप्त करके अपने कमरे के भीतर लेटा हुआ ही संसार भर के दृश्य देख सकता है और हजारों कोस दूर बैठे मित्रों से बातचीत कर सकता है, तो वह एक ऐसी आदर्श जीवन-पद्धति-राजनीनिक, आर्थिक और सामाजिक प्रणाली क्यों नहीं खोज सकता जिसमें सब मनुष्य अपना न्याययुक्त भाग पाकर सुख और शान्ति से रह सकें ? क्या छल कपट, षड़यंत्र और अभेद्य स्थानों में प्राणों को हाथ में लेकर प्रविष्ट होकर लूटमार कर लाना सहज है, और भगवान तथा प्रकृति ने जो कुछ दे रखा है तो उसे सहयोग और प्रेम पूर्वक मिल जुलकर उपभोग करना इतना कठिन है ?

हमको तो इसमें कुछ भी असंभव नहीं जान पड़ता, तनिक मनुष्य की बुद्धि को मोड़ देने की आवश्यकता है। इसी कार्य के लिये 'अवतार' की आवश्यकता है। उसका कार्य आरम्भ हो चुका है, उसकी शक्ति में विश्वास रखने वाले आज भी अनेक स्थानों में उसके लिए सचेष्ट हैं और संसार की गति को देखते हुए वह दिन निश्चय ही निकट आ पहुँचा है जब कोई "दैवी शक्ति" प्रकट रूप में इसे पूरा कर दिखायेगी। इस बात को भारत के 'भक्त' लोग हीं नहीं कह रहे हैं, योरोप और अम-

रीका के विश्वविद्यालयों के बहुत बड़े अध्यक्ष सर माइकेल सैडलर जैसे आधुनिक ज्ञानी व्यक्ति भी स्वीकार कर रहे हैं—

"हम इस समय 'प्रतीक्षा' के युग में जीवित रह रहे हैं ? लोग अनुभव कर रहे हैं कि संसार में जो बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे है वे निकट भविष्य में इससे भी बहुत बड़े परिवर्तनों के पूर्वाभास हैं । इतिहास का एक अध्याय पूरा हो चुका है और दूसरे का प्रथम पृष्ठ अभी आधा ही खुला है । इसमें सन्देह नहीं कि'प्रतिक्षा'के युग में मनुष्यों को अदभुत भावनात्मक अनुभव होने अनिवार्य हैं और निश्चय ही भावी-जगत उससे बहुत भिन्न होगा जैसा कि हम अब तक उसे देखते और जानते आये हैं।"

समस्त महापुरुषों में एकता—

आज संसार के विभिन्न धर्मों (मजहबों) में काफी वैमनस्य और झगड़े होते दिखाई पड़ते हैं । आज से दो-चार सौ वर्ष पहले यह इससे भी भयंकर रूप में प्रकट होते थे और मजहब नाम पर कत्लआम होते थे, खून की नदियां बहाई जाती थीं ! यद्यपि इन कार्यों के करने वाले 'धर्म और ईश्वर' के नाम पर ही ऐसा करते थे, पर वे मानों भ्रम में पड़े होते थे पर मक्कारी से अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते थे। अन्यथा दैवी विधान के अनुसार पृथ्वी पर प्रकट होने वाले 'विश्व-संचालक' 'पैगम्बर' आदि कभी मनुष्यों को अन्य लोगों से द्वेष करने, उनको मारने-लूटने की प्रेरणा नहीं दे सकते । 'धर्म' का नाम लेकर मारकाट और लूटमार करना केवल चालाकी या धूर्तता का प्रमाण है । ऐसे लोग धर्म के नाम पर बहका कर जन-समूह को अपना अनुयायी बना लेते हैं और उसकी सहायता से अपना मतलब पूरा करते हैं ।

आप किसी भी धर्म के मूल ग्रन्थ में दिये गये सिद्धान्तों और उपदेशों को देख लीजिये उनमें सत्य, न्याय, मानव-सेवा की बात ही मिलेगी । यों 'धर्म' को नष्ट करने वाले दुराचार और पाप कर्मों की वृद्धि करने वालों को दण्ड देने का भी विधान है, जैसा कि 'गीता' जैसे ससार में पूजनीय ग्रन्थ में भी कहा गया है—"विनाशायच दुष्कृताम्' अर्थात

भगवान् के 'अवतार' का उद्देश्य दुष्टों को नष्ट करना होता है। पर वह विशेष परिस्थिति में पालन करने योग्य विशेष धर्म ही होता है। दुष्टों का अन्त हो जाने पर उसकी आवश्यकता नहीं रहती। सामान्य रूप से सभी धर्मों के प्रचारकों के उद्देश्य और आदर्श लोक हितकारी भावना से ही प्रेरित होते हैं, इस लिये तात्विक रूप से उनमें कोई अन्तर नहीं होता।

इतना ही नहीं धर्म और ईश्वर के सच्चे ज्ञाताओं और विभिन्न धर्मों के प्रचारकों और स्थापनकर्ताओं में पूर्ण एकता की ही भावना रहती है। वे जानते हैं कि विभिन्न मजहबों में जो अन्तर दिखलाई पड़ता है उसका कारण देश और काल की भिन्नता है। ईश्वर का प्रतिनिधि धर्म प्रचारक जिस भूखण्ड और समय में प्रकट होगा वह अपने अनुयायिओं को उस स्थिति के लायक ही व्यवहारोपयोगी मार्ग बतलायेगा। पर वह सब सामयिक होता है। समय और परिस्थिति के बदल जाने पर वे नियम भी बदले जा सकते हैं। जिन स्थानों में जल का अभाव था वहाँ के 'कर्म काण्ड' में लोगों को 'भस्म—स्नान' अथवा मिट्टी से ही शुद्धि की अनुमति देदी गई। पर इसका यह आशय नहीं कि जब तुम्हारे यहाँ नहरों और नल कूपों से पानी की समुचित व्यवस्था हो जाय तब भी तुम जल द्वारा शुद्धि और स्वच्छता न करो।

ईश्वर के यहां भेदभाव नहीं--

संसार में अभी तक जितने महान धर्म-संस्थापक हुए हैं उन सब ने यही मत प्रकट किया है कि ईश्वर के यहाँ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। जो व्यक्ति जिस किसी विधि से, मन में सत्य-भाव रखते हुए, भगवान की पूजा-उपासना करता है, वही भगवान् को स्वीकार होती है। इसी प्रकार वे यह भी कहते हैं कि संसार का कोई 'धर्म' या धर्म-संस्थापक अन्तिम नहीं है, उनके पश्चात् भी जैसा समय आयेगा उसके अनुसार धर्म का प्रतिपादन करने वाले 'महापुरुष' उत्पन्न होंगे। भगवान् बुद्ध ने इस बात को अपने निर्वाण के अवसर पर बहुत स्पष्ट रूप

से कहा था। जब उनका प्रधान शिष्य आनन्द उनके वियोग की कल्पना से बहुत व्याकुल हुआ और कहने लगा कि इसके बाद हमको धर्म का उपदेश कौन देगा तो बुद्ध ने कहा—

"मैं सब से पहला 'बुद्ध' नहीं हूं जो संसार में आया हूँ और न मैं अंतिम 'बुद्ध' ही कहा जा सकता हूँ। जब समय आयेगा तो संसार में दूसरा 'बुद्ध' प्रकट होगा, जो बहुत पवित्र, बहुत अधिक ज्ञानी, बुद्धि सम्पन्न, उदार विचारों वाला और संसार का पूर्ण ज्ञाता होगा। वह मनुष्यों का एक अनुपम नेता होगा। वह तुमको उसी शाश्वत सत्य की शिक्षा देगा जिसकी मैंने दी है। वह उस 'धर्म का प्रचार करेगा जो आदि, मध्य और अन्त में निश्चयात्मक रूप से महान् और श्रेष्ठ होगा।"

जिस इस्लाम को अत्यन्त कट्टर और धर्म के सम्बन्ध में घोर अन्ध विश्वासी बतलाया जाता है उसके धार्मिक ग्रन्थ 'कुरान' में भी सब धर्मों और धर्म-संस्थापकों की एकता का प्रतिपादन किया गया है। उसके एक अध्याय सूरत यासीन' में कहा गया है—

"एक आदमी की तरह एक उम्मत (मजहब या सम्प्रदाय) की उम्र भी निश्चित होती है। जब बचपन, युवावस्था और बुढ़ापे की सीढ़ियाँ पार करके उम्मत मर जाती है, तब खुदा नई उम्मत पैदा करता है। खुदा ने सब पैगम्बरों से वचन लिया है कि जब तुम्हें किताब पैगम्बरी दी जाय और तुम्हारे बाद खुदा की तरफ से दूसरा पैगाम लाने वाला प्रकट हो तो उस पर ईमान लाना और उसको सहायता करना तुम्हारा कर्तव्य है।"

सत्य यही है कि संसार में जो विशेष दैवी शक्ति सम्पन्न महापुरुष होते हैं वे विश्व-कल्याण और विश्व प्रेम के ही प्रचारक होते हैं। सच्चे आत्मज्ञानी होने के कारण वे जानते हैं कि -इस संसार में जीवन और चैतन्यता का स्रोत एक ही है, इस लिये मनुष्यों में किसी भेद-भाव की कल्पना करना या परस्पर शत्रु-भाव रखना निश्चय ही

अबुद्धिमत्ता अथवा दुष्ट स्वभाव का प्रमाण है। वे अपने अनुयायिओं को प्राणीमात्र से प्रेम रखने और उदारता का व्यवहार करने का उपदेश देते हैं। यह बात दूसरी है कि अधिकांश मनुष्य अभी पूर्व जन्मों की पाशविक परिस्थितियों और प्रभाव से मुक्त नहीं हो सके हैं, इस लिये इन उपदेशों का उन पर अधिक असर नहीं होता और वे प्राय: नीचता और क्रूरता के कार्य करने लग जाते हैं।

हृदय परिवर्तन 'अवतार' ही करेगा—

पर अब वह समय आचुका है जब कि इस अवस्था में 'क्रान्तिकारी परिवर्तन' होगा और मानव-जाति व्यक्तिगत, साम्प्रदायिक और जातीय संकीर्णताओं को त्याग कर एक 'विश्व मानव समाज' बनाने को आगे बढ़ेगी। यद्यपि इस समय भी यू० एन० ओ० (राष्ट्र-संघ) के रूप में उसकी चेष्टा की जा रही है, पर वह अधिकांश में ऊपरी तथा जबर्दस्ती लादी जाने वाली है। ऐसी चेष्टा कभी अधिक फलदायक नहीं हो सकती। इसके लिये अनिवार्य है कि सभी राष्ट्रों के प्रमुख नेताओं का हृदय परिवर्तन हो और वे इस प्रकार के संगठन—एकता को सर्वोपरि कार्य मान कर उसके लिये तन-मन-धन से तैयार हो जायें।

जब संसार भर के राजनीतिज्ञ, उद्योगपति, विद्वान अपने—पराये का भाव त्याग कर केवल मानब जाति की कल्याण भावना से एकता के लिये तैयार हो जायेंगे और इस कार्य के लिये जो भी छोटा या बड़ा त्याग करना हो उसमें संकोच न करेंगे, तभी कुछ सफलता की आशा की जासकती है। इस प्रकार के युग परिवर्तन के लिये कैसी श्रद्धा और भक्ति की भावना वाले व्यक्तियों की आवश्यकता है, इसकी एक झलकी इंगलैण्ड के श्री डब्लू० ई० औरचार्ड के लेख से मिलती है—

" हे राष्ट्रों के उद्धारक, चिरवाञ्छित भावी अवतार ! तुम हमारे बीच में अपने वैभव के साथ कब प्रकट होगे ? पिछली बार तुम दीन वेष (ईसा मसीह के रूप में) प्रकट हुये थे, तो उससे कुछ लोगों को

असीम आनन्द और शान्ति प्राप्त हुई थी। पर संसार के लोगों में से बहुत कम तुम्हारे आने की बात जानते हैं और जो तुम्हारे दिखलाये रास्ते पर चलते हैं उनकी संख्या तो बहुत ही कम है। पर चूँकि तुमने इससे कहीं अधिक देने का आश्वासन दिया था, इसलिए मनुष्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

"पर सैकड़ों वर्ष बीत गये और लोग बार-बार पूछते हैं कि क्या 'अवतार' के लक्षण दिखाई देते हैं ? युद्ध बराबर होते ही रहते हैं, मनुष्य अन्धकार और अशान्ति में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। किसान खेतों को बोते हैं, पर उनकी फसल को दूसरे ही लोग खा जाते हैं। कारीगर घर बनाते हैं, पर उनमें रहता कोई और है। दर्जी कपड़े सीते हैं, पर उनको कभी पहिन नहीं पाते। मनुष्यों ने बार-बार अपनी बेड़ियों को तोड़कर स्वाधीन होने की चेष्टा की है, पर उनकी विजय उनके हाथों से निकल जाती है और उनकी बेड़ियाँ फिर से मजबूत कर दी जाती हैं।

"तो भी हमारा विश्वास है कि तू अब पास ही है। अभी तक हमारी यह आशा बलवती है। मार्ग सुन्दर बनाया जा रहा है, उसमें से रोड़े-पत्थर हटाये जा रहे हैं। मनुष्य इस विश्वास के साथ कि 'मुक्ति का समय' पास आ चुका है अपना सर उठा रहा है।

"हमें शोक है कि इस समय भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में गलतफहमी और सन्देह का भाव बढ़ रहा है और इसके फल से वे हथियार इकट्ठे करने में जुटे हुए हैं। विभिन्न श्रेणियों में पृथकता और कलह का भाव बढ़ता जाता है। अब कृपा करके पधारिये, हमारे भेदभावों को दूर कीजिये। हे दैवी प्रेम के सागर ! हमारे ऊपर ऐसी कृपा करो कि हमारे हृदय के द्वार आपके स्वागत के लिए सदैव खुले रहें। भगवन् ! आओ और हमारे मध्य अपना राज्य स्थापित करके पृथ्वी पर शान्ति का प्रसार करो।"

यह एक ऐसे हृदय की भावना और प्रार्थना है जो मानवीय प्रयत्नों से संसार के सुधार की आशा न देखकर अपने को पूर्णतः भगवान के भरोसे छोड़ देता है। हमारे शास्त्रों का मत है कि संसार में अधिकांश

लोगों की भक्ति और उपासना इसी कारण फलदायक नहीं हो पाती, क्योंकि वे पूर्णतः भगवान के आगे आत्मसमर्पण नहीं करते वरन् भगवान से सहायता की प्रार्थना करते हुए मन में अपना भरोसा भी करते रहते हैं। यद्यपि यह एक मशहूर कहावत है कि 'भगवान उनकी मदद करता है जो अपनी मदद आप करते हैं।' यह नियम सामान्य परिस्थिति और जीवन-निर्वाह के नित्य के कार्यों के लिए है। पर जब मनुष्य पर कोई बहुत बड़ी और सामर्थ्य से सब तरह बाहर विपत्ति आ पड़ती है तो भगवान की शरण लेने के सिवाय और कोई उपाय कारगर नहीं होता। ऐसे ही अवसरों पर जब पृथ्वी पर शोषणकर्ता 'असुरों' का आतङ्क छा जाता है और कोई उनका प्रतिकार करने में समर्थ नहीं होता, मानवता कष्टों के मारे त्राहि-त्राहि करने लगती है, तो पृथ्वी व्याकुल होकर 'विश्व संचालक' की शरण जाती है, और वे उसके उद्धार के लिए 'प्रकट' होते हैं।

पृथ्वी के भगवान की शरण में जाने का जो अलंकारिक वर्णन रामायण तथा अन्य पुराणों में किया गया है उससे मालूम हो सकता है कि मनुष्य को अत्यन्त विषम परिस्थिति आ जाने पर किस प्रकार एक-मात्र भगवान का ही सहारा लेना पड़ता है। वही दशा इस समय संसार की दिखलाई पड़ रही है। युद्धशील देशों की अस्त्र-शस्त्रों की शक्ति इतनी अधिक हो गई है कि वे जब चाहें मानव-जाति का नाश कर सकते हैं। अणुशक्ति, जहरीली गैस, रोगों के कीटाणु आदि अनेकों ऐसे नाशकारी उपाय निकाल लिए गये हैं जिनसे करोड़ों मनुष्य कुछ घण्टों में मारे जा सकते हैं।

अब तो कई-कई हजार टन के विस्फोटक सामग्री से भरे गोले अंतरिक्ष में सैकड़ों मील ऊपर भेजे जा सकते हैं और वहां से संसार के किसी भी देश के ऊपर गिराकर कुछ ही क्षणों में जीवित नर-नारियों से भरे पूरे नगरों और ग्रामों को भस्म की ढेरी में परिणित किया जा सकता है। संसार की कोई ताकत ऐसे अस्त्रों को निवारण नहीं कर

सकती। तब मानव जाति के सामने केवल 'भगवान' को पुकारने का ही उपाय शेष रह जाता है और वे ही परिस्थिति के अनुसार 'असुरों' के असुरत्व से संसार की रक्षा की कोई योजना कार्यान्वित करके समस्या को हल करते हैं।

सभी धर्म 'दैवी सत्ता' पर विश्वास करते हैं—

संसार की भयंकर हलचल पूर्ण अवस्था से भयभीत होकर तो मनुष्य का ध्यान किसी 'दैवी सहायक' की तरफ मुड़ ही रहा है। संसार के सभी धर्मों में 'अवतार' का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है, और उनका यह विश्वास है कि मानव-जाति पर कोई सर्वनाशी संकट आ पड़ने पर ईश्वरीय शक्ति द्वारा ही उसका निवारण होना संभव होता है। कुछ वर्ष पहले इङ्गलैण्ड की पार्लियामेंट के दो सदस्यों—श्री डब्लू० ट्यूडरपोल और वैलड्रोन स्मिथर्स ने एक घोषणा पत्र में कहा था—

"पूरब और पश्चिम के सभी महान सम्प्रदायों के अनुयायी ईश्वरीय दूत के आने की राह देख रहे हैं। ईसाई मजहब वाले ईसा के 'दूसरे आगमन' की बात कहते हैं। यहूदी आशा करते हैं कि उनके 'मसीहा' मनुष्य रूप में प्रकट होंगे। मुसलमान 'इमाम मेंहदी' के आगमन की आशा कर रहे हैं। 'बौद्ध देशों' (जापान, चीन, भारत आदि) में महान आत्माओं के आविर्भाव की चर्चा सुनाई पड़ती रहती है। अमरीका में भी ऐसा ही विश्वास फैला हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि नवीन जगत का निर्माण आध्यात्मिकता पर ही होगा और इस सम्बन्ध में कितने ही लोगों को यह दृढ़ विश्वास है कि 'ईश्वर के आगमन' का रहस्य अब संसार में प्रकट होने ही वाला है।"

हम इससे पहले भी संसार के अनेक विद्वानों तथा आध्यात्मिकता के अनुयायिओं के कथन उद्धृत कर चुके हैं जिनमें 'दैवी शक्ति' के प्रकट होने की बात जोरों के साथ कही गई है। इसका कारण यही है कि जब संसार के ऊपर कोई भीषण विपत्ति आती है और लोगों को अपने अस्तित्व में शंका होने लगती है तो उनका ध्यान स्वभावतः किसी 'दैवी-

रक्षक' की तरफ जाता है और वे प्राचीन ग्रंथों में से इस तरह के वर्णनों की तरफ विशेष रूप से आकर्षित होने लगते हैं।

यद्यपि हमारे लिये तो 'अवतार' का सिद्धान्त 'गीता' से बढ़कर स्पष्ट और तर्कसम्मत कहीं नहीं मिला, पर अन्य धर्म और देशों वाले भी अपने-अपने ढंग और विश्वास के अनुसार उस सम्बन्ध में खोज और विचार कर रहे हैं, यह कम महत्व की बात नहीं है। उर्दू भाषा में एक कहावत है कि 'आवाजे' खल्क को आवाजे खुदा जानो' अर्थात् जिस बात की चर्चा सब मनुष्य करने लगें और उस पर विश्वास रखें तो समझनी चाहिये कि यह बात 'दैवी प्रेरणा' से ही हो रही है और सत्य होकर रहेगी। इसलिए जब हम संसार के दूरवर्ती भागों में रहने वाले और एक-दूसरे से अनजान लोगों को 'अवतार' और 'युग परिवर्तन' के सम्बन्ध में एक ही बात कहते और उस पर विश्वास करते देखते हैं तो हमको उसे एक 'तथ्य' के रूप में स्वीकार करना ही उचित प्रतीत होता है।

'अवतार' का आधार अन्धविश्वास पर न हो—

इस प्रकार पूरब और पश्चिम के बहुसंख्यक विद्वानों की सम्मतियों का विश्लेषण करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'अवतार' कोई अन्धविश्वास अथवा अन्धश्रद्धा का विषय नहीं है, वरन् वह सामाजिक विकास और इतिहास की प्रगति का एक अंग ही है। अन्तर यही है कि भौतिकतावादी उसे 'महामानव' अथवा 'जन नेता' के रूप में देखते हैं और धार्मिक-भावना रखने वाले उसे ईश्वरीय दूत या 'अवतार' की पदवी प्रदान करते हैं। यदि हम नामों के पीछे झगड़ना छोड़ दें तो दोनों प्रकार के मतों में कोई खास अन्तर नहीं है और दोनों का आशय लगभग एक ही है। दोनों ही मानते हैं कि संसार में विकृति के बढ़ जाने अथवा समाज की प्रगति में कोई बहुत बड़ी बाधा उत्पन्न हो जाने पर ही ऐसे विशेष प्रभाव युक्त व्यक्ति की आवश्यकता होती है और वह सामने आ भी जाता है।

वह महापुरुष जनता और संसार के उद्धार के लिये निःस्वार्थ भाव से कार्य करके संकट को निवारण करता है, और इस उद्‌देश्य की पूर्ति के लिये किसी प्रकार कष्ट या हानि की चिन्ता नहीं करता। उसकी इसी 'महानता' तथा अन्य लोगों में न पाई जाने वाली अनुपम उदारता को देखकर धार्मिक-भावना रखने वाले लोग उसे 'देव-पुरुष' की संज्ञा देते हैं, क्योंकि उनके मतानुसार निस्स्वार्थ भाव से किसी का उपकार करना 'देव' अथवा ईश्वर का ही कार्य है। इस प्रकार की भावना में हमें कोई आक्षेपजनक बात नहीं जान पड़ती। 'धर्म-प्रधान' तथा 'भौतिकता प्रधान' भावनाओं वाले व्यक्तियों के दो दल सदा से रहे हैं और अभी बहुत समय तक रहेंगे।

रह गई अवतार सम्बन्धी कथा-कहानियों और चमत्कारों की बात वह बौद्धिक दृष्टि से निम्नस्तर की जनता में सदा से पाई जाती है। राम, कृष्ण और अन्य अवतारों की बात तो छोड़ दीजिये 'धर्म को अफीम' बतलाने वाले कम्यूनिस्ट लेनिन के सम्बन्ध में भी रूस के किसानों में उसकी मृत्यु के बाद यह किम्वदन्ती फैल गई थी कि वह रात के समय अपनी समाधि (मुसोलियम) से निकल कर जनता की दशा और कम्यूनिस्ट पार्टी के कार्यकताओं की गति विधि जानने के लिये घूमता रहता है और अन्त में किसी दिन पुनः उठकर शासन-कार्य करने लगेगा! इसी प्रकार महात्मा गाँधी के विषय में सन् १६२१ में ही यह अफवाह फैली थी कि खद्‌दर का प्रचार करने के लिये उनके प्रभाव से सब प्रकार के पेड़ों पर रुई उत्पन्न होने लग गई है।

अवतारों की संख्या ६४ हजारः—

इस प्रकार की 'धार्मिक' अफवाहों का 'खण्डन' करने को हम कभी विशेष उत्सुक नहीं होते। क्योंकि हम जानते हैं कि अशिक्षित जनता प्रत्येक विषय को जो उसकी समझ और बुद्धि से बाहर होता है, तोड़-मरोड़ कर किसी प्रकार का दैवी-चमत्कार बना ही देती है। पर हम धार्मिक तत्वों की वास्तविकता पर सदा से प्रकाश डालते आये हैं। सन्

१९४२ में ही जब अवतार का जनता में बड़ा दौर दौरा था और लाखों व्यक्ति उसके प्रकट होने पर दृढ़ विश्वास करके प्रतीक्षा में थे 'सतयुग' (मासिक पत्र) में 'अखंड ज्योति' संचालक ने ऐसे अन्ध विश्वास के सम्बन्ध में चेतावनी देते हुए लिखा था—

"अब तक हिन्दू धर्म में चौबीस मुख्य अवतार हो चुके हैं और अंशावतारों की संख्या इससे कहीं अधिक है। जैन धर्म के तीर्थंकरों की भी एक बड़ी संख्या बताई जाती है। ईसाई, बौद्ध, पारसी, मुसलमान आदि भी अपने धर्मों में अनेक पैगम्बरों, 'दैवी आत्माओं' का प्रादुर्भाव हो चुका मानते है। इसके अतिरिक्त हजारों की संख्या में प्रचलित अन्य सम्प्रदायों में अपने-अपने विश्वासानुसार हजारों अवतार हुए हैं। 'विश्व-सर्व धर्म सम्मेलन' के नेता सर हार्ल्डलस्ट ने विभिन्न धर्मों के मूल ग्रन्थों (जिन्हें उन धर्मों के अनुयायी ईश्वरीय वाणी मानते हैं) के आधार पर करीब ६३००० 'अवतारों' का परिचय संग्रह किया था। यह अवतार सौ-डेढ़ सौ वर्ष पहले तक के हैं। इसके बाद के वर्षों में भी 'अवतारों' की कमी नही रही है। इस तर्क प्रधान युग के दो सौ वर्षों में यद्यपि 'अवतारों' को विशेष महत्व नहीं मिला है, तो भी संसार के विभिन्न भागों में करीब १४०० व्यक्ति ऐसे हुये हैं, जिन्हें 'अवतार' के रूप में पूजा गया है और स्वयं उन्होंने अपने आप मौखिक या लिखित रूप में अपने ईश्वर होने की घोषणा की है।"

"कई व्यक्ति यह कहते सुने जाते हैं कि कल्कि अवतार हो चुका है या होने वाला है। मुरादाबाद जिले का संभल कस्बा या मंगोलिया के रेगिस्तान वाला सम्भल उनका जन्म स्थान घोषित किया गया है। उनके माता-पिता, बहन-भाई सब का नाम बता दिया गया है और वे क्या-क्या करेंगे यह भी लिखा हुआ मिलता है। कोई कहते हैं कि कल्कि भगवान प्रकट हो चुके हैं और उन्हें परशुराम जी महेन्द्र पर्वत पर धनुष विद्या सिखाने को ले गये हैं, अब वे २१ वर्ष के हो चुके हैं और शीघ्र ही बंगाल के किसी स्थान पर प्रकट होंगे।

हमारा विश्वास है कि ये किम्वदन्तियाँ कभी फलितार्थ नहीं हो सकतीं। ऐसे कोई 'कल्कि-भगवान्' अवतार नहीं लेंगे जैसी कि रूपरेखा गढ़कर तैयार करदी गई है। बेशक भगवान का 'अवतार' बहुत शीघ्र प्रकट होने वाला है, वह अपने कार्य में संलग्न है, पृथ्वी पर से पाप का बोझ कम करने में वह प्रयत्नशील है। इसमें सन्देह नहीं कि दुनिया की यह दुर्दशा अधिक समय तक इसी प्रकार बनी नहीं रह सकती। मनुष्य के जन्म के समय उसकी मृत्यु भी पैदा होती है। जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है वैसे ही वैसे मृत्यु के निकट पहुँचता जाता है। इसी प्रकार पाप के साथ उसका विनाश भी जन्म लेता है। आज 'कलि' का ताण्डव-नृत्य हो रहा है, पर इस भस्मासुर को भी जलाने वाले शंकर मौजूद हैं।''

'अवतार क्या है ?' इस प्रश्न के उत्तर में यह जान लेना चाहिए कि दृश्य जगत का मूल अदृश्य जगत में रहता है। संसार में जब दुष्टता और अनाचार के कार्य बढ़ते हैं तब अदृश्य-लोक का वातावरण भी दुष्टता की वृत्तियों से भरा रहता है। जब अदृश्य लोक में दुर्भावनायें भर जाती हैं तो उनको हटाने के लिये प्रतिक्रिया स्वरूप विरोधी भावनाओं की एक लहर आती है। यह लहर उतनी ही जोरदार होती है जितनी कि उसकी प्रतिपक्षी लहर थी। गेंद को जितने जोर से जमीन पर पटका जाता है वह उतने ही जोर से ऊपर को उछलती है। प्रकृति के अन्तराल में से दुर्भावनाओं के विधि में जो सद्वृत्ति उदित होती है, उसकी शक्ति भी पूर्व—वृत्तियों के समान ही होती है।

''अदृश्य जगत में बुराइयों के विरोध स्वरूप जब कम्प लहरें उठती हैं तो उनका प्रभाव उन दिव्य आत्माओं पर होता है जिनकी आध्यात्मिक चेतना जागृत और सशक्त होती है। घरों में रक्खे हुए लोहे-लकड़ी के रेडियो सेट आकाशवाणी स्टेशन से ब्राडकास्ट आरम्भ होते ही बोलने लगते हैं, किन्तु उसी कमरे में रक्खे हुए लकड़ी और लोहे के कैशबक्स में से कोई आवाज नहीं निकलती। युग-परिवर्तन की लहरें जब

सूक्ष्म जगत में बहती हैं तो जागृत आत्माएँ उन्हें तुरन्त पकड़ लेती हैं और उसी स्वर में बोलने लगती हैं, फिर चाहे वे उस समय किसी भी स्थिति का जीवन क्यों न व्यतीत कर रही हों।

" 'अवतार' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की जाय तो अनुचित न होगा कि "समाज को गिरी हुई दशा से उन्नति की ओर ले जाने वाला महा मानव नेता" यह तो प्रत्यक्ष ही है कि ऐसा असाधारण कार्य कर सकने वाला, ईश्वरीय शक्ति से समन्वित होता है। वैसे तो जीव मात्र ईश्वर का अवतार (अंश) है, पर कुछ चैतन्य आत्माओं में दैवी तेज अधिक होता है। उसी तेज के अनुपात से उस अवतार की कलाएँ निर्धारित की जाती हैं। उच्च जागृत आत्माएँ ईश्वरीय आदेश को शिरोधार्य करके परम पिता की इच्छा पूरी करने के लिये अविलम्ब तैयार हो जाती हैं और लीलापति का साधन बन कर परम सौभाग्य का अनुभव करती हैं। वे अपने पीछे अनन्त यश और अखण्ड श्रद्धा छोड़ जाते हैं। जन समुदाय उनको ईश्वर का दूत, ईश-पुत्र या साक्षात् भगवान ही मानने लगता है-वे ही अवतार भी कहे जाते हैं।"

अवतार की इस परिभाषा में कोई ऐसी बात नहीं जिससे उसकी कोई त्रुटि या हीनता प्रकट होती है। यद्यपि पौराणिक कथाओं के अनुयायी ऐसे 'अवतारों' के भक्त बनना कदाचित् ही पसन्द करें, पर हमारे मूल धर्म-ग्रन्थों, वेदों और उपनिषदों में परमात्मा और जीव का जो लक्षण बताया गया है उससे अवतार विशिष्ट जीवों की श्रेणी में आते हैं।

हमारी सम्मति में अवतार के विषय में यह विवाद उठाना कि वह वास्तव में भगवान ही होते हैं अथवा किसी उपयुक्त व्यक्ति में भगवद् शक्ति प्रविष्ट हो जाती है, कुछ भी महत्व नहीं रखता। ऐसी बातों में सर खपाने वाले वे ही व्यक्ति होते हैं जिनको कुछ करने-धरने के बजाय बहस-मुबाहिसे और 'खण्डन' में ही मजा आता है। यह तो कोई कह नहीं सकता कि जिस समय पृथ्वी पर अवतार हुये थे उस समय 'वैकुण्ठ धाम' भगवान से खाली हो गया था। फिर सर्व व्यापी ईश्वर के लिये

यह विवाद उठाना कि वह कब कहाँ रहते हैं अपनी अज्ञता का परिचायक है। जब जीवमात्र भगवान के ही अंश हैं और वे साधन करके जीवन मुक्त बन सकते हैं, जो भगवान की तरह ही इच्छा मात्र से संसार के अनेक कार्यों की पूर्ति कर सकते हैं जब कोई ज्ञानी व्यक्ति अवतार की उपर्युक्त परिभाषा से किसी प्रकार की विरोध प्रकट नहीं कर सकता।

जैसा गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है कि निराकार और साकार की विवाद उठाना अबुद्धिमत्ता का परिचायक है, क्यों कि सर्व-शक्तिमान भगवान दोनों ही रूपों में संसार का संचालन कर सकता है, उसी प्रकार अवतार कई तरह से हो सकते हैं और उनकी शक्ति तथा दर्जे में भी अन्तर हो सकता है। अवतारों की जो कम या ज्यादा कला मानी गई हैं, उसका कारण यह अवतारी शक्ति-की न्यूनता और अधिकता ही है। शास्त्रों में अंशावतारों का वर्णन बड़े विस्तार से मिलता है और यही कारण है कि कपिल, ऋषभ देव ह्यग्रीव परशुराम आदि की उस तरह उपासना नहीं की जाती जैसीकि राम और कृष्ण की की जाती है। बुद्धदेव की नाम यद्यपि भागवत में भी दश मुख्य अवतारों में दिया गया है, पर अनेक धार्मिक व्यक्ति उनको अवतार नहीं मानते।

इस प्रकार अवतार के सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत मतभेद तो प्राचीन समय से चला आया है। इस सम्बन्ध में मुख्य विचारणीय विषय यह नहीं है कि स्वयं भगवान अवतार लेने के लिये आते हैं अथवा किसी उप-युक्त जीवात्मा में अपनी विशेष शक्ति का संयोग करके उसके द्वारा 'भूतल का भार हलका करने' का उद्देश्य पूरा कराते हैं ? वरन् मुख्य बात यह है कि अवतार का जो स्वरूप पुराने रूढ़िवादी मानते हैं वह ठीक है अथवा उसका तर्क और बुद्धि संगत रूप जो उस महान उद्देश्य के अनु-कूल जान पड़े उसे स्वीकार किया जाय। उपर्युक्त लेख में अवतार के वास्तविक उद्देश्यों पर विचार करके अन्त में अवतार सम्बन्धी विचार धारा के दो पक्षों को अलग-अलग उपस्थित किया है और पाठकों से प्रश्न किया है कि आप इन दोनों में से किसको अधिक उपयुक्त और हितकारी समझते हैं—

[प्रथम पक्ष]

(१) एक अवतारी विशेष आत्मा राम, कृष्ण, बुद्ध आदि की तरह प्रकट होता है। वही अपने पौरुष से पृथ्वी का भार हल्का कर देता है।

(१) अवतारी में इतनी सामर्थ्य होती है कि अपने आप जो चाहे कर सकता है।

(३) ईश्वर एक शक्ति को अवतार बना कर भेज देता है। उसमें ऐसी योग्यता और शक्ति होती है कि वह अनायास अपने अनुयायी उत्पन्न कर लेता है।

(४) अवतारी के काम अत्यन्त विचित्र और चमत्कार तथा जादू की तरह होते हैं।

(५) अवतार बुरे व्यक्तियों का वध करने आता है। दुष्टों का संहार ही उसका उद्देश होता है।

(६) अवतार की शरण में जाने से सारे पाप छूट जाते हैं और अनायास स्वर्ग मिल जाता है।

(७) अवतार अमुक देश में, अमुक जाति में और अमुक काल में ही होते हैं।

(८) अवतार सर्वथा स्वतंत्र होते हैं। वे उचित-अनुचित सभी काम कर सकते हैं।

(९) अवतारों के दर्शन, कीर्तन, स्तवन, ध्यान से ही भक्तों का उद्धार हो जाता है।

अब इन नौ बातों का मुकावला दूसरे पक्ष की नौ बातों से नम्बर-वार करिये।

दूसरा पक्ष

(१) समय की दूषित प्रवृत्तियों को बदलने के लिये एक भावना उत्पन्न होती है, जिससे प्रेरित होकर एक, दो या अधिक व्यक्ति उस समय की आवश्यकता को पूरा करने के लिये संलग्न होते हैं। तब 'अवतार' का उद्देश्य पूरा होता है।

(२) उच्च भावना से प्रेरित होकर अनेक 'अवतारी' व्यक्ति मिलकर किसी महान उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।

(३) सबसे पहले कार्यारम्भ करने वाले या विशेष योग्यता वाले की पूजा होती है। पर वास्तव में उस भावना से प्रेरित होकर सद्धर्म का प्रसार करने वाले सभी व्यक्ति 'अवतार' ही होते हैं।

(४)असाधारण शीघ्रता पूर्वक जो परिवर्तन होते हैं, वे जादू की तरह प्रतीत होते हैं। अवतार नवीन व्यवस्था बनाने आते हैं, बाजीगर का खेल करने नहीं आते ।

(५) अवतार बुराइयों को हटाने आता है। वह पाप पूर्ण विचारों को नष्ट कर देता है। यह आवश्यक नहीं कि वह शरीरों का वध ही करे। राम और बुद्ध दोनों के उदाहरण आवश्यकतानुसार उचित हैं।

(६) अवतार के उदार और आदर्श विचारों का अनुसरण करने से तत्काल संसार की बहुत बड़ी सेवा होती है। पुण्य-पर्व पर तीर्थ स्नान के समान उसका महान फल होता है।

(७) अवतार किसी प्रतिबंध में बँधे नहीं होते। अधर्म और अविवेक जहाँ और जब भी बढ़ता है तभी उसको दूर करने के लिये 'अवतार' ईश्वरीय शक्ति के रूप में प्रकट होते हैं।

(८) अवतार वर्तमान समय में प्रचलित कुप्रथाओं को तोड़ने के लिये कोई असाधारण काम कर सकते हैं। पर वे मनुष्यता की मर्यादा को तोड़ने वाला कोई कार्य, जिसे उद्धतता कहा जा सके कभी नहीं करते।

(९) अवतार के आदर्श और उपदेशों के अनुसार आचरण किये बिना किसी का कुछ लाभ नहीं हो सकता।

× × ×

इन दोनों प्रकार की अवतार सम्बन्धी धारणाओं में से रूढ़िवादी धारणा अब असामयिक हो गई है। संभव है अब से सैकड़ों वर्ष पूर्व जब जन समुदाय में शिक्षा का प्रचार नहीं हुआ था, लोग ऐसी चमत्कारी बातों से ही अधिक प्रभावित होते थे और इसलिये उस समय के

धर्म प्रचारक अपने उपदेशों और धार्मिक कथा-कीर्तन आदि में वैसा ही पुट देते थे। पर इस समय विज्ञान-युग के मनुष्य पर उन अलंकार और अतिशयोक्ति पूर्ण बातों के विपरीत ही प्रभाव पड़ता है। आज जब मनुष्य चन्द्रमा के धरातल पर पहुँच कर उसकी मिट्टी और अन्य पदार्थों की जाँच कर रहा है, उसे केवल एक देवता मानना तथा उसके सम्बन्ध में तरह-तरह की रोचक कहानियाँ सुनाना कहाँ तक प्रभाव शाली हो सकता है? यद्यपि भगवान आज भी वही है जो आज से पाँच-दस हजार वर्ष पहले श्रीकृष्ण और श्री रामचन्द्र के जमाने में था, पर वह आज जिस 'अवतार' को भेजेगा, या जिसमें उसकी 'युग-परिवर्तनकारी' शक्ति का प्रवेश होगा वह आजकल की परिस्थितियों के अनुकूल ही होगा। उसके लिये यह कल्पना करना कि वह वन में गाय चरायेगा या वानर-भालुओं की सेना बनावेगा, भोलापन ही है।

आजकल का 'अवतार' भी जेट विमान पर एक हजार मील प्रति घण्टा की चाल से यात्रा करने वाला और रेडियो तथा टेलीविजन द्वारा समस्त संसार में अपना संदेश फैलाने वाला होगा। इस लिये पुराने और नये अवतारों में शक्ल-सूरत, पहिनाव-उढ़ाव, खान-पान, बोल-चाल की समानता ढूँढ़ना निरर्थक है। वरन् उन दोनों में जो एकता होगी वह आध्यात्मिक भावों की होगी। वह भी वर्तमान भौतिकतावाद में भूले हुये संसार को भगवान कृष्ण की भाँति 'गीता' का उपदेश देगा कि—

यह बाह्य रूप-रंग और आकृतियाँ वास्तविक और महत्वपूर्ण नहीं हैं वरन् सत्य वह है जो इनके अन्तर में प्रतिष्ठित है। सांसारिक सुख-सुविधाओं और पाशविक श्रम के स्थान पर सर्वोपयोगी यंत्रों का प्रयोग करना बुरा नहीं है, पर भौतिकता की माया में पड़ कर आत्मा और उसके कल्याण को भूल जाना बहुत बड़ी गलती है। क्योंकि वास्तविक सुख और प्रसन्नता भौतिक पदार्थों और यंत्रों में नहीं है चाहे वे कैसे भी सुन्दर और आकर्षक हों, वरन् इसका आधार मनुष्य के मन और आत्मा में है। यदि वह शुद्ध, पवित्र और संतुष्ट होगी तो सब छोटे और बड़े

पदार्थों में आनन्द आयेगा, और यदि वह कलुषित हो गई तो 'सर्च लाइट' के प्रकाश में भी अन्धकार ही जान पड़ेगा। इसलिये भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय करके आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलो। आज आध्यात्मिकता को -भगवान को भूल जाने से ही मनुष्य अपनी शक्ति का दुरुपयोग करके सर्वनाश की तरफ अग्रसर हो रहा है। इस लिये आत्मा को पहिचानो और समस्त सांसारिक वैभव को अपनी नहीं वरन् परमात्मा की देन—धरोहर समझ कर इसका न्यायानुकूल व्यवहार करो। जिस क्षण से ऐसा करने लगोगे उसी क्षण से इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग दिखाई पड़ने लगेगा।

नई सभ्यता का आविर्भाव-

जो लोग आँखें खोलकर संसार की दशा का निरीक्षण करते रहते हैं और उसकी हलचल पूर्ण स्थिति के वास्तविक कारणों पर विचार किया करते हैं, उनसे यह बात छिपी नही है कि इन दिनों सर्वत्र जो घोर अशान्ति और उथल-पुथल दिखाई पड़ रही है, उसका मूल कारण यही है कि अब संसार में एक नई सभ्यता, नवीन समाज और नये मनुष्य का आविर्भाव होने को है। इस समय दुनिया की हालत एक नये शिशु के जन्म लेने के समान हो रही है। यद्यपि माता-पिता की दृष्टि में यह समय बड़े सौभाग्य और प्रसन्नता का होता है, पर जब तक प्रसव क्रिया पूरी नहीं हो जाती तब तक चारों तरफ हलचल, अनिश्चित और संकट का-सा वातावरण बना रहता है। अनेक बार माता की सुरक्षा सन्देह में पड़ जाती है और उसे अपार कष्ट सहन करना पड़ता है। जब यह स्थिति पार हो जाती है और लोग नये शिशु के सुन्दर और पवित्र मुख को देख लेते हैं तो वातावरण एकदम बदल जाता है और चारों तरफ आनन्द के मंगल गीत और वाद्य सुनाई पड़ने लगते हैं।

ठीक यही हालत आज दुनिया की हो रही है। गत सौ-पचास वर्षों के भीतर संसार में ज्ञान-विज्ञान और साथ ही उद्योग-धन्धों ने इतनी तरक्की की है कि एक नई दुनिया और नई सभ्यता का निर्माण किया

जा सकना संभव हो गया है। पैदावार और कारखानों में उपयोगी सामग्री बनाने के क्षेत्र में इतनी प्रगति हो चुकी है कि यदि बुद्धिमत्ता और न्याय के साथ उसका सचालन और व्यवस्था की जाय तो ससार के प्रत्येक मनुष्य को भरपूर भोजन–वस्त्र और अन्य सुख–सामग्री सहज में प्राप्त हो सकती है। पर संसार के अधिकांश देश इस प्रगति और वृद्धि का उपयोग सही ढंगसे न करके एक मात्र स्वार्थपरता की निगाह से करना चाहते हैं। ऐसे उदाहरण मिले हैं जब कि अमरीका में अन्न की अधिक पैदावार होने के कारण लाखों मन गेंहू तथा अन्य खाद्य सामग्री जान बूझकर जला दी गई, नष्ट कर दी गई और उसी समय पास के दूसरे देश में लोग अन्नाभाव से भूखों मरते रहे। व्यापार के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा होने के कारण अनेक युद्ध हो चुके हैं और सीमा सम्बन्धी विवादों के कारण आज भी भयंकर संघर्ष हो रहे हैं।

संसार के एकीकरण की संभावनाएँ–

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ही संसार का एकीकरण आवश्यक और संभव नहीं जान पड़ता, वरन् एतिहासज्ञ और दार्शनिक क्षेत्र के प्रमुख विचारकों का यही मत है कि अब जगत में जो परिस्थितियाँ उपलब्ध हैं उनको देखते हुये सब देशों और जातियों का सहयोग और प्रेम के सूत्र में बँधकर रहना सर्वथा संभव और लाभदायक है। इसका विवेचन करते हुये माननीय श्री राधाकृष्णन ने कहा था—

हमारे सामाजिक जीवन की एक मात्र व्याधि का मुख्य कारण हमारी सामाजिक संस्थाओं और विश्व के उद्देश्य बीच में उत्पन्न हो गया भेद ही है। प्रकृति ने अनेक जातियाँ बनाई हैं जिनकी भाषाएँ धर्म और सामाजिक परम्पराएँ भिन्न हैं और उसने मनुष्य को यह काम सोंपा है कि वह मानव-जगत में व्यवस्था उत्पन्न करे और जीवन का ऐसा रास्ता खोजनिकाले, जिससे विभिन्न समूह बिना लड़े–झगड़े शान्ति-पूर्वक रह सकें। यह संसार युद्धप्रिय राष्ट्रों का युद्ध–क्षेत्र होने के लिये नहीं रचा गया है, वरन् एक ऐसा राष्ट्र-मंडल बनने के लिये रचा गया है, जिसमें

विभिन्न समूह सबके लिये गौरव, अच्छा जीवन और समृद्धि प्राप्त करने के लिए परस्पर सहयोग कर रहे हों।

"संसार के एकीकरण के लिये आवश्यक दशाएं अब विद्यमान हैं। केवल मनुष्य की इच्छा—सद्भावना का अभाव है। संसार के विभाजन के बड़े-बड़े कारण—महासागर और पर्वत अब प्रभाव-हीन हो गये हैं। परिवहन और संचरण की इस समय उपलब्ध सुविधाओं के कारण यह संसार एक छोटा–सा पड़ोस बन गया है। धार्मिक और सामाजिक प्रथाओं के विपरीत, जो कि प्राय: एक दूसरे से पृथक और स्थानीय ढंग की होती हैं, विज्ञान राजनीतिक या सामाजिक सीमाओं को नहीं मानता और वह ऐसी भाषा में बात करता है जिसे सब समझते हैं।

"औद्योगिक क्रान्ति ने संसार के आर्थिक सम्बन्धों को इतना अधिक बदल दिया है कि अब हम एक विश्व-समाज बन गये हैं जिसकी अपनी विश्व अर्थ-व्यवस्था है और जिसकी माँग है कि एक विश्व-राजनैतिक-व्यवस्था कायम की जाय। विज्ञान ने मानव–जीवन का आधार एक ही ब्रह्माण्ड–तत्त्वों को बतलाया है। दर्शन में भी यह कल्पना की गई है कि प्रकृति और मानवता के पीछे एक सर्वव्यापी चेतना है। धर्म भी हम सबके लिये एक सम्मिलित आध्यात्मिक आदर्श और लक्ष्य की ओर संकेत करता है।"

इस प्रकार धार्मिक वैज्ञानिक और दार्शनिक क्षेत्र के प्रमुख विचारकों में लक्ष्य की एकता होने से एक विश्वव्यापी-संगठन बनना बहुत संभव है। अब एकमात्र वाधा राजनीतिज्ञों की है, जो लोगों की भिन्न राष्ट्रीयता और जातीयता की भावनाओं का उद्दीपन करके मानव प्रगति की मुख्य धारा को स्वाभाविक मार्ग से मोड़ कर संकीर्ण मार्गों की ओर प्रवाहित करते रहते हैं। आज प्रजातंत्रवादी, नाजी, फासिस्ट, कम्यूनिस्ट कोई भी क्यों न हो सबमें किसा न किसी रूप में यह संकीर्ण राष्ट्रीयता की मनोवृत्ति पाई जाती है और यही विश्व एकता के मार्ग

में सब से बड़ा रोड़ा है। संभव है इसका अन्त एक आगामी विश्व युद्ध द्वारा ही हो जिसमें जाति और मानव सभ्यता का अभूतपूर्व नाश हो।

पर इसमें भी घबड़ाने की कोई बात नहीं। भगवान के ढंग निराले ही होते हैं। लोग कहते हैं कि भगवान कृष्ण ने महाभारत रचा कर भीष्म, द्रोण, कर्ण, अभिमन्यु जैसे अनगिनती वीरों को कटवा दिया और हजारों गुणी, विद्वान्, कलाविद् व्यक्तियों का अन्त करा दिया इसी से भारतवर्ष को पतन का मुख देखना पड़ा। पर वे नहीं जानते कि जब भगवान कृष्ण ने देख लिया कि ये सैनिकतावादी और राज्य के भूखे लोग जब तक कायम रहेंगे तब तक जनता सुख से नहीं रह सकती। ये लोग अपनी सैनिक तैयारी और युद्धों के लिये जनता को चूसते ही रहेंगे, तो उन्होंने सामाजिक प्रगति के लिये यही हितकर समझा कि इन अहंकारी और दुराग्रही राजनायकों का अन्त हो जाय।

ठीक ऐसी ही दशा आजकल हो रही है। आज वैज्ञानिक प्रगति की बदौलत उत्पादन के साधन नित्य प्रति बढ़ते जाते हैं, पर सैनिक व्यय के कारण जनता को अभावग्रस्तता का ही जीवन बिताना पड़ रहा है। यह स्थिति तब तक नहीं बदल सकती जब तक राजी से या विवशता से इन सैनिकता के उन्मादियों का अन्त नहीं हो जायगा। यही विचार करके एक विचारक ने कहा है—"संभव है कि भावी कुरुक्षेत्र ही धर्मक्षेत्र बन जाय।" और 'कल्कि उपाख्यान का मनन करके हम कह सकते हैं कि यही संभावना अधिकांश में सत्य सिद्ध होगी।

पूँजीवाद और सायम्यवाद का संघर्ष

जसा हम कह चुके हैं इस समय संसार की समस्या इतनी अधिक उलझ गई है कि अब उसकी गति रुद्ध हो जाना ही निश्चय है। सब से बढ़कर पूँजीवाद (कैपीटलिज्म) और साम्यवाद (कम्यूनिज्म) का संघर्ष दुनिया को दो समान शक्तिशाली दलों में विभक्त करके एक सब से बड़ी क्रान्ति की संभावना उत्पन्न कर रहा है। यद्यपि पूँजीवाद अभी तक संसार का प्रधान संचालक रहा है और अब भी दुनिया के सब से प्रसिद्ध देश—अमरीका इंगलैण्ड, फ्रांस आदि में उसी की सत्ता

मानी जा रही है, तो भी अब वह घटती पर है और साम्यवाद वृद्धि की ओर अग्रसर हो रहा है। एक लेखक के मतानुसार "साम्यवाद एक नव जीवन सम्पन्न शक्ति है जबकि पूँजीवाद दिन पर दिन क्षीण होकर समाप्त होने वाली शक्ति है। साम्यवाद आक्रमण करने वाला है, पूँजीवाद आत्मरक्षा के लिये प्रयत्नशील है। साम्यवाद के सामने पूरा करने के लिये एक लक्ष्य (मिशन) है, पर पूँजीवाद के सामने कोई विशेष लक्ष्य नहीं है। इस समय पूँजीवाद के लिये इतना ही कर्तव्य शेष रह गया है कि वह साम्यवाद (कम्यूनिज्म) को हिंसक और उन्मत्त हो जाने से तब तक रोकता रहे जब तक कि परमात्मा में विश्व-पिता और मनुष्य मात्र में भ्रातृत्व की भावना रखने वाला 'नया साम्यवाद' संसार के सम्मुख न आजाय।"

जिस अवतार की अनेक लोग चर्चा कर रहे हैं उसका सब से बड़ा काम यही होगा कि वह कैपिटलिज्म (पूँजीवाद) और कम्यूनिज्म (साम्यवाद) में समन्वय करके संसार के लिये एक आदर्श सामाजिक-प्रणाली की स्थापना करे। न तो 'पूँजीवाद' को सर्वथा बुरा बतलाया जा सकता है और न 'साम्यवाद' को पूर्ण रूप से निर्दोष कहा जा सकता है। ये दोनों ही अपने युग की आवश्यकतानुसार ठीक थे। पूँजीवाद का मुख्य दोष यही है कि वर्तमान समय में जब परिस्थितियों के बदल जाने से उसकी उपयोगिता समाप्त होचुकी है, तब भी वह संसार का स्वामी और कर्ता धर्ता बना रहना चाहता है। कम्यूनिज्म की सब से बड़ी त्रुटि यह है कि वह मनुष्य के अन्तर से उत्पन्न नहीं हुआ है वरन् ऊपर से जबर्दस्ती लादा जा रहा है और उसने मनुष्य के आध्यात्मिक-पक्ष की बिल्कुल उपेक्षा कर दी है।

अब अपनी इन त्रुटियों को दोनों पक्ष (पूँजीवादी और साम्यवादी) समझ भी चुके हैं, पर प्रत्येक अपनी सत्ता और प्रमुखता को सिद्ध करने के लिए हठधर्मी कर रहे हैं और मानव जाति के लिये कल्याणकारी मार्ग की उपेक्षा कर रहे हैं। अवतारी-सत्ता अपनी विराट आत्मशक्ति के प्रभाव से इस तथ्य को इस प्रकार और ऐसे रूप में दोनों को समझा

देगा कि उनकी बुद्धि 'शुद्ध' हो जायगी और वे नाश के मार्ग को त्याग कर निर्माण के मार्ग पर चल पड़ेंगे। चाहे आज के भौतिकतावादी संघर्ष की कटुता और अनियंत्रित उत्साह में पड़ कर भगवान को भूल गये हों पर भगवान उनको नहीं भूल सकता। हम जानते हैं कि समस्त संसार और विशेष रूप से आध्यात्मिक संस्कृति की गोद में पली हुई भारतीय जनता 'ईश्वर रहित' साम्यवाद को स्वीकार नहीं कर सकती पर 'नया अवतार' उसको 'शुद्ध और पवित्र' बनाकर मनुष्य मात्र में समता के साथ ही भ्रातृभाव की भी स्थापना करेगा और तब उसका प्रचारित नवीन सिद्धान्त 'आध्यात्मिक साम्यवाद' के रूप में संसार का जीवन-दाता मार्ग बन जायगा।

भगवान भावरूप में अथवा प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होकर मानव-जाति का मार्ग-प्रदर्शन करके विषमता के स्थान पर समता, अन्याय के स्थान पर न्याय और अधर्म के स्थान पर धर्म की स्थापना करें यही इस समय मानव-अन्तरात्मा की प्रार्थना है।

'कल्कि पुराण' का सार यही है। यह उसकी बहुत बड़ी विशेषता है कि अन्याय और असमानता के युग में उसने एक 'कथा' के रूप में 'सत्य-धर्म' की स्थापना की कल्पना की और 'कल्कि' द्वारा उसे संभव बतला कर प्रचारित किया। इसमें तो सन्देह ही नहीं कि ऐसे विराट और विश्वव्यापी परिवर्तन सामान्य मानवीय शक्ति द्वारा संभव नहीं हो सकते। उसके लिये 'अतिमानवीय' या दैवी शक्ति की आवश्यकता होती है और वह 'परमात्म शक्ति' के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हो सकती।

—सत्यभक्त

कल्किपुराण

प्रथम अंश

प्रथम-अध्याय

सेन्द्रा देवगणा मुनीश्वरजना लोकाः सपालाः सदा ।
स्वं स्वं कर्म सुसिद्धये प्रतिदिनं भक्त्या भजन्त्युत्तमाः ।
तं विघ्नेशमनन्तमच्युतमजं सर्वज्ञसर्वाश्रयं ।
वन्दे वैदिकतान्त्रिकादिविविधैः शास्त्रैः पुरोवन्दितम्॥१॥
नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ २ ॥
यद्दोर्दण्डकरालसर्पकवलज्वालाज्वलद्विग्रहाः
नेतुः सत्करवालदण्डदलिता भूपाःक्षितिक्षोभकाः ।
शश्वत् सैन्धववाहनो द्विजजनिः कल्किः परात्मा हरिः
पायात्सत्ययुगादिकृत्स भगवान्धर्मप्रवृत्तिप्रियः ॥ ३ ॥
इति सूतवचः श्रुत्वा नैमिषारण्यवासिनः ।
शौनकाद्या महाभागाः पप्रच्छुस्तं कथामिमाम् ॥ ४ ॥
हे सूत! सर्वधर्मज्ञ ! लोमहर्षणपुत्रकः ! ।
त्रिकालज्ञ ! पुराणज्ञ ! वद भागवतीं कथाम् ॥ ५ ॥
कः कलिः ? कुत्र वा जातो जगतामीश्वरः प्रभुः ।
कथं वा नित्य धर्म्मस्य विनाशः कलिना कृतः ? ॥ ६ ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा सूतो ध्यात्वा हरिः प्रभुम् ।
सहर्षपुलकोद्भिन्न सर्वाङ्गः प्राह तान्मुनीन् ॥ ७ ॥

प्राचीन काल में वैदिक तान्त्रिक आदि विविध शास्त्रों के द्वारा आराधित, इन्द्र सहित देवता, मुनीश्वर और लोकपालों द्वारा स्वकार्य-सिद्धि के लिए भक्तिपूर्वक सतत उपासित, विघ्नेश, अनन्य, अच्युत, अजन्मा, सर्वज्ञ एवं सर्वाश्रय स्वरूप भगवान् विष्णु का वन्दन करता हूँ ।।१।। नर, नारायण कहे जाने वाले नरोत्तम को एवं भगवती सरस्वती को नमस्कार करके उनकी जय बोलता हूँ ।।२।।

जिनके भयंकर भुज भुजंग के विष ज्वाल में पड़कर अपने घोर अत्याचारों से भूमंडल की शान्ति भंग करने वाले राजागण भस्म हो जांयगे और जिनके भयंकर खड्ग की तीक्ष्ण धार से राजाओं के देह मर्दित होंगे, वे ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होकर, युग-युग में अवतार धारण करने वाले भगवान् श्री हरि कल्कि रूप में रक्षा करें ।।३।।

सूतजी के यह वचन सुन कर नैमिषारण्य निवासी शौनकादि महा-भागों में उनसे पूछा ।।४।। हे सूतजी ! हे सर्व धर्मों के ज्ञाता, हे लोम-हर्षण-पुत्र ? हे त्रिकालज्ञ ? हे पुराणों के भली प्रकार जानने वाले ? अब आप भगवान् की कथा को विस्तृत रूप से कहिये ।।५।। कलि कौन है ? वह कहाँ उत्पन्न हुआ ? वह किस प्रकार पृथिवी का अधीश्वर बन गया ? तथा उसने नित्यधर्म को किस प्रकार विनष्ट कर दिया ? यह सब हमारे प्रति कहिये ।।६।। महर्षियों के यह वचन सुनकर सूतजी ने भगवान् श्री हरि का ध्यान किया और फिर पुलकित अंग होकर कहने लगे ।।७।।

शृणुध्वमिदमाख्यानं भविष्यं परमाद्भुतम ।
कथि ब्रह्मणा पूर्वं नारदाय विपृच्छते ।। ८ ।।
नारदः प्राह मुनये व्यासायामिततेजसे ।
सव्यासो निजपुत्राय ब्रह्मराताय धीमते ।। ९ ।।
स चाभिमन्युपुत्राय विष्णुराताय संसदि ।

प्राह भागवतान्धर्मानिष्टादशसहस्त्रकान ।। १० ।।
तदा नृपे लयं प्राप्ते सप्ताहे प्रश्नशेषितम् ।
मार्कण्डेयादिभिः पृष्टः प्राह पुण्याश्रमे शुकः ।। ११ ।।
तत्राहं तदनुज्ञातः श्रुतवानस्मि याः कथाः ।
भविष्याः कथयामीह पुण्या भागवतीः शुभाः ।। १२ ।'

सूतजी बोले--हे मुनीश्वरो ! प्राचीन समय की बात है—इस परम अद्भुत उपाख्यान कोपूछने पर ब्रह्माजी ने नारदजी से जो कहा था, वही में आपके प्रति कहता हूँ ।।८।। फिर नारद जी ने इसका वर्णन व्यासजी से किया, जिसे व्यासजी ने अपने मेधावी पुत्र ब्रह्मरात को सुनाया ।।९।। ब्रह्मरात ने उसे अभिमन्यु-पुत्र विष्णुरात के प्रति अट्ठारह सहस्त्र श्लोकों में सभा मंडप के मध्य में सुनाया ।।१०।। उस समय प्रश्न होते-होते राजा विष्णुरात ने एक सप्ताह में शेष प्रश्नों को पूर्ण कर लिया और लय को प्राप्त हो गये । उसी कथा के शेष अंश अर्थात् संक्षिप्त रूप को शुकदेवजी ने मार्कण्डेय प्रभृति मुनियों के प्रश्न करने पर कहा ।।११।। भगवान् श्री शुकदेवजी द्वारा वर्णित उसी संक्षिप्त पुण्यमय, भागवत उपाख्यान को, जो भविष्य में घटित होने वाला है, आपसे कहता हूँ ।।१२।।

ताः श्रृणुध्वंमहाभागाः समाहित धियोऽसिशम् ।
गते कृष्णे स्वनिलयं प्रादुर्भूतो यथा कलिः ।। १३ ।।
प्रलयान्ते जगत्स्त्रष्टा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
ससर्ज घोरं मलिनं पृष्टदेशात स्वपातकम् ।।१४।।
स चाधर्म इति ख्यातस्तस्य वंशानुकीर्त्तनात ।
श्रवणात्स्मरणाल्लोकः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। १५ ।।
अधर्मस्य प्रियारम्या मिथ्या मार्जारलोचना ।
तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी दम्भः परमकोपनः ।। १६ ।।

स मायायां भगिन्यान्तु लोभं: पुत्रञ्च कन्यकाम् ।
निकृतिं जनयामास तयोः क्रोधः सुतोऽभवत् ॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण के अपने लोक को पधारने के पश्चात् जिस प्रकार कलि की उत्पत्ति हुई, उस सब को कहता हूँ, आप लोग समाहित चित्त सुनें ॥१३॥ जब प्रलयकाल व्यतीत हो गया तब संसार-स्रष्टा, लोक पितामह ब्रह्माजी ने अपनी पीठ से घोर मलीन पातक को उत्पन्न किया ॥१४॥ उसी पातक का नाम अधर्म हुआ, उस अधर्म के वंश का श्रवण, स्मरण एवं रहस्य जानने से प्राणीमात्र सब पापों से मुक्त हो सकते हैं ॥१५॥ उस अधर्म की पत्नी बिल्ली जैसे नेत्र वाली, अत्यन्त रम्या हुई, जिसका नाम मिथ्या हुआ। फिर अधर्म के संयोग से अति तेजस्वी, महाक्रोधी एक पुत्र हुआ, जिसका नाम दंभ था ॥१६॥ अधर्म और मिथ्या ने माया नाम की एक कन्या भी उत्पन्न की। दंभ और माया के संयोग से लोभ नामक पुत्र और निकृति नाम की कन्या हुई। लोभ और निकृति के संयोग से क्रोध नामक पुत्र हुआ ॥१७॥

सहिंसायां भगिन्यान्तु जनयामास तं कलिम् ।
वामहस्त धृतोपस्थं तैलाभ्यक्ताञ्जनप्रभम् ॥ १८ ॥
काकोदरं करालास्यं लोलजिह्वं भयानकम् ।
पूतिगन्धं द्यूतमद्यस्त्री सुवर्णाकृताश्रयम् ॥ १९ ॥
भगिन्यान्तु दुरुक्त्या स भयं पुत्रञ्च कन्यकाम् ।
मृत्युं स जनयामास तयोश्च निरयोऽभवत् ॥ २० ॥
यातनायां भगिन्यान्तु लेभे पुत्रायुतायुतम् ।
इत्थं कलिकुले जाता बहवो धर्मनिन्दकाः ॥ २१ ॥
यज्ञाध्ययनदानादिवेदतन्त्रविनाशकाः ।
आधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयाश्रयाः ॥ २२ ॥

क्रोध की संयोनि हिंसा हुई। उन दोनों के संयोग से संसार को नष्ट वाले कलि की उत्पत्ति हुई। इस वाम कर में उपस्थ धारण करने वाले कलि की देह कान्ति काजल के समान काली हुई ॥१८॥ काकोदर, कराल, चंचल जिह्वा वाले, भयानक दुर्गन्ध युक्त शरीरधारी इस कलि

ने द्यूत, मद्य, स्त्री और स्वर्ण में निवास किया ।।१६।। कलि की सगर्भा दुरुक्ति हुई । उन दोनों ने भयानक नामक पुत्र और मृत्यु नाम की कन्या उत्पन्न की। मृत्यु ने उसके द्वारा निरय नामक पुत्र को उत्पन्न किया ।।२०।। निरय की सगर्भा यातना हुई। इन दोनों के संयोग से हजारों पुत्र उत्पन्न हुए । इस प्रकार कलि के कुल में बहुतेरे धर्म-निन्दकों की अवतारणा हुई ।।२१।। यह सभी आधि, व्याधि बुढ़ापा, ग्लानि दुःख शोक और भय के आश्रय को प्राप्त होकर यज्ञ, अध्ययन, दानादि एवं वैदिक तथा तांत्रिक कर्मों का नाश करने वाले हुए ।।२२।।

कलिराजानुगाश्चेरुर्यूथशो लोकनाशकाः ।
बभूवुः कालविभ्रष्टाः क्षणिका; कामुका नराः ।। २३ ।।
दम्भाचारदुराचारास्तातमातृविहिंसकाः ।
वेदहीना द्विजा दीनाः शूद्रसेवापराः सदा ।। २४ ।।
कुतर्कवादबहुला धर्मविक्रयिणोऽधमाः ।
वेदविक्रयिणो व्रात्या रसविक्रयिणस्तथाः ।। २५ ।।
मांसविक्रयिणः क्रूराः शिश्नोदरपरायणाः ।
परदाररता मत्ता वर्णसङ्करकारकाः ।। २६ ।।
ह्रस्वाकाराः पापसाराः शठा मठनिवासिनः ।
षोडशाब्दायुषः श्यालबान्धवा नीचसङ्गमाः ।। २७ ।।

लोकाचरण का नाश करने वाले, कलिराज के अनुचर यूथों ने चंचल, क्षण-भंगुर और कामुक मनुष्य-देह धारण किये ।।२३।। यह घोर दम्भी, दुराचारी, मातृ-पितृ-हिंसक अनुचरगण ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी वेद-विहीन, दरिद्री और शूद्रों के सेवा-परायण हुए ।।२४।। कुतर्कवाद की बहुलता से युक्त, धर्म, वेद, रस, माँस आदि के विक्रय में तत्पर, संस्कार-विहीन, शिश्नोदर-परायण, परदार-परायण, उन्मत्त एवं वर्णशंकर सन्तानों के उत्पन्न करनेवाले हुए ।।२५-२६।। यह नाटे आकार के, पापी, शठ, मठों में निवास करने वाले, सोलह वर्ष की परम आयु वाले, यह कलि के सेवकगण साले को भाई के समान

मानने वाले और नीचों की संगति करने वाले हुए ॥२७॥

विवादकलहक्षुब्धाः केशवेशविभूषणाः ।
कलौ कुलीना धनिनः पूज्या वार्द्धुषिका द्विजाः ॥ २८ ॥
संन्यासिनो गृहासक्ता गृहस्थास्त्वविवेकिनः ।
गुरुनिन्दापरा धर्मध्वजिनः साधुवञ्चकाः ॥ २९ ॥
प्रतिग्रहरताः शूद्राः परस्वहरणादरः ।
द्वयोः स्वीकारमुद्वाहः शठे मैत्री वदान्यता ॥ ३० ॥
प्रतिदाने क्षमाशक्तौ विरक्तिकरणाक्षमे ।
वाचालत्वञ्च पाण्डित्ये यशोऽर्थे धर्मसेवनम् ॥ ३१ ॥
धनाढ्यत्वञ्च साधुत्वे दूरे नीरे च तीर्थता ।
सूत्रमात्रेण विप्रत्वं दण्डमात्रेण मस्करी ॥ ३२ ॥

विवाद-कलह से क्षुब्ध रहने वाले, केश विन्यास में आसक्त, धन-वान, ब्याज से जीविका चलाने वाले एवं कुलीन कहलाने वाले यह ब्राह्मण ही कलिकाल में पूजनीय हुए ॥२८॥ संन्यासी गृहस्थ-धर्म परायण हो गए, गृहस्थों में विवेचन शक्ति का अभाव होगया, शिष्य गुरु निन्दक और धर्मध्वजी साधु वंचक होगए ॥२९॥ शूद्र दान लेने और पर-सम्पत्ति के हरण करने वाले हुए, स्त्री-पुरुष की सहमति ही विवाह हुआ, मित्र शठ हुए, प्रतिदान ही दानशीलता होगया, न्यायाधीश दण्ड देने में असमर्थ होकर क्षमाशील होगए, दुर्बल के प्रति उदासीनता होने लगी, अधिक बोलने वाले ही पंडित कहे जाने लगे तथा यश की कामना से ही लोग धर्म का सेवन करने लगे ॥३०-३१॥ धनवान ही साधु पुरुष माने जाने लगें, दूर का लाया हुआ जल ही तीर्थ का जल होगया, यज्ञो-पवीत में ही ब्राह्मणत्व निहित होगया और दण्ड धारण संन्यासी का लक्षण रह गया ॥३२॥

अल्पशस्या वसुमती नदीतीरेऽवरोपिता ।
स्त्रियो वेश्यालापसुखाः स्वपुंसा त्यक्तमानसाः ॥ ३३ ॥
परान्नलोलुपा विप्राश्चण्डालगृहयाजकाः ।

स्त्रियो वैधव्यहीनाश्च स्वच्छन्दाचरणप्रिया: ।। ३४ ।।
चित्रवृष्टिकरा मेघा मन्दशस्या च मेदिनी ।
प्रजाभक्षा नृपा लोका: करपीडाप्रपीडिता: ।। ३५ ।।
स्कन्धे भारं करे पुत्रं कृत्वा क्षुब्धा: प्रजाजन: ।
गिरिदुर्गं वनं घोरमाश्रयिष्यन्ति दुर्भगा: ।। ३६ ।।
मधुमांसैर्मूलफलैराहारै: प्राण धारिण: ।
एवं तु प्रथमे पादे कले: कृष्णविनिन्दका: ।। ३७ ।।

पृथिवी अल्पशस्या होगयी, नदियाँ अन्यान्य स्थानों में बहने वाली हुईं, नारियाँ वेश्यालय में सुख मानने लगीं और भार्याओं का पति में अनुराग नहीं रहा ।।३३।। पराये अन्न की कामना वाले ब्राह्मण शूद्रों के यहाँ यजन करने लगे, विधवाओं ने वैधव्य का आचरण त्याग दिया और स्वच्छन्द आचरणवाली होगईं ।।३४।। मेघ,खण्ड-वृष्टि वाले हुए, पृथिवी मन्दशस्या हुई, राजागण प्रजा-भक्षक होगये, जिससे प्रजा करों के भार से उत्पीड़ित हो उठी ।। ३५ ।। अत्यन्त क्षुब्ध हुए प्रजाजन कन्धों पर बोझऔर हाथ में पुत्र लेकर दुर्गम पर्वत और घोर वनों में जाकर आश्रय खोजने लगे ।। ३६ ।। मधु,मांस मूल और फल का भोजन ही प्राण धारण का सहारा बन गया । कलि के प्रथम पाद में ही मनुष्यगण श्री कृष्ण-निन्दक हो गये ।। ३७ ।।

द्वितीये तन्नामहीनास्तृतीये वर्णसङ्कर: ।
एकवर्णश्चतुर्थे च विस्मृताच्युतसत्क्रिया: ।। ३८ ।।
नि:स्वाध्या-स्वधा-स्वाहा-वौषडोंकार-वर्जिता: ।
देवा: सर्वे निराहारा: ब्रह्माणं शरणं ययु: ।। ३९ ।।
धरित्रीमग्रत: कृत्वा क्षीणां दीनां मनस्विनीम् ।
ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं वेदध्वनिनादितम् ।। ४० ।।
यज्ञधूमै: समाकीर्णं मुनिवर्य्यं निषेवितम् ।
सुवर्ण वेदिकामध्ये दक्षिणावर्त्त मुज्ज्वलम् ।। ४१ ।।
वह्नि यूपाङ्कितोद्यान-वन-पुष्प-फलान्वितम् ।

सरोभिः सारसैर्हंसैराहूयन्त मिवातिथिम् ॥ ४२

कलि के द्वितीय पाद में लोग श्रीकृष्ण नाम को भी भूल गए, तीसरे पाद में वर्ण संकर उत्पन्न हुए और चौथे पाद में तो जाति-पाँति ही कुछ न रही, लोग सत्कर्म और ईश्वर को भी भूल गये ॥ ३८ ॥ स्वाध्याय, स्वधा, स्वाहा, वषट्कार और ओंकारादि का लोप हो गया जिससे सभी देवता आहार न मिलने के कारण पीड़ित होकर ब्रह्माजी की शरण में गये ॥ ३९ ॥ सभी क्षीणता को प्राप्त हुए दीन देवगण चिन्तिता पृथिवी को आगे करके ब्रह्म-लोक को गये । वह लोक उन्हें वेद-ध्वनि से गूँजता हुआ दिखाई दिया ॥ ४० ॥ वहाँ यज्ञ का धुआं फैल रहा था, मुनिगण उपासना एवं यज्ञ कर रहे थे, स्वर्ण-वेदी के मध्य दक्षिणाग्नि प्रज्वलित थी, उद्यान वन-पुष्पों और फलों से परिपूर्ण थे, सरोवर में सारस और हंसों के मधुर स्वर ऐसे लग रहे थे, मानों अतिथियों का स्वागत कर रहे हों ॥ ४१-४२ ॥

वायु लोललताजालकुसुमालिकुलाकुलैः ।
प्रणताह्वान-सत्कार-मधुरालापवीक्षणैः ॥ ४३ ॥
तद्ब्रह्मसदनं देवाः सेश्वराः क्लिन्नमानसाः ।
विविशुस्तदनुज्ञाता निजकार्यं निवेदितुम् ॥ ४४ ॥
त्रिभुवनजनकं सदासनस्थं सनक-सनन्दन-सनातनैश्चसिद्धैः
परिसेवित पादकमलं ब्रह्माणं देवता नेमुः ॥ ४५ ॥

चंचल पवन लता-जालों को झकोर रहा था, अलि अवलि कलियों का रस-पान करते गूँज रहे थे, मानों यह सभी प्रणाम, आह्वान, सत्कार आदि के लिए मधुर वाणी का प्रयोग कर रहे हों ॥ ४३ ॥ अपने स्वामी इन्द्र के सहित खेद युक्त मन वाले सब देवता ब्रह्माजी की आज्ञा प्राप्त करके अपना दुःख निवेदन करने के लिए ब्रह्म-सदन में प्रविष्ट हुए ॥ ४४ ॥ वहाँ जाकर सनक, सनन्दन और सनातन से अपने चरण-कमलों की सेवा कराते हुए एवं श्रेष्ठ आसन पर आसीन ब्रह्माजी को उन देवताओं ने नमस्कार किया ॥ ४५ ॥

द्वितीय अध्याय

उपविष्टास्ततो देवा ब्रह्मणो वचनात्पुरः ।
कलेर्दोषाद्धर्महानिं कथयामासुरादरात् ॥ १ ॥
देवानां तद्वचः श्रुत्वा ब्रह्मा तानाह दुःखितान् ।
प्रसादयित्वा तं विष्णुं साधयिष्याम्यभीप्सितम् ॥ २ ॥
इति देवैः परिवृतः गत्वा गोलोकवासिनम् ।
स्तुत्वा प्राह पुरो ब्रह्मा देवानां हृदयेप्सितम् ॥ ३ ॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो ! वहाँ जाकर वे सभी देवता ब्रह्माजी की आज्ञा से उनके समक्ष बैठ गये । फिर उन्होंने कलि के दोषों से जो धर्म की हानि हुई थी, उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १ ॥ दुःखित हृदय वाले देवताओं के वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले—मैं भगवान् विष्णु की आराधना करके तुम्हारा सब मनोरथ सिद्ध करता हूँ ॥२॥ यह कर ब्रह्माजी ने देवताओं को साथ लिया और गोलोक निवासी भगवान् श्री हरि की सेवा में जा पहुँचे । वहाँ उन्होंने स्तुति की और फिर देवताओं की कामना निवेदन की ॥३॥

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ॥
शम्भले विष्णुयशसो गृहे प्रादुर्भवाम्यहम् ।
सुमत्यांमातरि विभो ! पत्नीयां त्वन्निदेशतः ॥ ४ ॥
चतुर्भिर्भ्रातृभिर्देव ! करिष्यामि कलिक्षयम् ।
भवन्तो बान्धवा देवाः स्वांशेनावतरिष्यथ ॥ ५ ॥
इयं मम प्रिया लक्ष्मीः सिंहले संभविष्यति ।
बृहद्रथस्य भूपस्य कौमुद्यां कमलेक्षणा ।
भार्यायां मम भार्या पद्मानाम्नी जनिष्यति ॥ ६ ॥

यात यूयं भुवं देवाः स्वांशावतरणेरताः ।
राजानौ मरुदेवापी स्थापयिष्याम्यहं भुवि ।। ७ ।।

पुण्डरीकाक्ष भगवान् ने देवताओं की दुःख-गाथा सुनकर ब्रह्माजी से कहा—हे विभो ! मैं शम्भल ग्राम में विष्णुयश के यहाँ, उनकी पत्नी सुमति के गर्भ से उत्पन्न हूँगा ।।४।। हे ब्रह्मन् ! हम चारों भाई मिलकर उस कलि को नष्ट कर डालेंगे । अब सभी देवताओं को भी अपने-अपने बाँधवों सहित पृथिवी पर अवतार लेना है ।।५।। मेरी प्रिया लक्ष्मी सिंहल द्वीप में महाराज बृहद्रथ की रानी कौमुदी के गर्भ से उत्पन्न होगी, इसका नाम पद्मा होगा ।।६।। मरु और देवापि नामक दो राजाओं को भी पृथिवी पर उत्पन्न करूँगा । हे देवगण ! अब तुम भी शीघ्रही अपने-अपने अंश के सहित भूमंडल पर अवतार धारण करो ।।७।।

पुनः कृतयुगं कृत्वा धर्मान्संस्थाप्य पूर्ववत् ।
कलिव्यालं संनिरस्य प्रयास्ये स्वालयं विभौ ।। ८ ।।
इत्युदीरितमाकर्ण्य ब्रह्मा देवगणैर्वृतः ।
जगाम ब्रह्मसदनं देवाश्च त्रिदिवं ययुः ।। ९ ।।
महिमां स्वस्य भगवान्निजजन्मकृतोद्यमः ।
विप्रर्षे ! शम्भलग्राममाविवेश परात्मकः ।। १० ।।

हे विभो ! जब पृथिवी पर सत्ययुग का पुनः आविर्भाव कर दूँगा और धर्म का पूर्ववत् स्थापन तथा कलिकाल रूपी नाग को नष्ट कर डालूँगा, तब पुनः अपने इस लोक में आ जाऊँगा ।।८।। देवताओं से घिरे हुए ब्रह्माजी ने भगवान् की यह आज्ञा सुनकर ब्रह्मलोक को प्रस्थान किया और सब देवता अपने स्वर्ग लोक को चले गये ।।९।। हे ऋषियो ! अपनी महिमा से महिमान्वित भगवान् विष्णु इस प्रकार शम्भल ग्राम में स्वयं अवतार धारण करने के लिए प्रविष्ट हुए ।।१०।।

सुमत्यां विष्णु यशसा गर्भमाधत्त वैष्णवम् ।
ग्रह-नक्षत्र-राश्यादि-सेवित—श्रीपदाम्बुजम् ।। ११ ।।

सरिसमुद्रा गिरयो लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः ।
सहर्षा ऋषयो देवा जाते विष्णौ जगत्पतौ ।। १२ ।।
वभूवुः सर्वसत्वानामानन्दा विविधाश्रयाः ।
नृत्यन्ति पितरो हृष्टास्तुष्टा देवा जगुर्यशः ।। १३ ।।
चक्रुर्वाद्यानि गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।। १४ ।।
द्वादश्या शुक्लपक्षस्य माधवे मासि माधवः ।
जातं ददृशतुः पुत्रं पितरौ हृष्टमानसौ ।। १५ ।।

भगवान् श्रीहरि विष्णुयश के द्वारा उनकी पत्नी के गर्भ में प्रविष्ट होकर भ्रूण रूप हुए ।।११।। यह जानकर कि विष्णु पृथिवी पर आ गये हैं, सभी सरिता, समुद्र, पर्वत, 'स्थावर जंगम प्राणी, ऋषि-गण और देवगण आदि सभी प्रसन्न हो उठे ।।१२। तथा सभी जीव विभिन्न प्रकार से हर्ष प्रकट करने लगे, पितर नाचने लगे और देवता प्रभु के गुणगान में तत्पर हुए ।।१३।। गंधर्व बाजे बजाने और अप्सरायें नृत्य करने लगी ।।१४।। वैशाख शुक्ला द्वादशी के दिन भगवान् ने अवतार लिया। उनको प्रकट होते हुए देखकर माता-पिता पुलकित हो उठे ।।१५।।

धातृमाता महाषष्ठी नाभिच्छेत्री तदम्बिका ।
गङ्गोदकक्लेदमोक्षा सावित्री मार्जनोद्यता ।। १६ ।।
तस्य विष्णोरनन्तस्य वसुधाऽधात्पयःसुधाम् ।
मातृका माङ्गल्यवचः कृष्णजन्मदिने तथा ।। १७ ।।
ब्रह्मा तदुपधार्याशु स्वाशुगं प्राह सेवकम् ।
याही त सूतिकागारं गत्वा विष्णु प्रबोधय ।। १८ ।।
चतुर्भुजमिदं रूपं देवानामपि दुर्लभम् ।
त्यक्त्वा मानुषवद्रूपं कुरुनाथ ! विचारितम् ।। १९ ।।
इति ब्रह्मवचाः श्रुत्वा पवनः सुरभिः सुखम् ।
सशीतः प्राह तरसा ब्रह्मणो वचनादृतः ।। २० ।।

भगवान् के प्रकट होने पर महाषष्टी धात्री हुई, अम्बिका ने नाल छेदन किया, गङ्गाजी ने अपने जल से गर्भक्लेद को हटाया और सावित्री ने भगवान् के शरीर का मार्जन किया ॥१६॥

कृष्ण-जन्म के समान ही अनन्त भगवान् के अवतार लेने पर वसुन्धरा ने दुग्धसुधा की धारा प्रवाहित कर दी, मातृकाओं ने मगलाचार किया ॥१७॥ शम्भल ग्राम में भगवान् के अवतरित होने का समाचार जानकर ब्रह्माजी ने वायु को आज्ञा दी कि तुम सूतिकागार में जाकर भगवान् से इस प्रकार कहो ॥१८॥ कि आपके चतुर्भुज स्वरूप का दर्शन तो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है, अत: हे नाथ ! इस चतुर्भुज रूप को छोड़कर मनुष्य रूप बनाइये ॥१९॥ सुशीतल, सुखद, सुगन्धित वायु ने यह वचन सुनकर द्रुतगति से सूतिकागार में जाकर भगवान् से निवेदन किया ॥२०॥

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षस्तत्क्षणाद्द्विभुजोऽभवत् ।
तदा तत्पितरौ दृष्ट्वा विस्मयापन्नमानसौ ॥ २१ ॥
भ्रमसंस्कारवत्तत्र मेनाते तस्य मायया ।
ततस्तु शम्भलग्रामे सोत्सवा जीवाजातय: ।
मङ्गलाचारबहुला: पापतापविवर्ज्जिता: ॥ २२ ॥
सुमतिस्तं सुतलब्ध्वा विष्णुं जिष्णुं जगत्पतिम् ।
पूर्णकामा विप्रमुख्यानाहूयाद्‌गवां शतम् ॥ २३ ॥
हरे: कल्याणकृद्विष्णुयशा: शुद्धेन चेतसा ।
सामर्ग्यजुर्विद्भिरग्र्यैस्तन्नामकरणे रत: ॥ २४ ॥
तद रामः कृपो व्यासो द्रौणिर्भिक्षुशरीरिण: ।
समायाता हरिं द्रष्टुं बालकत्वमुपागतम् ॥ २५ ॥

ब्रह्माजी का सदेश प्राप्त होने पर भगवान् ने अपना स्वरूप दो भुजाओं से युक्त बना लिया। यह लीला देखकर माता-पिता विस्मित रह गये ॥२१॥ प्रभु की माया में मोहित हुए माता-पिता ने समझा कि

भ्रम से ही हमने अपने पुत्र को चार भुजा देखा था। फिर उस शम्भल ग्राम में सभी पाप-ताप नष्ट होकर नित्य नवीन मंगलाचार होने लगे ॥२२॥ भगवान् को पुत्र रूप में प्राप्त करके पूर्णकामा सुमति ने ब्राह्मणों को एक सौ गौयें दान कीं ॥२३। पवित्र हृदय वाले विष्णु-यशजी ने अपने पुत्र के मंगल की कामना से ऋक्, यजु और सामवेदी ब्राह्मणों को नामकरण के लिए नियुक्त किया ॥२४॥ भगवान् के शिशु-रूप का दर्शन करने के लिए परशुराम, कृपाचार्य, वेदव्यास और द्रोणा-चार्यजी के पुत्र अश्वत्थामा भिक्षुक वेश में वहाँ आये ॥२५॥

तानागतान्समालोक्य चतुरः सूर्यसन्निभान् ।
हृष्टरोमा द्विजवरः पूजयाञ्चक्र ईश्वरान् ॥ २६ ॥
पूजितास्ते स्वासनेषु संविष्टाः स्वसुखाश्रयाः ।
हरिं क्रोडगतं तस्य ददृशुः सर्वमूर्त्तयः ॥ २७ ॥
तबालकं नराकारं विष्णुं नत्वा मुनीश्वराः ।
कल्किं कल्कविनाशार्थमाविर्भूतं विदुर्बुधाः ॥ २८ ॥
नामाकुर्वंस्ततस्तस्य कल्किरित्यभिविश्रुतम् ।
कृत्वा संस्कारकर्माणि ययुस्ते हृष्टमानसाः ॥ २९ ॥
ततः स ववृधे तत्रः सुमत्या परिपालितः ।
कालेनाल्पेन कंसारि शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ ३० ॥

सूर्य के समान तेजस्वी उन ईश्वर स्वरूप आगन्तुकों को देखकर द्विजवर विष्णुयश ने उनका पूजन किया ॥२६॥ भले प्रकार सुपूजित हुए वे मुनिगण श्रेष्ठ आसनों पर सुखपूर्वक विराजे, तब उन्होंने अपने पिता की गोद में बैठे हुए भगवान के दर्शन किए ॥२७॥ उन ज्ञानी मुनीश्वरों ने मनुष्य रूप में शिशु स्वरूप भगवान् को नमस्कार किया और तब उन्होंने जान लिया कि कलिकाल के विनाशार्थ भगवान् श्री कल्कि का अवतार हुआ है ॥२८॥ फिर उनका संस्कार करते हुए उनका कल्कि नाम रखकर प्रसन्न मन से वे मुनीश्वर चले गये ॥२९॥ फिर कंसारि भगवान् माता सुमति के द्वारा भले प्रकार लालित-पालित

होते हुए शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होने लगे ॥३०॥

कल्केर्ज्येष्ठास्त्रयः शूराः कवि प्राज्ञ सुमन्त्रकाः ।
पितृमातृप्रियकरा गुरुविप्रप्रतिष्ठिताः ॥ ३१ ॥
कल्केरंशाःपुरो जाताः साधवो धर्म्मतत्पराः ।
गार्ग्यभर्ग्यविशालाद्या ज्ञातयस्तदनुव्रताः ॥ ३२ ॥
विशाखयूप भूपाल पालितास्तापवर्ज्जिताः ।
ब्राह्मणाः कल्किमालोक्य परां प्रीतिमुपागताः ॥ ३३ ॥
ततो विष्णुयशाः पुत्रं धीरं सर्वगुणाकरम् ।
कल्किं कमलपत्राक्षं प्रोवाच पठनादृतम् ॥ ३४ ॥
तात ते ब्रह्मसंस्कारं यज्ञसूत्रमनुत्तमम् ।
सावित्रीं वाचयिष्यामि ततो वेदान्पठिष्यसि ॥ ३५ ॥

भगवान् कल्कि के उत्पन्न होने से पहले माता-पिता को प्रिय, गुरु-ब्राह्मण का हित करने वाले इनके तीन भाई और उत्पन्न हो चुके थे। उनके नाम कवि, प्राज्ञ और सुमन्त्रक थे। भगवान् के ही अंश से उनकी जाति में, उनके अनुगामी, साधु स्वभाव वाले एवं धार्मिक प्रवृत्ति वाले गार्ग्य, भर्ग्य और विशाल आदि भगवान् से पहिले ही उत्पन्न हो चुके थे ॥३१-३१॥ विशाखयूप-नरेश द्वारा परिपालित यह सभी ब्राह्मण भगवान् का दर्शन करके सम्पूर्ण पाप-ताप से छूटकर अत्यंत हर्षित हुए ॥३३॥ फिर अपने कमलनयन एवं सर्वगुण सम्पन्न पुत्र को अध्ययन करने के योग्य वय वाला हुआ देखकर विष्णुयश उनसे बोले ॥३४॥ हे पुत्र ! मैं तुम्हारा श्रेष्ठ ब्रह्म संस्कार, उपनयन और सावित्री का श्रवण कराऊँगा, फिर तुम वेदाध्ययन करना ॥३५॥

को वेदः का च सावित्री केन सूत्रेण संस्कृताः ।
ब्राह्मणा विदिता लोके तत्तत्वं वद तात माम् ॥ ३६ ॥
वेदो हरेर्वाक् सावित्री वेदमाता प्रतिष्ठिता ।

त्रिगुणश्च त्रिवृत्सूत्रं तेन विप्राः प्रतिष्ठिताः ।। ३७ ।।
दशयज्ञैः संस्कृता ये ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
तत्र वेदाश्च लोकानां त्रयाणामिह पोषकाः ।। ३८ ।।
यज्ञाध्ययन दानादि तपःस्वाध्याय संयमः ।
प्रीणयन्ति हरिं भक्त्या वेद तन्त्र विधानतः ।। ३९ ।।
तस्माद्यथोपनयन कर्मणोऽहं द्विजैः सह ।
संस्कर्तुं बान्धप्रवजनैस्त्वामिच्छामि शुभे दिने ।। ४० ।।

पिता के वचन सुनकर कल्कि भगवान् ने पूछा—वेद क्या है । सावित्री क्या है । किस सूत्र से संस्कारित पुरुष ब्राह्मण संज्ञक होता है ? हे तात ! यह सब मुझे बताइये ।।३६।। पिता बोले—वेद भगवान् विष्णु की वाणी है, सावित्री ही प्रतिष्ठा एवं वेद-माता है । त्रिगुण-सूत्र को त्रिवृत्ताकार करके धारण करने पर ब्राह्मण नाम से प्रतिष्ठित होता है ।।३७।। तीनों लोकों के पोषक एवं दशयज्ञ द्वारा संस्कृत ब्रह्म-वादी जो ब्राह्मण हैं, उन्हीं के पास वेद निवास करते हैं ।।३८।। यही दश संस्कार वाले विप्र वेद, तन्त्र और शास्त्रादि के विधान से यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, स्वाध्याय, संयम आदि के सहित भक्ति करते हुए भगवान् को प्रसन्न करते हैं ।।३९।। इसी लिए ब्राह्मणों, बाँधवों आदि के सहित किसी शुभ दिन में तुम्हारा उपनयन संस्कार करना चाहता हूं ।।४०।।

के च ते दश संस्कारा ब्राह्मणेषु प्रतिष्ठिताः ।
ब्राह्मणाः केन वा विष्णुमर्चयन्ति विधानतः ।। ४१ ।।
ब्रह्मण्यां ब्राह्मणाद्यातो गर्भाधानादिसंस्कृतः ।
सन्ध्यात्रयेण सावित्री-पूजा-जप-परायणः ।। ४२ ।।
तपस्वी सत्यवाग्धीरो धर्मात्मा त्राति संसृतिम् ।
विष्णवर्चनमिदं ज्ञात्वा सदानन्दमयो द्विजः ।। ४३ ।।
कुत्रास्ते स द्विजो येन तारयत्यखिलं जगत् ।
सन्मार्गेण हरिप्रीणन्कामदोग्धा जगत्त्रये ।। ४४ ।।

कल्कि भगवान् बोले—ब्राह्मण के लिए निश्चित किये गये वे दश-संस्कार कौन-कौन से हैं? किस विधान से ब्राह्मण भगवान् विष्णु की अर्चना किया करते हैं? ।।४१।। विष्णुयश बोले--हे पुत्र! ब्राह्मण के द्वारा ब्राह्मणी में गर्भाधान संस्कार आदि से संस्कृत, त्रिकाल संध्या एवं सावित्री की पूजा और जप में परायण, तपस्वी, सत्यवक्ता, धीर धर्मात्मा ब्राह्मण भगवान् विष्णु की अर्चना विधि को भले प्रकार जानकर आनन्द में निमग्न रहता हुआ सदैव इस सृष्टि क रक्षक होता है ।।४२-४३।। भगवान् ने कहा—हे तात! जो ब्राह्मण सम्पूर्ण विश्व का उद्धारक, साधुमार्ग-परायण, भगवाध् विष्णु को उपासना द्वारा प्रसन्न करने वाला और तीनों लोकों की कामना पूर्ण करने वाला है, वह ब्राह्मण कहाँ है? ।।४४।।

कलिना बलिना धर्म घातिना द्विज पातिना ।
निराकृता धर्मरता गता वर्षान्तरान्तरम् ।। ४५ ।।

ये स्वल्पतपसो विप्राः स्थिताः कलियुगान्तरे ।
शिश्नोदरभृतोऽधर्मनिरता विरत क्रियाः ।। ४६ ।।
पापसारा दुराचारास्तेजोहीनाः कलाविह ।
आत्मानं रक्षितुं नैव शक्ताः शूद्रस्य सेवकाः ।। ४७ ।।
इति जनकवचो निशम्य कल्किः कलिकुलनाशमनोऽभिलाषजन्मा
द्विजनिजवचनैस्तदोपनीतोगुरुकुलवासमुवास साधुनाथः ।। ४८ ।।

पिता बोले—धर्मघाती और ब्राह्मणों के हिंसक महावली कलि के द्वारा पीड़ित हुये विप्र गण अन्य देश को चले गये ।।४५।। स्वल्प तप वाले जो ब्राह्मण इस कलिकाल में यहाँ स्थित रहे, वे सब शिश्नोदर धर्मी होकर धर्म और कर्म से विरत हो गये ।।४६।। पाप युक्त, दुराचारी एवं तेज-रहित ब्राह्मण इस कलिकाल में आत्म-रक्षा में अशक्त एवं शूद्रों के सेवक बन गये हैं ।।४७।। पिता के यह वचन सुन कर कल्कि भगवान् ने कलि को नष्ट करने का निश्चय किया। ब्राह्मणों ने अपनी वाणी द्वारा उनका उपनयन संस्कार किया। और तब भगवान् कल्कि गुरुकुल में निवास हेतु गये ।।४८।।

तृतीय अध्याय

ततो वस्तु गुरुकुले यान्तं कल्कि निरीक्ष्य सः ।
महेन्द्राद्रिस्थितो रामः समानीयाश्रमं प्रभुः ।१।
प्राह त्वां पाठयिष्यामि गुरूं मा विद्धि धर्मतः ।
भृगु वंश समुत्पन्नं जामदग्न्यं महाप्रभुम् ।।२।।
वेद वेदाङ्ग तत्वज्ञं धनुर्वेद विशारदम् ।
कृत्वा निःक्षत्रियां पृथिवी दत्वा विप्राय दक्षिणाम् ।।३।।
महेन्द्राद्रौ तपस्तप्तु मागतोऽहंद्विजात्मज ।
त्व पठात्र निजं वेदं यच्चान्यच्छास्त्रमुत्तमम् ।।४।।
इति तद्वच आश्रुत्य संप्रहृष्टतनूरुहः ।
कल्किः पुरो नमस्कृत्य वेदाधीती ततोऽभवत् ।।५।।

सूतजी बोले—भगवान् कल्कि को गुरुकुल वास के लिए जाते देख कर महेन्द्र पर्वत निवासी परशुराम उन्हें अपने आश्रम में ले गये ।१। वहाँ पहुँच कर परशुराम ने उनसे कहा—मैं भृगु वंश में उत्पन्न, महर्षि जमदग्नि का पुत्र, वेद-वेदांग के तत्व को जानने वाला, धनुर्वेद-विद्या-विशारद परशुराम हूँ ।२। मैंने इस पृथिवी को क्षत्रिय-विहीन करके ब्राह्मणों को दक्षिणा स्वरूप दे डाली थी । अब तुम मुझे धर्म पूर्वक गुरु मानो, मैं तुमको शिक्षा दूँगा । हे द्विजात्मज ! मैं इस महेन्द्र पर्वत पर तपस्या करने के लिए आया हूँ, तुम यहाँ अपना वेदाध्ययन करो तथा अन्य जो भी कोई शास्त्र पढ़ना चाहो, उसे पढ़ो ।३-४। यह सुन कर भगवान् कल्कि ने आनन्द से गद्गद् होकर परशुराम को प्रणाम किया और फिर वेदाध्ययन करने लगे ।५।

साङ्गं चतुःषष्टिकलां धनुर्वेदादिकञ्च यत् ।
समधीत्य जामदग्न्यात्कल्किः प्राह कृताञ्जलिः ॥६॥
दक्षिणां प्रार्थय विभो ! या देय तव सन्निधौ ।
ययामे सर्वसिद्धिः स्याद्या स्यात्व तोषकारिणी ॥७॥
ब्रह्मणा प्रार्थितो भूमन् ! कलिनिग्रहकारणात् ।
विष्णुः सर्वाश्रयः पूर्णः स जातः सम्भले भवान् ॥८॥
मत्तो विद्यां शिवादस्त्रं लब्ध्वा वेदमयं शुकम् ।
सिंहले च प्रियां पद्मां धर्मान्संस्थापयिष्यसि । ६।

जब भगवान् कल्कि चौंसठ कलाएं और सम्पूर्ण धनुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर चुके तब उन्होंने हाथ जोड़ कर परशुराम से कहा —।६। हे विभो ! जिस दक्षिणा के देने से मुझे सर्वसिद्धि की प्राप्ति होगी और जिस दक्षिणा की प्राप्ति से आप सतुष्ट हो सकेंगे, वह दक्षिणा मुझे बताने की कृपा करिये ।७। परशुराम बोले-- हे भूमन् ! कलिकाल का नाश करने के लिए ब्रह्माजी ने जिन भगवान् श्री हरि से निवेदन किया था, वे ही आप भगवान् विष्णु शम्भल ग्राम में अवतरित हुए हैं ।८ और मुझसे विद्या भगवान शंकर से शस्त्र और वेदमय शुक तथा सिंहल देश से अपनी पत्नी पद्मा को प्राप्त करके भूमण्डल पर धर्म की स्थापना करेंगे ।६।

ततो दिग्विजयेभूपान् धर्महीनान् कलिप्रियान् ।
निगृह्य बौद्धान् देवापिं मरुञ्च स्थापयिष्यसि ।१०।
वयमेतैस्तु सतुष्टाः साधुकृत्यैः सदक्षिणाः ।
यज्ञं दानं तपः कर्म करिष्यामो यथोचितम् ।११।
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा नमस्कृत्य मुनिं गुरुम् ।
बिल्वोदकेश्वरं देवं गत्वा तुष्टाव शंकरम् ।१२।
पूजयित्वा यथान्यायं शिवं शान्तं महेश्वरम् ।
प्रणिपत्याशुतोषं तं ध्यात्वा प्राह हृदिस्थितम् ।१३।

फिर दिग्विजय द्वारा धर्म-विहीन और कलिप्रिय राजाओं और बौद्धों का संहार कर मरु और देवापि को प्रतिष्ठित करोगे। तुम्हारा यह साधुकृत्य ही मुझको सतुष्ट करने वाली दक्षिणा होगी, क्योंकि तब हम तप, यज्ञ, दान, ध्यान, आदि सभी कर्म भले प्रकार से कर सकेंगे।१०-११। यह सुन कर और गुरुवर परशुरामजी को नमस्कार करके कल्कि भगवान् बिल्वोदकेश्वर महादेव के मन्दिर में गये और उन्हें सन्तुष्ट करने लगे।१२। हृदय में स्थित उन आशुतोष शान्त स्वरूप शिवजी का उन्होंने विधिवत् पूजन किया और प्रणाम तथा ध्यान के पश्चात् निवेदन किया।१३।

गौरीनाथं विश्वनाथं शरण्यंभूतावासं वासुकीकण्ठभूषम्।
त्र्यक्षं पञ्चास्यादिदेवं पुराणं वन्दे सान्द्रनन्दसन्दोहदक्षम्।
योगाधीशं कामनाशं करालं गङ्गासङ्गाक्लिन्नमूर्द्धानमीशम्।
जटाजूटाटोपरिक्षिप्तभावं महाकालं चन्द्रभालं नमामि॥
श्मशानस्थंभूतवेतालसङ्गं नानाशस्त्रैः खड्गशूलादिभिश्च।
व्यग्रात्युग्रा बाहवो लोकनाशे यस्य क्रोधोद्धूतलोकोऽस्तमेति।
यो भूतादिः पञ्चभूतैंसिसृक्षु. तन्मात्रात्मा काल कर्मस्वभावै
प्रहृत्येदं प्राप्य जीवत्वमीशो ब्रह्मानन्दो रमते तं नमामि॥
स्थितौ विष्णुः सर्वजिष्णुः सुरात्मा लोकान् साधून् धर्मसेतून् बिभर्ति। ब्रह्माद्यांशे योऽभिमानी गुणात्मा शब्दाद्यङ्गैस्तंपरेशं नमामि। यज्ञस्या वायवो वान्ति लोके ज्वलत्याग्निः सविता यातितप्यन्। शीतांशु खेतारकैः सग्रहैश्च प्रवर्तते तं परेशं प्रपद्ये। यस्याश्वासात् सर्वधात्री धरित्री देवो वर्षत्यम्बु कालः-प्रमाता। मेरुसंध्ये भुवनानाञ्च भर्त्ता तमीशानविश्वरूपं नमामि।१४-२०।

कल्किजी ने कहा—हे गौरीपते! हे विश्वेश्वर! हे शरणागत-वत्सल! हे सर्वभूताश्रय! हे वासुकी नाग का कण्ठभूषण धारण करने

वाले प्रभो ! हे त्रिनेत्र ! हे पंचवदन ! हे पुराण पुरुष ! हे सघन आनन्द-दक्ष आदिदेव ! आपको नमस्कार है ।१४। हे योगाधीश्वर ! आप कामदेव का नाश करने वाले, कराल दर्शन, गंगतरंग से समुज्वल मूर्द्धा वाले, जटाजूट टोप युक्त, परिक्षिप्त भाव वाले महाकाल हैं । हे चन्द्रभाल ! आपको नमस्कार है ।१५। हे प्रभो ! आप भूत वेतालों के सहित श्मशान मे निवास करते हैं । आप अपनी भयानक भुजाओं में विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्र धारण करते हैं । प्रलय काल में यह समस्त विश्व आप की ही क्रोधानल में भस्मीभूत हो जाता है ।१६। आप ही भूतादि तन्मात्रा रूप पंच भूत एवं काल-कर्म-स्वाभानुसार सृष्टि रचना करते और अत में प्रलय करके जीवत्व को प्राप्त होकर ब्रह्मानन्द में रमण करते हैं; ऐसे आपको मेरा नमस्कार है ।१७। आप ही सुरात्मा विश्व के पालनार्थ विष्णु स्वरूप लेकर धर्म सेतु स्वरूप साधुओं की रक्षा करते हैं । आप ही शब्दादि अवयवों के द्वारा सगुण रूप ब्रह्मा जी के अंश रूप होते हैं । ऐसे आप परमेश्वर को नमस्कार है ।१८। आप की आज्ञा से, वायु बहता, अग्नि प्रज्वलित होता, सूर्य प्रकाशित होता और तारागण के सहित चन्द्रमा उदित होता है । ऐसे आपको मैं शरण लेता हूँ ।१९। जिन की आज्ञा से पृथिवी विश्व को धारण किये है और मेघ समय पर वर्षा करते हैं तथा जो सब लोकों का भरण करने वाले हैं, ऐसे आप ईशान एवं विश्वरूप भगवान शंकर को नमस्कार करता हूँ ।२०।

इति कल्किस्तवं श्रुत्वा शिवः सर्वात्मदर्शनः
साक्षात् प्राह हसन्नोशः पार्वतीसहितोग्रतः ।२१।
कल्केः संस्पृश्य हस्तेन समस्तावयवं मुदा ।
तमाह वरय प्रेष्ठ ! वरं यत्तेऽभिकांक्षितम् ।२२।
त्वया कृतमिद स्तोत्रं ये पठन्ति जना भुवि ।
तेषां सर्वार्थसिद्धिः स्यादिह लोके परत्र च ।२३।
विद्यार्थी चाप्नुयाद्विद्यां धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् ।
कामानवाप्नुयात् कामी पठनाच्छ्रवणादपि ।२४।

त्वं गारुडमिदं चाश्वं कामगं बहुरूपिणम् ।
शुकमेनञ्च सर्वज्ञं मया दत्तं गृहाण भो ।२५।

भगवान् कल्कि का स्तोत्र सुन कर सर्वात्मा भगवान् शंकर पार्वती सहित साक्षात् रूप में प्रकट हुये—उन्होंने आनन्दित होकर भगवान् कल्कि के देह पर कर स्पर्श करते हुए और मुसकराते हुए कहा—हे श्रेष्ठ ! अपना इच्छित वर मांगो ।२१-२२। तुम्हारे द्वारा रचित इस स्तोत्र का का भू-मण्डल में जो भी कोई पाठ करेगा, उसकी इहलौकिक और पारलौकिक सभी कामनाएँ पूर्ण होंगी ।२३। इस स्तोत्र के पढ़ने सुनने से विद्यार्थी को विद्या, धर्मार्थी को धर्म और अन्य कामना वाले को उसकी उसी कामना की प्राप्ति होती है ।२४। हे कल्कि ! मैं तुम्हें यह शीघ्रगामी, अनेक रूप धारी, गरुड़ अश्व युक्त सर्वज्ञ शुक प्रदान करता हूँ, इन्हें ग्रहण करो ।२५।

सर्व शास्त्रास्त्रविद्वांसं सर्व वेदार्थपारगम् ।
जयिनं सर्वभूतानां त्वां वदिष्यन्ति मानवा ।२६।
रत्नत्सरुं करालञ्च करवालं महाप्रभम् ।
गृहाण गुरुभारायाः पृथिव्या भारसाधनम् ।२७।
इति तद्वच आश्रुत्य नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
शम्भलग्राममगमत् तुरगेण त्वरान्वितः ।२८।
पितरं मातरं भ्रातॄन् नमस्कृत्य यथाविधि ।
सर्वं तद्वर्णयामास जामदग्न्यस्य भाषितम् ।२९।
शिवस्य वरदानञ्च कथयित्वा शुभाः कथाः ।
कल्किः परमतेजस्वी ज्ञातिभ्योऽथवदन्मुदा ।

हे कल्कि ! मनुष्यों में तुम सर्व शास्त्रज्ञ, सर्व शस्त्रास्त्र विशारद, सर्व वेदों में पारगामी एवं सर्व भूतों में विजयी कहे आओगे ।२६। यह रत्नत्सरु नामक महा कराल, अत्यन्त चमकती हुई, अत्यन्त भारी और पृथिवी के भार को सँभालने वाली तलवार ग्रहण

करो।२७। भगवान महेश्वर के वचन सुन कर कल्कि ने उन्हें प्रणाम किया और अश्व पर आरूढ़ होकर द्रुतगति से शंभल ग्राम में जा पहुंचे-।२८। वहाँ पहुँच कर उन्होंने अपने पिता, माता, भ्राता आदि को विधिवत् नमस्कार कर परशुराम जी के कहे हुए सब वचन उन्हें सुनाये।२९। फिर शिवजी द्वारा प्राप्त हुए वरदान की चर्चा की और अपने जाति वालों के मध्य स्थित होकर प्रसन्न हृदय से श्रेष्ठ कथा कहने लगे।३०।

गार्ग्यभर्ग्यविशालाद्यास्तच्छ्रुत्वा नन्दिताः स्थिताः ।
कथोपकथनं जातं शम्भलग्रामवासिनाम् ।३१।
विशाखयूपभूपालः श्रुत्वा तेषाञ्च भाषितम् ।
प्रादुर्भावं हरेर्मेने कलिनिग्रहकारकम् ।३२।
माहिष्मत्यां निजपुरे यागदानतपोव्रतान् ।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रानपि हरेःप्रियान् ।३३।
स्वधर्मनिरतान् दृष्ट्वा धर्मिष्ठोऽभून्नृपः स्वयम् ।
प्रजापालः शुद्ध मनाः प्रादुर्भावात् श्रियः पतेः ।३४।
अधर्मवंश्यांस्तान् दृष्ट्वा जनान् धर्मक्रियापरान् ।
लोभानृतादयो जग्मुस्तद्देशाद्दुःखिता भयम् ।३५।

उनके द्वारा वर्णित कथा सुन कर गार्ग्य, भर्ग्य और विशाल आदि अत्यन्त प्रसन्न हुए। कथा शंभल ग्राम में परस्पर कही जाती हुई अधिक प्रचारित हो गई।३१। शंभल ग्राम के लोगों से ही यह चर्चा विशाखयूपराज ने सुनी और उन्होंने जान लिया कि भगवान् कल्कि ने कलि का निग्रह करने के लिए पृथिवी पर अवतार ले लिया है।३२। उसकी माहिष्मती नगरी में यज्ञ, दान, तपस्या और व्रतादि करने वाले सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भगवान के प्रीति-पात्र हुए।३३। रमापति भगवान् के अवतार लेने पर सभी वर्ण अपने-अपने धर्म में तत्पर हुए तथा राजा भी प्रजापालक, पवित्र मन वाला, धार्मिक हुआ।३४। उस नगरी के निवासियों को धर्म में तत्पर देख कर लोभ,

असत्य और अधर्म के वंशज भय से दुःखित होकर वहाँ से पलायन कर गये ।३५।

जैत्रं तुरगमारुह्य खड्गञ्च विमलप्रभम् ।
दंशितः सशरं चापं गृहीत्वागात् पुराद्बहिः ।३६।
विशाखयूपभूपालः प्रायात् साधुजनप्रियः ।
कल्कि द्रष्टुं हरेरंशमाविर्भूतञ्च शम्भले ।३७।
कविं प्राज्ञं सुमन्तञ्च पुरस्कृत्य महाप्रभुम् ।
गार्ग्य-भर्ग्य विशालैश्च ज्ञातिभिः परिवारितम् ।३८।
विशाखयूपो ददृशे चन्द्र तारागणैरिव ।
पुराद्बहिः सुरैर्यद्वन्दिन्द्रमुच्चैःश्रवः स्थितम् ।३९।
विशाखयूपोऽवनतः संप्रहृष्टतनूरुहः ।
कल्केरालोकनात् सद्यः पूर्णात्मा वैष्णवोऽभवत् ।४०।

भगवान् कल्कि तीक्ष्ण तलवार, धनुष और श्रेष्ठ बाणों को धारण कर शिव-प्रदत्त अश्व पर आरूढ़ होकर नगरी से बाहर चल दिये ।३६। संत जनों से स्नेह करने वाले विशाखयूप नरेश शंभल ग्राम में अवतरित भगवान् के दर्शनार्थ उपस्थित हुए ।३७। उस समय अत्यन्त प्रभाव वाले कवि प्राज्ञ, सुमंत्र और गार्ग्य विशालादि से घिरे हुए तथा तारागण सहित चन्द्रमा और देवताओं सहित उच्चैश्रवा के समान अश्व पर चढ़े कल्कि भगवान् को विशाखयूप नरेश ने नगर के बाहर निकलते देखा ।३८-३९। कल्कि भगवान को देखते ही रोमांचित हुए राजा झुकते हुए पूर्ण वैष्णवत्व को प्राप्त होगया ।४०।

सह राज्ञा वसन कल्किः धर्मानाह पुरोदितान् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशामाश्रमाणां समासतः ।४१।
ममांशान् कलिविभ्रष्टानिति मज्जन्मसङ्गतान् !
राजसूयाश्वमेधाभ्यां मां यजस्व समाहितः ।४२।
अयमेव परो लोको धर्मश्चाहं सनातनः ।
कालस्वभावसंस्काराः कर्मानुगतयो मम ।४३।

सोमसूर्यकुले जातौ देवापिमरुसंज्ञकौ ।
स्थापयित्वा कृतयुगं कृत्वा यास्यामि सद्गतिम् ।४४।
इति तद्वचनं श्रुत्वा राजा कल्कि हरिं प्रभुम् ।
प्रणम्य प्राह सद्धर्मान् वैष्णवान् मनसेप्सितान् ।४५।
इति नृपवचनं निशम्य कल्कि:कलिकुलनाशनवासनावतार: ।
निजजनपरिषद्विनोदकारीमधुरवचोभिराह साधुर्मान ।४६मं।

राजा से वार्तालाप करते हुए भगवान् कल्कि ने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा आश्रमादि के धर्मों का संक्षिप्त रूप से वर्णन किया ।४१। कल्कि बोले – हमारे जो अंश कलि से प्राप्त पाप के द्वारा भ्रष्ट होगये थे, वे हमारे अवतरित होनेपर धर्म मार्ग पर आ गये हैं। हे राजन् ! तुम राजसूय या अश्वमेव यज्ञ करते हुए मेरी आराधना करो ।४२। मैं ही परलोक हूँ, सनातन धर्म में ही हूँ, काल, स्वभाव और संस्कार सभी मेरे कर्म के अनुगत रहते हैं ।४३। मैं चन्द्रवंश और सूर्यवंश में क्रमश: उत्पन्न देवापि और मरु नामक राजाओं को स्थापित करके तथा इस युग को सतयुग रूप करके सद्गति को प्राप्त हूँगा ।४४। यह सुनकर विशाखयूप नरेश ने भगवान कल्कि को प्रणाम किया और उनसे वैष्णव धर्म का प्रसंग कहने का अनुरोध किया ।४५। राजा की कामना सुन कर कलिकुल का नाश करने की इच्छा से भूमण्डल पर अवतरित भगवान् कल्कि अपने परिजनों और अनुयायियों के हृदयों को आनन्दित करने वाली मिष्ठ वाणी से साधु धर्म की व्याख्या करने लगे :४६।

—❀—

चतुर्थ-अध्याय ।

ततः कल्कि सभा मध्ये राजामानो रविर्यथा ।
अभाषे तं नृप धर्म-मयो धर्मान् द्विज प्रियान् ।१।
कालेन ब्रह्मणो नाशे प्रलये मयि सङ्गताः ।
अहमेवासमेवाग्रे नान्यत् कार्यमिदं मम ।२।
प्रसुप्तलोकतन्त्रस्य द्वैतहीनस्य चात्मनः ।
महानिशान्ते रन्तुं मे समुद्भूतो विराट प्रभुः ।३।
सहस्रशीर्षा पुरुषा सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
तदङ्गजोऽभवद्ब्रह्मा वेदवक्रो महाप्रभुः ।४।

सूतजी बोले मुनीश्वरो ! उस समय सभा के मध्य में भगवान कल्कि सूर्य के समान विराजमान होकर विशाखयूप नरेश के प्रति धर्म-प्रसंग कहने लगे ।१। कल्कि बोले—कालान्तर में जब यह ब्रह्माण्ड नाश को प्राप्त होगा तब प्रलय होने पर मुझ में विलीन हो जायगा । सृष्टि से पूर्व मैं ही विद्यमान था, अन्य कुछ भी नहीं था । इस सम्पूर्ण जगत् का कारण मैं ही हूँ ।२। सम्पूर्ण विश्व की प्रसुप्ति और द्वैतहीनात्मिका महा रात्रि का अन्त होने पर मैं सर्वशक्ति सम्पन्न विराट्मूर्ति रूप में आविर्भूत होता हूँ ।३। वह विराट्मूर्ति सहस्र मस्तक, सहस्र नेत्र और सहस्र चरण वाली हुई, उसी मूर्ति के अंग से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ।४।

जीवोपाधेर्ममांशाच्च प्रकृत्या मायया स्वया ।
ब्रह्मोपाधिः स सर्वज्ञो मम वाग्वेदशासितः ।५।

ससर्ज जीव जातानि कालमायां शयोगत:
देवा मन्वादयो लोका स प्रजापतय: प्रभु: ।६।
गुणिन्या मायायांशा मे नानोपाधौ ससर्जरे।
सोपाधय इमे लोका देवा: सस्थाणुजङ्गमा: ।७।
ममाशा मायया सृष्टा यतो मय्याविशन् लये ।
एवंविधा ब्राह्मणा ये मच्छरीरा मदात्मिका:।८।
मामुद्धरन्ति भुवने यज्ञाध्ययनसत्क्रिया: ।
मां प्रसेवन्ति शसन्ति तपोदानक्रियास्त्विह ।९।
स्मरन्त्यामोदयन्त्येव नान्ये देवादयस्तथा ।
ब्राह्मणा वेदवक्तारो वेदा मे मूर्तय: परा ।१०।

ब्रह्म उपाधि वाले सर्वज्ञपुरुष ने मेरी वेद वाणी के शासनानुसार मेरी माया प्रकृति की शक्ति, काल और अंश के सम्मिश्रण से इस जीवोपधारी जाति को प्रकट किया। इस प्रकार मनु आदि प्रजापतियों के सहित देवता प्रकट हुए।५-६। मेरे अंश से त्रिगुणात्मिका माया अनेक प्रकार की उपाधि धारण करके इस लोक में देवता एवं स्थावर जंगम सृष्टि प्रकट करती है ।७। माया सृष्टि का रचियता मेरा अंश अन्त में मुझ में ही लय हो जाता है । इसी प्रकार ब्राह्मण मेरे ही आत्म स्वरूप एवं देह हैं।८। क्योंकि ब्राह्मण यज्ञ वेदाध्ययन आदि श्रेष्ठ कार्यों के द्वारा मेरा उद्धार तथा तप दानादि द्वारा मेरी सेवा करते हैं ।९। वेदवक्ता ब्राह्मण जिस प्रकार स्मरण द्वारा मुझे प्रसन्न करते हैं, उस प्रकार देवतादि अन्य कोई भी मुझे प्रसन्न नहीं करते, क्योंकि वेद ही मेरी परम मूर्ति है ।१०।

तस्मादिमे ब्राह्मणजास्तै: पुष्टस्त्रिजगज्जना: ।
जगन्तिमे शरीराणि तत्पोषे ब्रह्मणो वर: ।११।
तेनाहं तान्नमस्यामि शुद्धसत्वगुणाश्रय:।
ततो जगन्मयं पूर्वं मां सेवन्तेऽखिलाश्रया: ।१२।

विप्रस्य लक्षणं ब्रूहि त्वद्भक्तिः का च तत्कृता ।
यतस्तवानुग्रहेण वाग्बाणाः ब्राह्मणाः कृताः ।१३।
वेदा मामीश्वरं प्रहुरव्यक्तं व्यक्तिमत्परम् ।
ते वेदा ब्राह्मणामुखे नानाधर्मे प्रकाशिताः ।१४।
यो धर्मो ब्राह्मणानां हि सा भक्तिर्मम पुष्कला ।
तयाहं तोषितः श्रीशः संभवामि युगे-युगे ।१५।

ब्राह्मण द्वारा वेदाध्ययन से तीनों लोकों के निवासी पुष्टि को प्राप्त हो रहे हैं, प्राणी रूप मेरे देह को श्रेष्ठ ब्राह्मण ही पुष्ट करते हैं ।११। इसलिए शुद्ध सत्वगुण का आश्रित हुआ मैं ब्राह्मणों को मैं नमस्कार करता हूँ, तब ब्राह्मण भी मुझे विश्वमय समझ कर कर ही मरी सेवा करते हैं ।१२। विशाखयूप नरेश ने कहा-हे प्रभो ! आप मेरे प्रति ब्राह्मणों के लक्षण कहिये । वे आपकी भक्ति किस प्रकार करते है, जिस भक्ति को करके वे आपके अनुग्रह से बाग्वाण स्वरूप हो जाते हैं ।१३। कल्कि बोले— हे राजन् ! अव्यक्त एवं वेद ही मेरे ईश्वर है । ब्राह्मण के मुख से यह वेद विभिन्न कर्मों का प्रकाश करते हैं ।१४। ब्राह्मणों का धर्माचरण मेरे प्रति भक्ति रूप में प्रकट है । उनकी उसी भक्ति से संतुष्ट होकर मैं युग-युग में प्रकट होता हूँ ।१५।

ऊद्ध्र्वन्तु त्रिवृतं सूत्रं सधवानिर्मितं शनैः ।
तन्तुत्रयमधोवृत्तं यज्ञ सूत्रं विदुर्बुधाः ।१६।
त्रिगुणं तद्ग्रन्थियुक्तं वेदप्रवरसंमितम् ।
शिरोधरात् नाभिमध्यात् पृष्ठार्द्ध परिमाणकम् ।१७।
यजुर्विदां नाभिमितं सामगानामयं विधिः ।
वामस्कन्धेन विधृतं यज्ञ सूत्रं बलप्रदम् ।१८।
मृद्भस्मचन्दनाद्यैस्तु धारयेत् तिलकं द्विजः ।
भाले त्रिपुण्ड्रं कर्माङ्गं केश पर्यन्तमुज्जलम् ।१९।
पुण्ड्रमंगुलिमानन्तु त्रिपुण्ड्रं तत् त्रिधा कृतम् ।
ब्रह्मविष्णु शिवावासं दर्शनात् पापनाशनम् ।२०।

ज्ञानियों का कहना है कि ब्राह्मण की सधवा नारी के द्वारा सूत्र को त्रिवृत्त करे तथा उस त्रिवृत सूत्र को पुन: तिवृत करे यही यज्ञ सूत्र है ।१६। वेद प्रवर युक्त उस सूत्र में गाँठ लगावे। यजुर्वेदी ब्राह्मण को यही यज्ञोपवीत कंठ से नाभि तक तथा पृष्ठ के आधे भाग तक धारण करे। सामवेदी ब्राह्मण को नाभि तक धारण करना चाहिए। यज्ञोपवीत बांये कन्धे पर धारण करने से बल का देने वाला होता है- ।१७-१८। द्विज को मृत्तिका भस्म और चन्दनादि का तिलक लगाना चाहिये। मस्तक पर केश पर्यंत उज्वल त्रिपुण्ड लगाना चाहिये ।१९। पुण्ड्र का प्रमाण एक अंगुल और त्रिपुण्ड्र इससे तिगुना होता है। त्रिपुण्ड्र में ब्रह्मा, विष्णु और शिव निवास करते हैं। यह दर्शन करते ही पाप का नाश करने में समर्थ है ।२०।

ब्राह्मणानां करे स्वर्गा वाचो वेदा करे हरिः।
गात्रे तीर्थानि रागश्च नाड़ीषु प्रकृतिस्त्रिवृत् ।२१
सावित्री कण्ठकुहरा हृदय ब्रह्म संहितम्।
तेषां स्तनान्तरे धर्म पृष्ठोऽधर्मः प्रकीर्तितः ।२२।
भू देवा ब्राह्मणा राजन्! पूज्या वन्द्या सदुक्तिभिः।
चतुराश्रम्यकुशला मम धर्मः प्रवर्त्तकाः ।२३।
बालाश्चापि ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धा मम प्रियाः।
तेषां वचः पालयितुमवताराः कृता मयाः ।२४।
महाभाग्यं ब्राह्मणानां सर्वपापप्रणाशनम्।
कलिदोषहर श्रुत्वा मुच्यते सर्वतो भयात् ।२५।

ब्राह्मणों के हाथों में स्वर्ग और भगवान् विष्णु निवास करते हैं वाणी में वेद देह में तीर्थ और राग तथा नाड़ी में त्रिगुणात्मिका प्रकृति है ।२१। ब्राह्मणों के कण्ठ में सावित्री, हृदय में ब्रह्म वक्षस्थल के मध्य में धर्म एवं पृष्ठ देश में अधर्म का निवास रहता है ।२२। हे राजन्! चारों आश्रमों के धर्म को जानने वाले, मेरे धर्म के प्रवर्त्तक—

देवता ब्राह्मण श्रेष्ठ वचनों के द्वारा वन्दनीय हैं ।२३। ज्ञानवृद्ध और ब्राह्मणों के बालकों के प्रति मैं अत्यन्त प्रेम करता और उनके वचन पालनार्थ ही अवतार धारण करता हूँ ।२४। सभी पापों का नाशक, कलि-काल के दोषों का हरण करने वाला ब्राह्मणों के महाभाग्य रूपी चरित्र को सुनने से सदा सब भय नष्ट हो जाते हैं।२५।

इति कल्किवचः श्रुत्वा कलिदोषविनाशनम् ।
प्रणम्य तं शुद्धमनाः प्रययौ वैष्णवाग्रणीः ।२६।
गते राजानि सन्ध्यायां शिवदत्तशुको बुधः ।
चरित्वा कल्किपुरतः स्तुत्वा तं पुरतः स्थितः ६७।
तं शुकं प्राह कल्किस्तु सस्मितं स्तुतिपाठकम् ।
स्वागतं भवता कस्मात् देशात किं खादितं ततः ।२८।
शृणु नाथ ! वचो मह्यं कौतूहलसमन्वितम् ।
अहं गतश्च जलधेर्मध्ये सिंहल संज्ञके ।२९।
यथा वृत्तं द्वीप गतं तच्चित्रं श्रवणप्रियम् ।
बृहद्रथस्य नृपतेः कन्यायाश्चरितामृतम् ।३०।

कलियुग के दोषों को नष्ट करने वाले भगवान् कल्कि के वचन सुनकर पवित्र हृदय वैष्णव श्रेष्ठ राजा उन्हें प्रणाम करके चला गया ।२६। राजा के चले जाने पर शिव प्रदत्त ज्ञानी शुक संध्या के समय भ्रमण से लौटकर भगवान कल्कि के समक्ष स्तुति करके खड़ा हुआ। उसके स्तोत्र-पाठ को सुन कर कल्कि भगवान बोले—तुम किधर से आ रहे हो ? तुमने वहाँ क्या भोजन किया ? शुक बोला—हे नाथ ! आप मुझसे कौतुकमय वाणी सुनिये । मैं समुद्र के मध्य स्थित सिंघल द्वीप में गया था ।२९। उस द्वीप में घटित वृत्तान्त सुनने में बड़ा अच्छा है । राजा बृहद्रथ की कन्या का चरित्र अमृत के समान श्रेष्ठ है ।३०।

कौमुद्यामिह जातायां जगतां पापनाशनम् ।
चरितं सिंहले द्वीपे चातुर्वर्ण्यजनावृते ।३१।

प्रासाद-हर्म्य-सदन-पुर-राजि-विराजिते ।
रत्न-स्फाटिक-कुड्यादि-स्वलंतार्भिभूषिते ।३२।
स्त्रीभिरुत्तमवेशाभिः पद्मिनीभिः समावृते ।
सरोभिः सारसैर्हंसैरुपकूलजलाकुले ।३३।
भृङ्ग रङ्ग प्रसङ्गाढ्ये पद्मैः कह्लारकुन्दकैः ।
नानाम्बुजलताजाल-वनोपवन-मण्डिते ।३४।
देशे बृहद्रथो राजा महाबलपराक्रमः ।
तस्य पद्मावती कन्या धन्या रेजे यशस्विनी ।३५।

इस कन्या ने रानी कौमुदी के गर्भ से जन्म लिया है । इसका चरित्र श्रवण से पाप नाशक है । उस द्वीप में चारों वर्ण के मनुष्यों का निवास है ।३१। भवन, अटारी, गृह युक्त नगर में वहाँ का राजो सुशोभित है । उसका भवन रत्न, स्फटिक, मणि तथा स्वर्ण आदि की पच्चीकारी से विभूषित हो रहा है ।३२। वहाँ पद्मिनी प्रभृति स्त्रियाँ श्रेष्ठ वस्त्रादि से सुशोभित रहती हैं । सरोवरों में सारस और हंस आदि पक्षी किलोल करते हैं । ।३३। वह द्वीप विभिन्न प्रकार की पद्मलताओं के जालों से सुशोभित है । उपवनों में कल्हार, कुन्द आदि के पुष्पों पर भोंरे गुंजार करते हैं ।३४। वहाँ का राजा बृहद्रथ महाबली और पराक्रमी है । उसकी पद्मावती नाम की कन्या भी अत्यन्त यशस्विनी है ।३५।

भुवने दुर्लभा लोकेऽप्रतिमा वरवर्णिनी ।
काम मोह करी चारु चरित्रा चित्र निर्मिता ।३६।
शिव सेवापरा गौरी यथा पूज्या सुसम्मता ।
सखीभिः कन्यकाभिश्च जप ध्यान परायणा ।३७।
ज्ञात्वा ताञ्च हरेर्लक्ष्मीं समुद्भूतां वराङ्गनाम् ।
हरः प्रादुरभूत्साक्षात्पार्वत्या सह हर्षितः ।३८।
सा तमालोक्य वरदं शिव गौरी समन्वितम ।
लज्जिताधोमुखी किञ्चन्नोवाच पुरतः स्थिता ।३९।

हरस्तामाह सुभगे ! तव नारायणः पतिः।
पाणि ग्रहीष्यति मुदा नान्यो योग्यो नृपात्मजः ।४०।

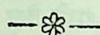
श्रेष्ठ मुख वाली,सुन्दर चरित्रमयी, कामदेव को भी मोहित करने वाली उस कन्या की समानता संसार में कोई नहीं कर सकता ।३६। जिस प्रकार गिरिजा भगवान शंकर की सेवा परायण हैं, उसी प्रकार पूजनीया पद्मावती अपनी सखियों के साथ जप ध्यान-परायण रहती हैं। ।३७। भगवान विष्णु की प्रिया लक्ष्मी जी को पद्मावती के रूप में उत्पन्न हुई जानकर पार्वती जी के साथ भगवान शंकर वहाँ पधारे ।३८। वरदाता शिवजी को पार्वती जी के सहित आये देख कर उस कन्या ने लज्जा से शिर नीचा कर लिया और अवाक् खडी रही ।३९। तब शिवजी बोले—

हे सुभगे ! तुम्हारे पति भगवान नारायण ही तुम्हारा पाणि-ग्रहण करेंगे। क्योंकि अन्य कोई राजकुमार तुम्हारे योग्य नहीं है ।४०।

कामभावेन भुवने ये त्वां पश्यन्ति मानवाः।
तेनैव वयसा नार्यो भविष्यन्त्यपि तत्क्षणात् ।४१!
देवासुरास्तथा नागा गन्धर्वाश्चारणादयः।
त्वया रन्तु तथाकाले भविष्यन्ति किल स्त्रियः ।४२।
विना नारायण देवं त्वत्पाणिग्रहणार्थिनम्।
गृह याहि तपस्त्यक्त्वा भोगस्यतनमुत्तमम् ।४३।
मा क्षोभये हरेः पत्नि कमले विमलं कुरु।
इति दत्वा वरं सोयस्तत्रैवान्तर्दधे हरः ।४४।
हरवरमिति सा निशम्य पद्मा समुचितमात्मनोरथ प्रकाशम्।
विकसितवदना प्रणम्य सोमं निजजन कालयभाविवेश रामा

मृत्युलोक के वासी जो मनुष्य तुम्हारी ओर काम भाव से दृष्टिपात करेंगे, वे तत्काल अपनी आयु के अनुकूल स्त्रीत्व भाव को प्राप्त हो जायेंगे ।४१। देवता, दैत्य, नाग, गंधर्व चारण आदि में भी जो कोई तुम पर कुदृष्टि डालेंगे, वे भी स्त्रीत्व को उसी समय प्राप्त होंगे ।४२।

भगवान नारायण के अतिरिक्त जो कोई भी तुम्हारा पाणिग्रहण करना चाहेगा, वह ऐसी ही दशा को प्राप्त होगा। अब तुम तपस्या को छोड़कर भोग के योग्य अपना रूप बनालो और अपने घर को प्रस्थान करो ।४३। हे कमले ! तुम हरि की पत्नी हो, हर प्रकार का क्षोभ त्याग कर मन को स्वस्थ करो। इस प्रकार वर प्रदान करके शिवजी अन्तर्ध्यान होगये ।४४। भगवान शंकर से मनोवांछित वरदान प्राप्त करके प्रफुल्ल मुख हुई पद्मा शिवजी को प्रणाम करके अपने पितृ-गृह को गई ।४५।



पंचम अध्याय

गते बहुतिथे काले पद्मां वीक्ष्य ब्रहद्रथः ।
निरूढ़ यौवनां पुत्रीं विस्मित पापशङ्कया ।१।
कौमुदीं प्राह महिषीं पद्मोद्वाहेऽत्र कं नृपम् ।
वरयिष्यामि सुभगे ! कुलशील समन्वितम् ।२।
सा तमाह पतिं देवी शिवेन प्रतिभाषितम् ।
विष्णुरस्य: पतिरिति भविष्यति न संशय ।३।
इति तस्यावचः श्रुत्वा राजा प्राह कदेतिताम् ।
विष्णुः सर्व गुहावासः पाणिमस्यां ग्रहीस्यति ।४।
न मे भाग्योदयः कश्चित् ये न जामातरं हरिम् ।
वरयिष्यामि कन्यार्थे वेदवत्या मुनेर्यथा ।५।
इमां स्वयं वरां पद्मां पद्मामिव महोदधे ।
मथनेऽसुरदेवानां तथा विष्णुर्ग्रहीष्यति ।६।

शुकदेव जी ने कहा—बहुत समय व्यतीत होने पर जब पुत्री को

राजा बृहद्रथ ने उसे यौवनावस्था के लक्षणों से युक्त देखा तब वह पाप की शंका से चिन्ता करने लगा ।१। तब राजा ने अपनी रानी कौमुदी के प्रति कहा कि हे सुभगे ! तुम मुझे परामर्श दो कि अपनी प्रिय पुत्री के विवाहार्थ किस शीलगुण सम्पन्न एवं श्रेष्ठ कुलोत्पन्न राजा को आमन्त्रित किया जाय ? ।२। यह सुन कर रानी कौमुदी ने राजा को भगवान शकर के वचन स्मरण कराते हुए कहा कि इसके पति भगवान् श्री हरि ही होंगे, इसमें संशय नहीं है ।३। उसके यह वचन सुनकर राजा बृहद्रथ ने रानी से पूछा कि हे प्रिये ! यह तो बताओ कि भगवान् विष्णु कितने समय मे इसका पाणिग्रहण कर लेंगे ।४। हे प्रिये ! अभी तो हमारा ऐसा भाग्योदय नहीं हुआ जान पड़ता कि जिससे प्रभाव से वेदवती के समान मैं भी स्वयंवर में भगवान् श्री हरि को अपने जामाता के रूप में प्राप्त कर सकूँ ।५। देवताओं और दैत्यों के द्वारा मंथन किये जाते समुद्र से उत्पन्न हुई पद्मासना पद्मा के समान मेरी इस पद्मा को स्वयंवर में भगवान् श्री हरि वरण करलें ।६।

इति भूपगणान्भूपः समाहूय पुरस्कृतान् ।
गुणशीलवयोरूप विद्याद्रविण संवृतान ।७।
स्वयंवरार्थं पद्मायाः सिंहले बहुमङ्गले ।
विचार्य कारयामास स्थानं भूपनिवेशनम् ।८।
तत्रायाता नृपाः सर्व विवाह कृत निश्चयाः ।
निज सैन्यैः परिवृताः स्वर्णरत्न विभूषिताः ।९।
रथान्गजानश्ववरान्समारूढा महाबलाः ।
श्वेतच्छत्रकृतच्छायाः श्वेतचामर वीजिताः ।१०।
शस्त्रास्त्रतेजसा दीप्ता देवाः सेन्द्राइवाभवन ।
रुचिराश्वः सुकर्मा च मदिराक्षो दृढाशुगः ।११।
कृष्णसारः पारदश्च जीमूतः क्रूरमर्दन ।
काशः कुशाम्बुर्वसुमान् कङ्कः क्रथन सञ्जयौ ।१२।
गुरुमित्रः प्रमाथी च विजृम्भ सञ्जयोऽक्षमः ।

एते चान्ये च बहवः समायाता महाबलाः ।१३।

ऐसा सोचते हुए राजा वृहद्रथ ने, अपनी कन्या के स्वयंवर के निमित्त गुणवान, शीलवान, रूपवान, विज्ञ एवं महान् ऐश्वर्य वाले युवावस्था से परिपूर्ण राजाओं को सम्मान सहित आमंत्रित किया ।७। इस प्रकार उस सिंहल देश में पद्मा के स्वयंवर का उत्सव मनाया जाने लगा बहुत प्रकार के मंगल होने लगे और राजाओं के निवास आदि के लिए स्थान सज्जित किये जाने लगे ।८। विवाह की इच्छा से सुवर्ण, मणि-रत्नादि से विभूषित हुए राजागण देश विदेश से अपनी सेनाओं के सहित वहाँ आने लगे ।९। वे सभी बलवान् राजागण रथ, अश्व, गज आदि विभिन्न वाहनों पर सवार होकर वहाँ आये। उनके ऊपर श्वेत छत्र लगाये और चमर डुलाये जाते थे । १०। उस समय शस्त्रादि से दैदीप्यमान वे सब राजागण ऐसे शोभा पाने लगे जैसे देवताओं के समाज में इन्दु सुशोभित होते हैं। रुचिराश्व, सुकर्मा, मदिराक्ष, दृढ़ाशुग, कृष्ण-सार, पारद, जीमूत क्रूरमर्दन, काश, कुशाम्बु, वसुमान, कंक, क्रथन, संजय, गुरुमित्र, प्रमाथी, विजृम्भ, सञ्जय, अक्षम आदि अनेक महा-पराक्रमी नरेशगण वहाँ एकत्र होगये ।११-१३।

विविशुस्ते रङ्गगताः स्वस्वस्थानेषु पूजिताः ।
वाद्यताण्डवसंहृष्टाश्चित्र माल्यम्बराधराः ।१४।
नानाभोगसुखोद्रिक्ताः कामरामा रतिप्रदाः ।
नानालोक्य सिंहलेशः स्वां कन्यां वरवर्णिनीम् ।१५।
गौरी चन्द्रननां श्यामां तारहारविभूषिताम् ।
मणिमुक्ताप्रवालैश्च सर्वाङ्गालंकृतां शुभाम् ।१६।
किं माया मोहजननीं किं वा कामप्रियां भुवि ।
रूपलावण्यसम्पयन्या न चान्यमिह दृष्टवान ।१७।
स्वर्गे क्षितौ वा पातालेऽप्यहं सर्वत्रगो यदि ।
पश्चद्दासीगणकीर्णां सखीभिः परिवारिताम् ।१८।

वे राजागण विविध प्रकार के वस्त्राभूषण, माला आदि से विभूषित होकर रंगभूमि में आकर सादर सम्मानित होते हुए सुखपूर्वक अपने-२ अपने स्थान पर बैठ गये ।१४। विभिन्न प्रकार के भोगों और ऐश्वर्य से सम्पन्न, रमणीय, चरित्र वाले एवं सब को प्रसन्न करने के स्वभाव वाले राजाओं को देखकर सिंहलेश बृहद्रथ ने अपनी वरवर्णिनी कन्या को स्वयंवर में बुलाया ।१५। गौरी, चन्द्रानना, श्यामा मणि-मोती रत्नों आदि से सब प्रकार विभूषित, अत्यन्त सुन्दर हार को धारण किये हुए वह पद्मावती मोहमयी माया अथवा कामदेव की साक्षात् पत्नी ही अवतरित हुई प्रतीत होने लगी। मैं स्वर्ग, मर्त्यलोक, पाताल सभी लोकों में तो गमन करता हूँ। परन्तु ऐसी रूप लावण्य वाली कोई अन्य कन्या मैंने कहीं भी नहीं देखी। उस कन्या के पीछे दासियां चल रही थीं तथा उसके चारों ओर सखियां थी ।१६-१८।

दौवारिकैर्वेत्रहस्तैः शासितान्तः पुराद्बहिः ।
पुरोबन्दिगणाकीर्णां प्रापयामास तां शनैः ।१९।
नूपुरैः किङ्किणीभिश्च क्वणन्तीं जनमोहिनीम् ।
स्वागतानां नृपाणाञ्च कुल शील गुणान्बहून ।२०।
शृण्वन्ती हंसगमना रत्नमालाकरग्रहा ।
रुचिरापाङ्गभङ्गेन प्रेक्षन्ती लोलकुण्डला ।२१।
नृत्यकुन्तलसोपान गण्ड मण्डल मण्डिता ।
किञ्चित्स्मेरोल्लसद्वक्रदशनद्योतदीपिता ।२२।
वेदीमध्यारुणा क्षौमवसना कोकिलस्वना ।
रूप लावण्य पण्येन क्रतुकामा जगत्रयम् ।२३।
समागतां तां प्रसमीक्ष्य भूपाः संमोहिनीं काम विमूढ चित्ताः ।
पेतुः क्षितौ विस्मृतवस्त्रशस्त्राः रथाश्वमत्तद्विपवाहनास्ते ।२४।

नगर के बाहर दौवरिकगण हाथों में बेंत लिए हुए अन्तःपुर के शासन में संलग्न थे। सभास्थल के अगले भाग में बंदीगण खड़े थे। उस रंग भूमि में राजकुमारी पद्मा मंदगति से प्रविष्ट हुई ।१९। नूपुर और

किङ्कणी से लोकों को मोहने वाली झंकार करती हुई और आगत नरेशों के कुल, गुण, शील आदि का वर्णन श्रवण करती हुई वह हंसगति वाली राजकन्या हाथ में रत्नमाला लिए हुए अपने चवल अंगों से शोभा को पाती हुई और कटाक्षपूर्वक सब को देखती हुई बढ़ती जा रही थी। वह हिलते हुए कुण्डल वाली, केशकुन्तल की चंचलता से युक्त, सुन्दर ग्रीवा वाली, विकसित मुख से मंद मुसकराती हुई, जिसके दाँतों की पंक्तियाँ चमक रही थीं, लाल रंग के रेशमी वस्त्र धारण किये हुए, कोकिला जैसे कण्ठ स्वर वाली, जिसके रूप लावण्य से तीनों लोक मोहित हो रहे थे, उस मनमोहिनी सुकुमारी राज कन्या को रंगभूमि में घूमती हुई देख-कर कामदेव के वशीभूत हुए राजागण ऐसे विह्वल चित्त होगये कि उनके शस्त्रास्त्र और वस्त्रादि सभी खुल-खुल कर पृथिवी पर गिरने लगे।१९-२४।

तस्याः स्मरक्षोभ निरीक्षणेन स्त्रियो बभूवुः कमनीयरूपाः।
बृहन्नितम्बस्तनभारनम्रा सुमध्यमास्तत्स्मृतिजातरूपाः।२५।
विलासहास व्यसनातिचित्राः कान्ताननः शोणसरोज नेत्राः।
स्त्रीरूपमात्मानमवेक्ष्य भूपास्तामन्वगच्छन्दिशदानुवृत्या।२६।
अहं वटस्थः परिघर्षितात्मा पद्माविवाहोत्सवदर्शनाकुलः।
तस्या वचोऽन्तर्हृदि दुःखितायाः श्रोतुं स्थितः स्त्रीत्वमितेषु तेषु।
जाहीहि कल्के कमलाविलापं श्रुतं विचित्रं जगतामधीश।
गते विवाहोत्सवमङ्गले सा शिवं शरण्यं हृदये निधाय।२८।
तान्दृष्ट्वा नृपतीःगजाश्वरथिभिरत्यक्तान्सखित्वं गतान्।
स्त्रीभावेन समन्विताननुगतान्पद्मां विलोक्यान्तिके।
दीना त्यक्तविभूषणा विलखिती पादांगुलैः कामिनी॥
ईशं कर्तुं निजनाथमीश्वरवचस्तथ्यं हरिंसाऽस्मरत्।२९।

काम से विमोहित हुए उन राजाओं ने जैसेही उस राजकन्या को वासनामय नेत्रों से देखा, वैसे ही वे जिस रूप पर लालायित हुए थे, वैसे

ही रूप वाली कमनीय नारी का रूप उन्हें प्राप्त होगया ।२५। इस प्रकार नारी सुलभ हास, विलास, व्यसन, चातुर्य, सुन्दर मुख और कमल जैसे नेत्रों को प्राप्त हुए वे राजागण अपने को स्त्री हुए देख कर पद्मा के पीछे पीछे उसकी सहेली बनकर चलने लगे ।२६। उस समय पद्मा के विवाह का वह उत्सव देखने के निमित्त मैं पास ही के एक वृक्ष पर बैठ गया था। जब वे राजागण स्त्री रूप हो गये, तब तो पद्मा अत्यन्त शोकित हो उठी । मैं उसके विलाप को सुनता रहा । हे लोक स्वामिन् ! उस मंगलमय उत्सव के इस प्रकार समाप्त हो जाने पर पद्मा ने भगवान् शंकर का ध्यान कर जो विलाप किया था, उस करुण विलाप को आप श्रवण कीजिये। पद्मा ने देखा कि सभी राजागण मुझे देखते ही अपने हाथी, अश्व, रथ आदि से विलग होकर स्त्री रूप में मेरी सहेली होकर साथ-साथ चल रहे हैं, तो वह अत्यन्त दीनतापूर्वक अपने आभूषणों को त्याग कर धरती को कुरेदने लगी । फिर वह शिवजी के वर-दान की सफलता के हेतु भगवान् विष्णु का पति भाव से ध्यान करने लगी ।२७-२६।



षष्ठ अध्याय

तत: सा विस्मितमुखी पद्मा निजजनैर्वृता।
हरिं पतिं चिन्तयन्ती प्रोवाच विमलां स्थिताम् ।१।
विमले किं कृतं धात्रा ललाटे लिखनं मम ।
दर्शनादपि लोकानां पुंसां स्त्रीभावकारकम् ।२।
ममापि मन्दभाग्यया पापिन्या: शिवसेवनम् ।
विफलत्व मनुप्राप्तं बीजमुप्तं यथोपरे ।३।
हरिर्लक्ष्मीपति: सर्वजगतामधिप: प्रभु: ।
मत्कृतेऽप्यभिलाषं किं करिष्यति जगत्पति: ।४।
यदि शम्भोर्वचो मिथ्या यदि विष्णुर्न मां स्मरेत् ।
तदाहमनले देहं त्यक्ष्यामि करिभाविता ।५।

शुकदेव जी बोले—तदनन्तर विस्मित मुख वाली पद्मा अपनी सहेलियों के मध्य स्थित हुई, भगवान विष्णु को पतिरूप में विचार करती हुई, अपने निकट स्थित विमला नाम की सहेली से कहने लगी ।१। पद्मा बोली—हे विमले ! क्या ब्रह्मा ने मेरे भाग्य में यही लिख दिया है कि जो पुरुष मुझे देखे, वह तुरन्त स्त्रीत्व को प्राप्त हो जाय ।२। हे सखी ! जैसे मरुभूमि में बोया गया बीज निष्फल होता है, वैसे ही मुझ अभागिनी एवं पापिनी द्वारा भगवान् शंकर की, की गई उपासना व्यर्थ होगई ।३। भगवान् रमापति विष्णु सम्पूर्ण विश्व के अधीश्वर और प्रभु हैं. मैं उन्हें पति रूप में प्राप्त करने की कामना करूँ तो क्या वे मुझे स्वीकार करेंगे ? ।४। यदि भगवान शम्भु का वचन मिथ्या हो गया और भगवान विष्णु ने मेरी कामना नहीं की तो मैं उन्हीं भगवान् श्री हरि का ध्यान करती हुई अपने देह को अग्नि कुण्ड में डाल कर भस्म कर दूँगी ।५।

क्व चाहं मानुषी दीना क्वासौ देवो जनार्दनः ।
निगृहीता विधात्राहं शिवेन परिवंचिता ।६।
विष्णो च परित्यक्ता मदन्या नात्र जीवति ।७।
इति नाना विलपिन्या वचनं शोचनाश्रयम् ।
पद्मायाश्चरुचेष्टाया। श्रुत्वायातस्तवान्तिके ।८।
शुकस्य वचनं श्रुत्वा कल्किः परमविस्मितः ।
तं जगाद पुनर्याहि पद्मां बोधयितुं प्रियाम् ।९।
मत्सन्देशहरो भूत्वा यद्रूपगुणकीर्तनम् ।
श्रावयित्वा पुनः कीर ! समायास्यासि बांधव ।१०।

कहाँ तो मैं दीन मानुषी और कहाँ वे जनार्दन प्रभु—इन दोनों में विवाह की कल्पना करने से ही मैं तो यह समझती हूँ कि विधाता मुझ से विमुख है, तभी तो शिवजी ने मुझे वैसा वर देकर ठग लिया है- ।६। भगवान श्री हरि के द्वारा परित्यक्ता होकर मेरे अतिरिक्त और कौन जीवित रह सकता है ।७। सुन्दर चरित्र वाली पद्मावती इस प्रकार से विलाप करती थी । उसके शोकाकुल वचनों को सुनकर ही मैं आपके निकट उपस्थित हुआ हूँ ।८। शुक के यह वचन सुनकर अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हुए कल्कि जी ने शुक के प्रति कहा—हे शुक मेरी प्रिया पद्मा को आश्वासन देने के निमित्त तुम पुनः सिंहल देश को प्रस्थान करो ।९। हे शुक ! तुम हमारे संदेश वाहक होकर पद्मा को हमारे रूप गुण का वृत्तान्त सुनाना और फिर हे खग ! तुम शीघ्र ही यहाँ लौट आना ।१०।

सा मे पतिरहं तस्या दैवविनिर्मितः ।
मध्यस्थेन त्वया योगमावयोश्च भविष्यति ।११।
सर्वज्ञोऽसि विधिज्ञोऽसि कालज्ञोऽसि कथामृतैः ।
तामाश्वास्य ममाश्वासकथास्तस्याः समाहरः ।१२।
इति कल्केर्वचः श्रुत्वा शुकः परमहर्षितः ।
प्रणम्य तं प्रीतमनाःप्रययौ सिंहलं त्वरन् ।१३।

खगः समुद्रपारेण स्नात्वा पीत्वामृतं पयः ।
बीजपूरफलाहारो ययौ नाजजिनिवेशमम् ।१४।
तत्र कम्यापुरं ग्रत्वावृक्षे नागेश्वेर वसन् ।
पद्मालोक्य तां प्राह मुको मानुष भाषया ।१५।

अवश्य ही पद्मा मेरी पत्नी और मैं उसका पति हूँ । विधाता ने ही यह संयोग नियत किया है और यह कार्य तुम्हारी मध्यस्थता में ही सम्पम्न होना है । ११। तुम सर्वज्ञ हो, नियम और काल के भी ज्ञाता हो । तुम अपने वचनामृत से समझा कर और मेरे द्वारा ग्रहण किये जाने का आश्वासन देकर यहाँ लौट आओ । ।१२। कल्किजी का ऐसा आदेश पाकर मुदित हुए शुक ने उन्हें प्रणाम किया और शीघ्रतापूर्वक सिंहल-देश को प्रस्थान किया ।१३। मार्ग में, समुद्र के पार जाकर शुक ने स्नान करके उस अमृतोपम जल का पान और बिजोरे के फलको भक्षण किया और फिर राजभवन में प्रविष्ट होगया ।१४। वह अन्तःपुर में पहुंच कर राजकन्या के निवास स्थान पर जाकर नागकेशर के एक वृक्ष पर चढ़ गया और पद्मा को देख कर मनुष्यों की भाषा में उससे बोला ।१५।

कुशलं ते वरारोहे ! रूप यौवन शालिनी ।
त्वां लोलनयनां मन्ये लक्ष्मी रूपमिवापराम् ।१६।
पद्मानना पद्मगन्धां पद्मनेत्रां कराम्बुजे ।
कमलं कालयन्तीं त्वां लक्षयामि परां श्रियम् ।१७।
किं धात्रा सर्वजगतां रूपलावण्यसम्पदाम् ।
निर्मितासि वरारोहे ! जीवानां मोहकारिणि ! ।१८।
इति भाषितमाकर्ण्य कीरस्यामितमद्भुतम् ।
हसन्ती प्राह सा देवी तं पद्मा पद्ममालिनी ।१९।
कस्त्वं कस्मादागतोऽसि कथं मां शुकरूपधृक् ।
देवो वा दानवो वा त्वमागतोऽसि दयापरः ।२०।

शुक ने कहा—हे वरारोहे ! हे रूप यौवन सम्पन्ने तुम कुशल पूर्वक तो हो ? तुम अपने चंचल नेत्रों से सुशोभित द्वितीय लक्ष्मी ही प्रतीत होती हैं ।१६। तुम कमल जैसे मुख वाली, कमलगंधा, कमलाक्ष तथा कमल के समान हाथों वाली हो। अपने हाथ में तुमने कमल धारण किया हुआ है, यह लक्षण तुम्हारा लक्ष्मी होना सूचित करता है-।१७। हे वरारोहे ! विधाता ने क्या सम्पूर्ण विश्व का रूप लावण्य तुम्हीं में भर कर तुम्हें ही सब जीवों को मोहित करने वाली बना दियो है ।१८। शुक के यह अद्भुत वचन सुनकर पद्ममालधारिणी पद्मा ने हँसकर कहा १९। तुम कौन हो ? कहाँ से आगमन हुआ है ? तुम इस शुक वेश में देवता हो अथवा दानव ? तुम यहाँ आकर किसलिए ऐसी दया प्रदर्शित कर रहे हो ।२०।

सर्वज्ञोऽहं कामगामी सर्वशास्त्रार्थतत्ववित् ।
देवगन्धर्वभूपानां सभासु परिपूजितः ।२१।
चरामि स्वेच्छाया खे त्वामीक्षणार्थमिहागतः ।
त्वामहं हृदि संतप्तां त्यक्तभोगं मनस्विनीम् ।२२।
हास्यालाप-सखी-सङ्ग-देहाभरण-वर्जिताम् ।
विलोक्याहं दीनचेताः पृच्छामि श्रोतुमोरितम् !
कोकिलालाप-सन्ताप-जनकं मधुर मृदु ।२३।
तव दन्तौष्ठजिह्वाग्रलुलिताक्षरपंक्तयः
यत्कर्णकुहरे मग्नास्तेषां किं वर्ण्यते ततः ।२४।
सौकुमार्यं शिरीषस्य क्व कान्तिर्वा निशाकरे ।
पीयूषं क्व वदन्त्येवानन्दं ब्रह्मणि ते बुधाः ।२५।

शुक ने कहा—देवी ! मैं सब कुछ जानने वाला तथा सब शास्त्रों का तत्वज्ञानी हूँ। मैं स्वेच्छापूर्वक सर्वत्र गमन करने में समर्थ हूँ। देवता, गंधर्व अथवा राजाओं की सभा में मेरा पूर्ण सम्मान होता है ।२१। मैं गगन मंडल में अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करता हूँ। तुम हृदय

में सन्तप्त तथा भोग सुख से परे एवं मनस्विनी के दर्शनार्थ ही यहाँ आ पहुँचा हूँ ।२२। तुमने हास्यालाप, सखियोंका संग और आभरणको त्याग रखा है । तुमको इस स्थिति में देखकर दीन-हृदय हुआ मैं तुम्हारी कोकिल जैसी मधुर वाणी में तुम्हारे सन्तप्त रहने कारण जानना चाहता हूँ । २३। तुम्हारे, ओष्ठ और जिह्वा के अग्र भाग से निसृत अक्षर पंक्तियाँ जिसके कानों को सुनाई पड़ जाय, उसकी तपस्या का प्रभाव कहाँ तक कहा जा सकता है ? ।२४। तुम्हारे समक्ष शिरस के पुष्पों की कमनीयता भी क्या है ? तथा चन्द्रकान्ति भी क्या वस्तु है ? ज्ञानीजन जिस ब्रह्म रूपी पीयूष का वर्णन करते हैं, वह आनन्द भी तुम्हारी क्या समता करेगा ? ।२५।

तिलकालकसंमिश्रं लोलकुण्डलमण्डितम् ।२६।
लोलेक्षणोल्लसद्वक्त्रनेत्रं पश्यताम् न पुनर्भव: ।२७।
वृहद्रथसुते ! स्वाधिं वद भामिनि यत्कृते ।
तपःक्षीणामिव तनूं लक्षयामि रुजं विना ।
कनकप्रतिमा यद्वत मांसुभिर्मलिनीकृता ।२८।
किं रूपेण कुलेनापि धनेनाभिजनेन वा ।
सर्वं निष्फलतामेति यस्यदैवमदक्षिणम् ।।२६।।
श्रृणु कीर समाख्यानं यदि वा विदितं तव ।
बाल्य-पौगण्ड-कंशोरे हरसेवां करोम्यहम् ।।३०।।

तुम्हारे तिलक, अलक से युक्त चंचल कुण्डलों से मण्डित तथा चंचल नेत्रों से सुशोभित सुन्दर मुख का दर्शन करने वाले को पुनर्जन्म धारण नहीं करना होता ।२६-२७। हे वृहद्रथसुते ! अपने मानसिक दुःख का कारण मुझे बताओ । हे भामिनि ! तुम्हारी देह बिना रोग के ही, तप से क्षीण दिखाई दे रही है । जैसे मैल के कारण कंचन की प्रतिमा मैली हो जाती है, वैसे ही तुम्हारा देह भी मलीन होगया है ।२८। पद्मा ने कहा—धन अथवा उच्च कुल में उत्पन्न होने से ही

क्या प्रयोजन सिद्ध होना है, अर्थात् दैव की प्रतिकूलता हो तो यह सभी निष्फल हैं ।२६। हे कीर ! यदि तुम्हें हमारा वृत्तान्तज्ञात न हो तो सुनो— मैंने अपनी बाल और किशोर अवस्था में भगवान शंकर की आराधना की थी ।३०।

तेन पूजाविधानेन तुष्टो भूत्वा महेश्वरः ।
वरं वरय पद्म ! त्वमित्याह प्रियया सह ॥३१॥
लज्जयेधोमुखीमग्रे स्थितां मां वीक्ष्य शङ्करः ।
प्राह ते भविता स्वामी हरिर्नारायण प्रभुः ॥३२॥
देवो वा दानवो वान्यो गन्धर्वो वा तवेक्षणात् ।
कामेन मनसा नारी भविष्यति न संशयः ॥३३॥
इति दत्वा वरं सोमः प्राह विष्णवर्च्चनं यथा ।
तथाहं ते प्रवक्ष्यामि समाहितमनाः शृणु ।३४।
एताः सख्यो नृपाः पूर्वमाहूता ये स्वयम्वरे ।
पित्रा धर्मार्थिना दृष्ट्वा रम्यां मां यौवनान्विताम् ।३५।

मेरे द्वारा किये गये उस पूजन से प्रसन्न हुए शिवजी ने पार्वतीजी के सहित प्रकट होकर मुझसे कहा कि हे पद्मे ! वर माँगो ।३१। फिर मुझे लज्जा पूर्वक सिर झुकाये देख कर उन्होंने कहा कि तुम्हारे पति भगवान् नारायण होंगे ।३२। देवता, दानव, गन्धर्व अथवा जो कोई भी हो, यदि तुम्हें काम-भाव से देखेगा तो तुरन्त स्त्री-रूप हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं है ।३३। यह वर देने के पश्चात् शिवजी ने भगवान् विष्णु की जो पूजन विधि बताई थी, वह कहती हूँ, समाहित चित्त से सुनो।३४। यह जितनी भी सखियाँ हैं, सभी पहिले राजा थे। मेरे पिता ने मेरी यौवनावस्था देख कर धर्म की रक्षा के निमित्त इन सब राजाओं को मेरे स्वयम्वर में बुलाया था ।३५।

स्वागतास्ते सुखासीना विवाहकृतनिश्चयः ।
युवानो गुणवन्तश्चरूपद्रविणसम्मताः ।३६।

स्वयंवरगतां मां ते विलोक्य रुचिरप्रभाम् ।
रत्नमालाश्रितकरां निपेतुः काममोहिताः ।३७।
तत उत्थाय संभ्रान्ताः संप्रेक्ष्य स्त्रीत्वमात्मनः ।
स्तनभारानितम्बेन गुरुणा परिणामिताः ।३८।
ह्रिया भिया च शत्रूणां मित्राणामतिदुःखदम् ।
स्त्रीभावं मनसा ध्यात्वा मामेवानगतां शुक !
पारिचर्य्या हररताः सख्यः सर्वंगुणान्विता. ।
मया सम तपोध्यान पूजा; कुर्व्वान्ति सम्मताः ।।४०।।
तदुदितमिति संनिशम्य कीरः श्रवणसूखं निजमानसप्रकाशम्।
समुचितवचनैःप्रतोक्ष्य पद्मां मुरहरयजनं पुनः प्रचष्टे ।।४१।।

यह सभी युवावस्था वाले, रूप, गुण एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न थे । यह सभी मेरे साथ विवाह करने की इच्छा से आकर स्वयंवर-स्थल में सुखपूर्वक बैठ गये ।३६। मुझ सुन्दर प्रभा वाली को हाथ में रत्नमाला लेकर स्वयंवर-स्थल में घूमती देखकर यह सभी काम-मोहित राजागण पृथिवी पर गिर गये ।३७। फिर जब सचेत होकर उठे तो अपने को स्त्रीत्व के सभी लक्षणों से युक्त अर्थात् स्त्री रूप में पाया ।३८। तब तो यह अपने को स्त्री हुआ जान कर बड़े दुःखी हुए और शत्रु-मित्र आदि की लज्जा छोड़ कर मेरे ही साथ चल पड़े ।३६। अब यह सर्वगुण सम्पन्न नारी रूपी राजागण मेरी सखी होकर मेरे साथही भगवान् विष्णुका तप, ध्यान एवं पूजन करते हैं ।४०। अपनी इच्छा के अनुकूल, सुनने में सुखदायक इस वार्ता को सुन कर शुक ने समुचित वाणी से पद्मा को प्रसन्न किया और फिर भगवान् विष्णु के पूजन के प्रसङ्ग में प्रश्न किया ।४१।



सप्तम अध्याय

विष्णवर्च्चनं शिवेनोक्तं श्रोतुमिच्छाम्यहं शुभे ।
धन्यासि कृतपुण्यासि शिवशिष्यत्वमागता ॥१॥
अहं भाग्यवशादत्र समागम्य तवान्तिकम् ।
शृणोमि परमाश्चर्यं कीराकारनिवारणम् ॥२॥
भगवद्भक्तियोगश्च जपध्यानविधिं मुदा ।
परमानन्द-सन्दोह-दान-दक्षं श्रुतिप्रियम् ॥३॥
श्रीविष्णोरर्चनं पुण्यंशिवेन परिभाषितम् ।
यच्छ्रद्धयानुष्ठितस्य श्रुतस्य गदितस्य च ॥४॥
सद्यः पापहरं पुंसां गुरुगोब्रह्मघातिनाम् ।
समाहितेन मनसा शृणु कीर यथोदितम् ॥५॥

शुक बोला—हे शुभे ! शिवजी ने भगवान् विष्णु की जो पूजा-विधि तुम्हें बताई थी, उसे मैं सुनना चाहता हूँ। तुम धन्य हो, तुम अपने पुण्य कर्म द्वारा भगवान् शिव की शिष्या हो गई हो ।१। मैं भाग्य-वशात् ही यहाँ आ पहुँचा हूँ। अब मैं अपने शुक-शरीर का निवारण करने वाली आश्चर्यमयी पूजन-विधि का श्रवण करूँगा ।२। भगवान् विष्णु का जप-ध्यान एवं पूजन की यह बिधि भगवद्भक्ति के देने वाली, श्रवण में सुखद एवं परमानन्ददायिनी है ।३। पद्मा ने कहा—शिव-वर्णित विष्णु के पूजन की विधि अत्यन्त पुण्यमयी है। इसके श्रद्धापूर्वक सुनने, अध्ययन करने या कहने से गोहत्या, गुरुहत्या और ब्रह्महत्या के पाप भी नष्ट हो जाते हैं। हे कीर ! इसका वर्णन शिवजी ने जिस प्रकार किया था, उसे समाहित चित्त से सुनो ।४-५।

कृत्वा यथोक्तकर्माणि पूर्वाह्णे स्नानकृच्छुचिः ।
प्रक्षाल्य पाणी पादौ च स्पृष्ट्वापः स्वासने वसेत् ।६।
प्राचीमुखः संयतात्मा साङ्गन्यासं प्रकल्पयेत् ।
भूतशुद्धिं ततोऽर्घ्यस्य स्थापनं विधिवच्चरेत् ।।७।।
ततः केशवकृत्यादिन्यासेन तन्मयो भवेत् ।
आत्मानं तन्मयं ध्यात्वा हृदिस्थं स्वासने न्यसेत् ।।८।।
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ।
यथोपचारैः संपूज्य मूलमन्त्रेण देशिकः ।।९।।
ध्यायेत्पादादामंदकेशान्तं हृदयाम्बुजमध्यगम् ।
प्रसन्नवदनं देवं भक्ताभीष्टफलप्रदम् ।१०

प्रातःकाल स्नानादि नित्यकर्म से निवृत्त होकर हाथ-पाँवों का प्रक्षालन कर, जल स्पर्श करके अपने आसन पर बैठ जाय ।६। फिर संयतात्मा होकर पूर्वाभिमुख हो और अङ्गन्यास भूतशुद्धि तथा विधिवत् अर्घ्य स्थापन करे ।७। फिर केशव कृत्यादि न्यास युक्त होकर हृदय में विष्णु का ध्यान करता हुआ, उन्हें कल्पित आसन पर प्रतिष्ठित करे ।८। फिर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानार्थ जल, वस्त्राभूषण आदि भेंट करे और यथोपचार देशिक मूलमंत्र से पूजन करे ।९। तदुपरान्त भक्तों को इच्छित फलदायक, हृदयाम्बुज में रमण करने वाले, प्रसन्न मुख भगवान विष्णु का चरणकमलों से केश पर्यन्त ध्यान करे ।१०।

योगेन सिद्धविबुधैः परिभाव्यमानं लक्ष्म्यालयं
तुलसिकाञ्चितभक्तभृङ्गम् । प्रोत्तुङ्गरक्तनखराङ्गु-
लिपत्रचित्रं गङ्गारसं हरिपदाम्बुजमाश्रयेऽहम् ।११
गुल्फन्मणिप्रचयघट्टितराजहंससिञ्चत्सुनूपुरयुतं
पदपद्मवृन्तम् । पीताम्बराञ्चलविलोलचलत्पता-
कं स्वर्णत्रिवक्रवलयञ्च हरेः स्मरामि ।१२
जंघे सुपर्णगलनीलमणिप्रवृद्धे शोभास्पदारुण-
मणिद्युतिचंचुमध्ये । आरक्तपादतललम्बनशो-

प्रभाने लोकेक्षणोत्सवकरे च हरेः स्मरामि ।१३
ते जानुनी मखपतेर्भजमूलसङ्गरङ्गोत्सवावृतत-
डिद्वसने विचित्रे । चञ्चत्पतत्रमुखनिर्गतसामगीतः
विस्तारितात्मयशसी च हरेः स्मरामि ।१४

विष्णोः कटिं विधिकृतान्तमनोजभूमिं जीवाण्ड-
कोषनणसङ्गदुकूलमध्याम् । मानागुणप्रकृतिपी-
तविचित्रवस्त्रांध्यायेन्निबद्धवसनां खगपृष्ठसस्थाम् ।१५

ध्यान के पश्चात् 'ॐ नमो नारायणाय स्वाहा" कहे और इस स्तोत्र का उच्चारण करे—योग के द्वारा सिद्ध हुए ज्ञानीजन जिनके ध्यान में सदा रत रहते हैं, जो लक्ष्मी के आश्रय हैं, जिनके भक्तगण भृङ्ग रूपी तुलसी का सदा सेवन करते हैं, जिनके लोहित वर्ण कमलोपम नखयुक्त अँगुलिपत्रों से गंगाजल निकल रहा है, उन कमल जैसे चरणों वाले नारायण की शरण लेता हूँ ।११। जिनके चरणों मे विभूषित मणिमाल युक्त नूपुर हंस के कलरव जैसा शब्द करते हैं, जिन चरणों में पीताम्बर का छोर उड़ती हुई ध्वजा जैसा लगता है, जिन चरणों में स्वर्णिम त्रिवक्र नामक कड़ा शोभित है, उन कमल के समान चरणाम्बुजों का मैं स्मरण करता हूँ ।१२। गरुड़ के कण्ठ भूषण रूप नीलकान्त मणि की प्रभा से समुज्ज्वल जिन जंघाओं के मध्य में गरुड़ की अरुणमणि के समान लाल चोंच सुशोभित है, जिन जंघाओं के नीचे लाल पादतल स्थित हैं, उन विश्व-लोचन के परमानन्द रूप भगवान की जंघाओं का मैं स्मरण करता हूँ ।१३। सामगान के द्वारा गरुड़ जिनका यशोगान करते है उत्सव के अवसर पर चित्र-विचित्र रंगों से युक्त वस्त्रों की विद्युत आभा से विभूषित भगवान् की उन जघाओं का स्मरण करता हूँ ।१४। ब्रह्मा, काल और कन्दर्प की आश्रयभूता जो कटि है तथा जो कटि दुकूल से सुशोभित रहती है, गरुड़ की पीठ पर स्थित विष्णु की उस कटि का मैं ध्यान करता हूँ ।१५।

शातोदरं भगवतस्त्रिवलिप्रकाशभावर्त्तनाभि-
विकनद्विधिजन्मपद्नम् । नाडीनदीगणरसोत्थ-
सितन्त्रसिन्धु ध्यायेऽण्डकोषनिलयं तनुलोमरेखम् ।१६
वक्षः पयोधितनयाकुङ्कमेन धारेण कौस्तु-
भभणिप्रभयां विभातम् । श्रीवत्सलक्ष्म हरि च-
न्दनजप्रसूममालोचितं भगवतः सुभगं स्मरामि ।१७

जो उदर त्रिवाली से सुशोभित हैं, जिस उदर के नाभि कमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं, जिस उदर में नाड़ी रूपी सरिताओं के रथ से अन्त्र रूप समुद्र तरंगित हो रहा है, ब्रह्माएड के आश्रय रूप जिस उदर में लोभ रेखाएं सुशोभित हैं, भगवान् के उस उदर का मैं स्मरण करता हूँ ।१६। जिस हृदय में समुद्रजा लक्ष्मी के वक्षस्थल की केसर लगी हुई है, जो हृदय कंठहार और कौस्तुभ मणि से दमक रहा है, जो हृदय श्रीवत्स के चिह्न से युक्त है और जिस पर हरिचन्दन फूलों की माला विभूषित है. उस प्रभु -हृदय का मैं स्मरण करता हूँ ।१७।

बाहू सुवेशसदनौ वलयाङ्गदादिशोभास्पदौ दुरित
दैत्यविनाशदक्षौ । तौ दक्षिणौ भगवतश्च गदासु-
नाभतेजोजितौ सुललितौ मनसा स्मरामि ।१८
वामौ भुजौ मुररिपोर्धृतपद्नशंखौ श्यामौ करीन्द्रकर
वन्मणिभूषणाढयौ । रक्ताङ्गलिप्चयचुम्बिमजानु
मध्यौ पद्नालयाप्रियकरौ रुचिरौ स्मरामि ।१९
कण्ठं मृणालममलं मुखपङ्कजस्य लेखात्रयेणवन
मालिकया निवतम् । किंवा मुक्तिवसमन्त्रकस
त्फलस्य वृन्ते चिरं भगवत सुभगं स्मरामि ।२०

जिन श्रेष्ठ भुजाओं में वलय अंगद आदि सुन्दर आभूषण सुशोभित है, जो भुजाएँ असंख्य दानवों का संहार कर चुकी है, जिन भुजाओं की प्रभा के समक्ष गदा और चक्र आदि अस्त्रों का तेज भी नगण्य है, मैं

उन्हीं भुजाओं का मन में स्मरण करता हूँ।१८। हाथी की सूंड जैसी जिन भुजाओं में मणिमय आभूषण और शंख पद्म आदि विभूषित हैं, जिन भुजाओं की लाल वर्ण वाली अंगुलियाँ जानु स्पर्श कर रही हैं, उन कमलासना पद्मा को प्रसन्न करने वाली भुजाओं का मैं स्मरण करता हूँ।१९। मृणाल के समान जिस कंठ में मुखारविन्द की तीन रेखायें और वनमाला सुशोभित है तथा जो कंठ मोक्ष-मंत्र के शुभफल का गुच्छा-स्वरूप है, उस श्रीहरि-कंठ का मैं स्मरण करता हूँ।२०।

रक्ताम्बुजं दशनहासविकाशरम्यं रक्ताधरौष्ठधर
कोमलवाक्सुधाढ्यम्। सनमानसोद्भवचलेक्षणपत्रचित्रं
लोकाभिराममलञ्च हरेः स्मरामि।२१
शूरात्मजावसथगन्धविदंसुनाशं भ्रूपल्लव स्थितिल-
यादयकर्मदक्षम्। कामोत्सवञ्च कमलाहृदयप्रका-
शं सञ्चिन्तयामि हरिवक्त्रविलासदक्षम्।२२
कर्णौ लसनमकरकुण्डलगण्डलोलौ नानादिशाश्च
नभसश्च विकासगेहौ। लोलालकप्रचयचुम्बनकु-
ञ्चिताग्रौ लग्नौ हरेर्मणिकिरीतटे स्मरामि।२३
भाल विचित्रतिलकं प्रियचारुगन्धगोरोचनारचनया
ललनाक्षिसख्यम्। ब्रह्मैकधाममणिकान्तकिरीट
जुष्टं ध्यायेन्मनोनयनहारकमीश्वरस्य।२४।

लाल कमल के समान लाल अधरों के मध्य मुसकराते हुए दांत, शोभामय कोमल वचन, मन को प्रसन्नता प्रदान करने वाले चंचल नेत्र, जिस मुखमंडल में सुशोभित हैं, प्रभु के उस मुखारविन्द का मैं स्मरण करता हूँ।२१। जिन भृकुटि पत्रों की कृपा से यम सदन की गंध भी नहीं आती जिनके समीप ही नासिका सुशोभित रहती है, जिनके संकेतमें सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय निहित है, जो मदनोत्सव को प्रकट करने वाले एवं

लक्ष्मीजी के हृदय को प्रफुल्लित करने वाले हैं, हरि के उन भृकुटि-पत्रों का मैं स्मरण करता हूँ ।२२। जिनमें मकराकार कुण्डल शोभा पाते हुए दिशाओं और आकाशको प्रकाशित करते हैं, जो अग्रभाग में चंचल अलकों के स्पर्श से कुछ संकुचित हुए प्रतीत होते हैं, जो मणिमय किरीट के तीर पर स्थित हैं, भगवान के उन कानों का मैं स्मरण करता हूं ।२३। जिस ललाट में सुगंधित अद्भुत गोरोचन तिलक नेत्रों में मैत्री भाव प्रकट करता है. जो ललाट रूपी ब्रह्मधाम मणिमय मुकुट से दीप्तिमान् है, उस नेत्रों को आनन्द देने वाले हरि के ललाट का मैं स्मरण करता हूँ ।२४।

श्रीवासुदेवचिकुरं कुटिल निबद्धम् नानासुगन्धिकुसुमैः
स्वजनादरेण । दीर्घं रमाहृदयगाशमने धुनंतं
ध्यायेऽम्बुवाहरुचिरं हृदयाब्जमध्ये ।२५
मेघाकारं सोमसूर्यप्रकाशं सुभ्रून्नसं चक्रचापैक
मानम् । लोकातीतं पुण्डरीकायताक्षं विद्युच्चैल-
ञ्चाश्रयेऽहं त्वपूर्वम् २६।
दीनं हीनं सेवया वेदवत्त्या पास्तपैः पूरितं मे
शरीरम् । लोभाक्रान्तं शोकमोहाधिविद्धं कृपा
दृष्ट्या पाहि मां वासुदेव ।२७

जिन कुटिल केशों में सुगंधित पुष्प गूँथ कर स्वजनों ने वेणी बनाई तथा जिन चंचल केशों के दर्शन से लक्ष्मीजी का मन शान्त होता है, उन नील मेघ जैसे दीर्घ एवं मनोहर केशों का मैं हृदय में ध्यान करता हूँ ।२५। मेघवर्ण वाले चन्द्रमा और सूर्य के समान प्रकाशित, इन्द्र-धनुष के समान भौंह वाले, विद्युत जैसे समुज्ज्वल वस्त्र धारण करने वाले, लोकातीत, पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णु की मैं शरण लेता हूँ ।२६। मैं अत्यन्त दीन, वेदोक्त सेवा से हीन और पाप-ताप युक्त देह वाला हूँ । मैं लोभ, शोक, मोह और मानसिक व्यथा से व्यथित हूँ । हे वासुदेव ! अपनी कृपा दृष्टि द्वारा मेरी रक्षा कीजिये ।२७।

ये भक्त्याद्या ध्यायमानां मनोज्ञां व्यक्ति विष्णोः

षोडशश्लोकपुष्पैः । स्तुत्वा नत्वा पूजयित्वा विधिज्ञाः
शुद्धा मुक्ता ब्रह्मसौख्यं प्रयान्ति ।२८।
पद्मोरितमिदं पुण्यं शिवेन परिभाषितम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्यनं दरम् ।२९।
पठन्ति ये महाभागास्ते मुच्यन्तेंऽहसोऽखिलात्
धर्म्मार्थकाममोक्षाणां परत्रेह फलप्रदम् ।३०।

इस विधि को जानकर जो मनुष्य भक्ति भाव से भगवान् विष्णु के इस रूप का ध्यान करके षोडश श्लोक रूपी पुष्पों से स्तुति और नमन करके पूजा करते हैं, वह शुद्ध और मुक्त होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त होते हैं ।२८। शिवोक्त यह स्तोत्र, जिसे पद्मा ने कहा है, अत्यन्त पुण्य-मय है तथा धन, यश, आयुष्य, स्वर्ग एवं मंगल का देने वाला है ।२९। यह स्तोत्र इहलोक और परलोक में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप चारों पदार्थों का दाता है । इसका पाठ करने वाले महाभाग पुरुष सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं ।

—*—

द्वितीयांश—

प्रथम अध्याय

इति पद्मावचः श्रुत्वा कीरो धीरं सतां मतः
कल्किदूतः सखीमध्ये स्थितां पद्मामथाब्रवीत् ।१।
वद पद्मे साङ्गपूजां हरेरद्भुतकर्म्मणः ।
यामास्थाय विधानेन चरामि भुवनत्रयम् ।२।
एवं पादादि केशान्तं ध्यात्वा तं जगदीश्वरम् ।
पूर्णात्मा देशिको मूलं मन्त्रं जपति मन्त्रवित् ।३।
जपादनन्तरं दण्ड-प्रणतिं मतिमांश्चरेत् ।
विष्वक्सेनादि कानान्तु दत्वा विष्णुनिवेदितम् ।४।
तत उद्वास्य हृदये स्नापयेन्मनसा सह ।
नृत्यन्गायन्हरेर्नाम तं पश्यन्सर्वतः स्थितम् ।५।

सूत जी बोले—पद्मा के वचन सुन कर सत्य मत वाले धीर एवं कल्कि-दूत शुक ने सखियों के मध्य बैठी हुई पद्मा से कहा ।१। हे पद्मे ! अद्भुत कर्म वाले भगवान विष्णु की पूजा का सांगोपांग वर्णन करो। क्योंकि मैं उसका विधिवत् अनुष्ठान करके तीनों लोकों में विचरण करूँगा ।२। पद्मा बोली—इस प्रकार चरणों से केश पर्यन्त भगवान विष्णु का ध्यान करके मंत्र के ज्ञाता को मूल मन्त्र का जप करना चाहिए ।३। जप के पश्चात् भगवान् को दण्डवत् प्रणाम करे। फिर विष्वक्सेन आदि को पाद्य, अर्घ्य नैवेद्य आदि समर्पित करके भगवान् को निवेदन किये गये वस्त्र को धारण कर विष्णु का स्मरण करता हुआ नृत्य-गान और हरिनाम का कीर्तन करे ।४-५।

ततः शेषं मस्तकेन कृत्वा नैवेद्यभुग्भवेत् ।
इत्येतत्कथितं कीर ! कमलानाथसेवनम ।६।
सकामनां कामपूरणकामामृतदायकम् ।
श्रोत्रानन्दकरं देव-गन्धर्व्व-नर-हृत्प्रियम् ।७।
समीरितं श्रुतंसाध्वि भगवद्भक्तिलक्षणम् ।
त्वत्प्रसादात्पापिनो मे कीरस्य भुवि मुक्तिदम् ।८।
किन्तु त्वां काञ्चनमयीं प्रतिमां रत्नभूषिताम् ।
सजीवामिव पश्यामि दुर्लभां रूपिणीं श्रियम् ।९।
नान्यां पश्यामि सदृशीं रूपशीलगुणैस्तव ।
नान्यो योग्यो गुणी भर्त्ता भुवनेऽपि न दृश्यते ।१०।

फिर भगवान् का निर्माल्य शेष मस्तक पर धारण करे और नैवेद्य ग्रहण करे। हे शुक ! कमलानाथ की सेवा का यह विधान मैंने तुमसे कह दिया ।६। इस प्रकार की पूजा से कामना वालों की कामना पूर्ण होती और कामना न करने वाले को मोक्ष मिलता है। यह कथा देवता, गन्धर्व और मनुष्य सभी के श्रोत्रों को आनन्द देने वाली है ।७। शुक बोला—हे साध्वी ! तुमने मुझ पापिष्ठ तोते को भी मोक्ष देने वाली हरि-भक्ति की विधि कही है, उसे तुम्हारी कृपा से मैंने भली प्रकार सुना है ।८। परन्तु मैं तुम्हें रत्नालंकारों से विभूषिता, स्वर्णमयी प्रतिमा के समान तीनों लोकों में दुर्लभ साक्षात् लक्ष्मी रूप में देख रहा हूँ ।९। संसार में तुम्हारे समान रूप, शील और गुणमयी अन्य नारी मुझे दिखाई नहीं देती तथा तुम्हारे योग्य कोई अन्य गुणवान् भर्त्ता भी मुझे लोक में दिखाई नहीं देता ।१०।

किन्तु पारे समुद्रस्य परमाश्चर्यरूपवान् ।
गुणवानीश्वरः साक्षात्कश्चिद्दृष्टोऽतिमानुषः ।११।
न हि धातृकृतं मन्ये शरीरं सर्व सौभगम् ।
यस्य श्रीवासुदेवस्य नान्तरं ध्यानयोगतः ।१२।

त्वया ध्यातं तु यद्रूपं विष्णोरमिततेजसः ।
तत्साक्षात्कृतमित्येव न तत्र कियदन्तरम् ।१३।
ब्रूहि तन्मम किं कुत्र जातः कीर परावरम् ।
जानासि तत्कृतं कर्म्म विस्तरेणात्रवर्णय ।१४।
वृक्षादागच्छ पूजां ते करोमि विधिबोधिताम् ।
बीजपूरफलाहारं कुरु साधु पयः पिब ।१५।

किन्तु, समुद्र के उस पार एक परम आश्चर्यमय रूप वाला, गुणी, अलौकिक एवं साक्षात् ईश्वर स्वरूप मनुष्य मुझे दिखाई दिया है ।११। उसका सर्व सौन्दर्यमय देह ब्रह्मा द्वारा रचित प्रतीत नहीं होता । ध्यान-योग से देखें तो उसमें और भगवान वासुदेव में कुछ भी अन्तर नहीं मिलेगा ।१२। हे पद्मे ! तुम भगवान् विष्णु के जिस अमित तेजमय स्वरूप का ध्यान करती हो, उस रूप में और उस मनुष्य के रूप में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता ।१३। पद्मा ने कहा—हे शुक ! तुमने अभी क्या कहा है ? उस बात को पुनः कहो । उन्होंने अवतार लिया है ? यदि तुम उनका पूर्ण वृतान्त जानते हो तो मुझे विस्तार पूर्वक सुनाओ ।१४। तुम वृक्ष से उतर आओ, मैं विधिवत् तुम्हारा सत्कार करूँगी । तुम बीजपूर फलों का भक्षण और दुग्ध का पान करो ।१५।

तव चंचुयुगं पद्मरागादरुणमुज्ज्वलम् ।
रत्नसंघट्टितमहं करोमि मनसः प्रियम् ।१६।
कन्धरं सूर्यकान्तेन मणिना स्वर्णवट्टिना ।
करोम्याच्छादनं चारु-मुक्ताभिः पक्षति वव ।१७।
पतत्र कुंकुमेनांगं सौरभेणातिचित्रितम् ।
करोमि नयनानन्ददायकं रूपमीदृशम् ।१८।
पुच्छमच्छमणिव्रात-घर्घरेणातिशब्दितम् ।
पादयोर्नूपुरालाप-लापिनं त्वां करोम्यहम् ।१९।
तवामृतकथाव्रातत्यक्ताधि शाधि मामिह ।

सखीभि: संगीताभिस्ते किं करिष्यामि तद्वद ।२०।

मैं तुम्हारी चोंच को पद्मरागमणि और रत्नों से मंडित करा कर उन्हें मनोमोहक अरुण वर्ण की और दीप्तिमयी करादूँगी ।१६। तुम्हारे कंठ में सूर्यकान्त मणि जटित स्वर्ण पट्टिका बाँध कर दोनों पंखों को मोतियों से सजाऊँगी ।१७। तुम्हारे पंख और शरीर को कुंकुम से चर्चित करके ऐसा सुशोभित करूँगी कि सब तुम्हें देखते ही अत्यन्त आनन्दित हो जाँय ।१८। तुम्हारी पूँछ को स्वच्छ मणि से गूँथ दूँगी, जिससे तुम्हारे चलने पर सुन्दर घर्घर शब्द सुनाई देगा । तुम्हारे पाँवों में नूपुर बाँध दूँगी, जिनसे सुमधुर ध्वनि निकलेगी ।१६। तुम्हारा कथामृत सुनकर ही मेरे मन की व्यथा मिट गई । मुझे बताओ कि मुझे क्या करना है ? सखियों के सहित मैं तुम्हारी परिचर्या करूँगी ।२०।

इति पद्मावच: श्रुत्वा तदन्तिकमुपागत: ।
कीरो धीर: प्रसन्नात्मा प्रवक्तुमुपचक्रमे ।२१।
ब्रह्मणा प्रार्थित: श्रीशो महाकारुणिको वभौ ।
शंभले विष्णुयशसो गृहे धर्म-रिरक्षिषु: ।२२।
चतुर्भिर्भ्रातृभिर्ज्ञाति-गात्रजै: परिवारित: ।
कृतोपनयनो वेदमधीत्य रामसन्निधौ ।२३।
धनुर्वेदञ्च गान्धर्वं शिवादश्वमसिं शुकम्
कवचञ्च वर लब्धा शम्भलं पुनरागत: ।२४।
विशाखयूपभूपालं प्राप्य शिक्षाविशेषत: ।
धर्मानाख्याय मतिमान् अधर्मांश्च निराकरोत् ।२५।

पद्मा के वचन सुन कर हर्षित हुआ शुक पद्मा के पास जा पहुँचा और श्रेष्ठ प्रसंग करने लगा ।२१। शुक बोला—भगवान् लक्ष्मीपति ने धर्म संस्थापन-हेतु ब्रह्माजी द्वारा प्रार्थना करने पर शभल ग्राम निवासी विष्णुयश के यहाँ अवतार लिया है ।२२। वे चार भाई अपने गोत्र एवं परिवार वालों के साथ स्थित हैं, उपनयन संस्कार होने

के बाद उन्होंने परशुरामजी से वेद की शिक्षा प्राप्त की।२३। फिर उन्होंने धनुर्वेद और गांधर्व वेद की शिक्षा ली और शिवजी से अश्व, असि, शुक, कवच और वरदान पाकर शम्भल ग्राम में अपने घर लौटे।२४। फिर उन कल्कि भगवान् से विशाखयू राजा ने भेंट की, तब उन्होंने अपने धर्माख्यान द्वारा राजा की अधर्मयुक्त शंकाओं का निराकरण किया।२५।

इति पद्मा तदाख्यानं निशम्य मुदितानना ।
प्रस्थापयामास शुकं कल्केरानयनादृता ।२६।
भूषयित्वा स्वर्णरत्नैस्तमुवाच कृताञ्जलिः ।२७।
निवेदितं तु जानासि किमन्यत्कथयाम्यहम् ।
स्त्रीभावभयभीतात्मा यदि नायाति स प्रभुः ।२८।
तथापि मे कर्मदोषात् प्रणतिं कथयिष्यसि ।
शिवेन यो वरो दत्तः स मे शापोऽभवत्किल ।२९।
पुंसा मद्दर्शनेनापि स्त्रीभावं कमतः शुक ।
श्रुत्वेति पद्मामामन्त्र्य प्रणम्य च पुनः पुनः ।३०।

इस प्रसंग को सुन कर पद्मा बड़ी प्रसन्न हुई और उसने कल्कि भगवान् को आदरपूर्वक वहाँ लिवा लाने उद्देश्य से शुक को भेजा।२६। पद्मा ने शुक को स्वर्ण एवं रत्नों से सुसज्जित किया और हाथ जोड़ कर कहने लगी।२७। पद्मा बोली—मैं जो कुछ निवेदन करना चाहती हूं, उसे तुम भले प्रकार जानते हो, तो फिर अधिक क्या कहूँ? मैं स्त्री स्वभाव-वश भयभीत हो रही हूँ। यदि प्रभु यहाँ न आवें तो तुम मेरी ओर से प्रणाम करके मेरे कर्म-दोष के विषय में उन्हें बताना और कहना कि मुझे शिवजी से जो वर प्राप्त हुआ है वह इस समय शाप के समान हो रहा है। शिवजी के वरदान के अनुसार जो पुरुष मेरी ओर काम-भाव से देखता है, वही नारी हो जाता है। पद्मा की यह बात सुन कर शुक ने उसे बारम्बार प्रणाम किया।२८-३०।

उड्डीय प्रययौ कीरः शम्भलं कल्किपालितम् ।
तमागमं समाकर्ण्य कल्किः परपुरञ्जयः ।: ३१ ।।
क्रोडे कृत्वा तं ददर्श स्वर्णरत्नविभूषितम् ।
सानन्द परमानन्ददायकं प्राह तं तदा ।। ३२ ।।
कल्किः परमतेजस्वी परस्मिन्नमलं शुकम् ।
पूजयित्वा करे स्पृष्ट्वा पयःपापेन तर्पयन् ।। ३३
तन्मुखे स्वमुखं दत्वा पप्रच्छ विविधाः कथाः ।
कस्माद्देशाच्चरित्वा त्वं दृष्ट्वापूर्वं किमागतः ।। ३४ ।।
कुत्रोषितः कुतो लब्धं मणिकाञ्चनभूषणम् ।
अहर्निशं त्वन्मिलन वाञ्छितं मम सर्वतः ।। ३५ ।।

फिर वह शुक उड़ कर कल्किजी द्वारा रक्षित शंभल ग्राम में गया शत्रुपुर-विजेता कल्किजी ने उसे आया देख कर शुक को गोद में लेकर उसे स्वर्ण-रत्नों से मंड़ित देखा तो अत्यन्त हर्षित होते हुए बोले ।३१–३२। अत्यन्त तेजस्वी कल्किजी ने शुक का सत्कार करते हुए उसे दुग्ध-पान कराया और उससे सब प्रसंग पूछा—हे शुक ! तुम इस समय किस देश से आरहे हो ? वहाँ तुमने कौन-सी अद्भुत वस्तु देखी है ? ।३३-३४। तुम कहाँ थे ? किसके द्वारा मणियों और स्वर्ण से विभूषित किये गये ? रात दिन मैं तुमसे मिलने के लिए उत्सुक रहा हूँ ।३५।

तवानालोकनेनापि क्षणं मे युगवद्भवेत् ।। ३६ ।।
इति कल्केर्वचः श्रुत्वा पुणितत्र शुको भृशम् ।
कथयामास पद्मायाः; कथाः पूर्वोदिता यथा ।३७।
संवादमात्मनस्तस्या निजालङ्कार धारणम् ।
सर्वं तद्वर्णयामास तस्याः प्रणतिपूर्वकम् ।। ३८ ।।
श्रुत्वेति वचनं कल्किः शुकेन सहितो मुदा ।
जगाम त्वरितोऽश्वेन शिवदत्तेन तन्मनाः ।। ३९ ।।

हे शुक ! मैं जब तुम्हें नहीं देखता, तब मेरा एक क्षण भी युग के समान व्यतीत होता है ।३६। कल्कि की यह बात सुनकर शुक ने हेउ बारम्बार प्रणाम कर पद्मा की पूर्व कथित कथा को कह

सुनाया ।३७। फिर पद्मा के साथ जो संवाद हुआ वह तथा स्वर्ण-मणियों की उपलब्धि आदि सब वृत्तान्त विनम्र होकर शुक ने उन्हें सुनादिया ।३८। कल्किजी ने जैसे ही यह वृत्तान्त सुना, वैसे ही प्रसन्न होते हुए वे शिवदत्त अश्व पर चढ़ कर शुक के साथ चल दिये ।३९।

समुद्रपारममलं सिंहलं जलसंकुलम् ।
नानाविमानवहुलं भास्वरं मणिकाञ्चनैः ॥ ४० ॥
प्रासादसदनाग्रेषु पताकातोरणाकुलम् ।
श्रेणीसभापणाट्टाल-पुरगोपुरमण्डितम् ॥ ४१ ॥
पुरस्त्री-पद्मिनी-पद्मगन्धामोद-द्विरेफिणीम् ।
पुरीं कारुमतीं तत्र ददर्श पुरतः स्थिताम् ॥ ४२ ॥
मराल-जाल-सञ्चाल-विलोल-कमलान्तराम् ।
उन्मीलताब्जमालालिकलिताकुलितं सरः ॥ ४३ ॥
जलकुक्कुटदात्यूह-नादित हंससारसैः ।
ददर्श स्वच्छपथसां लहरीलोलवीजितम् ॥ ४४ ॥

चलते-चलते समुद्र पार पहुंच कर उन्होंने स्वच्छ जल से घिरे हुए, विभिन्न विमानों सेयुक्त, मणियों और स्वर्ण से दमकते हुए, अट्टालिकाओं और भवनों के समक्ष पताकाओं और तोरणों से सजे हुए सभामंडप वाले, दुकानों और गोपुरादि से समन्वित, पद्मिनी नारियों के पद्मगंध से हर्षित मँडराते हुए भ्रमर समूह से युक्त कारुमती सिंहल पुरी को देखा ।४०-४२। जहाँ जलाशयों में हंस-समूह किलोल कर रहे हैं, कमलों पर भ्रमर गुंजार रहे हैं, जलकुक्कुट, दात्यूह, हंस, सारस आदि कलरव कर रहे हैं तथा जल की लोल लहरी के साथ इठलाती वायु प्रवाहित है ।४३-४४।

वनं कदम्बकुद्दाल-शालताला म्रकेसरैः ।
कपित्थाश्वत्थखर्जूरबीजपूरकरंजकैः ॥४५ ॥
पुन्नागपनसैर्नागरङ्गै रज्जुनशिंशपैः ।
क्रमुकैर्नारिकेलैश्च नानावृक्षैश्च शोभितम् ।

वन ददर्श रुचिरं फलपुष्पलावृतम् ।। ४६ ।।
दृष्ट्वा हृष्टतनुः शुकं सकरुणः कल्किः पुरान्ते वने
प्राह प्रीतिकर वचोऽत्र सरसि स्नातव्यमित्यादृतः ।
तच्छ्रुत्वा विनयान्वितः प्रभुमतांया मीति पद्माश्रमं
तत्सन्देशमिह प्रयाणमधुना गत्वा स कीरोऽवदत् ।। ४७ ।।

वन कदम्ब, कुद्दाल, शाल, ताल, आम, केसर, कैथ, अश्वत्थ, खजूर, बीजपूर, करंज, पुन्नाग, पनस, नारंगी, अर्जुन, शिंशपा, क्रमुक, नारियल आदि विविध प्रकार के वृक्षों से सुशोभित और फल, पुष्प, पत्रादि से परिपूर्ण उस स्थान को कल्किजी ने देखा।४५-४६। यह सब देखते हुए पुरी के समीपस्थ वन में पहुंच कर पुलकित देह हुए कल्किजी ने आदर सहित शुक से कहा—'इस सरोवर में स्नान करने की इच्छा है' । यह सुनकर शुक ने विनय पूर्वक कहा—अच्छा, अब मैं भी पद्मा के निवास स्थान पर जाता हूँ । यह कह कर शुक पद्मा के पास गया और उससे कल्कि भगवान् के आगमन का प्रसंग कह दिया ।४७।

—*—

द्वितीय अध्याय

कल्किः सरोवराभ्यासे जलाहरणवर्त्मनि ।
स्वच्छस्फटिकसोपाने प्रवालाचितवेदिके ।१।
सरोजसौरभव्यग्रभ्रमद्भ्रमरनादिते ।
कदम्बपालपत्रालि-वारितादित्यदर्शने ।२।
समुवासासने चित्रे सदश्वेनावतारितः ।
कल्किः प्रस्थापयामास शुकं पद्माश्रमंमुदा ।३।
स नागेश्वरमध्यस्थः शुको गत्वा ददर्श ताम् ।
हर्म्यस्थां विसिनीपत्रशायिनीं सखीभिवृताम् त ।४।।
निश्वासवाततापेन म्लायतीं वदनाम्बुजम् ।
उत्क्षिपन्तीं सखीदत्तकमलचन्दनोक्षितम् ।।५।।

सूतजी बोले—कल्किजी ने अश्व से उतर कर सरोवर के समीप वाले जल लाने के मार्ग में प्रवालों से युक्त, कमल की सुगंध से व्यथित, भ्रमर समूह द्वारा निनादित, उज्ज्वल स्फटिक मणि निर्मित सोपान पर स्थित एवं कदम्ब के वृक्षों की नवीन पत्तियों से स्पर्श करती हुई सूर्य किरणों से आच्छादित चबूतरे पर बैठ कर उन्होंने शुक को पद्मा के निवास स्थान पर भेजा ।१-३। वहाँ पहुँच कर वह शुक नागकेशर के वृक्ष पर जा बैठा और उसने अटारी के ऊपर पत्तों की शय्या बनाकर शयन करने वाली पद्मा को सखियों के सहित देखा ।४। उस समय उष्ण वायु के ताप से मलीन मुख हुई पद्मा सखी द्वारा प्रदत्त

चंदन चर्चित कमल-पत्र को हिलाती हुई हवा कर रही थी ।५।

रेवावारिपरिस्नात परागास्यं समागतम् ।
धृतनीरं रसगतं निन्दन्तीं पवनप्रियम् ।।६।।
शुकः सकरुणः साधु-वचनैस्तामतोषयत् ।
सा, त्वमेह्यहि,तेस्वस्ति स्वागत? स्वस्ति मे शुभे! ।७।
गते त्वय्यतिव्यग्राहं शान्तिस्तेऽस्तु रसायनात् ।
रसायनं दुर्लभं मे, सुलभं ते शिवाश्रमे ।८।
क्व मे भाग्यविहीनाया इहैव वरवर्णिनि ।
देवि! तं सरसस्तीरे प्रतिष्ठाप्यागता वयम् ।९।

परागमय जलगर्भ से सरस हुआ प्रिय पवन उस समय पद्मा के द्वारा निन्दा को प्राप्त हो रहा था ।६। तभी शुक ने करुणामय सुन्दर वचन कह कर पद्मा को आश्वासन दिया । जिसे सुन कर पद्मा बोली—तुम्हारा स्वागत है । यहाँ आओ, तुम्हारा मंगल हो । शुक बोला—हे शुभे ! मेरा सर्व प्रकार से मंगल ही है ।७। पद्मा बोली—हे शुक ! तुम्हारे जाने से मैं अत्यन्त व्यग्र रहीं हूँ । शुक ने कहा—तुम्हारे सब दुःख ताप रसायन के द्वारा शान्त हो जाँयगे । पद्मा ने कहा—मेरे लिए तो रसायन भी दुर्लभ है । शुक ने कहा— हे शिवजी की शिष्ये ! रसायन तुम्हारे लिए सुलभ ही है ।८। पद्मा बोली—मुझ भाग्यहीना की कामना किस प्रकार और कहाँ पूर्ण होगी ? शुक बोला–हे वरवर्णिनि ! तुम्हारी अभिलाषा यहीं पूर्ण होगी । मैं उन्हे सरोवर के तट पर विराजमान करके तुम्हारे पास उपस्थित हुआ हूँ ।९।

एवमन्योन्यसस्वाद-मुदितात्ममनोरथे ।
मुखं मुखेन नयनं नयने साद्दता ददौ ।१०।
विमलामालिनी लोला कमला कामकन्दला ।
विलासिनी चारुमती कुमुदेत्यष्ट नायिकाः ।११।
सख्य एता मतास्ताभिर्जलक्रोडार्थमुद्यताः ।
पद्मा प्राह, सरस्तीरमायान्तु सा मया स्त्रियः ।१२।

इत्याख्यायासु शिबिकामारुह्य परिवारिता।
सखीभिश्चारुवेशाभिर्भूत्वा स्वान्तःपुराद्बहिः।
प्रययौ त्वरितं द्रष्टुं भैष्मी यदुपतिं यथा ।१३।
जना पुमांसः पथि ये पुरस्थाः प्रदुद्रुवुः स्त्रीत्व-
भयाद्दिगन्तरम्। शृङ्गाटके वा विपणि स्थिता
ये निजाङ्गनास्थापितपुण्यकार्य्याः ।१४।
निवारितां तां शिबिकां वहन्त्यः नार्य्योऽतिमत्ता
बलवत्तराश्च। पद्मा शुकोक्त्या तदुपर्य्युपस्था
जगाम ताभिः परिवारिताभिः ।१५।

इस प्रकार परस्पर सम्वाद होने पर पद्मा अत्यन्त हर्षित हुई वह उसके मुख के समक्ष मुख, नेत्र के समक्ष नेत्र करके उसे आनन्द पूर्वक देखने लगी ।१०। उसकी आठ नायिका सखियाँ है—बिमला, मालिनी, लोला, कमला, कामकन्दला, विलासिनी, चारुमती और कुमुदा। उन सखियों सहित जल-क्रीडा के लिए तत्पर होकर पद्मा उनसे बोली कि यह सखियाँ मेरे साथ सरोवर के तट पर चलें ।११-१२। यह कह कर पद्मा पालकी पर आरूढ़ होकर सखियों सहित अन्तःपुर से चल पड़ी। कृष्ण के दर्शनार्थ जाती हुइ रुक्मिणी के समान ही कल्कि भगवान् के दर्शन के लिए पद्मा ने भी शीघ्रता पूर्वक प्रस्थान किया ।१३। पद्मा जिस मार्ग से जा रही थी, उस मार्ग में स्थित पुरुष उसे देखते ही कहीं स्त्री न बन जांय इस आशंका से इधर-उधर भाग गये। उन भागने वालों को पत्नियाँ उनके निरापद रहने के लिए पुण्य कर्मों का अनुष्ठान करने लगीं ।१४। इस प्रकार मार्ग को पुरुषों से रहित देख कर शक्ति–मती स्त्रियाँ पालकी को स्वच्छन्दता सेवहन करने लगीं - शुक के कथना-नुसार पालकी पर चढ़ी हुई पद्मा को घेर कर उसकी सखियाँ भी साथ चल रही थीं ।१५।

सरोजलं सारसलंसनादितंप्रफुल्लपद्मोद्भवरेणुवासितम्।
चेरुर्विगाह्याशु सुधाकरालसाः कुमुद्वतोनामुदयाशोभनाः ।१६।

तासां मुखामोदमदान्धभृङ्गा विहाय पद्मानि
मुखारविन्दे। लग्नाः सुगन्धाधिकमाकलय्य
निवारिताश्चापि न तत्यजुस्ते ।१७।
हासोपहासैः सरसप्रकाशैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च जले
विहारैः। करग्रहैस्ता जलयोधनार्त्ताश्चिकर्ष
ताभिर्वनिताभिरुच्चैः १८।
सा कामातप्ता मनसा शुकोक्तिं विविच्य पद्मा
सखिभिः समेता। जलात्समुत्थाय महार्हभूषा
जगाम निर्दिष्टकदम्बषण्डम् ।१९।
सुखे शयानं मणिवेदिकागतं कल्किं पुरस्तादतिसू-
र्य्यवर्च्चसम्। महामणिव्रातविभूषणाचितं शुकेन सार्द्धं
तमुदेक्षतेशम् २०।

फिर सारस, हंस आदि के मधुर निनाद और पद्म-रेणु से सुगंधित सरोवर के जल में स्नान करके वह चन्द्रवदनी स्त्रियाँ कुमुदनी युक्त चन्द्रमा की आशा में विचरण करने लगी। उनके देह की कमल-गंध से मत्त हुए भ्रमर उनके मुखों पर गुंजारने लगे। स्त्रियों द्वारा उड़ाये जाने पर भी वे भ्रमर उन पद्मगंधाओं के मुखों से हटते ही नहीं थे।१६-१७। रसमय हास-परिहास, वाद्य, नृत्य तथा परस्पर हाथ पकड़े हुए विविध प्रकार का जलविहार करती हुई पद्मा ने सखियों के मन को और सखियों ने पद्मा के मन को हर लिया।१८। फिर सकाम भाव वाली पद्मा शुक के वचनों का स्मरण करके सखियों सहित जल से बाहर निकली और वस्त्राभूषणों से विभूषित होकर उस बताये हुए महान् कदम्ब के वृक्ष के नीचे गई।१९। वहाँ उसने मणिमय चबू-तरे पर महामणियों से विभूषित, सूर्य के तेज से भी अधिक तेजोमय कल्किजी को शुक के सहित सुखपूर्वक शयन करते देखा।२०।

तमालनीलं कमलापतिं प्रभुं पीताम्बरं चारुसरोजलोचनम्।
आजानुबाहुं पृथुपीनवक्षसं श्रीवत्ससत्कौस्तुभकान्तिराजितम्

तदद्भुतंरूपमवेक्ष्य पद्मा संस्तम्भितावि‌स्मृतसत्क्रियार्था
सुप्तं तु संबोधयितुं प्रवृत्तं निवारयामाविशङ्कितात्मा ।२२
कदाचिदेषोऽतिबलोऽतिरूपी मद्दर्शनात्स्त्रीत्वमुपैति
साक्षात् । तदात्र किं मे भविता भवस्य वरेण शापप्रति-
मेन लोके ।२३।
चराचरात्मा जगतामधीश:प्रबोधितस्तद्धृदयं विविच्य ।
ददर्श पद्मां प्रियरूपशोभां यथा रमां श्रीमधुसूदनाग्रे ।२४।
संवीक्ष्य मायामिव मोहिनीं तां जगाद कामाकुलित. स
कल्कि: । सखीभिरीशां समुपागतां तां कटाक्षविक्षेपवि-
नामितास्यम् ।२५।

उसने देखा कि तमाल जैसे नीलवर्ण वाले, पीताम्बरधारी, कमल जैसे नेत्र वाले, लम्बी भुजाओं, विशाल वक्ष और श्रीवत्स से चिन्हित हृदय वाले, कौस्तुभ मणि की कान्ति से प्रकाशित भगवान् कल्कि विराजमान हैं ।२१। उस अद्भुत रूप को देखकर पद्मा ऐसी स्तम्भित हुई कि उनका सत्कार भी करना भूल गई और उसने शंका के कारण उन्हें जगाना उचित नहीं समझा ।२२। उसने सोचा कि कहीं यह महा-बली अत्यन्त रूपवान् पुरुष मुझे देखकर स्त्री न बन जाय ? यदि ऐसा हो गया तो शिवजी का वरदान यहाँ भी अभिशाप हो जायगा ।२३। फिर पद्मा के आन्तरिक अभिप्राय को जान कर चराचर के आत्मा एव विश्वेश्वर कल्कि भगवान जाग पड़े । उन्होंने देखा कि लक्ष्मीजी के समान महान् रूपवती पद्मा सामने खड़ी है ।२४। सखियों के सहित आई हुई, अपलक देखती हुई पद्मा को देखकर उस मोह को उत्पन्न करने वाली पद्मा से कल्किजी सकाम-भाव पूर्वक बोले ।२५।

इहैहि सुस्वागतमस्तु भाग्यात्समागमस्ते कुशलाय मे स्यात् ।
तवाननेन्दु: किल कामपूरतापापनोदाय सुखाय कान्ते! २६।

लोलाक्षि ! लावण्य-रसामृतं ते कामहिदष्टस्य विधातुरस्य ।
तनोतु शान्तिंसुकृतेन कृत्या सुदुर्लभां जीवनमाश्रितस्य २७।।
बाहूनवैतौ कुरुतां मनोज्ञौ हृदि स्थितं काममुदन्नवासम् ।
चार्वायतौ चारुनखांकुशेन द्विपं यथा सादिविदीर्णकुम्भम् २८
पादाम्बुजं तेऽङ्गलिपत्रचित्रितं वरं मरालक्वणनूपुरा-
वृतम् । कायाहिदष्टस्य ममास्तु शान्तये हृदि स्थितो प-
द्मघनेसुशोभने ।।२६।।
श्रुत्वैतद्वचनामृतं कयिकुलध्वंसस्य कल्केरलं
दृष्ट्वा सत्पुरुषत्वमस्य मुदिता पद्मा सखीभिवृता ।
कान्तं क्लान्तमनाः कृताञ्जलिपुटा प्रोवाचतत्सदरं
धीरं धीरपुरस्कृतं निजपतिं नत्वा नमत्कन्धरा ।३०।

हे कान्ते ! तुम मेरे पास आओ, तुम्हारे मिलने से मेरा मंगल हुआ है । तुम्हारे चन्द्रमुख को देखकर मेरा संताप मिट गया ।२६। हे चंचलाक्षि ! मुझ संसार के रचने वाले को इस समय वासना रूपी सर्प ने दंशित किया है । तुम्हारे लावण्य-रस रूपी अमृत के पान से उसकी शान्ति संभव है । यह शान्ति सुकृत्यों से भी दुर्लभ और जीवन के लिए आश्रय स्वरूप होगी ।२७। जैसे महावत अपने अंकुश से गजराज का कुम्भ भेदन करता है, ठीक वैसे ही तुम्हारी यह सुरम्य भुजाएँ नख रूप अंकुश के द्वारा मेरे हृदयस्थ कामरूप हाथी के कुम्भ का भेदन करूँ ।२८। मेरे हृदयोदधि के स्वच्छ नीर में स्थित अंगुलि रूपी कमल-पत्र द्वारा चित्रित हंस जैसा शब्द करने वाले एवं नूपुरों से सुशोभित मंजु घोष करने वाले पादाम्बुज के द्वारा काम-जनित विष का शमन हो ।२६। कलिकुल विध्वंसक कल्किजी के वचनामृत सुनकर और उन्हें सत्पुरुषत्व से युक्त जान कर पद्मा अत्यन्त हर्षित हुई । फिर वह क्लान्त मन हुई पद्मा सखियों सहित मस्तक झुकाकर अपने पति कल्कि भगवान् से मंद स्वर में कहने लगी ।३०।

द्वितीयांश—

तृतीय अध्याय

सा पद्मातां हीर मत्वा प्रेमगद्गदभाषिणी ।
तुष्टाव व्रीडिता देवी करुणावरुणालयम् ।१।
प्रसीद जगतां नाथ ! धर्म्मन् ! रमापते ! ।
विदितोऽसि विशुद्धात्मन् ! वशगां त्राहि मां प्रभो ! ।२।
धन्याहं कृतपुण्याहं तपोदानजपव्रतैः ।
त्वां प्रतोष्य दुराराध्यं लब्धं तव पदाम्बुजम् ।।३।।
आज्ञां कुरु पदाम्भोजं तव संस्पृश्य शोभनम् ।
भवनं यामि राजानमाख्यातुं स्वागतं तव ।४।
इति पद्मा रूपसद्मा गत्वा स्वपितरं नृपम् ।
वाचागमनमं कल्केर्विष्णोरंशस्य दौत्यकैः ।।५।।

सूतजी बोले—प्रेम से गद्गद् होकर भाषण करने वाली पद्मा ने कल्किजी को भगवान् विष्णु के रूप में जान कर उनकी स्तुति की ।१। हे जगदीश्वर ! हे धर्मवर्मन् ! हे लक्ष्मीपते ! मैं आपको जान गई हूँ । अब आप मुझ शरणागता की रक्षा कीजिए ।२। मैं धन्य हो गई प्रभो ! जो अपने पुण्यकर्मों अर्थात् तप, दान, जप और व्रतादि के सहित आपकी आराधना करके आपके दुष्प्राप्य चरण कमलों को प्राप्त कर सकी ।३। अब आप मुझे आज्ञा दें कि मैं आपके पदाम्बुजों का स्पर्श करके अपने घर जाऊँ और महाराज से आपके आगमन की बात सूचित करूँ ।।४।। यह कह कर श्रेष्ठ रूप वाली पद्मा ने अपने पिता राजा

वृहद्रथ के पास जाकर भगवान कल्कि के आगमन का वृत्तान्त निवेदन किया ।।५।।

सखीमुखेन पद्मायाः पाणिग्रहणकाम्यया ।
हरेरागमनंश्रुत्वा सहर्षोऽभूद्बृहद्रथः ।६।
पुरोधसा ब्राह्मणैश्च पात्रैः सुमङ्गलैः ।
वाद्यताण्डवगीतैश्च पूजायोजनपाणिभिः ।७।
जगामानयितुं कल्किं साद्धं निजजनैः प्रभुः ।
मण्डयित्वा कारुमतीं पताकास्वर्णतोरणैः ।८।
ततो जलाशयाभ्यासं गत्वा विष्णुयशःसुतम् ।
मणिवेदिकयासीनं भुवनैकगतिं पतिम् ।९।
ग्रनाघनोपरि यथा शोभन्ते रुचीराण्यहो ।
विद्युदिन्द्रायुधादीनि तथैव भूषणान्युत ।।१०।।

राजा वृहद्रथ ने पद्मा की सखी के मुख से पद्मा के पाणिग्रहण की कामना से भगवान् का आगमन सुन कर हर्ष व्यक्त किया ।६। फिर उसने पुरोहित, ब्राह्मण, परिवारीजन, मित्र, बन्धु आदि को साथ लेकर मंगल गीत, वाद्य, नृत्य आदि करते हुए कल्कि भगवान को लाने के लिए प्रस्थान किया । स्वर्ण के तोरण और पताकादि से वह कारुमती नगरी अत्यन्त शोभा पाने लगी ।७-८। राजा बृहद्रथ ने जलाशय पर पहुँच कर देखा कि विष्णुयश के पुत्र कल्किजी मणिमय वेदी पर स्थित हैं ।९। जैसे घनघोर मेघ पर बिजली अथवा इन्द्र-धनुष आदि अत्यन्त शोभा पाते हैं, वैसे ही कल्किजी के कृष्णांग पर भूषण दमक रहे हैं ।१०।

शरीरे पीतवासाग्रघोरभासा विभूषितम् ।
रूपलावण्यसदने मदनोद्यमनाशने ।।११।।
ददर्शाग्रतो राजा रूपशीलगुणाकरम् ।
साश्रुः सपुलकः श्रीशं दृष्ट्वा साधु समर्चयत ।१२।
ज्ञानागोचरमेतन्मे तवागमनमीश्वर ! ।

यथा मान्धातृपुत्रस्य यदुनाथेन कानने ।१३।
इत्युक्त्वा तं पूजयित्वा समानीय निजाश्रमे ।
हर्म्यप्रासादसंबाधे स्थापयित्वा ददौ सुताम् ।१४।
पद्मां पद्म पलाशाक्षीं पद्मनेत्राय पद्मनीम् ।
पद्मजादेशतः पद्नाभायादाद्यथाक्रमम् ।१५।

उन रूप-लावण्य के घर, कामदेव के उद्यम को नष्ट करने वाले, देह के अग्रभाग में पीताम्बर धारण किये हुए तया रूप, शील और गुण की खान लक्ष्मीपति कल्किजी को देख कर अश्रुयुक्त पुलकित देह के सहित राजा ने उनका विधि पूर्वक पूजन किया ।११-१२। राजा बोला—हे ईश्वर ! जैसे यदुनाथ वन में जाकर मान्धाता के पुत्र से मिले थे, वैसे ही आप ज्ञानगोचरातीत का आगमन मेरे लिए हुआ है ।१३। यह कह कर कल्किजी का पूजन करके राजा उन्हें अपने भवन में ले आये और सुसज्जित गृह में टिका कर उन्हें अपनी कन्या का दान कर दिया ।१४। पद्मोत्पन्न ब्रह्माजी के आदेशानुसर पद्मनाभ एवं पद्मलोचन भगवान् कल्कि को पद्म-पत्र जैसे नेत्र वाली पद्मिनी संज्ञक पद्मा का यथाविधि दान किया ।१५ ।

कल्किर्लब्ध्वा प्रियां भार्य्यां सिंहले साधुसत्कृतः ।
समुवास विशेषज्ञः समीक्ष्य द्वीपमुत्तमम् ।१६।
राजानः स्त्रीत्वमापन्नाः पद्मायाः सखितां गताः ।
द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः कल्किं विष्णुं जगत्पतिम् १७।
ताः स्त्रियोऽपि तमालोक्य संस्पृश्यचरणाम्बुजम् ।
पुनः पुंस्त्वं समापन्ना रेवास्नानात्तदाज्ञया ।१८।
पद्माकल्की गौरकृष्णौ विपरीतान्तरावुभौ ।
बहिःस्फुटौ नीलपीत-वासोव्याजेन पश्यतु ।१९।
दृष्ट्वा प्रभावं कल्केस्तु राजानः परमाद्भुतम् ।
प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टुवुः शरणार्थिनः ।२०।

अपनी प्रिय पत्नी को प्राप्त कर साधुजनों से सत्कृत हुए कल्किजी सिंहल द्वीप को श्रेष्ठ स्थान देख कर कुछ दिनों तक वहाँ रहे ।१६। जो राजा स्त्रीत्व को प्राप्त होकर पद्मा की सखी बन गये थे, वे सभी भगवान् कल्कि के दर्शनार्थ वहाँ उपस्थित हुए ।१७। वे सभी स्त्रीत्व को प्राप्त हुए राजागण भगवान् के दर्शन प्राप्त कर उनके चरण स्पर्श करते हुए उनकी आज्ञा से रेवा नदी पर पहुँचे और स्नान करते ही पुरुषत्व को प्राप्त हो गये।१८। पद्मा और कल्कि गौर तथा कृष्ण वर्ण वाले हैं । दोनों विपरीत वर्णों के सम्मिलन से पद्मा के नीलाम्बर और कल्कि के पीताम्बर द्वारा एक बाह्य वर्ण प्रकाशित हुआ और परस्पर समन्वित दिखाई देने लगा ।१९। कल्किजी का अत्यन्त अद्भुत पराक्रम देख कर सभी राजागण उनकी शरण को प्राप्त होकर भक्तिपूर्वक प्रणाम और स्तुति करने लगे ।२०।

जय जय निजमायया कल्पिताशेषकल्पनापरिणाम !
जलाप्लुतलोकत्रयोपकरणमाकलय्य मनुमनिशम्य पूरितमाविजनाविजनाविर्भूतमहामीनशरीर ! त्वं निजकृतधर्म्मसेतुसंरक्षणकृतावतारः ।२१।
पुनरिहदितिज-बल-परिलङ्घित-वासव-सूदनादृत-जितत्रिभुवन पराक्रम-हिरण्याक्षनिधन पृथिव्युद्धरणसंकल्प-भिनिवेशेन धृय-कोलावतारः पाहि नः ।२२।
पुनरिह जलधि-मथनादृत-देवदानवगण-मन्दराचलानयनव्याकुलितानां साहाय्येनादृतचित्तः पर्व्वतोद्धरणामृतप्रासनरचनावतारः-कूर्म्माकारः प्रसीद परेश ! त्वं दाननृपाणाम् ।२३।

हे प्रभो ! आपकी जय हो । आपकी ही कल्पना-शक्ति से संसार विविध प्रकार से कल्पित हुआ है । जब तीनों लोग प्रलय में लीन होगये, तब आपने जनशून्य स्थल में प्रकट हुए थे । आपने ही धर्म-सेतु के संरक्षण-हेतु महामीन (मत्स्य) देह धारण किया था ।२१। जब दनुज-सैन्य

से इन्द्र पराजित होने लगे और त्रैलोक्य-विजयी हिरण्याक्ष इन्द्र को मारने में तत्पर हुआ, तब आपने ही वाराह रूप धारण कर उसका संहार कर डाला। ऐसे आप हमारी रक्षा कीजिये।२२। जब देवता और दैत्य दोनों ही मिल कर समुद्र-मन्थन में तत्पर हुए, तब मंदराचल पर्वत को टिकाने की समस्या उत्पन्न हुई। उस समय आपने कूर्मावतार धारण कर अपनी पीठ पर मन्दराचल को टिका लिया। आपका वह कूर्मावतार देवताओं को सुधा-पान कराने के लिये ही हुआ था। हे परेश! आप ही हम दीन राजाओं की रक्षा कीजिये।२३।

पुनरिह त्रिभुवनजयिनो महाबलपराक्रमस्य हिरण्यकशिपोरर्दितानां देववराणां भयभीतानां कल्याणाय दितिसुतवधप्रेप्सुर्ब्रह्मणो वरदानादवध्यस्य न शस्त्रास्त्ररात्रि दिवास्वर्गमर्त्यपातालतले देवगन्धर्वकिन्नरनरनागैरिति विचिन्त्य नरहरिरूपेण नाखाग्रभिन्नोरुं दष्टवन्तच्छद त्यक्तासुं कृत वानसि।२४।

पुनरिह त्रिजगज्जयिनो बलेः सत्रे शक्रानुजो वटुवामनोदैत्यसंमोहनाय त्रिपदभूमियाच्ञाच्छलेन विश्वकायस्तदुत्सृष्ट-जल-सस्पर्श-विवृद्धमनोऽभिलाषस्तवं भूतले बलेर्दौवारिकत्वमङ्गीकृतमुचितं दानफलम्।२५।

पुनरिह हैहयादिनृपाणाममितबलपराक्रमाणां नानामदोल्लङ्घितमर्य्यादावर्त्मनां निधनाय भृगुवंशजो जामदग्न्यः पितृहोमधेनुहरणप्रवृद्धमन्युवशात्त्रिसप्तकृत्वो निःक्षत्रियां पृथिवीं कृतवानसि परशुरामावतारः।२६।

फिर जब त्रैलोक्य विजयी, महाबली और पराक्रमी हिरण्यककशिपु देवताओं का उत्पीड़न करने लगा, तब आपने भयभीत देवताओं के रक्षार्थ उस दैत्यराज का संहार करने का निश्चय किया। ब्रह्माजी के वर से दैत्य, देवता गन्धर्व, किन्नर, नाग, शस्त्रास्त्र, दिवस, रात्रि, स्वर्ग,

मर्त्यलोक या पाताल लोक में कहीं भी, किसी के द्वारा भी मरने वाला नहीं था। इन सब बातों पर विचार करके आपने नृसिंहावतार धारण किया और जब आपके उस रूप को देख क्रोधित हुआ दैत्य आपसे युद्ध करने लगा, तब आपने अपने नखाग्रों से उसका देह विदीर्ण कर डाला।२४। फिर त्रैलोक्य विजयी राजा बलि के यज्ञ में आपने इन्द्र के लघु भ्राता बन कर वामनावतार धारण कर दानवराज के संमोहनार्थ तीन पद पृथिवी माँग ली। उत्सर्ग के लिये जल छोड़ते ही आपने छलपूर्वक विराट स्वरूप धारण किया। फिर आप त्रैलोक्यदान के फलस्वरूप राजा बलि के द्वारपाल बन गये।२५। फिर जब महाबल-पराक्रम वाले हैहय आदि राजाओं ने धर्म की मर्यादा को लाँघा, तब आपने उनके विनाशार्थ भृगुवंश में परशुराम का अवतार लिया और अपने पिता की होमधेनु के हर लिये जाने पर आपने इक्कीस बार इस पृथिवी को क्षत्रियों से रहित कर दिया।२६।

पुनरिह पुलत्स्यवंशावतंसस्य विश्रवस: पुत्रस्य निशाचरस्य रावणस्य लोकत्रयतापनस्य निधनमुररीकृत्य रविकुलजातदशरथात्मजो विश्वामित्रादस्त्राण्युपलभ्य वने सीताहरणघशात्प्रवृद्धमन्युना अम्बुधिं वानरैर्निबध्य सगणं दशकन्धरं हतवानसि रामावतार: ।२७।

पुनरिह यदुकुल-जलधिकलानिधि: सकलसुरगणसेवितपादारविन्दद्वन्द्व: विविधदानवदैत्यदलनलोकत्रयदुरिततापनो वसुदेवात्मजो रामावतारो बलभद्रस्त्वमसि ।२८।

पुनरिह विधिकृत-वेदधर्म्मानुष्ठान-विहित-नानादर्शनसंघृण: संसारकर्म्मत्यागविधिना ब्रह्माभासविलासचातुरी प्रकृतिविमाननामसम्पादयन् बुद्धावतारस्त्वमसि ।२९।

फिर पुलस्त्यवंशावतंस विश्रवापुत्र रावण ने अपने बल से तीनों लोकों को भय-संतप्त कर दिया, तब आपने उसका विनाश करने के लिये सूर्यवंशी राजा दशरथ के यहाँ अवतार लिया और विश्वामित्र से अस्त्र-

विद्या प्राप्त कर वन-गमन करने और रावण द्वारा सीता का हरण करने पर आपने वानर सेना को साथ लेकर कुल सहित रावण को मार डाला ।२७। फिर आप यदुकुल जलधि-मयङ्क वसुदेवजी के पुत्र रूप श्रीकृष्ण हुए और अनेक दैत्य-दानवों को मार कर तीनों लोकों को पाप-मुक्त किया । इसलिये सभी देवता आपके उन श्रीकृष्ण रूप के चरण कमलों की सेवा में तत्पर हुए । उसी काल में आपने ही बलभद्रजी का भी अवतार धारण किया था ।२८। फिर आपने ब्रह्मा द्वारा निश्चित वेद-धर्म में अनेक बाधाएँ देख कर मिथ्या प्रपंच को नष्ट करने के निमित्त एवं प्राकृतिक विषय की अवमानना न करने के उद्देश्य से बुद्ध का अवतार लिया ।२९।

अधुना कलिकुलनाशावतारो बौद्धपाखण्डम्लेच्छादीनाञ्चवेदधर्म्मसेतुपरिपालनाय कृतावतारः कल्किरूपेणास्मान् स्त्रीत्वनिरयादुद्धृतवानसि तवानुकम्पां किमिह कथयामः ।३०।
क्व ते ब्रह्मादीनामविदितविलासावतरणं
क्व नः कामा वामाकुलितमृगतृष्णार्तमनसाम् ।
सुदुष्प्राप्यं युष्मच्चरण-जलजालोकनमिदं
कृपापारावारः प्रमुदितदृशाश्वासय निजान् ।३१।

अब आप कलिकुल को नष्ट करने तथा बौद्ध पाखण्डियों और म्लेच्छों पर शासन करने के लिये कल्कि अवतार लेकर वेद धर्म रूपी सेतु की रक्षा कर रहे हैं । आपने ही स्त्रीत्व रूपी नरक से हमारा उद्धार किया है । हम आपकी इस कृपा का वर्णन किस प्रकार करें ? ।30। ब्रह्मादि देवता भी आपकी लीला को जानने में समर्थ नहीं हैं । आपको अवतार विषयक कोई कामना नहीं रहती । हम स्त्री के देखते ही काम-बाण के द्वारा जर्जर एवं मृगतृष्णा से संतप्त हृदय वाले विषयी प्राणियों के लिये आपके पदाम्बुजों का दर्शन दुष्प्राप्य था । हे अपार कृपा वाले प्रभो ! हम अनुगामियों की ओर आप एक बार अपना कृपा कटाक्ष करके हमें आश्वासन दीजिये ।३१।

—*—

द्वितीयांश—

चतुर्थ अध्याय

श्रुत्वा नृपाणां भक्तानां वचनं पुरुषोत्तमः ।
ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्र-वर्णानां धर्ममाह यत् ।।१।।
प्रवृत्तानां निवृत्तानां कर्म यत्परिकीर्त्तितम् ।
सर्वं संश्रावयामास वेदानामनुशासनम् ।।२।।
इति कल्केर्वचः श्रुत्वा राजानो विशदाशयाः ।
प्रणिपत्य पुनः प्राहुः पूर्वान्तु गतिमात्मनः ।।३।।
स्त्रीत्वं वाप्यथवा पुंस्त्वं कस्य वा केन वा कृतम् ।
जरा-यौवन-बाल्यादि सुखदुःखादिकं च यत् ।।४।।
कस्मात्कुतो वा कस्मिन् वा किमेतदिति वा विभो ।
अनिर्णीतान्यविदितान्यपि कर्माणि वर्णय ।।५।।

सूतजी बोले—राजाओं के यह वचन सुन कर पुरुष श्रेष्ठ कल्कि-जी ने उनके प्रति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों के धर्म का वर्णन किया ।१। संसार में आसक्त एवं संसार से विरक्त दोनों के ही जो कर्म हैं, उनका वर्णत उन्होंने किया ।२। कल्किजी का उपदेश सुनकर राजाओं के हृदय पवित्र होगये । फिर उन्होंने प्रणाम करके कल्किजी से अपनी पूर्वावस्था के विषय में पूछा ।३। हे प्रभो ! स्त्रीत्व और पुरुषत्व भेद से मनुष्यों की निवृत्ति किस प्रकार होती है ? जरा, यौवन और बाल्यावस्था एवं सुख, दुःखादि के कारण क्या हैं ? इनके अतिरिक्त भी जिन विषयों से हम अनभिज्ञ हैं, उनका भी वर्णन कीजिये ।४-५।

(तदा तदाकर्ण्य कल्किरनन्तं मुनिमस्मरत्) ।

सोऽप्यनन्तो मुनिवरस्तीर्थपादो बृहद्व्रतः ॥६॥
कल्केर्दर्शनतो मुक्तिमाकलय्यागतस्त्वरन् ।
समागत्य पुनः प्राह किं करिष्यामि कुत्र वा ।
यास्यामीति वचः श्रुत्वा कल्किः प्राह हसन्मुनिम् ।७।
कृतं दृष्टं त्वया ज्ञातं सर्वं याह्यनिवर्त्तकम् ।
अदृष्टमकृतश्चेति श्रुत्वा हृष्टमना मुनिः ।८।
गमनायोद्यतं तं तु दृष्ट्वा नृपगणास्ततः ।
कल्किं कमलपत्राक्षं प्रोचुर्विस्मितचेतस ।९।

(यह सुन कर कल्कि जी ने अनन्त मुनि का स्मरण किया) यह जान कर महानव्रती एवं दीर्घ काल से तीर्थ में निवास करने वाले मुनिवर अनन्त, कल्किजी के दर्शन से अपनी मुक्ति संभव समझ कर शीघ्र ही वहाँ आ उपस्थित हुए। उन्होंने भगवान् कल्कि के पास आकर पूछा—मुझे क्या करना है ? कहाँ जाना है ? यह सुन कर कल्कि जी हँस कर मुनि से बोले ।६। हे मुने ! आपने मेरे सब किये हुए कर्म देखे हैं। अदृष्ट को कोई काट नहीं सकता और कर्म के बिना फल भी नहीं मिल सकता। यह सुन कर मुनि को प्रसन्नता हुई ।८। और फिर जब मुनि वहाँ से जाने लगे, तब उन्हें देख कर आश्चर्य चकित हुए राजागण कल्किजी से बोले ।९।

किमनेनापि कथितंत्वया वा किमुतान्युत ।
सर्वं तच्छ्रोतुमिच्छामः कथोपकथनं द्वयोः ।१०।
नृपाणां तद्वचः श्रुत्वा तानाह मधुसूदनः ।
पृच्छतामु मुनिं शान्तं कथोपकथनादृताः ।११।
इतिकल्केर्वचो भूयः श्रुत्वा ते नृपसत्तमाः ।
अनन्तमातुः प्रणताः प्रश्नपारतितीर्षवः ।१२।
मुने ! किमत्र कथनं कल्किना धर्मवर्मणा ।
दुर्बोधः केन वा जातस्तत्त्वं वर्णय न प्रभो ! ।१३।

पुरिकायां पुरि पुरा पिता मे वेदपारगः।
विद्रुमो नाम धर्म्मज्ञः ख्यातः परहिते रतः।१४।
सोमा मम विभो! माता पतिधर्म्मपरायणा।
तयोर्वयः परिणतौ काले षण्डाकृतिस्त्वहम्।१५।

राजाओं ने कहा—हे प्रभो! मुनि ने आपसे क्या कहा और आपने क्या उत्तर दिया? आपका कथोपकथन किस विषय में हुआ था? यह सुनने की हमें इच्छा है।१०। राजाओं की जिज्ञासा सुनकर भगवान् कल्कि ने कहा—हमारे कथोपकथन के विषय में इन शान्त हृदय वाले मुनि से ही प्रश्न करो।११। कल्किजी के वचन सुनकर वे सब श्रेष्ठ राजागण प्रश्न का भेद जानने के लिए मुनि को प्रणाम करके पूछने लगे।१२। राजाओं ने कहा—हे मुने! भगवान् कल्कि से आपका कथोपकथन गूढरूप से क्यों हुआ? हे प्रभो! इसका रहस्य हमें बताइये।१३। मुनि बोले—पूर्वकाल की बात है—पुरिका नाम पुरी में वेदों में पारंगत विद्रुम नामक एक धर्मज्ञ मुनि रहते थे, वही मेरे पिता थे।१४। हे विभो! मेरी माता का नाम सोमा था, उसी पतीव्रता से मेरा जन्म हुआ, परन्तु मैं पुंसत्वहीन था।१५।

संजातः शोकदः पित्रोर्लोकानां निन्दिताकृति।
मामालोक्य पिता क्लीबंदुःखशोक भयाकलः।१६।
त्यक्त्वा गृहं शिववनं गत्वा तुष्टाव शङ्करम्।
संपूज्येशं विधानेन धूपदीपानुलेपनैः।१७।
शिवं शान्तं सर्वलोकैकनाथं भूता-वासं वासुकीकण्ठभूषम्।
जटाजूटाबद्धगङ्गा तरंगवन्दे सान्द्रानन्दसन्दोहदक्षम्।१८।
इत्यादि बहुभिः स्तोत्रैः स्तुतः स शिवदः शिवः।
वृषारूढः प्रसन्नात्मा पितरं प्राह मे वृणु।१९।
विद्रुमो मे पिता प्राह मत्पुंस्त्वं तापतापितः।
हसञ्छिवो ददौ पुंस्त्वं पार्वत्या प्रतिमोदितः।२०।

मुझे इस प्रकार का उत्पन्न हुआ देख कर मेरे माता-पिता को बड़ा दु:ख हुआ। मेरी आकृति निन्दा योग्य थी। यह देख कर दु:ख, शोक और भय से व्याकुल हुए पिताजी शिव वन में जाकर धूप, दीप, गंध आदि से विधिवत् पूजन करके शिवजी को स्तुति करने लगे।१६ १७। उन्होंने कहा—हे शिव! हे शान्त स्वरूप! आप सब लोकों के नाथ और भूतों को आश्रय स्थान हैं। आपके कंठ में वासुकी नाग और जटजाल में गंग-तरंग सुशोभित हैं। आप आनन्द भंडार के दाता शिव को मैं प्रणाम करता हूँ।१८। कल्याण के दाता भगवान् शंकर इस स्तोत्र से प्रसन्न होकर वृषभारूढ़ होकर प्रकट हुए और उन्होंने मेरे पिता को वर मांगने की आज्ञा दी।१६। तब मेरे पिता विद्रुम मुनि ने उनसे कहा—हे नाथ! मेरा पुत्र पुंसत्वहीन है, इससे मैं अत्यन्त दु:खी हूँ। तब शिवजी ने हँस कर मेरे पुरुषत्व युक्त होने का वर दिया और पार्वतीजी ने भी उनकी बात का अनुमोदन किया।२०।

मम पुंस्व वरं लब्ध्वा पितायात: पुनर्गृहम्।
पुरुषं मां समालोक्य सहर्ष: प्रियया सह।२१।
तत: प्रवयसौ तौ तु पितरौ द्वादशाब्दके।
विवाहं मे कारयित्वा बन्धुभिर्मुदमापतु:।२२।
यज्ञरातसुतां पत्नीं मानिनीं रूपशालिनीम्।
प्राप्याहं परितुष्टात्मा गृहस्थ: स्त्रीवशोऽभवम्।२३।
तत: कतिपये काले पितरौ मे मृतौ नृपा:।
पारलौकिककार्य्याणि सुहृद्भिर्ब्राह्मणैर्वृत:।२४।
तयो: कृत्वा विधानेन भोजयित्वा द्विजान्बहून्।
पित्रोर्वियोगतप्तोऽहं विष्णुसेवापरोऽभवम्।२५।

मेरे पुरुष होने का वर प्राप्त कर पिताजी घर लौट आये और तब मुझे पुरुषाकार हुआ देख कर माता के सहित वे बड़े प्रसन्न हुए।२१। फिर जब मैं बारह बर्ष का होगया, तब उन्होंने बन्धु-बान्धवों सहित मोद मनाते हुए मेरा विवाह कर दिया।२२। यज्ञरात की पुत्री को

अपनी भार्या के रूप में प्राप्त करके मैं बड़ा सन्तुष्ट हुआ और गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके उस अत्यन्त रूपवती एवं माननी स्त्री के वशीभूत हो गया ।२३। फिर कुछ काल बीतने पर मेरे माता-पिता मर गये तब मैंने अपने सुहृदों और ब्राह्मणों के साथ उनका परलोक संस्कार किया ।२४। माता-पिता का मृतक संस्कार करके मैंने अनेक ब्राह्मणों को भोजन कराया । फिर उनके विरह से दुःखी होकर मैंने भगवान् विष्णु की आराधना की ।२५।

तुष्टो हरिर्मे भगवाञ्जप पूजादिकर्मभिः ।
स्वप्ने मामाह मायेयं स्नेहमोहविनिर्मिता ।२६।
अयं पितेयं मातेति ममताकुलचेतसाम् ।
शोकदुःखभयोद्व गजरामृत्युविधायिका ।२७।
श्रुत्वेति वचनं विष्णोः प्रतिवादार्थमुद्यतम ।
मामालक्ष्यन्तर्हितः स विनिद्रोऽहंवम् ।२८।
सविस्मयः सभार्य्योऽहं त्यक्त्वा तां पुरिका पुरोम्
पुरुषोत्तमाख्यं श्रीविष्णोरालवञ्चागमं नृपाः ! ।२९।
तत्रैव दक्षिणे पार्श्वे निर्मायाश्रममुत्तमम् ।
सभार्य्यःसानुगामात्यः करोमि हरिसेवनम् ।३०।

मेरे जप, पूजन आदि कर्म से प्रसन्न हुए भगवान् विष्णु ने एक दिन स्वप्न में मुझसे कहा कि स्नेह, मोह आदि सब मेरी ही माया है ।२६। यह मेरे पिता हैं, यह मेरी माता है' ऐसी ममता जिनके चित्त को व्याकुल करती हो तो समझ लो कि इस शोक, दुःख, भय, उद्वेग, वृद्धावस्था और मृत्यु आदि के क्लेश रूप का कारण मेरी माया ही है ।२७। भगवान् की वाणी सुन कर मैं जैसे ही प्रतिवाद करने को हुआ, वैसे ही वे अन्तर्धान होगये और मेरी नींद टूट गई ।२८। हे राजाओ ! फिर मैं विस्मय में भर कर पुरिका नामक उस पुरी को छोड़ कर अपनी पत्नी के सहित पुरुशोत्तम संज्ञक विष्णुधाम में जा पहुँचा ।२९। उस पुरुषोत्तम धाम के

दक्षिण भाग में श्रेष्ठ आश्रम बनाकर मैं अपनी पत्नी और अनुगामियों के सहित हरि-सेवा में तत्पर हो गया ।३०।

मायासंदर्शनाकांड़्क्षी हरिसद्मनि संस्थित: ।
न्गायन्नृत्यञ्जपनाम चिन्तयच्छमनापहम् ।३१।
एवं वृत्ते द्वादशाब्दे द्वादश्यां पारणादिने ।
स्नातुकाम: समुद्रेऽहं बन्धुभि: सहितो गत: ।३२।
तत्र मग्नं जलनिधौ लहरीलोलसंकुले ।
समुत्थातुमशक्त मां प्रतुदन्ति जलेचरा: ।३३।
निमज्जनो मज्जनेन व्याकुलो कृतचेतसम् ।
जलहिल्लोलमिलनदलिताङ्गमचेतनम् ।३४।
जलधेदक्षिणे कूले पतितं पवनेरितम् ।
मां तत्र पतित दृष्ट्वा वृद्धशर्मा द्विजोत्तम: ।।३५।।
सन्ध्यामुपास्य सघृण: स्वपुरं मां समानयत् ।
स वृद्धशर्मा धर्मात्मा पुत्रदारधनान्वित: ।
कृत्वारुग्णन्तु मां तत्र पुत्रवत्पर्य्यपालयत् ।३६।

भगवान् के उस धाम में रहता हुआ प्रभु माया का दर्शन करने की कामना से मैं नृत्य, गायन तथा जप पूर्वक यम का भय दूर करने वाले भगवान् विष्णु का ध्यान करने लगा ।।३१।। इस प्रकार बारह वर्ष व्यतीत होगए । एक दिन द्वादशी का पारण था, तब मैं स्नान करने के विचार से अपने बन्धुओं सहित समुद्र के तट पर पहुँचा ।।३२।। जैसे ही गोता लगाया, वैसे ही मैं समुद्र की भयंकर तरंगराशि से व्याकुल हो गया । मुझमें उठने की शक्ति नहीं रही । तभी जलचर जीव मुझे व्यथित करने लगे ।३३। मैं कभी उछलता था, कभी डूबता, इससेमेरा चित्त बड़ा व्याकुल हुआ । जल की तरंगों के थपेड़ों से शिथिल अंग हुआ मैं अचेत हो गया ।।३४।। फिर मैं वायु की हिलोर से बहता हुआ समुद्र के दक्षिण किनारे पर लग गया । मुझे अचेतावस्था में पड़ा देख कर वृद्ध शर्मा

नामक एक ब्राह्मण संध्योपासन से निवृत्त हो कर मुझे अपने घर ले गये। स्त्री पुत्रादि से युक्त, धनवान् एवं धर्मात्मा वृद्ध शर्मा मुझे स्वस्थ करके पुत्र के समान पालने लगे ॥३५-३६॥

अहन्तु तत्र दीनात्मा दिग्देशाभिज्ञ एव न।
दम्पतीं तौ स्वपितरौ मत्वा तत्रावसं नृपाः ।३७।
स मां विज्ञाय बहुधा वेदधर्म्मेष्वनुष्ठितम्।
प्रददौस्वां दुहितरं विवाहे विनयान्वितः।३८।
लब्ध्वा चामीकराकारां रूपशीलगुणान्विता।
नाम्ना चारुमतीं तत्र मानिनीं विस्मितोऽभवम्।३९।
तयाहं परितुष्टात्मा नानाभोगसुखान्वितः।
जनयित्व पञ्चपुत्रान्संमदेनावृतोऽभवम् ॥४०॥

हे राजाओ ! उस स्थान पर रहते हुए मुझे दिशा और देश का भी ज्ञान न रहा, इसलिए दुःखित हृदय से उन ब्राह्मण दम्पत्ति को ही अपना माता-पिता मानता हुआ, वहीं रहने लगा ।३७। उन ब्राह्मण ने मुझे सब प्रकार से वेद-धर्म का अनुष्ठाता जान कर विनय पूर्वक अपनी कन्या का दान कर दिया ।३८। उस तप्त स्वर्ण जैसे वर्ण वाली, रूप, शील और गुण से युक्त कन्या का नाम चारुमती था। उस मानिनी को भार्या रूप में प्राप्त कर मैं विस्मय में पड़ गया ।३९। चारुमती ने मुझे सेवा द्वारा सदा संतुष्ट रखा और मैं उसके साथ विभिन्न प्रकार के सुखों का उपभोग करने लगा। उससे मेरे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए और निरन्तर मेरे सुख की वृद्धि होने लगी ।४०।

जयश्च विजयश्चैव कमलो विमलस्तथा।
बुध इत्यादयः पंच विदितास्तनया मम ।४१।
स्वजनैर्बन्धुभिः पुत्रैर्धनैर्नानाविधैरहम्।
विदितः पूजितो लोके देवैरिन्द्रो यथा दिवि ।४२।
बुधस्य ज्येष्ठपुत्रस्य विवाहार्थं समुद्यतम्।

दृष्ट्वा द्विजवरस्तुष्टो धर्मसारो निजां सुताम् ।४३।
दित्सुः कर्माणि वेदज्ञश्चकाराभ्युदयान्यपि ।
वाद्यैर्गीतैश्च नृत्यैश्च स्त्रीगणैः स्वर्णभूषतैः ।४४।
अहं च पुत्राभ्युदये पितृदेवर्षितर्पणम् ।
कर्त्तुं स मुद्रवेलायां प्रविष्टः परमादरात् ।४५।

मेरे पांच पुत्र जय, विजय, कमल, विमल, और बुध इत्यादि नामों से जाने गये ।४१। मैं स्वजनों और पुत्रों से युक्त तथा विविध प्रकार के धनों का स्वामी होकर इन्द्र के समान पूजनीय तथा प्रसिद्ध होगया ।४२। जब मैंने अपने ज्येष्ठ पुत्र बुध का विवाह करने का विचार किया तब धर्मसार नामक एक ब्राह्मण ने अपनी कन्या देने की इच्छा प्रकट की । फिर उसने अपनी कन्या का वैवाहिक संस्कार करने के लिए वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुला कर आभ्युदयादि कर्म को पूर्ण कराया। उस समय स्वर्णाभूषणों से विभूषित स्त्रियाँ वाद्य, गीत और नृत्य कर रही थीं-।४३-४४। तब मैं भी पुत्र के अभ्युदय की अभिलाषा करके पितर, देवता और ऋषियों का तर्पण करने के लिए समुद्र के किनारे गया ।४५।

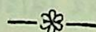
वेलालोलायिततनुर्जलादुत्थाय सत्वरः ।
तीरे सखीन्स्नानसन्ध्या-परान्वीक्ष्याहमुन्मनाः ।४६।
सद्यः समभवं भूपाः ! द्वादश्यां पारणादृतान् ।
पुरुषोत्तमसंवासान्विष्णुसेवार्थमुद्यतान् ।।४७।।
तेऽपि मामग्रतः कृत्वा तद्रूपवयसां निधिम् ।
विस्मयाविष्टमनसं दृष्ट्वा मामब्रुवज्जनाः ।४८।
अनन्त ! विष्णुभक्तोऽसि जले किं दृष्टवानिह ।
स्थले वा व्यग्रमनसं लक्षयामः कथं तव ।४९।
पारणं कुरु तद्ब्रूहि त्यक्त्वा विस्मयमात्ममः ।
तानब्रुवमहं नैव किञ्चिद्दृष्टं श्रुतं जनाः ।५०।
कामात्मा तत्कृपणधीर्मायां सन्दर्शनादृतः ।

तया हरेर्माययाहं मूढो व्याकुलितेन्द्रियः ।५१।

जब मैं स्नान — तर्पणादि से निवृत्त होकर जल से निकल कर तट की ओर चला, तभी देखता हूँ कि मेरे पहिले के सभी बंधु बांधव सन्ध्यादि कर्म कर रहे हैं। यह देख कर मेरा मन उद्विग्न हो उठा ।४६। हे राजाओ! पुरुषोत्तम धाम में रहने वाले उन ब्राह्मणों को भगवान् विष्णु की सेवा एवं द्वादशी के पारण में तत्पर देख कर मैं चकित हुआ ।४७। मेरे रूप और वय में पहिले से कुछ भी परिवर्तन न हुआ देख कर और मुझे विस्मयपूर्वक अपने को देखता देख कर उन्होंने कहा ।४८। हे अनन्त! तुम विष्णु भक्त हो। क्या तुमने जल अथवा स्थल में कहीं कुछ ऐसा दृश्य देखा है, जिससे इतने व्यग्रचित्त दिखाई दे रहे हो! ।४६। यदि कुछ देखा हो तो बताओ और विस्मय को छोड़ कर पारण करो। यह सुन कर मैंने कहा— मैंने कहीं कुछ भी नहीं देखा-सुना । परन्तु मैं काम से मोहित होकर दुर्बल हृदय हो गया हूँ। मैं भगवान् श्रीहरि की माया से ही विमूढ और व्याकुल इंद्रिय वाला हो रहा हूँ ।५०-५१।

न शर्म्म वेद्मि कुत्रापि स्नेहमोहवशं गतः ।
आत्मनो विस्मृतिरियं को वेद विदितां तु ताम् ।५२।
इति भार्य्या धनागार-पुत्रोद्वाहानुरक्तधीः ।
अनन्तोऽहं दीनमना न जाने स्वापसम्मितम् ।।५३।।
मां वीक्ष्य मानिनो भार्य्या विवशं मूढ़वस्थितम् ।
क्रन्दन्ती किमहोऽकस्मादालपन्ती ममान्तिके ।५४।
इह तां वीक्ष्य तांस्तत्र स्मृत्वा कातरमानसम् ।
हंसोऽप्येको बोधयितुमागतो मां सदुक्तिभिः ।५५।
धीरो विदितसर्वार्थः पूर्णः परमधर्म्मवित् ।५६।
सूर्य्याकारं तत्त्वसारं प्रशान्तं दान्तं शुद्धं लोकशोकक्षयिष्णम् । ममाग्रे तं पूजयित्वा मदङ्गाः पप्रच्छुस्ते मच्छुभध्यानकामाः ।५७।

मैं स्नेह और मोह के वशीभूत होकर आत्मविस्मृति को प्राप्त हुआ हूँ, परन्तु इस बात को कौन जानता है ? ।५२। इस प्रकार मैं भार्या, धन के भंडार और पुत्र के विवाहादि में अत्यन्त अनुरक्त शोक और दुःख से युक्त हो गया। मैं सोचने लगा कि मैं अनन्त कौन हूँ ? परंतु कुछ भी नहीं समझ पाया । सभी विषय स्वप्न के समान लगने लगे ।५३। तभी मेरी मानिनी पत्नी मुझे उस विवश और मूढ़ के समान अवस्था में देख कर मेरे पास आकर रोती हुई चिल्लाने लगी कि हा, यह क्या हुआ ! ।५४। वहाँ अपनी पूर्व भार्या को इस प्रकार देख कर और फिर उन स्त्री-पुरुषों का स्मरण करके अत्यन्त कातर हृदय तथा सन्तप्त हो उठा । तभी एक धीर, सर्वज्ञानी, पूर्ण धर्मज्ञ, सूर्य के समान तेजस्वी, सतोगुणी , शान्त, शुद्ध तथा संसार-शोक का नाश करने में समर्थ परमहंस मुझे ज्ञान देने के निमित्त वहाँ पधारे। तभी मेरे बांधवों ने उनका पूजन किया और मेरे कल्याण का उपाय पूछने लगे ।५५-५७।



द्वितीयांश—

पंचम अध्याय

उपविष्टे तदा हंसे भिक्षां कृत्वा यथोचिताम् ।
ततः प्राहुरनन्तस्य शरीररोग्यकाम्यया ।१।
हंसस्तेषां मतं ज्ञात्वा प्राह मां पुरतः स्थितम् ।
तव चारुमतो भार्या पुत्रः पंच बुधादय; ।२।
धनरत्नन्वितं सद्मा सम्बाधं सौधसंकुलम् ।
त्यक्त्वा कदागतोऽसीह पुत्रोद्वाहदिने न तु ।३।
समुद्रतीरसन्चारः पुराद्धर्म्मजनादृतः ।
निमन्त्र्य मामिहायातः शोकसंविग्नमानसः ।४।
त्वञ्च सप्त्तिवर्षीयस्तत्र दृष्टो मया प्रभो ! ।
त्रिशद्वर्षीयवत्कस्मादिति मे संभ्रमो महान् ।।५।।

सूतजी बोले — यथोचित भिक्षा प्राप्त करके परमहंस जब विराजमान हुए, तब पुरुषोत्तम तीर्थ के निवासियों ने उनसे पूछा कि अनन्त का शरीर रोग-रहित कब होगा ? ।१। परमहंस उनके प्रश्न का तात्पर्य जान कर और मुझे अपने समक्ष स्थित देख कर बोले — हे अनन्त ! तुम अपनी पत्नी चारुमती,बुधादि पाँचों पुत्र धन-रत्नादि से युक्त भवन आदि को त्याग कर यहाँ कब आगये ? क्या आज तुम्हारे पुत्र का विवाह-दिवस है ? ।२-३। मैं आज भी तुम्हें इस समुद्र तट पर घूमते देखता हूँ । वहाँ के सभी धार्मिक व्यक्ति तुम्हारा आदर करते हैं। मैं भी आज निमंत्रित हूँ । परन्तु तुम यहाँ आकर शोक से सन्तप्त होरहे दिखाई देते हो ।४। हे प्रभो ! वहाँ तो तुम सत्तर वर्ष के वृद्ध थे, परन्तु

यहाँ तीस वर्ष के युवक कैसे दिखाई दे रहे हो ? ।५।

इय भार्या सहाया ते न तत्रालोकिता क्वचित् ।
अहं वा क्व कुतस्तस्मात्वं थं वा काशितः ।६।
स एव वा न वापि त्वं नाह वा भिक्षुरेव सः ।
आवयोरिह सयोगश्चेन्द्रजाल इवाभवत् ।७।
त्वं गृहस्थः स्वधर्म्मज्ञो भिक्षुकोऽह परात्मकः ।
आवयोरिह संवादो बालकोन्मत्तयोरिव !८।
तस्मादीशस्य मायेय त्रिजन्मोहकारिणी ।
ज्ञानाप्राप्याद्वैतलभ्या मन्येहमिति भो द्विज ! ।९।

तुम्हारी इस सहायिका भार्या को मैंने वहाँ कभी भी नहीं देखा । मैं भी यह नहीं जानता कि मैं इस स्थान पर कहाँ से और किस प्रकार आ गया ? तथा मुझे यहाँ कौन लाया है ? ।६। क्या तुम वही अनन्त हो या और कोई हो ? मैं भी वही भिक्षुक हूँ या कोई अन्य हूँ ? यहाँ मेरा तुम्हारा मिलन भी इंद्रजाल के समान ही प्रतीत होता है ।७। तुम अपना धर्म का पालन करने वाले गृहस्थ हो और मैं परमार्थ चिन्तक भिक्षुक । यहाँ हम-तुम दोनों का पारस्परिक सवाद एक बालक और उन्मत्त के संवाद के समान निरर्थक है ।८। हे द्विज ! इससे मैं समझता हूँ कि यह भगवान् की त्रैलोक्य-मोहिनी माया है। इस माया का रहस्य साधारण ज्ञान से नहीं, अद्वैत बुद्धि से ही समझा जा सकता है ।९।

इति भिक्षुः समाश्राव्य यदन्यत्प्राह विस्मितः ।
मार्कण्डेय ! महाभाग ! भविष्यं कथयामि ते ।१०।
प्रलये या त्वया दृष्टा पुरुषस्योदराम्भसि ।
सा माया मोहजनिका पन्थानं गणिका यथा ।११।
तमोह्यग्रतःसन्तापा नोदनोद्यतमक्षरी
ययेदमखिलं लोकमवृत्या वस्थयास्थितम् ।१२।
लये लीने त्रिजगति ब्रह्मतन्मात्रतां गतः ।
निरुपाधौ निरालोके सिसृक्षुरभवत् परः ।१३।

ब्रह्मण्यपि द्विधाभूते पुरुष प्रकृती स्वया ।
भासा संजनयामास महान्तं कालयोगतः ।१४।
कालस्वभावकर्म्मात्मा सोऽहङ्कारस्ततोऽभवत् ।
त्रिवृद्विष्णु-शिव-ब्रह्म-मयः संसारकारणम् ॥१५॥

विस्मयान्वित हृदय से भिक्षुक परमहंस ने मुझसे इतना ही कहा। फिर उन्होंने मार्कण्डेय से कहा — हे मार्कण्डेय ! हे 'महाभाग ! मैं अब तुम्हें भविष्य की बात सुनाता हूँ ।१०। प्रलयकाल में उस परम पुरुष के उदर में स्थित जल में, पथ मे बैठने वाली गणिका के समान, सब में मोह उत्पन्न करने वाली माया निवास करती है ।११। तमोगुण रूप हुई यही माया अनन्त सन्ताप उत्पन्न करने वाली और इस मिथ्या जगत में सब की गति करने वाली है। यही माया तीनों लोकों में व्याप्त होकर उन्हें स्थित करती है । इस मायाका नाश संभव नहीं है ।१२। प्रलयकाल में तीनों लोकों के लीन होजाने पर सर्वत्र अंधकार छा जाता है, तब दिशा देश और काल आदि का भी कोई चिह्न नहीं रहता। उस समय ब्रह्म ही सृष्टि करने की इच्छा से, अपनी ही महिमा द्वारा प्रकृति और पुरुष इन दो रूपों में विभक्त हो जाते हैं। तब काल के सहयोग से प्रकृति और पुरुष, का संयोग होने पर महत्तत्व उत्पन्न होता है ।१३-१४। प्रकृति से काल और स्वभाव उत्पन्न हुए। महत्तत्व से अहंकार हुआ। वही अहंकार तीनों गुणों में विभक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव का उत्पन्न करने वाला हुआ। यही ब्रह्मा, विष्णु और शिव सम्पूर्ण विश्व के कारण हैं ।१५।

तन्मात्राणि ततः पञ्च जज्ञिरे गुणवन्ति च ।
महाभूतान्यपि ततः प्रकृतौ ब्रह्मसंश्रयात् ।१६।
जाता देवासुरनरा ये चान्ये जीवजातयः ।
ब्रह्माण्डभाण्डसंभार-जन्मनाशक्रियात्मिकाः ।१७।
मायया मायया जीव-पुरुषः परमात्मनः ।
संसारशरणव्यग्रो न वेदात्मगतिं क्वचित् ।१८।
अहो बलवती माया ब्रह्माद्या यद्वशे स्थिताः ।

गावो यथा नसि प्रोता गुणबद्धाः खगा इव ।१९।
तां मायां गुणमय्यां ये तितीर्षन्ति मुनीवराः ! ।
स्रवन्तीं वासनानक्रां त एवार्थविदो भुवि ।।२०।।

अहंकार से प्रथम त्रिगुणात्मक पंचतन्मात्र प्रकट हुआ। पंचतन्मात्र से पंचमहाभूत हुए। इस प्रकार प्रकृति में पुरुष के अधिष्ठान करने से ही सृष्टि का उदय होता है।१६। फिर देवता, दानव, मनुष्य तथा अन्यान्य जीव अर्थात जितने भी जन्म लेने वाले और मरणधर्मी प्राणी हैं, वे सब उत्पन्न होते हैं।१७। ईश्वर की माया के वश में पड़े रहने से सभी जीव सांसारिक कार्यों में लिप्त रहे आते हैं तथा अपने उद्धार का प्रयत्न नहीं कर पाते।१८। अहो, यह माया कैसी बलवती है, जिसके वश में ब्रह्मादि देवता भी नाथे हुए बैल और डोरी से बांधे हुए पक्षी के समान नाचते करहते हैं।१९। जो मुनिवर इस प्रकार के वासना रूपी नक्र की उत्पत्ति-त्री गुणमयी माया से मुक्त होने का उपाय करते हैं, उन्हीं ज्ञानियों का जन्म सार्थक समझो।२०।

मार्कण्डेयो वसिष्ठश्च वामदेवादयोऽपरे ।
श्रुत्वा गुरुवचो भूयः किमाहुः श्रवणादृताः।२१।
राजानोऽनन्तवचनमिति श्रुत्वा सुधोपमम् ।
किं वा प्राहुरहो सूत ! भविष्यमिह वर्णय।२२।
इति तद्वच आश्रुत्य सूतः सत्कृत्य तं पुनः ।
कथयामास कात्स्र्न्येन शोकमोहविघातकम्।२३।
तत्रानन्तो भूपगणैः पृष्टः प्राह कृतादरः ।
तपसा मोहनिधनमिन्द्रियाणाञ्च निग्रहम्।२४।
अतोऽहंवनमासाद्य तपः कृत्वा विधानतः ।
नेन्द्रियाणां न मनसो निग्रहोऽभूत्कदाचन।२५।

शौनक बोले— हे ब्रह्मन् ! मार्कण्डेय, वसिष्ठ, वामदेव तथा अन्यान्य मुनियों ने परमहंस के वचन सुन कर क्या कहा था ? तथा अनन्त के इस उपाख्यान को सुनने वाले राजाओं ने अनन्त के सुधा के समान

वचन सुन कर क्या कहा ? यह सभी भविष्य-वार्ता हमें सुनाइये ।२१-२२। यह सुन कर सूतजी शोक-मोह का नाश करने वाली एवं तत्व-ज्ञानमयी उस वार्ता का वर्णन पुनः करने लगे ।२३। सूतजी ने कहा—फिर उन राजागण के जिज्ञासा करने पर अनन्त ने तपस्या के द्वारा माया का निवारण और इन्द्रियों के निग्रह का प्रसंग कहा ।२४। । बोला—मैं वन में पुनः जाकर विधिवत् तप करने लगा, तो भी अपनी इन्द्रियों और मन का निग्रह नहीं कर पाया ।२५।

वने ब्रह्म ध्यायतो मे भार्य्यापुत्रधनादिकम् ।
विषयंचान्तरा शश्वत्संस्मारयति मे मनः ।२६।
तेषां स्मरणमात्रेण दुःखशोकभयादयः ।
प्रतुदन्ति मम प्राणान्धारणा-ध्याननाशकाः ।२७।
ततोऽहं निश्चितमतिरिन्द्रियाणांच घातने ।
मनसो निग्रहस्तेन भविष्यति न संशयः ।।२८।।
अतो मामिन्द्रियाणाञ्च निग्रहव्यग्रचेतसम् ।
तदधिष्ठातृदेवाश्च दृष्ट्वा मामीयुरञ्जसा।२९।
रूपिणो मामथोचुस्ते भोऽनन्त ! इति ते दश ।
दिग्व.तार्कप्रचेतोऽश्वि-वन्हीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ।।३०।।

मैं जब-जब ब्रह्म का ध्यान करने में तत्पर होता, तब-तब ही मुझे स्त्री, पुत्र, धनादि की बातें स्मरण हो आतीं और मेरा ध्यान भंग हो जाता २६। इस प्रकार स्त्री, पुत्र तथा धनादि का स्मरण होते ही मेरा अन्तरात्मा दुःख, शोक और भय आदि से व्याकुल हो जाता । इस प्रकार ध्यान में बाधा उपस्थित हो गई ।२७। मैंने पुनः यह विचार करके कि इन्द्रिय-निग्रह से मन भी वश में हो जायगा, इन्द्रियों के निग्रह का ही संकल्प किया ।२८। ऐसा संकल्प करके जब मैं इन्द्रियों के दमन में तत्पर हुआ, तब इन्द्रियों के अधिष्ठतृ देवता मेरी ओर ताकने लगे ।२९। तब दशों इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं ने साक्षात् प्रकट होकर मुझसे कहा--

हे अनन्त ! हम दिशा, वात, प्रचेता, अश्विद्वय, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र और मित्र देवता हैं ।३०।

इन्द्रियाणां वयं देवास्तव देहे प्रतिष्ठिताः ।
नखाग्रकाण्डसंभिन्नान्नास्मान्कर्तुमिहार्हसि ।३१।
न श्रेयो हि तवानन्त ! मनोनिग्रहकर्मणि ।
छेदने भेदनेऽस्माकं भिन्नमर्म्मा मरिष्यसि ।३२।
अन्धानां बधिराणांच विकलेन्द्रियजीविनाम ।
वनेऽपि विषयव्यग्रं मानसं लक्षयामहे ।३३।
जीवस्यापि गृहस्थस्य देहो गेहं मनोऽनुगः ।
बुद्धिर्भार्य्या तदनुगा वयमित्यवधारय ।३४।
कर्मायत्तस्य जीवस्य मनो बन्धविमुक्तिकृत् ।
संसारयति लुब्धस्य ब्रह्मणो यस्य मायया ।३५।

हम दश इन्द्रियों के अधिष्ठतृ देवगण तुम्हारे देह में स्थित हैं। हमको नखाग्र से छिन्न-भिन्न करना सर्वथा अनुचित है ।३१। इस प्रकार मन को वश करने के प्रयत्न में तुम्हारा कल्याण नहीं होगा । इन्द्रियों के छेदन-भेदन से मर्मस्थल आहत हो जायगा तो तुम्हारी मृत्यु हो जायगी ।३२। अन्धे, बहरे अथवा विकल इन्द्रियों वाले जीव भी निर्जन वन में वास करते हुए विषयासक्त दिखाई देते हैं ।३३। जीव रूपी गृहस्थ का घर यह देह ही है तथा मन की अनुगता बुद्धि ही इसकी भार्य्या है। इस प्रकार हम सभी उस बुद्धि रूपी भार्य्या के ही अनुगत रहते हैं ।३४। सभी जीव अपने कर्म के वश में हैं। मोक्ष और बंधन का कारण मन है। प्रभु-माया का अनुगत हुआ मन ही इस लोलुप प्राणी को भवचक्र में डालता रहता है ।३५।

तस्मान्मनोनिग्रहार्थं विष्णुभक्तिं समाचर ।
सुखमोक्षप्रदा नित्यं दाहिका सर्वकर्मणाम् ।।३६।।
द्वैताद्वैतप्रदानदन्स न्दोहा हरिभक्तिको ।
रिभक्त्या जीवकोष-विनाशान्ते महामते ।।३७।

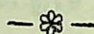
परं प्राप्स्यसि निर्वाणं कल्केरालोकनांत्त्वया ।
इत्यह बोधितस्तेन भक्त्वा संपूज्य केशवम् ।३८।
कल्कि दिदृक्षुरायातः कृष्णं कलिकुलान्तकम् ।।३९।।
दृष्टं रूपमरूपस्य स्पृष्टस्तत्पदपल्लवः ।
अपदस्य श्रुतं वाक्यमवाच्यस्य परात्मनः ।४०।

इसलिए यदि मन का निग्रह करना है तो भगवान् विष्णु की भक्ति करो। क्योंकि वही सब कर्मों की दाहिका और मोक्ष-सुख के देने वाली है ।।३६।। हरि-भक्ति ही द्वैत-अद्वैत का ज्ञान एवं आनन्द और सन्दोह के देने वाली है, उसी के द्वारा जीवकोष का दमन संभव है ।३७। कल्कि भगवान् के दर्शन करने से ही तुम मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे । परमहंस का यह उपदेश सुनकर मैं भक्ति सहित भगवान् केशव का पूजन करके कलिकुलनाशक कल्किरूप श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ।३८-३९। यहीं आकर निराकार ईश्वर के रूप का मुझे दर्शन हुआ है । चरण-रहित परमात्मा के चरण-स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त हुआ और अवाच्य प्रभु की वाणी सुनाई दी ।४०।

इत्यनन्तः प्रमुदितः पद्मानाथ निजेश्वरम् ।
कल्किं कमलपत्राक्षं नमस्कृत्य ययौ मुनिः ।।४१।।
राजानो मुनिवाक्येन निर्वाण-पदवीं गताः ।
कल्किमभ्यर्च्य पद्माञ्चा नमस्कृत्य मुनिव्रताः ।।४२।।
अनन्तस्य कथामेतामज्ञानध्वान्त-नाशिनीम
मायानियन्त्रीं प्रपठञ्छृण्वन्बन्धाद्विमुच्यते ।।४३।।
ससाराब्धि-विलासलालसमतिः श्रीविष्णुसेवादरो
भक्त्याख्यानमिदं स्वभेद-रहितं निर्माय धर्मात्मना ।
ज्ञानोल्लास-निशात-खड्गमुदितः सद्भक्ति-दुर्गाश्रयः
षड्वर्गंजयतादशेषजगतामात्मस्थितं वैष्णवः ।।४४।।

यह कह कर अत्यन्त हर्षित हुए मुनिवर अनन्त पद्मपत्राक्ष एवं पद्मा के पति भगवान् कल्कि को नमस्कार करके वहाँ से चले गये ।४१।

मुनिवर अनन्त के इन वचनों को सुन कर राजाओं ने भी उनके ही समान व्रतादि का अनुष्ठान किया और पद्मा सहित भगवान् कल्कि का पूजन करके निर्वाण-पदवी को प्राप्त हुए ।४२। शुक बोला—अनन्त की इस कथा के पढ़ने से अज्ञान रूपी अंधकार दूर होता तथा भव-माया से छुटकारा होकर संसार-बंधन से मोक्ष की प्राप्ति होती है ।४३। जो धर्मात्मा पुरुष विष्णु की सेवा तत्पर रह कर भी वासना जनित भवसिन्धु में गोते लगाते रहते हैं, वे इस प्रसंग के द्वारा अभेद-ज्ञान स्वरूप उल्लसित हुई तीक्ष्ण तलवार को धारण करके, हरि-भक्ति रूपी दुर्ग के आश्रय में स्थित हो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य रूप अपने छः ओं शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेते हैं ।।४४।।



द्वितीयांश—

षष्ठम अध्याय

गते नृपगणे कल्किः पद्मया सह सिंहलात् ।
शम्भलग्राम-गमने मतिं चक्र स्वसेनया ॥१॥
ततः कल्केरभिप्रायं विदित्वा वासवस्त्वरन् ।
विश्वकर्माणमाहूय वचनञ्चेदमब्रवीत् ॥२॥
विश्वकर्मञ्छम्भलेत्वं गृहोद्यानाट्ट-घट्टितम् ।
रत्नस्फटिक-वैदूर्य्य-नानामणि-विनिर्मितैः ।
तत्रैव शिल्पनैपुण्यं तव यच्चास्ति तत्कुरु ॥४॥
श्रुत्वा हरेर्वचो विश्वकर्मा शर्म निजं स्मरन् ।
शम्भले कमलेशस्य स्वस्त्यादि-प्रमुखान्गृहान् ॥५॥

सूतजी बोले—फिर जब वे राजागण चले गए तब भगवान् कल्कि ने पद्मा और सेना के सहित सिंहलद्वीप से प्रस्थान करने का विचार किया ।१। जब इन्द्र ने उनका यह अभिप्राय जाना, तब उसने उसी समय विश्वकर्मा को अपने पास बुला कर कहा ।२। इन्द्र बोला—हे विश्वकर्मन् ! तुम सम्भल ग्राम में जाकर स्वर्ण से अट्टालिकाओं से युक्त सुन्दर भवन और उद्यान आदि का निर्माण करो और उन्हें रत्न, स्फटिक तथा वैदूर्यादि विविध प्रकार की मणियों से जड़ कर अपना शिल्प-नैपुण्य दिखाओ ।३-४। इन्द्र के वचन सुन कर विश्वकर्मा अपना कल्याण जानता हुआ शम्भल ग्राम पहुँचा और वहाँ उसने पद्मापति के निमित्त स्वस्ति आदि मंगल चिन्हों से युक्त सुन्दर भवनादि का निर्माण किया ।५।

हंससिंहसुपर्णादिमुखांश्चक्रे स विश्वकृत ।

पर्यपरि तापघ्नवातायनमनोहरान् ।६।
नानावनलतोद्यानसरोवापीसुशोभितः ।
शम्भलश्चाभवत्कत्केर्पथेन्द्रस्यामरावती ।७।
कल्किस्तु सिंहलाद्द्वीपाद्बहिः सेनागणैर्वृतः ।
त्यक्त्वा कारुमतीं कूले पाथोधेरकरोत्स्थितम् ।८।
बृहद्रथस्तु कौमुद्या सहितः स्नेहकातरः ।
पद्मया सहितायास्मै पद्मनाथाय विष्णवे ।९।
ददौ गजानामयुतं लक्षं मुख्यञ्च वाजिनाम् ।
रथानाञ्च द्विसाहस्रं दासीनां द्वे शता मुदा ।१०।
दत्त्वा वासांसि रत्नानि भक्तिस्नेहाश्रुलोचनः ।
तयोर्मुखालोकनेन नाशकत्किंयदीरितुम् ।११।

हंस, सिंह, गरुड़ आदि की आकृति से युक्त अनेक प्रकार के गृह बनाये गये। अनेक भवनों में कई-कई मंजिलें बनाई गईं और गर्मी का ताप शान्त करने के लिए मनोहर वातायन निर्मित किये गये।६। विविध प्रकार के वन, लताओं से युक्त उद्यान, सरोवर और बावड़ी आदि से समन्वित होने के कारण वह शम्भल ग्राम अमरावती के समान शोभा पाने लगा।७। इधर भगवान् कल्कि सेना के सहित सिंहल द्वीप की कारुमती नगरी से निकल कर समुद्र तट पर आये।८। अपनी रानी कौमुदी के साथ राजा बृहद्रथ स्नेह से कातर हो गया और उसने पद्मा सहित पद्मानाथ को दश हजार हाथी, एक लाख घोड़े, दो हजार रथ, दो सौ दासियाँ और विविध प्रकार के वस्त्र-रत्नादि भक्ति सहित दिये और आँखों में स्नेह के आँसू भर कर अपनी पुत्री और जामाता को अपलक देखते रहे।९-११।

महाविष्णुदम्पती तौ प्रस्थाप्य पुनरागतौ ।
पूजितौ कल्किपद्माभ्यां निजकारुमतीं पुरीम् ।१२।
कल्किस्तु जलधेरम्भो विगाह्य पतना गणैः ।
पारं जिगमिषुं दृष्ट्वा जम्बुकं स्तम्भितोऽभवत् ।१३।

जलस्तम्भमथालोक्य कल्किः सबलवाहनः ।
प्रययौ पयसां राशेरुपरि श्रीनिकेतनः ।१४।
गत्वा पारं शुकं प्राह याहि मे शम्भलालयम् ।१५।

फिर राजा बृहद्रथ ने अपनी पुत्री और जामाता का पूजन कर उन्हें विदा किया और स्वयं अपनी कारुमती नगरी में लौट गया ।१२। फिर कल्किजी ने सेना के सहित समुद्र के जल में स्नान किया और तभी वहाँ एक श्रृगाल उस स्तंभित हुए जल पर होता हुआ पार चला गया ।१३। जब कल्किजी ने जल को इस प्रकार स्तभित हुआ देखा तो वे अपनी सेना और वाहनादि के सहित समुद्र के जल पर चलते हुए पार हो गये ।१४। समुद्र के पार पहुँच कर उन्होंने शुक के प्रति कहा—हे शुक ! तुम शम्भल ग्राम स्थित मेरे घर पर जाओ ।१५।

विश्वकर्मकृतं यत्र देवराजाज्ञया बहु ।
सद्म सम्बाधममलं मत्प्रियार्थं सुशोभनम् ।१६।
तत्रापि पित्रोर्ज्ञातीनां स्वस्ति ब्रूया यथोचितम् ।
यदत्राङ्ग ! विवाहादि सर्वं वक्तुं त्वमर्हसि ।१७।
पश्चाद्यामि वृतस्त्वेकंस्त्वमादौ याहि शम्भलम् ।१८।
कल्केर्वचनमाकर्ण्य कीरो धीरस्ततो ययौ ।
आकाशगामी सर्वज्ञः शम्भलं सुरपूजितम् ।१९।
सप्तयोजनविस्तीर्णं चातुर्वर्ण्यजनाकुलम् ।
सूर्यरश्मिप्रतीकाशं प्रासादशतशोभितम् ।२०।

देवराज इन्द्र की आज्ञा से मेरा प्रिय करने के लिए वहाँ विश्वकर्मा ने अनेकों शोभा सम्पन्न भवनों का निर्माण किया है ।१६। तुम वहाँ जाकर मेरे माता-पिता और जाति-बन्धुओं को मेरा कुशल समाचार देकर विवाहादि का प्रसंग उन्हें बताना ।१७। तुम आगे-आगे शम्भल ग्राम पहुंचो, मैं भी सेना सहित पीछे-पीछे आ रहा हूँ ।१८। कल्किजी के वचन सुन कर वह धीर शुक आकाश मार्ग से होता हुआ शीघ्र ही शम्भल ग्राम

में जा पहुंचा ।१६। सात योजन विस्तार वाले उस शम्भल ग्राम में चारों वर्ण निवास करते हैं । वहां सूर्य किरणों के समान चमचमाते हुए सैकड़ों प्रासाद सुशोभित हैं ।२०।

सर्वर्तुसुखदं रम्यं शम्भलं विह्वलोऽविशत् ।२१।
गृहाद्गृहान्तरं दृष्ट्वा प्रासादपि चाम्बरम् ।
वनाद्वनांतरं तत्र वृक्षाद्वृक्षान्तरं व्रजन् ।२२।
शुकः स विष्णुयशशः सदनं मुदितोऽव्रजत् ।
त गत्वा रुचिरालापैः कथयित्वा प्रियाः कथाः ।२३।
कल्केरागमनं प्राह सिंहलात्पद्मया सह ।२४।
ततस्त्वरनिवष्णुयशाः समानार्यप्रजाजनान् ।
विशाखयूपभूपाल कथयामास हर्षितः ।२५।

सब ऋतुओं में समान सुख देने वाले सुरम्य शम्भल ग्राम को देखते ही विह्वल हुए शुक ने उसमें प्रवेश किया । वह वहाँ एक घर से दूसरे में, प्रासाद के आगे से आकाश में, एक उद्यान से अन्य उद्यान में तथा एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर विचरने लगा ।२१-२२. इस प्रकार हर्ष-विह्वल शुक विष्णुयशजी के घर में जाकर अपनी मधुर वाणी में उन्ही सम्पूर्ण प्रिय कथा सुनाने लगा ।२३। तथा पद्मा के सहित भगवान् कल्कि के आगमन का समाचार सुनाया ।२४। यह सुनते ही विष्णुयश हर्ष से पुलकित हो उठे और उन्होंने विशाखयूप-नरेश आदि राजाओं और प्रजाजनों को वह सब समाचार सुना दिया ।२५।

स राज्ञा कारयामास पुर-ग्रामादि मण्डितम् ।
स्वर्णकुम्भैः सदम्भोभिः पूरितैश्चन्दनोक्षितैः ।२६।
कालागुरुसुगन्धाढ्यैर्दीपलाजाङ्कुराक्षतैः ।
कुसुमैः सुकुमारैश्च रम्भा-पूग-फलान्वितैः ।
शुशुभे शम्भलग्रामो विबुधानां मनोहरः ।२७।
त कल्किः प्राविशद्भीम-सेनागण-विलक्षणः ।

कामिनी-नयनानन्दमन्दिरांगःकृपानिधिः ।२८।
पद्मया सहितः पित्रोः पदयोः प्रणतोऽपतत् ।
सुमतिर्मुदिता पुत्र स्नुषां शक्रं शचीमिव ।
ददृशे त्वमरावत्यां पूर्णकामा दितिः सती ।२९।

तब विशाखयूप-नरेश ने चन्दन युक्त जल को स्वर्णकलश में भरवा कर नगर और ग्राम में उससे छिड़काव कराया ।२६। उस समय वह शम्भल ग्राम दीपमाल, पुष्पों, अगर आदि सुगंधित द्रव्यों, कदली, पुंगीफल, नवीन किसलय, अक्षत तथा ताम्बूल आदि से समन्वित होकर देवताओं की पुरी के समान मनोहर दिखाई देने लगा ।२७। इसी अवसर पर स्त्रियों के नेत्रों को आनन्द देने वाले भगवान् कल्कि अपनी सेना आदि के सहित ग्राम में प्रविष्ट हुए ।२८। भगवान् कल्कि ने पद्मा के सहित अपने माता-पिता के चरणों में प्रणाम किया । जैसे इन्द्र और शची को प्रणाम करते देख कर दिति को आनन्द हुआ था, वैसे ही सुमति भी अपने पुत्र और पुत्रवधू को देख कर पूर्ण मनोरथ एवं अत्यंत हर्षित हुई ।२९।

शम्भलग्राम नगरी पताका ध्वज-शालिनी ।
अवरोधसुजघना प्रासादविपुलस्तनी ।
मयूरचूचका हंस-संघहारमनोहरा ।३०।
पटवासोद्योतधूमवसना कोकिलस्वना ।
सहासगोपुरमुखी वामनेत्रा यथांगना ।
कल्किं पतिं गुणवती प्राप्य रेजे तमीश्वरम् ।३१।
स रेमे पद्मया तत्र वर्षपूगानजाश्रयः ।
शम्भले विह्वलाकारः कल्किः कल्कविनाशनः ।३२।
कवेः पत्नी कामकला सुषुवे परमेष्ठिनौ ।
बृहत्कीर्त्तिबृहद्बाहू महाबल पराक्रमौ ।३३।
प्राज्ञस्य सन्नतिर्भार्या तस्यां पुत्रौ बभूवतुः ।

यज्ञविज्ञौ सर्वलोकपूजितौ विजितेन्द्रियौ ।३४।
सुमन्त्रकस्तु मालिन्यां जनयामास शासनम् ।
वेगवन्तञ्च साधूनां द्वावेतावुपकारकौ ।।३५।।

शम्भल ग्राम नामक वह नगरी ध्वजा-पताका से युक्त उन्नत प्रासादों वाली, मयूर, हंसादि से सुशोभिता, सुगन्ध-धूम-वसना कोकिल के समान मधुरालाप युक्ता तथा कामिनी के समान सर्व प्रकार सजी हुई थी। वह कल्किजी को पति रूप में प्राप्त कर अत्यन्त शोभामयी हो गई ।३०-३१। वे अजन्मा, सर्वाश्रय रूप एवं कलि-विनाशक कल्किजी अनेक वर्ष तक शम्भल में रह कर पद्मा के साथ विहार करते रहे ।३२। तदनन्तर कवि की पत्नी कामकला ने दो पुत्र उत्पन्न किये जिनके नाम बृहत्कीर्ति और बृहद्बाहु हुए। यह दोनों अत्यन्त बली और पराक्रमी थे ।३३। प्राज्ञ की भार्या सुमति ने जितेन्द्रिय और सर्वलोक पूजित यज्ञ और विज्ञ नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ।३४। सुमन्त्र की पत्नी मालिनी ने शासन और वेगवान् नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। यह दोनों साधुजनों का उपकार करने वाले हुए ।३५।

तद्वौतः कल्किश्च पद्मायां जयो विजय एव च ।
द्वौ पुत्रौ जनयामास लोकख्यातौ महाबलौ ।।३६।।
एतैं परिवृतोऽमात्यैः सर्वसम्पन्समन्वितौ ।
वाजिमेधविधानार्थ मुद्यतं पितरं प्रभुः ।३७।
समीक्ष्य कल्कि प्रोवाच पितामहनिवेश्वररः ।
दिशां पालान्विजित्याह धनान्याहृत इत्युत ।३८।
कारयिष्याम्याश्वमेधं यामि दिग्विजयाय भो ! ।३९।
इति प्रणम्य तं प्रीत्या कल्कि पटपुरञ्जयः ।
सेनागणैः परिवृतः प्रययौ कीकट पुरम् ।४०।

कल्किजी की पत्नी पद्मा ने जय, विजय नामक दो पुत्र प्रसव किये। यह दोनों महाबली तीनों लोकों में प्रसिद्ध हुए ।३६। इस प्रकार उनका परिवार पुत्रवान् और सर्व ऐश्वर्य सम्पन्न हो गया। फिर कल्कि

जी ने अपने पिता को अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान में ब्रह्माजी के समान तत्पर देखकर कहा—हे पिताजी ! मैं दिक्पालों को जीत कर धन एकत्र करूँगा, जिससे आपका अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न होगा। अब मैं दिग्विजय के लिए प्रस्थान करता हूँ।३७-३९। शत्रु-पुर पर विजय प्राप्त करने वाले कल्किजी ने यह कह कर प्रसन्नतापूर्वक अपने पिता को प्रणाम किया और सेना को साथ लेकर कीकटपुर की ओर चल दिये।४०।

बुद्धालयं सुविपुलं वेदधर्मबहिष्कृतम्।
पितृदेवार्चनाहीनं परलोकविलोपकम्।४१।
देहात्मावादबहलं कुलजातिविवर्जितम्।
धनैः स्त्रीभिर्भक्ष्यभोज्यैः स्वपराभेददर्शिनम्।४२।
नानाजनैः परिवृतं पानभोजनतत्परैः।४३।
श्रुत्वा जिनो निजगणैः कल्केरागमनं क्रुधा।
अक्षौहिणीभ्यां सहितः संबभूव पुराद्बहिः।४४।
गजरथतुरगैः समाचिता भूः कनक विभूषणभूषितैर्वराङ्गैः।
शत शतरथिभिर्धृतास्त्रशस्त्रैः। ध्वजपटराजि-
निवारितातपैर्वभौ सा।।४५।।

अत्यन्त विस्तार वाला कीकटपुर बौद्धों का निवास स्थान था। यहाँ रहने वाले व्यक्ति वैदिक धर्म तथा देवता और पितरों के अर्चन से हीन और परलोक के न मानने वाले थे।४१। यह लोग देहात्मवादी, कुल धर्म और जाति धर्म के न मानने वाले तथा धन, स्त्री और भोजनादि में अभेद देखने वाले थे।४२। पान एवं भोजन में ही व्यस्त रहने वाले विविध प्रकार के मनुष्यों से ही यह नगर परिपूर्ण था।४३। वहाँ के अधिपति जिन ने जब युद्ध के अभिप्राय से सेना रहित कल्किजी का आगमन सुना तो वह प्रतीकारार्थ दो अक्षौहिणी सेना को लेकर नगर से बाहर आया।४४। असंख्य हाथी, रथ, अश्व स्वर्ण के आभूषणों से भूषित श्रेष्ठ रथी और शस्त्रास्त्रधारी वीरों से पृथिवी ढक गई। सेनाओं के ध्वजों से धूप भी रुक गई।४५। —❀—

द्वितीयांश—

सप्तम अध्याय

ततो विष्णु:: सर्वजिष्णुः कल्किः कल्कविनाशनः ।
कालयामास तां सेनां करिणीमिव केसरी ।१।
सेनांगनां तां रतिसंगरक्षतीं रक्ताक्तवस्त्रां
विवृतोरुमध्याम् । पलायतीं चारुविकीर्णकेशां
विकूजतीं प्राह स कल्किनायकः ॥२॥
रे बौद्धा ! मा पलायध्वं निवर्तध्वं रणाङ्गणे ।
युध्यध्वं पौरुषं सांधु दर्शयध्व पुनर्मम ॥३॥
जिनो हीनबलः कोपात्कल्केराकर्ण्य तद्वचः ।
प्रतियोद्धुं वृषारूढः खड्गचर्मधरो ययौ ।४।
नाना प्रहरणोपेतो नानायुधविशारदः
कल्किना युयुधे धीरी देवानां विस्मयावहः ॥५॥

सूतजी बोले—जैसे सिंह हथियों पर आक्रमण करता है, वैसे ही पाप का नाश करने वाले तथा सर्व विजेता कल्किजी ने उसकी सेना पर आक्रमण कर दिया ।१। युद्ध रुधिर रूपी वस्त्रों का धारण करने वाली विवृत ऊरु सम्पन्ना, विकीर्ण केशा प्रलाप करती हुई अर्थात हाहाकार करती हुई, रति युद्ध में आहत नारी के समान भागने वाली उस सेना से कल्किजी ने कहा ।२। अरे बौद्धो ! तुम इस युद्ध स्थल से मत भागो । आओ, लौट आओ और अपना पौरुष दिखाने में पीछे न हटो ।३। कल्कि की बात सुन कर बल से हीन हुआ जिन क्रोध पूर्वक चर्म की तलवार लेकर युद्ध करने के लिए उनके समक्ष आया ।४। विविध प्रकार के युद्धों में विशारद जिन कल्किजी से युद्ध करने लगा । उसका रणचातुर्य देख कर देवता भी आश्चर्य करने लगे ।५।

शूलेन तुरंग विद्धा कल्किं बाणेन मोहयन् ।
क्रोडीकृत्य द्रुतं भूमेर्नाशकत्तोलना हृतः ।५।
जिनो विश्वम्भरं ज्ञात्वा क्रोधाकुलितलोचनः ।
चिच्छेदास्य तनुत्राणं कल्केः शस्त्रञ्च दासवत् ।७।
विशाखयूपोऽपि तथा निहत्य गदया जिनम् ।
मूर्च्छितं कल्किमागाय लीलया रथमारुहत् ।८।
लब्धसंज्ञस्तथा कल्किः सेवकोत्साहदायकः ।
समुत्पत्य रथात्तस्य नृपस्य जिनमाययौ ।९।
शूलव्यथां विहायजौ महासत्वस्तुरङ्गमः
रिंगणैर्भ्रमणैः पादविक्षेपहननैर्मुहुः ।१०।
दण्डाघातैः सटाक्षेपैंबौद्धसेनागणान्तरे ।
निजघान रिपून्कोपाच्छतशोऽथ सहस्रशः ।११।

उसने अपने शूल से अश्व को विद्ध कर दिया तथा बाण से कल्किजी को संमोहित कर अंक में भरने लगा, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली ।८। जिन ने कल्कि को विश्वंभर रूप जान लिया और क्रोध पूर्वक नेत्रों से उन्हें वंदी के समान देखता हुआ, उसने उनके शस्त्रास्त्र और कवच को छिन्न-भिन्न कर दिया ।७। यह देख कर विशाखयूप-नरेश ने अपनी गदा से जिन को आहत कर दिया और लीला पूर्वक मूर्च्छित हुए कल्किजी को लेकर रथ पर चढ़ गये ।८। जब उन्हें चेत हुआ, तब वे भक्तों को उत्साह देने वाले कल्किजी राजा के रथ से उतर कर जिन के सामने पहुँचे ।९। कल्किजी का अश्व भी शूल की वेदना को भूल कर युद्धभूमि में कूद पड़ा और घूमता हुआ पदाघात, दन्ताघात, केशघात आदि के द्वारा बौद्ध सेना के हजारों वीरों को क्रोधपूर्वक मारने लगा ।१०-११।

निश्वासवातैरुड्डीय केचिद्द्वीपान्तरेऽपतन् ।
हस्त्याश्वरथसंबाधाः पतिता रणमूर्द्धनि ।१२।

गर्ग्यो जघ्नु: षष्टिशतं भर्ग्यः कोटिशतायुतम् ।
विशालास्तु सहस्त्राणां पंचाविंशं रणे त्वरन् ।१३।
अयुते द्वे जघानाजौ पुत्राभ्यां सहित: कवि: ।
दशलक्षं तथा प्राज्ञः पञ्चलक्षं सुमन्त्रकः ।१४।
जिनं प्राह हन्सकल्किस्तिांष्ठाग्रे ममदुर्मते ! ।
दैव मां विद्धि सर्वत्र शुभाशुभफलप्रदम् ।१५।

अश्व के भयंकर श्वास से उड़ कर कोई-कोई वीर तो अन्य द्वीपों में जाकर गिर गये तथा कुछ वीर गज, अश्व एवं रथादि से टक्कर खा कर युद्ध स्थल में ही धराशायी हो गये ।१२। गर्ग्य ने अपने अनुगामियों को साथ लेकर बौद्धों की छः हजार सेना का संहार कर दिया। भर्ग्य और उसकी सेना ने दस हजार सेना मार दी तथा विशाल और उसकी सेना ने पच्चीस हजार सेना नष्ठ कर डाली ।१३। कवि और उसके दोनों पुत्रों ने बीस सहस्र सैनिक मार डाले। प्राज्ञ ने दस लाख और सुमंत्रक ने पाँच लाख सेना का संहार कर दिया ।१४। फिर जिन को भागता देख कर कल्किजी ने हँस कर उससे कहा—अरे दुर्मते ! भाग कर न जा। तू मुझे अदृष्ट स्वरूप एवं सभी शुभाशुभ फलों का देने वाला समझ कर मेरे सामने आ ।१५।

मद्बाणजालभिन्नाङ्गो निःसङ्गो यास्यसि क्षयम् ।
न यावत्पश्य तावत्वं बन्धूनां ललितं मुखम् ।१६।
कल्केरितीरितं श्रुत्वा जिनः ग्राह हसन्बली ।
दैवं त्वद्दश्यं शास्त्रे ते वधोऽयमुररीकृतः ।
प्रत्यक्षवादिनो बौद्धा वयं यूयं वृथाश्रमाः ।१७
यदि वा दैवरूपस्त्वं तथाप्यग्रे स्थिता वयम् ।
यदि भेत्तासि बाणौघैस्तदा बौद्धैः किमत्र ते ।१८।
सोपालम्भं त्वया ख्यातं त्वयेवास्तु स्थिरो भव ।
इति क्रोधाद्बाद्बाजालैः कल्कि घोरैः समावृणोत् ।१९।

स तु बाणमयं वर्षं क्षयं निन्येऽर्कवद्धिमम् ।२०।

तू मेरे बाणों से आहत होकर अभी परलोक को प्राप्त होगा । तब तेरा साथ कोई भी नहीं देगा । इसलिए अब तू अपने बंधु-बांधवों का सुन्दर मुख देख ले । १६। कल्किजी के वचन सुन कर वह बली जिन हँसा हुआ बोला--अदृष्ट कभी प्रमक्ष नहीं हो सकता । हम बौद्ध गण प्रत्यक्षके अतिरिक्त अन्य कुछभी नहीं मानते । हमारा शास्त्र कहता है कि हम अदृष्ट को नष्ट कर देंगे ।१७। यदि तुम दैव रूप हो तो हम तुम्हारे सामने खड़े हैं । यदि तुम हमें बाण से आहत करोगे तो क्या बौद्ध गण तुम्हें छोड़ देंगे ।१८। जो तुम हमारे प्रति तिरस्कार के वचन कहते हो, वे वचन तुम पर ही लौट जाएँगे, अब तुम सावधान होजाओ । यह कह कर जिन ने अपने तीक्ष्ण वाणों से कल्किजी को समावृत्त कर दिया ।१६। जैसे सूर्य के दिखाई देने पर हिमपात नाश को प्राप्त होता है, वैसे ही जिन द्वारा की गई बाण-वर्षा कल्किजी के स्पर्श से क्षीण होने लगी ।२०।

ब्राह्मं वायव्यमाग्नेयं पार्जन्यं चान्यदायुधम् ।
कल्केर्दर्शनमात्रेण निष्फलान्यभवन्क्षणात् ।२१।
यथोपरे बीजमुप्तं दानमश्रोत्रिये यथा ।
यथा विष्णौ मतां द्वेषादभक्तिर्येन कृताप्यहो ।२२।
कल्किस्तु तं वृषारूढमवप्लुत्य कचेऽग्रहीत् ।
ततस्तौ पेततुर्भूमौ ताम्रचूड़ाविव क्रुधा ।२३।
पतित्वा स कल्किकचं जाग्राह कत्करं करे ।२४।
ततः समुत्थितौ व्यग्रौ यथा चाणूरकेशवौ ।
धृतहस्तौ धृतकचौ ऋक्षाविव महाबलौ ।
युयुधाते महावीरौ जिनकल्की निरायुधौ ।२५।

जिन द्वारा प्रेरित ब्रह्मास्त्र, वायव्या, आग्नेयास्त्र, मेघास्त्र और अन्यान्य सभी अस्त्र कल्किजी के दर्शन मात्र फल-हीन हो गये ।२१। जैसे

ऊसर में बीज बोने पर भी अन्न उत्पन्न नहीं होता तथा अश्रोत्रिय को दिया हुआ दान निष्फल हो जाता है, अथवा साधुजनों का अनिष्ट चाहने वालों की हरि-भक्ति फलवती नहीं होती, वैसे ही 'जिन' के सभी अस्त्र निष्फलता को प्राप्त हो गये ।२२। फिर कल्किजी ने उछल कर वृषभ पर चढ़े हुए जिन के केश पकड़ लिए तथा दोनों ही पृथिवी क्रोधपूर्वक अरुण ज्वाल-शिखा के समान युद्ध में गुँथ गये ।२३। धरती पर गिरे हुए जिन ने भी अपने एक हाथ से कल्किजी के केश और दूसरे से हाथ पकड़ रखे थे ।२४। फिर जैसे चाणूर और श्रीकृष्ण के मध्य युद्ध हुआ था, उसी प्रकार दोनों पृथिवी से उठ कर परस्पर केश और हाथ पकड़ कर निरस्त्र उसी प्रकार लड़ने लगे, जैसे दो महाबली रीछ परस्पर में युद्ध करते हैं ।२५।

ततः कल्की महायोगी पदाघातेन तत्कटिम् ।
विभज्य पातयामास ताल मत्तगजो यथा ।२६।
जिन निपतितं दृष्ट्वा बौद्धा हाहेति चक्रुशुः ।
कल्केः सेनागणा विप्रा जहृषुर्निहतारयः ।२७।
जिने निपतिते भ्राता तस्या शुद्धोदनो बली ।
पदाचारी गदापाणिः कल्किं हन्तुं द्रुतं ययौ ।२८।
कविस्तु तं बाणवर्षैः परिवार्य समन्ततः ।
जगज्ज परवीरघ्नो गजमावृत्य सिंहवत् ।२९।
गदाहस्तं तमालोक्य पत्तिं स धर्मवित्कविः ।
पदातिगो गदापाणिस्तथौ शुद्धोदनाग्रतः ।३०।

जैसे मदमत्त गजराज ताल के वृक्ष को उखाड़ कर धराशायी कर देता है, वैसे ही कल्किजी ने पदाघात करके जिन की कमर तोड़ कर उसे धरती पर गिरा दिया ।२६। हे विप्रो ! उसको धराशायी हुआ देख कर बौद्ध सेना हाहाकार कर उठी तथा शत्रु का संहार हुआ देख कर कल्कि-सेना हर्षित हो गई ।२७। जिन को युद्ध स्थल में गिरा देखते ही उसका भाई बलवान् शुद्धोदन गदा लेकर कल्किजी को मारने के लिए

पैदल ही उन पर झपटा ।२८। हाथी पर सवार शत्रु-नाशक कवि ने शुद्धोदन को बाणों से ढक दिया और सिंहवत् गर्जन करने लगे ।२९। धर्मविद् कवि ने शुद्धोदन को गदा लिए पैदल ही युद्ध करते देखा तो वह भी पैदल ही उसके सामने जा डटे ।३०।

स तु शुद्धोदनस्तेन युयुधे भीमविक्रमः ।
गजः प्रतिगजेनेव दन्ताभ्यां सगदावुभौ ।३१।
युयुधाते महावीरौ गदायुद्ध विशारदौ ।
कृतप्रतिकृतौ मत्तौ नदन्तौ भैरवान्रवान् ।३२।
कविस्तु गदया गुर्व्या शुद्धोदनगदां नदन् ।
करादपास्याशु तया स्वया वक्षस्यताडयत् ।३३।
गदाघातेन निहतो वीरः शुद्धोदनो भुवि ।
पतित्वा सहसोत्थाय तं जघ्ने गदया पुनः ।३४।
संताडितेन तेनापि शिरसा स्तम्भितः कविः ।
न पपात स्थितस्तत्र स्थाणुवद्विह्वलेन्द्रियः ।३५।

जैसे हाथी शत्रु के हाथी से दाँतों के द्वारा युद्ध करता है, वैसे ही गदाधारी कवि और महापराक्रमी शुद्धोदन गदा-युद्ध में रत हो गए । युद्ध-मत्त दोनों वीर भयंकर शब्द करते हुए परस्पर गदाओं को रोकने लगे ।३१-३२। फिर सिंहनाद करते हुए कवि ने अपने गदाघात द्वारा शुद्धोदन की गदा गिरादी और फिर तुरन्त ही उसके हृदय पर पदाघात किया ।३३। गदाघात को प्राप्त हुआ शुद्धोदन तुरन्त ही पृथिवी पर पड़ा तथा पुनः सहसा उठ कर उसने कवि पर गदाघात किया ।३४। गदा लगने से कवि विकलेन्द्रिय और मूर्छित के समान खड़े हो गये, परन्तु पृथिवी पर गिरे नहीं ।३५।

शुद्धोदनस्तमालोक्य महासारं रथायुतः ।
प्रावृतं तरसा माया-देवीमानेतुमाययौ ।३६।
यस्या दर्शनमात्रेण देवासुरनरादयः ।

निःसाराः प्रतिमाकारा भवन्ति भुवनाश्रयाः ।३७।
बौद्धा शौद्धोदनाद्यग्रे कृत्वा तामग्रतः पुनः ।
योद्धुं समागता म्लेच्छकोटिलक्षशतैर्वृताः ।३८।
सिंहध्वजोत्थितरथां फेरु-काक-गणावृताम् ।
सर्वास्त्रशस्त्रजननी षड्वर्गपरिसेविताम् ।३९।
नानारूपां बलवतीं त्रिगुणव्यक्तिलक्षिताम् ।
मायां निरीक्ष्य पुरतः कल्किसेना समापतत् ।४०।

तब शुद्धोदन ने कवि को अत्यन्त पराक्रमी और रथ-सेना से सम्पन्न देख कर कर माया देवी आह्वानार्थ तुरन्त ही वहाँ से प्रस्थान किया ।३६। जिस माया देवी का दर्शन करते ही देवता, दैत्य, मनुष्य आदि सभी सांसारिक जीव तेजहीन और प्रतिभा के समान निश्चेष्ट हो जाते हैं, उसी को साथ लेकर शुद्धोदन आदि बौद्धगण अपने करोड़ों म्लेच्छ वीरों के सहित रणस्थल में पहुँचे ।३७-३८। सिंहध्वजा वाले रथ पर माया देवी आरूढ़ हुई और उसने अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र प्रकट किये । कौए और शृगाल उस माया देवी को सब ओर से घेरे हुए थे तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—यह षड्वर्ग उसकी सेवा कर रहे थे ।३९। वह अनेक प्रकार के रूप-धारण मे समर्थ, बलवती, त्रिगुणात्मिका माया देवी जैसे ही कल्कि-सेना के समक्ष पहुँची, वैसे ही उसे देख कर कल्कि-सेना क्षीणता को प्राप्त हो गई ।४०।

निःसारा प्रतिमाकाराः समस्ताः शस्त्रपाणयः ।४१।
कल्किस्तानालोक्य निजान्भ्रातृज्ञातिसुहृज्जनान् ।
मायया जायया जीर्णान्विभुरासीत्तदग्रतः ।४२।
तामालोक्य वरारोहां श्रीरूपां हरिरीश्वरः ।
सा प्रियेव तमालोक्य प्रविष्टा तस्य विग्रहे ।।४३।।
तामनालोक्य ते बौद्धा मातरं कतिधा वराः ।
रुरुदुः संघशो दीना हीनस्वबलपौरुषाः ।।४४।।

कल्किजी के शस्त्रधारी वीरगण प्रतिमा के समान चेष्टाहीन तथा बलहीन होगए।४१। फिर कल्किजी ने जब अपने बन्धु, जाति-बांधव और सुहृदों को मायारूपिणी अपनी पत्नी के द्वारा जीर्ण होते देखा तो वे उसके समक्ष पहुँचे।४२। जैसे ही उन्होंने श्रीस्वरूपा अपनी उस प्रिया की ओर देखा, वैसे ही वह वरारोहा उनके देह में प्रविष्ट हो गई।४३। तब अपनी उस माता माया देवी को न देख कर सभी प्रमुख बौद्ध बल पौरुष से रहित होकर रुदन करने लगे।४४।

विस्मयाविष्टमनसः क्व गतेयमथाब्रुवन् ।
कल्किः समालोकनेन समुत्थाप्य निजाञ्जनान् ।४५।
निशातमसिमादाय म्लेच्छान्हन्तुं मनो दधे ।
सन्नद्ध तुरगारूढं दृढहस्तधृतत्सरुम् ।४६
धनुर्निषङ्गमनिशं बाणजालप्रकाशितम् ।
धृतहस्ततनुत्राणगोधाङ्गुलि विराजितम् ।४७।
मेघोपर्युप्ततारामं दंशनस्वर्णबिन्दुकम् ।
किरीटकोटिविन्यस्त-मणिराजिविराजितम् ।४८।
कामिनीनयनानन्दसन्दोहरसमन्दिरम् ।
विपक्षपक्षविक्षेपक्षिप्तरूक्षकटाक्षकम् ।४९।
निजभक्तजनोल्लास-संवासचरणाम्बुजम् ।
निरीक्ष्य कल्किं ते बौद्धास्तत्रसुर्धर्मनिन्दकाः ।५०।

माया को न देख वे आश्चर्य चकित होकर परस्पर कहने लगे कि माया देवी कहाँ चली गई ? इधर कल्किजी ने अपनी सेना पर दृष्टि डाली तो वह स्वस्थ और सचेत हो गई तथा म्लेच्छों का संहार करने की इच्छा से कल्किजी तीक्ष्ण खड्ग लेकर घोड़े पर सवार हुए।४५-४६। उस समय बाणों से परिपूर्ण तरकश श्रेष्ठ धनुष, कवच एवं अंगुलित्राण से सुशोभित कल्किजी अद्भुत छटा वाले दिखाई देने लगे।४७। कवच के ऊपरी भाग में जड़ा हुआ स्वर्णबिन्दु, गलमाल में तारे के समान दमकता

था तथा किरीट के अग्रभाग में विविध प्रकार की जड़ी हुई मणियाँ चमक रही थीं ।४८। कामनियों के नयनों को आनन्द देने वाले रस के सदन रूप कल्किजी उस समय शत्रु-पक्ष को विक्षिप्त करने के उद्देश्य से उनकी ओर कटाक्ष करने लगे ।४६। भक्तजन अपने भगवान् कल्किजी के चरणारविन्दों का दर्शन करके उल्लसित हो उठे और धर्म-निन्दक बौद्धगण भय से काँपने लगे ।५०।

जहृषुः सुरभङ्गाः खे यागाहुतिहुताशनाः ।५१।
सुबलमिलनहृषः शत्रुनाशंतकर्षः समरवरविलासः
साधुसत्कारकाशः । स्वजनदुरितहर्त्ता जीवजातस्य
भर्त्ता रचयतु कुशलं वः कामपूगावतारः ।५२।

यह देख कर आकाश में स्थित देवता कहने लगे कि अब युद्ध-भूमि रूपी यज्ञस्थल में स्थित अग्नि में पुनः आहुति डाली जाने को है ।५१। जो अस्त्रशस्त्रों से सुसज्जित सेनाओं को इकट्ठी करके शत्रुओं को नष्ट करने वाले, लीलापूर्वक संग्राम में तत्पर साधुओं के सत्कार-कर्त्ता, स्वजनों के दुःखों का विनाश एवं सब प्राणियों का भरण करने वाले हैं, वे संतों की अभिलाषा पूर्ण करने वाले भगवान् कल्किजी सब प्रकार कल्याण करें ।५२।

॥ द्वितीय अंश समाप्त ॥

तृतीयांश—

प्रथम अध्याय

ततः कल्किर्म्लेच्छगणान्करवालेन कालितान् ।
बाणैः सन्ताडितानन्याननयद्यमसादनम् ।१।
विशाखयूपोऽपि तथा कविप्राज्ञसुमन्त्रकाः ।
गार्ग्यभार्ग्यविशालाद्या म्लेच्छान्निन्युर्यमक्षयम् ।२।
कपोतरोमा काकाक्षः काककृष्णादयोऽपरे ।
बौद्धाः शौद्धोदना याता युयुधुः कल्किसैनिकैः ।३।
तेषां युद्धमभूद्धोरं भयदं सर्वदेहिनाम् ।
भूतेशानन्दजनकं रुधिरारुणकर्द्दमम् ।४।
गजाश्वरथसंघातां पततां रुधिरस्रवैः ।
स्रवन्ती केशशैवाला वाजिग्रहा सुगाहिको ।५।

सूतजी बोले--फिर कल्किजी ने कुछ म्लेच्छों को बाणों द्वारा बींध दिया और कुछ को तलवार से मार कर यम लोक में भेज दिया ।१। विशाखयूपनरेश, कवि, प्राज्ञ, सुमंत्रक, गर्ग्य, भर्ग्य और विशालादि ने भी उन म्लेच्छों को यमपुरी पठाया ।२। फिर कपोतरोमा, काकाक्ष, काककृष्ण और शुद्धोदन आदि बौद्ध योद्धागण कल्कि-सेना से युद्ध में तत्पर हुए ।३। उस घोर संग्राम को देख कर सभी प्राणी भयभीत हुए । रक्त युक्त लाल कीचड़ से रणभूमि ढक गई, यह देख कर भूतनाथ हर्षित हो उठे ।४। युद्धस्थल में गिरे हुए हाथियों, अश्वों और रथियों के

रक्तपात से लोहित की नदी बह चली, जिसमें केश सिवार जैसे लगने लगे और अश्व रूपी ग्रह धार में प्रवाहित होने लगे ।५।

धनुस्तरङ्गा दुष्पारा गजरोधः प्रवाहिणी ।
शिरःकूर्मा रथतरिः पाणिमीनासृगापगा ।६।
प्रवृत्ता तत्र बहुधा हर्षयन्तो मनस्विनाम् ।
दुन्दुभेयरवा फेरुशकुनानन्ददायिनी ।७।
गजैर्गजा नरैश्शरवाः खरैरुष्ट्रा रथै रथाः ।
निपेतुर्बाणभिन्नाङ्गाः छिन्नबाह्वङ्घ्रिकन्धरा ।८।
भस्मना गुण्ठितमुखा रक्तवस्त्रा निवारताः ।
विकीर्णकेशाः परितो तान्ति सन्यासिनो यथा ।९।
व्यग्राः केऽपि पलायन्ते याचन्त्यन्य जलं पुनः ।
कल्किसेनाशुगक्षुण्णा म्लेच्छा नो शर्म लेभिरे ।१०।

उस लोहित नदी में धनुष तरंग के समान उछलने लगे, हाथी इस नदी में सेतु के समान लगते थे, कटे हुए शीश कछुओं के समान, रथ नाव के समान और कटे हुए हाथ मछली के समान दिखाई देते थे ।६। लोहित नदी के किनारे गीदड़ों और बाज पक्षियों की हर्ष ध्वनि दुंदुभि की ध्वनि जैसी लगती थी । उसे देख कर मनस्वी लोग हर्षित हो उठे ।७। युद्ध क्षेत्र में हाथी सवार हाथी सवार से, अश्वारोही अश्वारोही से, ऊँट वाला ऊँट वाले से, रथ रथी से भिड़ा हुआ था । उस समय बाणों से कट-कट कर हाथ, पाँव और मस्तक धरती पर गिर रहे थे ।८। बहुत से वीरों ने भयभीत होकर गेरुए वस्त्र धारण कर, भस्म रमा ली तथा विकीर्ण केश होकर संन्यासी बन कर रोके जाने पर भी पलायन कर गये ।९। कोई-कोई विकल होकर भागा, कोई जल माँगता रहा । इस प्रकार कल्कि-सेना के बाणों की मार से कोई म्लेच्छ वीर सकुशल न रहा ।१०।

तेषां स्त्रियो रथारूढा गजारूढा विहङ्गमाः ।
समारूढा हयारूढा खरोष्ट्रवृषवाहनाः ।११।
योद्धुं समाययुस्त्यक्त्वा पत्यापत्यसुखाश्रयान् ।
रूपवत्योऽतिबलवत्यः पतिव्रताः ।१२।
नानाभरणभूषाढ्याः सन्नद्धा विशदप्रभाः ।
खड्गशक्तिधनुर्बाणवलयाक्तकराम्बुजा ।१३।
स्वैरिण्योऽप्यतिकामिन्यो पुंश्चल्यश्च पतिव्रताः ।
ययुर्योद्धुं कल्किसैन्यैः पतीनां निधनातुराः ।१४।
मृद्भस्मकाष्ठचित्राणां प्रभुताम्नायशासनात् ।
साक्षात्पतीनां निधनं किं युवत्योऽपि सेहिरे ।१५।

उन म्लेच्छों की रूपवती बलवती, पतिव्रता युवती स्त्रियाँ भी सन्तान-सुख की और उनके आश्रय की कामना छोड कर कोई रथ पर चढ़ कर, कोई हाथी पर चढ कर, कोई विहंग पर चढ़ कर, कोई घोड़े, गधे, ऊँट पर, कोई बैल पर चढ़ कर युद्ध करने के लिए अपने-अपने पति के पास पहुँचीं ।११-१२। इन्होंने अनेक प्रकार के उज्ज्वल आभूषण एव शस्त्रास्त्र धारण कर रखे थे। इनके हाथों में कड़ों के साथ ही खड्ग और बाण भी सुशोभित थे ।१३। सुन्दर लावण्यमयी यह स्त्रियाँ कोई स्वैरिणी, कोई वार-विलासिनी अथवा कोई पतिव्रता थीं। यह पति-वियोग में व्याकुल हुई स्त्रियाँ कल्कि-सेना से युद्ध करने को अग्रसर हुईं ।१४। क्योंकि मनुष्य मिट्टी, काष्ठ एवं राख की वस्तु पर भी प्राण देने में तत्पर होजाते हैं, इसी प्रकार अपने प्राण के समान पति का मरण सहन करना युवतियों के लिए भी संभव नहीं होता ।१५।

ताः स्त्रियः स्वपतीन्बाणभिन्नान्व्याकुलितेन्द्रियान् ।
कृत्वा पश्चाद्युयुधिरे कल्किसैन्यैधृतायुधाः ।१६।
ताः स्त्रीरुद्वीक्ष्य ते सर्वे विस्मयस्मितमानसाः ।
कल्किमागत्य ते योधाः कथयामासुरादरात् ।१७।

स्त्रीणामेव युयुत्सूनां कथा श्रुत्वा महामतिः ।
कल्किः समुदितः प्रायात्स्वसैन्यैः सनुगो रथैः ।१८।
ताः समालोक्य पद्मेशः सर्वशस्त्रास्त्रधारिणीः ।
नानावाहनसारूढा कृतव्यूहा उवाच सः ।१९।
रे स्त्रियः शृणुतास्माकं वचनं पथ्यमुत्तमम् ।
स्त्रिया युद्धे न किं पुंसां व्यवहारोऽत्र विद्यते ।२०।

वे म्लेच्छ स्त्रियाँ अपने पतियों को बाणों से बिंधे हुए तथा व्याकुल देख कर उन्हें पीछे हटाती हुई हथियार लेकर कल्कि सेना से युद्ध करने लगीं ।१६। उन स्त्रियों को युद्ध में तत्पर देख कर कल्कि-सेना आश्चर्य में पड़ गई और उसने कल्किजी के समक्ष जाकर उन्हें सब वृत्तान्त सूचित किया ।१७। युद्ध की इच्छा वाली उन स्त्रियों का युद्ध करना सुन कर प्रसन्न हुए कल्किजी रथ पर चढ़ कर सेना और अनुचरों के सहित रणभूमि में पहुंचे ।१८। अनेक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जिता, अनेक प्रकार के वाहनों पर चढ़ी हुई, व्यूह रचना करके युद्ध में तत्पर उन स्त्रियों को देख कर कल्किजी बोले ।१९। कल्किजी ने कहा—हे स्त्रियो ! मैं तुम्हारे हितार्थ श्रेष्ठ वचन कहता हूँ, वह सुनो । स्त्रियों को पुरुषों के साथ युद्ध नहीं करना चाहिए ।२०।

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा प्राहस्य प्राहुरादृताः ।
अस्माकं त्वं पतीन् हंसि तेन नष्टा वयं विभो ! ।
हन्तुं गतानामस्त्राणि कराण्येवागतान्युत ।२१।
खड्ग-शक्ति-धनुर्बाण-शूल-तोमर-यष्टयः ।
ताः प्राहुः पुरतो मूर्त्ताः कार्तस्वरविभूषणाः ।२२।
यामासाद्य वयं नार्यो हिंसायामः स्वजेतसा ।
तमात्मनं सर्वमयं जानीत कृतनिश्चयाः ।२३।
तमीशमात्मना नार्यः ! चरामो यदनुज्ञया ।
यत्कृता नामरूपादिभेदेन विदिता वयम् ।२४।

रूप-गन्ध-रस-स्पर्श-शब्दाद्या भूतपञ्चकाः ।
चरन्ति यदधिष्ठानात्सोऽयं कल्किः परात्मकः ।२५।

कल्किजी के वचन सुन कर म्लेच्छ-पत्नियाँ हँस पड़ीं । उन्होंने कहा—हे विभो ! जब तुम्हारे द्वारा हमारे पति ही नाश को प्राप्त हो गये, तब हम भी नष्ट हो चुकीं । यह कह कर वे नारियाँ कल्किजी को मारने को तत्पर हुईं । उन्होंने जो अस्त्र छोड़ने चाहे, वे अस्त्र उनके हाथों में ही रुके रह गये ।२१। खड्ग, शक्ति, धनुष-बाण, शूल, तोमर, यष्टि आदि शस्त्रास्त्रों के स्वर्ण-सज्जित देवता साक्षात् प्रकट हो कर उन म्लेच्छ-पत्नियों के प्रति बोले ।२२। देव रूपी अस्त्रों ने कहा—हे नारियो ! हम जिस तेज के द्वारा जीवों का संहार करते रहते हैं, वह तेज हमें जिनसे प्राप्त हुआ है, वह सर्वमय ईश्वर यही हैं, यह समझ लो ।२३। हे स्त्रियो ! हम इन्हीं परमात्मा की प्रेरणा प्राप्त कर गतिशील होते हैं तथा इनके द्वारा ही हम नाम-रूप को पाकर जाने जाते हैं ।२४। रूप, गन्ध, रस, स्पर्श तथा शब्दादि पंचगुण के आश्रय रूप पंचभूत जिनके अधिष्ठान से अपने-अपने कार्य में उद्यत रहते हैं, यह कल्किजी वही ईश्वर हैं ।२५।

काल-स्वभाव-संस्कार-नामाद्या प्रकृतिः परा ।
यस्येक्षया सृजत्यण्ड महाहङ्कारकादिकान् ।२६।
य-मायया जगद्यात्रा सर्गस्थित्यन्तसंज्ञिता ।
य एवाद्यः स एवान्ते तस्यायः सोऽयमीश्वरः ।२७।
असौ पतिर्मे भार्याहमस्य पुत्राप्तबान्धवाः ।
स्वप्नोपमास्तु तन्निष्ठा विविधाश्चैन्द्रजालवत् ।२८।
स्नेहमोहनिबन्धानां यातायातदृशां मतम् ।
न कल्किसेविनां रागद्वेषविद्वेषकारिणाम् ।२९।
कुतः कालः कुतो मृत्युः क्व यमः क्वास्तिदेवताः
स एव कल्किर्भगवान्मायया बहुलीकृतः ।३०।

इन्ही की आज्ञा से काल, स्वभाव, संस्कार तथा संज्ञा आदि की आश्रयभूता परा प्रकृति, महत्तत्व और अहंकार आदि को उत्पन्न करने में समर्थ होती हैं।२६। सर्ग, स्थिति और प्रलयात्मक यह सम्पूर्ण विश्व जिनकी माया ही है, यह वही सबके आदि-रूप ईश्वर हैं। इनके द्वारा ही लोक में शुभाशुभ का प्रवर्तन होता है।२७। यह मेरा पति है और मैं इसकी भार्या हूँ, यह मेरा पुत्र अथवा बान्धव है। ऐसे स्वप्न अथवा इन्द्रजाल के समान विविध प्रकार के व्यवहार की उत्पत्ति इन्हीं के द्वारा होती है।२८। स्नेह और मोहादि के बन्धन में पड़े रह कर जो प्राणी इस विश्व के आवागमन में रहे आते हैं अथवा जा राग, द्वेष एवं विद्वेषादि के आश्रय रहने वाले जीव तथा भगवान् कल्कि की सेवा में अनुराग न रखने वाले हैं, वही इस जगत को सत्य मानते हैं।२९। काल कहां से आया ? मृत्यु कहाँ से उत्पन्न हुई ? यम तथा देवगण कौन हैं ? यह कल्किजी के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हैं, यही अपनी माया के द्वारा बहुरूप हो गए हैं।३०।

न शस्त्राणि वयं नार्यः संप्रहार्या न च क्वचित् ।
शस्त्र प्रहर्तृभेदोऽयमविवेकः परात्मनः ।३१।
कल्किदासस्यापि वयं हन्तु नार्हाः कथोद्भुतम् ।
हनिष्यामो दैत्यपतेः प्रहलादस्य यथा हरिम् ।३२।
इत्यस्त्राणां वचः श्रुत्वा स्त्रियो विस्मितमानसाः ।
स्नेहमोहविनिर्मुक्तास्तं कल्कि शरणं ययुः ।।३३।।
ताः समालोक्य पद्मेशः प्रणता ज्ञाननिष्ठया ।
प्रोवाच प्रहसन् भक्ति-योगं कल्मषनाशनम् ।३४।

हे स्त्रियो ! हम शस्त्र नहीं हैं, हम किसी पर आघात करने में भी समर्थ नहीं हैं। यही परमात्मा स्वयं शस्त्र हैं और यही आघात करने की शक्ति से सम्पन्न हैं। इनमें जो भेद प्रतीत होता है, वह सब इनकी माया ही है।३१। दैत्यराज प्रह्लाद की प्रार्थना पर जब भगवान् विष्णु

विष्णु नृसिंह रूप हुए थे, उस समय हम जैसे उन पर आघात करने में समर्थ नहीं हो सके थे, वैसे ही इन कल्किजी और उनके सेवकों पर भी आघात करने में पूर्णतया असमर्थ हैं ।३२। अस्त्रों के यह वचन सुनकर स्त्रियां अत्यन्त विस्मित हुई और तब वे स्नेह और मोह से युक्त होकर कल्किजी की शरण में पहुँचीं ।३३। भगवान कल्कि म्लेच्छ-नारियों को ज्ञाननिष्ठा में स्थित देखकर उनके प्रति पापों का नाश करने वाला भक्ति-योग हँसते हुए कहने लगे ।३४।

कर्मयोगश्चात्मनिष्ठं ज्ञानयोगं भिदाश्रयम् ।
नैष्कर्म्यलक्षणं तासां कथयामास माधव: ३५।
ता: स्त्रिय: कल्कि गदित ज्ञानेन विजितेन्द्रिया: ।
भक्त्या परमवापुस्तत्योगिनां दुर्लभं पदम् ।३६।
दत्वा मोक्ष म्लेच्छबौद्धपियाणां कृत्वा युद्धं
भैरव भीमकर्मा । हत्वा बौद्धान् म्लेच्छ संघाश्च
कल्किस्तेषां ज्योति: स्थानापूर्प रेजे ।३७।
येश्रृण्वन्ति वदन्ति बौद्धनिधनं म्लेच्छक्षयं सादराल्लोका:
शोकहरं सदा शुभकरं भक्तिप्रदं माधवे ।
तेषामेव पुनर्न जन्ममरणं सर्वार्थसम्पत्करं
माया मोहविनाशनं प्रतिदिनं संसारतापच्छिदम् ।३८।

तदनन्तर उन्होंने उन नारियों को कर्मयोग, आत्मनिष्ठात्मक ज्ञान-योग, भेदाश्रय, निष्कर्मत्व के लक्षण आदि का प्रसंग सुनाया ।३५। इस प्रकार जब वे म्लेच्छ रमणियाँ कल्कि-प्रदत्त ज्ञानोपदेश से सचेत होकर इन्द्रियों का दमन करके, भक्ति करती हुई, योगियों को भी दुर्लभ मोक्ष पद को प्राप्त हो गई ।३६। इस प्रकार उन भीमकर्मा कल्किजी घोर युद्धमें बौद्ध और म्लेच्छों का संहार कर दिया, और उनकी स्त्रियों को मोक्षपद प्रदान करके मरे हुए म्लेच्छों और बौद्धों को ज्योतिर्मय स्थान में स्थित कर विराजमान हुए ।३७। जो इस बौद्धों के निधन एवं म्लेच्छों के क्षीण होने की कथा को सुनेंगे, वे सभी शोकों से मुक्त होकर कल्याण को प्राप्त होंगे । भगवान के प्रति उनके हृदय में भक्ति का संचार होगा और वे जन्म- मरण के चक्र से छूट जाँयगे । इस कथा के सुनने से सर्व ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है और माया-मोह का विनाश होता है, तथा संसार के ताप का सदा उच्छेद करने में समर्थ होता है ।३८। —※—

द्वितीय अध्याय

ततो बौद्धान् म्लेच्छगणान्विजित्य सह सैनिकैः ।
धनान्यदाय रत्नानि कीकटात्पुनरव्रजत् ।१।
कल्किः परमतेजस्वी धर्माणां परिरक्षकः ।
चक्रतीर्थं समागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ।२।
भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्बहुभिः स्वजनैर्वृतः ।
समायातान्मुनीं स्तत्र ददृशे दीनमानसान् ।३।
समुद्भियागतांस्त परिपाहि जगत्पते ।
इत्युक्तवन्तो बहुधा ये तानाह हरि परः ।४।
वालखिल्यादिकानल्पकायाञ्चीरजटाधरान् ।
विनयावनतः कल्किरतनानाह कृपणान्भयात् ।५

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! बौद्धों और म्लेच्छों पर विजय प्राप्त करके भगवान कल्कि धन रत्नादि लेकर सेना के सहित उस कीकटपुरी से चल दिये ।१। फिर वे परम तेजस्वी एवं धर्मवान् कल्किजी चक्रतीर्थ में पहुंचे और वहाँ उन्होंने विधिपूर्वक स्नान किया ।२। तदनन्तर वे अपने बन्धु-बांधवों के साथ लोकपाल के समान सुशोभित होते हुए वहीं निवास करने लगे । कुछ समयोपरान्त उन्होंने दीनता पूर्वक आये हुए कुछ मुनियों को देखा ।३। वे भयभीत मुनिवरण कल्किजी की शरण में पहुँच कर बोले—हे जगत्पते ! हमारी रक्षा करो, रक्षा करो । इस पर भगवान श्रीहरि बोले ।४। उन्होंने अल्प देह वाले छिन्न वस्त्राभूषण और जटा धारण करने वाले बालखिल्यादि मुनियों से विनय और कृपा पूर्वक कहा ।५।

कस्माद्यूयं समायाताः केन वा भीषिता वत ।
तमहं निहनिष्यामि यदि वा स्यात्पुरन्दरः ।६।
इत्याश्रुत्य कल्किवाक्यं तेनोल्लासितमानसाः ।
जगदुः पुण्डरोकाक्षं निकुम्भदुहितुः कथा ।७।
शृणुविष्णुयशःपुत्र ! कुम्भकर्णात्मजात्मजा ।
कुथोदरीति विख्याता गगनार्द्धसमुत्थिता ।८।
कालकञ्जस्य महिषी विकञ्जजननी च सा ।
हिमालये शिरः कृत्वा पादौ च निषधाचले ।
शेते स्तनं पाययन्ती विकञ्जं प्रस्नुतस्तनी ।९।
तस्या निश्वासवातेन विवशा वयमागताः ।
दैवेनैव समानीताः संप्राप्तास्त्वत्पदास्पदम् ।
मुनयो रक्षणीयास्ते रक्षःसु च विपत्सु च ।।१०।।

आप कहाँ से आ रहे हैं ? किससे डरे हुए हैं ? यह सब वृतान्त मुझे बताओ, फिर यदि आपका अपकार करने वाला इन्द्र भी होगा, तो भी मैं उसे नष्ट कर दूँगा ।६। पुण्डरीकाक्ष कल्किजी के वाक्य सुनकर आश्वस्त हुए मुनियों के हृदय प्रफुल्लित हो गये और तब उन्होंने दैत्यराज निकुंभ की पुत्री की कथा सुनाई ।७। मुनियों ने कहा— हे विष्णुयश के पुत्र ! हे प्रभो ! सुनिये, कुम्भकर्ण का एक पुत्र निकुम्भ था, उसकी एक कन्या कुथोदरी नाम की है । उसका आकार गगनमँडल से भी ऊँचा है ।८। वह कालकंज नामक दैत्य की पत्नी है, उसका पुत्र विकंज है । वह राक्षसी अपना मस्तक हिमालय पर और पांव निषध पर्वत पर रखकर विकंज को स्तन पिला रही है ।९। हे देव ! हम उसकी श्वासवायु से उत्पीडित होकर दैव-प्रेरणा वश यहाँ उपस्थित हुए हैं । अब हम आपके चरणाश्रय को प्राप्त हो चुके हैं अतः उससे हमारी शीघ्र रक्षा कीजिये ।१०

इति तेषां वचः श्रुत्वा कल्किः परपुरञ्जयः ।

सेनागरणैः परिव्रतो जगाम हिमबद्गिरिम् ।११।
उपत्यकां समासाद्य निशामेकां निनाय सः :
प्रातर्जिगमिषुः सैन्यैर्ददृशे क्षीरनिम्नगाम् ।१२।
शखेन्दुधवलाकारां फेनिलां बृहतीं द्रुतम् ।
चलन्तीं वीक्ष्यते सर्वे स्तम्भिता विस्मयान्विताः ।१३।
सेनागणगजाश्वादिरथयोधैः समावृतः ।
कल्किस्तु भगवांस्तत्र ज्ञातार्थोऽपि मुनीश्वरान् ।१४।
पप्रच्छ का नदी चेयं कथं दुग्धवहाभवत् ।
ते कल्केस्तु वचः श्रुत्वा मुनयः प्राहुरा दरात् ।।१५।।

उनके यह वचन सुनकर शत्रु-नगरों को विजय करने वाले भगवान् कल्कि अपनी सेना के सहित हिमालय की ओर चले ।११। वहाँ पहुँच कर उन्होंने एक रात्रि निवास किया और प्रातःकाल होते ही, जैसे ही सना के सहित आगे चलने लगे, वैसे ही उन्हें एक दूध की नदी दिखाई दी ।१२। यह नदी शंख तथा चन्द्रमा के समान श्वेत थी, वह दीर्घाकार वाली फेनिल नदी वेगपूर्वक बह रही थी । सेना के सभी लोग उस दूध की नदी को देखकर आश्चर्य से चकित हो गये ।१३। यद्यपि भगवान् कल्कि उस नदी के विषय में सब कुछ जानते थे, फिर भी गज, अश्व, रथ तथा पदाति सैनिकों से युक्त कल्किजी ने उन मुनीश्वरों से पूछा—'इस नदी का नाम क्या है ? इसमें यह दुग्ध किस प्रकार प्रवाहित है ?' यह सुनकर वे मुनिगण आदरपूर्वक बोले ।१४-१५।

शृणु कल्के पयस्वत्याः प्रभवं हिमवद्गिरौ ।
समायाता कुथोदर्याः स्तनप्रस्नवनादिहि ।१६।
घटिकासप्तकैश्चान्या पयो यास्यति वेगितम् ।
हीनसारा तटाकारा भविष्यति महामते ।१७।
इति श्रुत्वा मुनीनान्तु वचनं सैनिकैः सह ।
अहो किमस्या राक्षस्याः स्तनादेका त्वियं नदी ।१८।

एकं स्तनं पाययति विकञ्जं पुत्रमादरात् ।
न जानेऽस्याः शरीरस्य प्रमाणं कति वा भवेत् ।।१९।।
बलं वास्या निशाचर्य्या इत्यूचुर्विस्मयान्विताः ।
कल्किः परात्मा सन्नह्य सेनाभिः सहसा ययौ ।।२०।।

हे प्रभो ! हे कल्के ! इस पयस्विनी नदी की उत्पत्ति के विषय में कहते हैं, इसे सुनिये । उस कुथोदरी नाम की राक्षसी के स्तनों से निकला हुआ दूध हिमालय पर्वत से गिरता हुआ नदी रूप में वह रहा है ।। १६ ।। हे महामते ! सात घड़ी के पश्चात् इसी प्रकार की एक अन्य पयस्विनी नदी प्रवाहित होगी । इसके पश्चात् यह नदी सूख कर तटाकार में परिवर्तित हो जायगी ।।१७।। सेना सहित सुशोभित कल्किजी मुनियों के वचन सुनकर बोले—अहो, कैसे विस्मय का विषय है कि राक्षसी के स्तनों से निर्गत हुए दुग्ध से इतनी बड़ी नदी उत्पन्न होकर वह रही है ।।१८।। वह अपना एक स्तन अपने पुत्र विकुन्ज को पिला रही है तो इसके देह का परिमाण क्या होगा ? यह किस प्रकार जाना जा सकता है ? ।।१९।। तब सभी आश्चर्य में भर कर बोल उठे-- अहो ! इस राक्षसी में कितना बल है ? तदनन्तर सेना से सुसज्जित हुए कल्कि जी उस राक्षसी की ओर चल पड़े ।।२०।।

मुनिदर्शितमार्गेण यत्रास्ते सा निशाचरी ।
पुत्रं स्तनं पाययन्ती गिरिमूर्द्ध्नि घनोपमा ।।२१।।
श्वासवातातिवातेन दूरक्षिप्तवनद्विपाः ।
यस्याः कर्णबिलावासं प्रसुप्ताः सिंहसंकुलाः ।।२२।।
पुत्रपौत्रपरिवृता गिरिगह्वरविभ्रमाः ।
केशमूलमुपालम्ब्य हरिणा शेरते चिरम् ।। २३ ।।
यूका इव न च व्यग्रा लुब्धजातङ्कया भृशम् ।
तामालोक्य गिरेर्मूर्ध्नि गिरितत्परमाद्भुताम् ।।२४।।
कल्किः कमलपत्राक्षः सर्वांस्तानाह सैनिकान् ।
भयोद्विग्नान्बुद्धिहीनान्त्यक्तोद्यमशमपरिच्छदान् ।।२५।।

वे मुनिगण उस मार्ग का दर्शन करने लगे जो राक्षसी के स्थान को जाता था। वहाँ पहुंच कर उन्होंने उस मेघाकार राक्षसी को गिरि शिखर पर अपने पुत्र को स्तन-पान कराते हुए देखा ॥२१॥ बन के हाथी उसकी श्वास-वायु के थपेड़े खाकर दूर जा गिरते है तथा उसके कानों के छेदों में सिंह पड़े सो रहे हैं ॥२२॥ उसके रोम छिद्रों को गिरि-गुहा समझ कर अपने पुत्र पौत्रों से युक्त हरिण गण भी उनमें घुस कर सो रहे हैं ॥२३॥ वहाँ रह कर व्याध के भय से बचे हुए हैं तथा लीख के समान स्थित हैं। पर्वत की चोटी पर अन्य पर्वत के समान स्थित उस राक्षसी को देख कर हत बुद्धि एवं भयभीत तथा शस्त्रास्त्र त्याग कर भागने को उद्यत अपने सैनिकों से भगवान् कल्कि बोले ॥ २४-२५ ॥

गिरिदुर्गवन्हिदुर्ग कृत्वा तिष्ठान्तु मामकाः ।
गजाश्वरथयोधा ये समायान्तु मया सह ॥२६॥
अहं स्वल्पेन सैन्येन यास्यस्याः संमुख शनैः ।
प्रहर्तुं बाणसन्दोहैः खड्गशक्तिपरश्वधैः ॥२७॥
इत्युक्त्वास्थाप्य पश्चात्तान्बाणैस्तां समहनद्बली ।
सा क्रुधोत्थाय सहसा ननर्द परमाद्भुतम् ॥२८॥
तेन नादेन महता वित्रस्ताश्चाभवञ्जनाः
निपेतुः सैनिकाः सर्वे मूच्छिता धरणातले ॥२९॥
सा रथांश्च गजांश्चापि विवृतास्या भयानका ।
जघास प्रश्वासवातैः समानीय कुथोदरी ॥ ३०॥

उन्होंने कहा — इस पर्वतीय, दुर्ग में अग्नि दुर्ग वना कर तुम सब यही ठहरो तथा गजारूढ़, अश्वारूढ़ और रथी वीर हमारे साथ आगे बढ़े ॥ २६ ॥ मैं अल्प सेना को साथ लेकर बाणों, तलवारों और फरसों के द्वारा प्रहार करने के लिए अग्रसर होता हूँ ॥२७ ॥ यह कह कर कल्कि जी ने सेना को तो पीछे छोड़ा और आगे बढ़ कर रासक्षी पर बाणों से प्रहार करने लगे। यह देख कर राक्षसी ने भी

क्रोध पूर्वक अद्‌भुत नाद किया ।। २८ ।। उस घोर निनाद को सुन कर सभी भयभीत हो गये तथा सब सेनापति मूच्छित एवं धराशायी हो गये ।।२९।। तब वह राक्षसी कुथोदरी अपने भयंकर मुख को खोल कर अपने प्रश्वास के द्वारा ही रथ, अश्व, गजादि को खींच-खींच कर हड़प करने लगी ।। ३० ।।

सेनागणास्तदुदरं प्रविष्टाः कल्किना सह ।
यथर्क्षमुखबातेन प्रविशन्ति पिपीलिकाः ।।३१।।
तद्दृष्ट्वा देवगन्धर्वा हाहाकारं प्रचक्रिरे ।
तत्रस्था मुनयः शेपुर्जेपुश्चान्ये महर्षयः ।। ३२।।
निपेतुरन्ये दुःखार्त्ता ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
रुरुदुः शिष्टयोधा ये जहृषुस्तन्निशाचराः ।। ३३ ।।
जगतां कदनं दृष्ट्वा सस्मारात्मानमात्मना ।
कल्किः कमलपत्राक्षः सुरारातिनिषूदनः ।। ३४ ।।
बाणाग्नि चेलचर्माभ्यां कर्म्मनैर्यानदारुभिः ।
प्रज्वाल्योदरमध्येन करवालं समाददे ।। ३५ ।।

जैसे रीछ के प्रश्वास खींचने से चीटियाँ आकर्षित होकर उसके मुख में पहुंच जाती हैं, वैसे ही अपनी सेना के सहित भगवान कल्कि उस राक्षसी के मुख में प्रविष्ट हो गये ।।३१।। यह देख कर सब देवता-गन्धर्व हाहाकार कर उठे, मुनिगण ने उस राक्षसी को शाप दिये और महर्षिगण कल्कि जी की कुशल के निमित्त मन्त्र-जप में संलग्न हुए ।।३२।। वेदज्ञ ब्राह्मण दुःख से अचेत हो गये, प्रभु-भक्त वीर रोने लगे और राक्षस गण आनन्द में निमग्न हो गये ।। ३३ ।। देव शत्रुओं के नाशक भगवान कल्कि ने जब सम्पूर्ण विश्व को इस प्रकार दुःखी देखा तो वे स्वयं अपना ही स्मरण करने लगे ।।३४।। फिर कल्कि जी ने राक्षसी के उस अन्धकार मय उदर में अपने बाण द्वारा अग्नि उत्पन्न की और चर्म तथा रथ के काष्ठादि के द्वारा उस अग्नि को प्रज्वलित कर हाथ में तलवार ग्रहण की ।।३५।।

तेन खड्गेन महता दाक्ष्यं निर्भिद्य बन्धुभिः ।
बलिभिर्भ्रातृभिर्बाहैर्वृतः शस्त्रास्त्रपाणिभिः ।।३६।।
बहिर्बभूव सर्वेशः कल्किः कल्कविनाशनः ।
सहस्राक्षौ यथा वृत्रकुक्षि दम्भोलिनेमिना ।।३७।।
यानिरध्राद्गजरथस्तुरगाश्चाभवनन्बहिः ।
नासिकाकर्णविवरात्कोऽपि तस्या विनिर्गताः ।।३८ ।।
ते निर्गतास्ततस्तस्याः सैनिका रुधिरोक्षिताः ।
तां विव्यधुर्निक्षिपन्तीं तरसा चरणौ करौ ।।३९।।
ममार सा भिन्नदेहा भिन्नकुक्षिशिरोधरा ।
नादयन्तीं दिशो द्योः ख चूर्णयन्ती च पर्वतान् ।।४०।।

जैसे देवराज इन्द्र वृत्रासुर की कुक्षि को अपने वज्र से भेद कर बाहर आये थे, वैसे ही सर्वेश्वर एवं पापों का नाश करने वाले कल्कि-जी ने अपनी वृहद् तलवार से राक्षसी की दक्षिण कुक्षि चीर डाली और अपने शस्त्रास्त्र धारी बांधवों के सहित बाहर निकल आये ।। ३६-३७ ।। बहुत से गज, अश्व रथ और पैदल उसके अधो मार्ग से और बहुत-से उसके कानों तथा नासिका छिद्रों से होकर बाहर आ गये । ३८।। फिर वे रक्त से भीगे हुए वीर गण राक्षसी के देह से बाहर निकल कर, को हाथ-पैर चलाती देख कर बाणों द्वारा उसका वेधन करने लगे ।।३९।। जब उसके उदर मस्तक तथा अन्यान्य अंग छिन्न–भिन्न होने लगे तब उसकी घोर चीत्कार से दशों दिशाएं गूंज उठीं । फिर वह पर्वतों पर गिर कर उन्हें चूर-चूर करती हुई मृत्यु को प्राप्त हुई ।।४०।।

करञ्जोऽपि तथा वीक्ष्य मातरं कातरोऽभवत् ।
स विकञ्जः क्रुधा धावन्सेनामध्ये निरायुधः ।।४१।।
गजमालाकुलो वक्षोवाजिराजिविभूषणः ।
महासर्पकृतोष्णीषा केसरीमुद्रिताङ्गुलिः ।।४२।।
ममर्द कल्किसेनां तां मातुर्व्यसनकर्षितः ।
स कल्किरतं ब्राह्ममस्त्रं रामदत्तं जिघांसया ।।४३।।

धनुषा पञ्चवर्षीयं राक्षस शस्त्रमाददे ।
तेनास्त्रेण शिरस्तस्य छित्वा भूमावपातयत् ।।४४।।
रुधिराक्तं धातुचित्रं गिरिशृङ्गमिवद्भुतम् ।
सपुत्रां राक्षसीं हत्वा मुनीनां वचनाद्विभुः ।।४५।।

जब विकंज ने अपनी माता की यह दशा देखी तो वह क्रोध से कातर होकर निरस्त्र ही सेना में घुस पड़ा ।। ४१ ।। उसके हृदय में हाथियों की माला, सब अंगों में घोड़ों के आभूषण, मस्तक पर महा-सर्प का मुकुट और अंगुलियों में सिंहों की मुद्रिकाएँ थीं ।। ४२ ।। वह अपनी माता के शोक से व्याकुल होकर कल्किजी की सेना का उत्पीडन करने लगा । तब कल्किजीने उस पाँच वर्ष के राक्षस-बालक को मारने के लिए ब्रह्मास्त्र ग्रहण किया और उससे उसका मस्तक काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया ।। ४३-४४ ।। इस प्रकार मुनियों द्वारा निवेदन करने पर कल्किजी ने गेरू आदि से चित्रित किये के समान उस रक्तान्त पर्वत पर पुत्र सहित राक्षसी को नष्ट कर दिया ।।४५।।

गङ्गातीरे हरिद्वारे निवासं समकल्पयत् ।
देवानां कुसुमासारैर्मुनिस्तोत्रैः सुपूजितः ।।४६।।
निनाय तां निशां तत्र कल्किः परिजनावृतः ।
प्रातर्ददर्श गङ्गायास्तीरे मुनिगणान्बहून् ।
तस्याः स्नानव्याजविष्णोरात्मनो दर्शनाकुलान् ।।४७।।
हरिद्वारे गङ्गातटनिकटपिण्डारकवने ।
वसन्तं श्रीमन्तं निजगणवृतं तं मुनिगणाः ।
स्तवैः स्तुत्वा स्तुत्वा विधिवदुदितैर्जन्हुतनयां ।
प्रपश्यतं कल्किं मुनिजलगणा द्रष्टुमगमन् ।।४८।।

तदनन्तर उन्होने देवताओं द्वारा पुष्प-वृष्टि और मुनियों के स्तोत्रों से भले प्रकार पूजित होते हुए वहाँ चल कर हरिद्वार में गङ्गा जी के

पावन तीर पर अपनी सेना सहित निवास किया ।।४६।। अपने परिजनों के सहित कल्किजी ने वह रात्रि वहीं बिताई और प्रातःकाल उठने पर गंगा स्नान के निमित्त आये हुए मुनिगण उनके दर्शनार्थ आते हुए दिखाई दिये ।।४७ ।। वे हरिद्वार में गंगातट के समीप स्थित पिण्डारक बन में अपनी सेना के सहित निवास करने लगे । एक दिन, जब वे कलिमल-नाशिनी भगवती जाह्नवी की स्तोत्रों के द्वारा स्तुति कर रहे थे, तभी मुनिगण उनके दर्शनार्थ वहाँ आ ये और विविध शब्दों से युक्त स्तोत्र करने लगे ।। ४८ ।।



तृतीय अध्याय

सुस्वागतान्मुनीन् दृष्ट्वा कल्किः परम धर्मविम् ।
पूजयित्वा च विधिवत्सुखासीनानुवा चतान् ॥१॥
कयूयं सूर्यसङ्काशा मम भाग्यादुपस्थिताः ।
तीर्थाटनोत्सुका लोकत्रयाणामुपकारकाः ॥२॥
वयं लोके पुण्यवन्तो भाग्यवन्तो यशस्विनः ।
यतः कृपाकटाक्षेण युष्माभिरवलोकिताः ॥३॥
ततस्ते वामदेवऽत्रिर्वसिष्ठो गालवो भृगुः ।
पराशरो नारदोऽश्वत्थामा रामः कृपस्त्रितः ॥४॥
दुर्वासा देवलः कण्वो वेदप्रमितिरङ्गिराः ।
एते चान्ये च बहबो मुनयः संशितव्रताः ॥५॥
कृत्वाग्रे मरुदेवापी चन्द्रसूर्यकुलोद्भवौ ।
राजानौ तौ महावीर्यौ तपस्याभिरतौ चिरम् ॥६॥
ऊचुः प्रहृष्टमनस. कल्किं कल्कविनाशनम् ।
महोदधेस्तोरगतं विष्णुं सुरगणा यथा ॥७॥

परम धर्मविद कल्किजी ने उन मुनिगण को सुखपूर्वक वहाँ आये हुए देखकर स्वागत, आसन और विधिवत् पूजन करके उनसे बोले ॥१॥ सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी, तीर्थाटन में उत्सुक एवं तीनों लोकों के कल्याण रूप उपकार की कामना वाले आप कौन हैं ? जो मेरे सौभाग्यवश यहाँ पधारे हैं ॥२॥ आपके द्वारा कृपा-कटाक्ष पूर्वक देखे जाने से मैं आज इस लोक में अपने को पुण्यवान्, भाग्यवान्

और यशवान् ही मानता हूँ ।। ३ । फिर वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, गालव, भृगु, पराशर, नारद, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, त्रित, दुर्वासा, देवल, कण्व, वेद प्रमिति और अंगिरा आदि यह सब तथा अन्यान्य श्रेष्ठ व्रत वाले मुनिगण चन्द्र सूर्यवंश में उत्पन्न, महा वीर्यवान एवं तपोनिष्ठ राजा मरु और देवापि उनको सामने देख कर, जैसे प्रसन्न मनसे देवताओं ने महोदधि के तीर पर भगवान् विष्णु से कहा था, वैसे ही पापों का नाश करने वाले कल्किजी के प्रति बोले ।।४-७ ।।

जयाशेषजगन्नाथ ! विदिताखिलमानस ! ।
सृष्टिस्थितिलयाध्यक्ष ! परमात्मन्प्रसीद नः ।।८।।
कालकर्म्मगुणावास प्रसारितनिजक्रिय ! ।
ब्रह्मादिनुतपादाब्ज ! पद्मानाथ प्रसीद नः ।।९।
इति तेषां वचः श्रुत्वा कल्किः प्राह जगत्पतिः ।
कावेतौ भवतामग्रे महासत्वौ तपस्विनौ ।।१०।।
कथमत्रागतौ स्तुत्वा गङ्गां मुदितमानसौ ।
का वा स्तुतिस्तु जाह्नव्या युवयोर्नामिनी च के ।।११।।
तयोर्मरुः प्रमुदितः कृताञ्जलिपुटः कृती ।
आदावुवाच विनयी निजवंशानुकीर्त्तनम् ।।१२।।

मुनियों ने कहा—हे सर्व विजयी जगदीश ! हे सम्पूर्ण विश्व के जीवों के घट-घट के ज्ञाता ! हे सृष्टि स्थिति और प्रलय के स्वामिन् ! हे परमात्मदेव ! प्रसन्न होइये ।।८।। हे पद्मा के पते ! काल, कर्म और गुण के आप ही आश्रय हैं । ब्रह्मादि देवता भी आपके ही चरणारविन्दों की पूजा किया करते हैं । आप हम पर प्रसन्न होइये ।। ९ ।। मुनियों के यह वचन सुन कर कल्किजी ने उनसे कहा—हे मुनियो ! आपके आगे यह महान् बल सम्पन्न एवं तपस्वी कौन हैं ? ।।१०।। गंगाजी की स्तुति करके अत्यन्त प्रसन्न हृदय से यह यहाँ क्यों पधारे है ? यह किस कारण भगवती जान्हवी की स्तुति में लगे हैं ? इनके नाम क्या-क्या हैं ? ।।११।। तब वे दोनों मरु देवादि प्रसन्न हृदयसे हाथ

जोड़ कर बिनय पूर्वक अपने वंश का यश-वर्णन करने लगे ॥ १२ ॥

सर्ववेत्सि परात्मापि अन्तर्यामिहृदि स्थिति ।
तवाज्ञया सर्वमेतत्कथयामि शृणु प्रभो ॥ १३॥
तव नाभेरभूद्ब्रह्मा मरीचिस्तत्सुतोऽभवत् ।
ततो मनुस्तत्सुतोऽभूदिक्ष्वाकुः सत्यविक्रमः ॥१४॥
युवनाश्व इति ख्यातो मान्धाता तत्सुतोऽभवत् ।
पुरुकुत्सस्तत्सुतोऽभूदनरण्यो महामतिः ॥१५॥
त्रसदस्युः पिता तस्माद्धर्य्यश्वस्त्र्यरुणस्ततः ।
त्रिशङ्कुस्तत्सुतो धीमान्हरिश्चन्द्रः प्रतापवान् ॥१६॥
हरितस्तत्सुतस्तस्माद्भरुकस्तत्सुतो वृकः ।
तत्सुतः सगरस्तस्मादसमञ्जास्तोऽशुमान् ॥१७॥

मरु बोले—हे प्रभो ! आप तो अन्तर्यामी एवं घट-घट में निवास करने वाले हैं, आपको सब कुछ ज्ञात हैं । मैं आपकी आज्ञा के अनुसार सब कहता हूँ, उसे सुनिये ॥१३॥ आपके नाभि कमल से ही ब्रह्मा जो उत्पन्न हुए हैं । ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, मरीचि के मनु और मनु के सत्य विक्रम इक्ष्वाकु हुए ।१४॥ इक्ष्वाकु का पुत्र युवनाश्व, युवनाश्व का मान्धाता, मान्धाता का पुरुकुत्स और पुरुकुत्स का पुत्र अनरण्य हुआ ॥१५॥ अनरण्य का त्रसदस्यु, त्रसदस्यु का हर्यश्व, हर्यश्व का अरुण, अरुण का त्रिशंकु हुआ तथा त्रिशंकु के पुत्र महा-प्रतापी राजा हरिश्चन्द्र हुए ॥ १६॥ राजा हरिश्चन्द्र का पुत्र हरित, हरित का भरुक, भरुक का वृक, वृक का सगर, सगर का असमंजा और असमंजा का पुत्र अंशुमान हुआ ॥१७॥

ततो दिलीपस्तत्पुत्रो भगीरथ इति स्मृतः ।
येनानीता जान्हवीयं ख्याता भागीरथी भुवि ।
स्तुता नुता पूजितेयं तव पादमुसद्भवा ॥१८॥
भगीरथात्सुतस्तस्मान्नाभस्तस्मादभूद्बली ।
सिन्धुद्वीपसुतस्तस्मादायुतायुस्ततोऽभवत् ॥१९॥

ऋतुपर्णस्तत्सुतोऽभूत्सुदासस्तत्सुतोऽभवत् ।
सौदासस्तत्सुतो धीमानश्मकस्तत्सुतो मतः ॥२०॥
मूलकात्स दशरथस्तस्मादेडविडस्ततः ।
राजा विश्वसहस्तस्मात्खटवाङ्गो दीर्घबाहुकः ॥२१॥
ततो रघुरजस्तस्मात्सुतो दशरथःकृती ।
तस्माद्रामो हरिः साक्षादाविर्भूतो जगत्पतिः ॥२२॥

अंशुमान के पुत्र दिलीप, दिलीप के परम प्रसिद्ध पुत्र भगीरथ हुए। वही भगवती जाह्नवी को भूतल पर लाये थे इसी लिए गंगा उनके नाम से भागीरथी कहलाईं। आपके चरणों से उत्पन्न होने के कारण ही प्राणी इन गंगा जी की स्तुति, प्रणाम तथा पूजन करने में तत्पर रहते हैं ॥१८॥ भागीरथ का पुत्र नाभ हुआ। नाभ का महाबली सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीप का पुत्र आयुतायु हुआ ॥१९॥ अयुतायु का पुत्र ऋतुपर्ण हुआ। ऋतुपर्ण का सुदास, सुदास का सौदास और सौदास का पुत्र मेधावी अश्मक हुआ ॥२० अश्मक से मूलक और मूलक का दशरथ हुआ। दशरथ का एडविड, और एडविड का विश्वसह, विश्वसह का खट्वांग और खट्वांग का पुत्र दीर्घबाहु हुआ था ।२१॥ दीर्घबाहु के पुत्र रघु हुए, रघु के अज और अज के दशरथ हुए। इन्हीं दशरथ के पुत्र रूप में साक्षात् जगदीश्वर विष्णु ने अवतार लिया ॥२२॥

रामावतारमाकर्ण्य कल्किः परमहर्षितः ।
मरुं प्राह विस्तरेण श्रीरामचरितं वद ॥२३॥
सीतापतेः कर्म वक्तुं कः समर्थोऽस्ति भूतले ।
शेषः सहस्रवदनैरपि लालायितो भवेत् ॥२४॥
तथापि शेमुषी मेऽस्ति वर्णयामि तवाज्ञया ।
रामस्य चरितं पुण्यं पापतापप्रमोचनम् ॥२५ ॥
अजादिविबुधार्थितोऽजनि चतुर्भिरंशैः कुले
रवेरजासुतादजो जगति यातुधानक्षय। ।
शिशुः कुशिकजाध्वरक्षयकरक्षयो यो बला-
द्वलीललितकन्धरो जयति जानकीवल्लभः ॥२६॥

रामावतार का प्रसंग आने पर भगवान् कल्कि अत्यन्त हर्षित हुए और उन्होंने मरु से कहा कि राम चरित्र का विस्तार सहित वर्णन करिये ।।२३।। मरु बोले–सीतापति श्रीराम के कर्मों का वर्णन करने में समर्थ इस पृथिवी पर कौन है ? क्योंकि सहस्रवदन शेष भी उनका यश वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं। फिर भी मैं आपकी आज्ञा के कारण भगवान् श्रीराम का पाप-ताप नाशक चरित्र को अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ ।।२४-२५ ।। पुराकाल की बात है—ब्रह्मादि देवताओं के द्वारा राक्षसों के विनाशार्थ प्रार्थना किये जाने पर राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के रूप में सीतापति भगवान् रामचन्द्र जी ने सूर्यवंश में अवतार लिया था। अपने शिशु-काल में ही उन्होंने विश्वामित्र जी के यज्ञ में विघ्न उपस्थित करने वाले राक्षसों का बलपूर्वक संहार किया था ।।२६।।

मुनेरनुसहानुजो निखिलशस्त्रविद्यातिगो ।
ययावतिवनप्रभो जनकराजराजत्सभाम् ।।२७।।
विधाय जनमोहनद्य ुतिमतीव कामद्रुहः ।
प्रचण्डकरचण्डिमा भवनभजने जन्मनः ।।
तमः प्रतिमतेजस दशरथात्मज सानुजं
मुनेरनु यथा विधेः शशिवदाददेवं परम् ।
निरीक्ष्य जनको मुदा क्षितिसुतापतिं संमतं
निजोचितपणक्षमं मनसि भत्संयन्नाययौ ।।२८।।
स भूपपरिपूजितो जनकजेक्षितैरर्च्चितः
करालकठिनं धनुः करसोरुहे संहितम् ।
विभज्य बलदृढ जय रघूवद्हेत्युच्चकैर्ध्वनिं
त्रिजगतोगतं परिविधाय रामो वभौ ।।२९।।
ततो जनकभुपतिर्दशरथात्मजेभ्यो ददौ
चतस्र उषतीमुर्दा वरचतुर्भ्य उद्वाहने ।
स्वलंकृतनिजात्मजाः पथि ततो बलं भार्गव-

अकार उररीनिजं रघुपतौ महोग्रं त्यजन् ।।३०।।

जिनकी महिमा से कामना पूर्ति वाले संसार में पुर्नजन्म की प्राप्ति नहीं होती। वे महाबली, प्रभायुक्त तथा सम्पन्न शस्त्र विद्या-विशारद भगवान श्रीराम संसार को मोहित करने वाला रूप धारण किये हुए, लक्ष्मण और मुनियों के सहित जनक की राज सभा मे गये ।। २७।। ब्रह्माजी के पीछे सुशोभित चन्द्रमा के समान तेज वाले श्री राम अपने भाई लक्ष्मण के सहित मुनिवर विश्वामित्र के पीछे बैठ गये। तब आदि देव जगदीश्वर को देख कर जनक सोचने लगे कि यह सीता के योग्य श्रेष्ठ वर हैं। तब उन्होंने अपने द्वारा किये हुए प्रण की कठोरता देख कर अपनी भर्त्सना की और फिर श्री राम के समीप गये ।।२८।। तब राजा जनक से आदर प्राप्त कर तथा सीता जी के कटाक्ष से प्रेम-पूजित होकर श्री राम ने उस घोर धनुष को हाथ में उठाया और उसके दो टुकड़े कर दिये। तब श्रीराम अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए और उनके जय-घोष से तीनों लोक व्याप्त हो गये ।।२९।।

ततः स्वपुरमागतो दशरथस्तु सीतापति
नृप सचिवसंयुतो निजविचित्रसिंहासने।
विधातुममलप्रभं परिजनैः क्रियाकारिभिः
समुद्यतमति तवा द्रुतमवारयत्कैकयी ।।३१।।
ततो गुरुनिदेशतो जनकराजकन्यायुतः
प्रयाणमकरोत्सुधीर्यदनुगः सुमित्रासुतः
वनं निजगणं त्यजन्गुहगृहे वसन्नादरात्
विसृज्य नृपलाञ्छनं रघुपतिर्जटाचीरभृत् ।।३२।।

तब राजा जनक ने अपनी चारों कन्या—सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति सब प्रकार से अलंकृत करके दशरथ जी के चारों पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को क्रमशः दान कर दीं। विवाह के पश्चात् जब यह सब अयोध्या नगरी के लिए लौट रहे थे, तब मार्ग में परशुरामजी मिले और उन्होंने श्रीरामको अपना अपार बल

दिखाने का निष्फल प्रयत्न किया ।।३०।। फिर महाराज दशरथने अयोध्या पहुँच कर अपने मन्त्रियों के परामर्श से सीतापति राम को अयोध्या के राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त करने का विचार किया। अभिषेक के लिए सम्पूर्ण सामग्री एकत्र होकर जब पूर्ण तैयारी हो गई, तब श्रीराम का अभिषेक करने में तत्पर राजा दशरथ को कैकेयी ने वरदान माँग का रोक दिया ।। ३१ ।। तब महाराज की आज्ञा सुन कर जनक सुता और सुमित्रा पुत्र-लक्ष्मण सहित श्रीराम वन में गये। साथ चलते हुए पुरवासियों को आगे चल कर छोड़ दिा तथा गुह के घर में जाकर राजकीय वस्त्राभूषणों का परित्याग कर जटावल्क-ल धारण कर लिया ।।३२।।

प्रियानुजयुतस्ततो मुनिमतो वने पूजित:
स पञ्चवटिकाश्रमे भरतमातुरं संगतम् ।
ि वार्य्य मरणं पितृ: समवधार्य दुःखातुर-
स्तपोवनगतोऽवसद्रघुपतिस्ततस्ता: समा: ।।३३।।
दशाननमहोदरां विषमबाणवेधातुरां-
समीक्ष्य वररूपिणीं प्रहसतीं सतीं सुन्दरीम् ।
निजाश्रयमभीप्सतीं जनकजापतिर्लक्ष्मणा-
त्करालकरवालत: समकरोद्विरूपां तत: ।।३४।।
समाप्य पथि दानव खरशरै: शनैर्नाशयन्
चतुर्द्दशसहस्रकं समहनन्खरं सानुगम् ।
दशाननवशानुगं कनकचारुच्छन्मृगं
प्रियाप्रियकरो वने समवधीद्बलाद्राक्षसम् ।।३५।।

सीता जी और लक्ष्मण जी के साथ मुनिवेश धारी श्री राम पूजा सम्पन्न होकर विविध में वनों निवास करने लगे। इसके पश्चात् कातरता पूर्वक भरतजी वहाँ आये। उनसे पिता का मरण सुन कर श्रीराम को बड़ा दुःख हुआ और भरत जी को समझा कर लौटा दिया और तपोवन में रहने लगे ।।३३।। फिर कामबाण से बिद्ध

सुन्दर रूप वाली, हास्त्रवदना, वर की कामना करती हुई रावण की बहिन शूर्पणखा को आते देख कर लक्ष्मण जी को संकेत किया, जिसके अनुसार लक्ष्मण जी ने तीक्ष्ण तलवार से उस राक्षसी का रूप-भ्रष्ट कर दिया ।।३४।। फिर उन्होंने मार्ग में एक दानव को मार कर, चौदह हजार सेना के अधिपति एवं रावण के अनुगामी खरदूषण को सेना सहित नष्ट कर दिया । फिर सीता जी की इच्छा से स्वर्ण-मृग रूपी राक्षस को मार डाला ।।३५।।

ततो दशमुखस्त्थरंस्तमभिवीक्ष्य रामं रुपा
व्रजन्तमनुलक्ष्मणं जनकजां जहाराश्रमे ।
ततो रघुपतिः प्रियां दलकुटीरसंस्थापितां
न वोक्ष्य तु विमूर्च्छितो वह विलप्य सीतेति ताम् ।।३६।।
वने निजगणाश्रमे नगतले जले पल्वले
विचित्य पतितं खगं पथि ददर्श सौमित्रिणा ।
जटायुवचनात्ततो दशमुखाहृतां जानकी
विविच्य कृतवान्मृते पितरि वह्निकृत्यं प्रभु ।।३७।।
प्रियाविरहकातरोऽनुजपुरःसरो राघवो
धनुर्धरन्धरो हरिबल नवालापिनम् ।
ददश ऋषभाचलाद्रविजवालिराजानुज-
प्रियं पवननन्दनं परिणतं हितं प्रेषितम् ।।३८।।

फिर राम लक्ष्मण को गया हुआ देख कर रावण ने उनके आश्रम से अकेली सीताजी का हरण कर लिया । तदनन्तर श्रीराम ने वहाँ आकर जब सीता को न देखा, तब वे 'हा सीते' 'हा सीते' आदि शोक युक्त शब्दों में विलाप करते हुए मूर्च्छा को प्राप्त हो गये ।। ३६ ।। फिर वे ऋषियों के आश्रम, पर्वतों की गुफा, जल और स्थल आदि विविध स्थानों में सीताजी को ढूंढने लगे । आगे चलने पर उन्हें मार्ग में जटायु पड़ा मिला । उससे उन्हें सीता हरण का समाचार प्राप्त हुआ । जटायु के मरने पर उन्होंने अपने पिता के समान उसका

मृतक संस्कार किया ।।३७।। सीताजी के वियोग से व्याकुल हुए धनुर्धरों में श्रेष्ठ श्रीराम लक्ष्मण के सहित नव-परिचय प्राप्त वानर सेना से मिले और उनकी सूर्य पुत्र बालि के छोटे भाई सुग्रीव द्वारा भेजे हुए उसके मंत्री हनुमान से भेंट हुई ।।३८।।

ततस्तदुदितं मतं पवनपुत्रसुग्रीवयो-
स्तृणाधिपतिभेदनं निजनृपासनस्थापितम् ।
विविच्य व्यवसायकैर्निजसखाप्रियं बालिनम्
निहत्य हरिभूपतिं निजसखं स रामोऽकरोत् ।।३९।।
अथोत्तरमिमां हरिर्जनकजां समन्वेषयन्
जटायुसहजोदितैर्जलनिधिं तरन्वायुजः ।
दशाननपुरं विशञ्जनकजां समानन्दय
न्नशोकवनिकाश्रमे रघुपतिं पुनः प्राययौ ।।४०।।
ततो हनुमता बलादमितरक्षसां नाशनं
ज्वलज्ज्वलनसंकुलज्वलितदग्धलङ्कापुरम् ।
विविच्य रघुनायको जलनिधिं रुषा शोषयन्
वबन्ध हरियूथपैः परिवृतो नगैरीश्वरः ।।
बभञ्ज पुरपत्तनं विविधसर्गदुर्गक्षमम्
निशाचरपतेः क्रुधा रघुपतिः कृती सद्गतिः ।।४१।।

फिर सुग्रीव और हनुमान की प्रार्थना पर उन्होंने ताल के सात वृक्षों को काट गिराया और बालि का वध करके सुग्रीव को बानरों का राजा बना कर उससे मित्रता स्थापित की ।।३९।। फिर पवनसुत हनुमान सीता की खोज में गये और संपाति की प्रेरणा पर लंकापुरी में स्थित अशोक वाटिका पहुँच कर उन्होंने सीताजी को राम-संदेश से आनन्दित किया और रामचन्द्रजी के पास लौट आये।। ४० ।। फिर श्रीरामचन्द्र ने हनुमानजी के द्वारा अनेकों राक्षसों का मारा जाना और लंका का जलाया जाना सुना तो वे शिलाओं द्वारा समुद्र पर सेतु बाँध

कर बानरों के सहित लंकापुरी जा पहुंचे और रावण के पुर की प्राचीर आदि को उन्होंने नष्ट कर डाला ।।४१।।

ततोऽनुजयुतो युधि प्रबलचण्डकोदण्डभृत्
शरैः खरतरैः क्रुधा गजरथाश्वहंसाकुले ।
करालकरवालतः प्रबलकालजिह्वाग्रतो
निहत्य वरराक्षसान्नरपतिर्बभौ सानुगः ।।४२।।

जघान घनघोषणानुगगणैरसृक् प्राशनैः ।
ततोऽतिबलवानरैर्गिरिमहीरुहोद्यत्करैः
करालतरताडनैर्जनकजारुषा नाशितान् ।
निजघ्नुरमरार्दनानतिबलान्दशास्यानुगान्
नलाङ्गदहरीश्वराऽशुगसुतर्क्षराजादयः ।।४३।।
ततोऽतिबललक्ष्मणास्त्रदशनाथशत्रुं रणे
प्रहस्त विकटादिकानपि निशाचरानन्ङ्गतान्
निकुम्भ मकराक्षकान्निशितखड्ग पातैः क्रुधा ।।४४।।

फिर लक्ष्मण के सहित श्रीराम ने अत्यन्त उग्र बाणों को धारण किया और गज, अश्व तथा रथादि से युक्त होकर तीक्ष्ण बाणों और विकराल असि से अनेक राक्षसों का नाश करके कराल काल की जिह्वा के अग्र भाग के समान अपने अनुगामियों सहित शोभा पाने लगे ।।४२।। फिर सुग्रीव, पवनसुत हनुमान, नल, नील, अंगद और जामवन्त आदि परम पराक्रमी बानरों ने वृक्ष और पर्वत शिलाएँ उखाड़ कर उनके प्रहार से देव-शत्रु महाबली रावण के उन सेवकों को, जो सीताजी के क्रोध से पहिले ही मरे के समान हो रहे थे, नष्ट कर दिया ।।४३।। महाबली लक्ष्मण ने अत्यन्त घोर शब्द करने वाले रुधिरपायी राक्षसों से समन्वित इन्द्रजित मेघनाद को मार डाला। फिर क्रोध पूर्वक उन्होंने निकुम्भ, मकराक्ष और विकटादि नामक बली निशाचरों का भी संहार कर दिया ।।४४।।

ततो दशमुखो रणे गजरथाश्वपत्तीश्वरै-
रलङ्घ्यगुणकोटिभिः परिवृतो युयोधायुधैः ।
कपीश्वरचमूपतेः पतिमनन्तदिव्यायुधं
रघूद्वहमनिन्दितं सपदि सङ्गतो दुर्जयः ॥४५॥
दशाननमरिं ततो विधिवरस्मयावर्द्धितम्
महाबलपराक्रमं गिरिमिवाचलं संयुगे ।
जघान रघुनायको निशितसायकैरुद्धतम्
निशाचरचमूपतिं प्रबलकुम्भकर्णं ततः ॥४६॥
तयोः खरतरैः शरैर्गगनमच्छमाच्छादितं
बभौ घनघटासमं मुखरमत्तडिद्वह्निभिः ।
धनुर्गुणमहाशनिध्वनिभिरावृतं भूतलं
भयङ्करनिरन्तरं रघुपतेश्च रक्षः पतेः ॥४७॥

फिर रावण अपने करोडों गज, रथ, अश्व युक्त तथा पदाति सैनिकों के सहित रणभूमि में उपस्थित हुआ और उसने कपीश्वर सुग्रीव के भी स्वामी दिव्यायुध धारी श्रीराम से घोर संग्राम किया ॥४५॥ तब रघुनायक श्रीराम ने ब्रह्माजी के वर से प्रबल हुए महा पराक्रमी और युद्ध क्षेत्र में पर्वत के समान अडिग रहने वाले "राक्षसपति रावण और उसके भाई कुम्भकर्ण को अपने बाणों से रुद्ध कर दिया ॥४६॥ फिर राम-रावण के उस युद्ध में तीक्ष्ण बाणों से गगन मंडल उसी प्रकार आच्छादित हो गया, जिस प्रकार मेघों की घटा से हो जाता है। बाणों के परस्पर टकराने से जो शब्द युक्त अग्नि की चिंगारियाँ निकलती थीं, वह एसी प्रतीत होती थीं, जैसे गर्जन करती हुई बिजली चमक उठती है। विद्युत-गर्जन के समान धनुष की टंकार से व्याप्त हुई रणभूमि अत्यन्त भयानक लगने लगी ॥४७॥

ततो धरणिजारुषा विविधरामबाणौजसा
पपात भुवि राणस्त्रिदशनाथविद्रावणः ।
ततोऽतिकुतुकी हरिर्ज्वलनरक्षितां जानकीं

समर्प्य रघुपुङ्गवे निजपुरीं ययौ हर्षितः ।।४८।।
पुरन्दरकथादरः सपदि तत्र रक्षःपतिम् ।
बिभीषणमभीषणं समकरोत्ततो राघवः ।।४९।।
हरीश्वरगणावृतोऽवनिसुतायुतः सानुजो
रथे शिवसखेरिते सुविमले लसत्पुष्पके ।
मुनीश्वरगणार्चितो रघुपतिस्त्वयोध्यां ययौ
विविच्य मुमिलाञ्छन गुहगृहेऽतिसख्यं स्मरन् ।।५०।।

फिर इन्द्र को त्रस्त करने वाला रावण जानकी जी के क्रोध से व्याप्त एवं श्रीराम के अस्त्रानल से दग्ध होकर धराशायी हो गया। रावण की मृत्यु हो जाने पर वानर श्रेष्ठ हनुमान जानकीजी को शुद्ध करके लाये और उन्हें श्रीराम को समर्पित कर दिया। फिर प्रसन्न चित्त से अपने स्थान को गये ।।४८।। फिर देवराज के कहने से श्रीराम ने रावण के भाई विभीषण को राक्षसों के राज्य पर अभिषिक्त किया ।।४९।। फिर भगवान् रामचन्द्र जी वानर आदि तथा सीताजी और लक्ष्मण को साथ लेकर अत्यन्त सुशोभित पुष्पक यान पर चढ़ कर अयोध्या नगरी के लिए चले। मार्ग में चलते हुए जब मध्य वन में पहुँचे तब उन्हें अपने मुनिवेश और गुह के गृह तथा उसकी मित्रता का स्मरण हुआ। तभी मुनियों ने उनके समीप आकर उनका पूजन किया ।। ५० ।।

ततो निजजनावृतो भरतमातुरं सान्त्वयन्
स्वमातृगणवाक्यतः पितृनिजासने भूपतिः ।
वसिष्ठमुनिपुङ्गवैः कृतनिजाभिषेको विभुः
समस्त जनपालक. सुरपतिर्यथा संबभौ ।।५१।।
नरा बहुधनाकरा द्विजवरास्तपस्तत्पराः
स्वधर्म्मकृतनिश्चयाः स्वजनसङ्गता निर्भयाः ।
घनाः सुबहुवर्षिणो वसुमती सदा हर्षिता
भवत्यतिबले नृपे रघुपतावभूत्सज्जगत् ।।५२।।

गतायुतसमाः प्रियैर्निजगुणैः प्रजा रञ्जयन्
निजां रघुपतिः प्रियां निजमनोभवैर्मोहयन् ।
मुनीन्द्रगणसंयुतोऽप्ययजदादिदेवान्मखै-
र्धनैर्विपुलदक्षिणैरतुलवाजिमेधैस्त्रिभिः ।।५३।।

फिर अपने जनों से आवृत्त होकर दुःख से कातर हुए भरतजी को सान्त्वना दी और माताओं की आज्ञा से अपने पिता के राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। उस समय वसिष्ठ आदि महर्षियों ने उनका अभिषेक किया और तब वे लोकों के स्वामी श्रीराम इन्द्र के समान शोभा पाने लगे ।।५१।। फिर प्रजाजन धन से सम्पन्न हो गए, द्विजवर तपस्या में मग्न रहने लगे। सभी परस्पर प्रेम-भाव पूर्वक भय-रहित चित्त से रहते हुए अपने-अपने धर्म में तत्पर हो गए। मेघों द्वारा समय पर वृष्ठि होने से पृथिवी मुदित हो गई। इस प्रकार अत्यन्त पराक्रमी श्रीराम के राज्य को प्राप्त होने से सम्पूर्ण विश्व सत्पथ का अनुगामी हो गया।५२।। भगवान् श्रीराम अपने गुणों से प्रजा को प्रसन्न रखने और अपनी प्राणप्रिया सीताजी के मन को भी आनन्दित करने लगे। उन्होंने महर्षियों के सहयोग से बहुत प्रकार की दक्षिणा और दान-यज्ञादि के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करते हुए तीन अश्वमेध यज्ञ निर्विघ्न रूप से पूर्ण किये। इस प्रकार उन्होंने दस हजार वर्ष तक राज्य किया।५३।

ततः किमपि कारणं मनसि भावयन्भूपति-
र्जहौ जनकजां वने रघुवरस्तदा निर्घृणाः।
ततो निजमत स्मरन्समनयत्प्रचेतः सुतो
निजाश्रममुदारधीरघुपतेः प्रियां 'दुःखिताम् ।।५४।।
ततः कुशलवौ सुतौ प्रसुषुवे धरित्रीसुता
महाबलपराक्रमौ रघुपतेर्यशोगायनौ ।
स तामपि सुतान्वितां मुनिवरस्तु रामान्तिके
समर्पयदनिन्दितां सुरवरैः सदा वन्दिताम् ।।५५।।

ततो रघुपतिस्तु तां सुतयुतां रुदन्तीं पुरो
जगाद दहने पुनः प्रविश शोधनायात्मनः ।
इतीरितमवेक्ष्य सा रघुपतेः पदाब्जे नता
विवेश जनीयुता मणिगणोज्वलं भूतलम् ।।५६।।

फिर किसी कारण वश श्रीराम को अपना हृदय कठोर करना पड़ा और उन्होंने जानकीजी को परित्याग का वन में पहुँचा दिया। तब महर्षि बाल्मीकि अपने द्वारा रचित रामायण का स्मरण करके दुःखित चित्त होते हुए जानकीजी को अपने आश्रम में लिवा लाये ।।५४।। फिर जानकीजी के कुश और लव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। इन दोनों राज पुत्रों ने श्रीराम के समीप पहुंच कर उनका यश गाया। फिर महर्षि बाल्मीकि ने अनिन्दित एवं देव-पूजिता जानकीजी को इन दोनों पुत्रों के सहित श्रीराम को समर्पित कर दिया ।।५५।। दोनों पुत्रों के सहित रोती हुई जानकी को अपने सामने खड़ी देख कर श्रीराम उनसे बोले— सीते! तुम अपनी शुद्धि के लिये पुनः अग्नि-प्रवेश करो। उनके यह वचन सुन कर जानकीजी ने उनके चरणारविन्दों में प्रणाम किया और अपनी माता पृथिवी के साथ पाताल में प्रविष्ट हो गईं ।।५६।।

निरीक्ष्य रघुनायको जनकजाप्रयाणं स्मरन्
वसिष्ठगुरुयोगतोऽनुजयुतोऽगमत्स्वं पदम् ।
पुरःस्थितजनैःस्वकैः पशुभिरीश्वरः सस्पृशन्
मुदा सरयुजीवनं रथवरैः परीतो विभुः ।।५७।।
ये शृण्वन्ति रघूद्वहस्य चरितं कर्णामृतं सादरात्
संसारार्णवशोषणञ्च पठतामामोददं मोक्षदम् ।
रोगाणामिह शान्तये धनजनस्वर्गादिसम्पत्तये
वंशानामपि वृद्धये प्रभवति श्रीशः परेशः प्रभुः ।।५८।।

जानकीजी को इस प्रकार पाताल में गई देख कर रामचन्द्र भी उनका स्मरण करते हुए अपने गुरु वसिष्ठ, अनुजगण तथा परिजनों

और पशुओं के साथ सरयू तट पर गये और प्रसन्न हृदय से जल का स्पर्श करके दिव्य विमान में आरूढ होकर अपने लोक को गये ।।५७।। कानों के लिए अमृत के समान इस राम चरितामृत को जो आदर सहित सुनेंगे उनकी सभी बाधाएँ श्रीराम-कृपा के दूर हो जायेंगी। रोग नष्ट होंगे, वंश-वृद्धि, धन-जन की समृद्धि और स्वर्ग रूप एश्वर्य की प्राप्ति होगी। जो इसका पाठ करेंगे, उनके लिए यह संसार-सागर शुष्क होकर अत्यन्त आनन्द तथा मोक्ष-रूप परम पुरुषार्थ की प्राप्ति होगी ।।५८।।



चतुर्थ अध्याय

रामात्कुशोऽभूदतिथिस्ततोऽभून्निषधान्नभः ।
तस्मादभूत्पुण्डरीकः क्षेमधन्वाऽभवत्ततः ।१।
देवानीकस्ततो हीनः परिपात्रोऽथ हीनतः ।
बलाहकस्ततोऽर्कश्च रजनाभस्ततोऽभवत् ।२।
खगणाद्विधृतस्तस्माद्धिरण्यनाभसञ्ज्ञितः ।
ततः पुष्पाद्ध्रुवस्तस्मात्स्यन्दनोऽथा ग्नवर्णक. ।३।
तस्माच्छीघ्रोऽभवत्पुत्रः पिता मेऽतुलविक्रमः ।
तस्मान्मरुं मां कऽपीह बुधञ्चापि सुमित्रकम् ।४।
कलापग्राममासाद्य विद्धि सत्तापसि स्थितम् ।
तवावतारं विज्ञाय व्यासात्सत्यवतीसुतात् ।
प्रतीक्ष्य कालं लक्षाब्दं कलेः प्राप्तस्तवान्तिकम् ।
जन्मकोट्यघसां राशेर्नाशनं धर्मशासनम् ।
वशःकीर्तिकरं सर्वकामपूरं परात्मनः ।६।

उन श्रीराम के पुत्र कुश हुए । कुश के अतिथि, अतिथि के निषध, निषध के नभ, नभ के पुण्डरीक और पुण्डरीक के पुत्र क्षेमधन्वा हुए ॥१॥ क्षेमधन्वा के पुत्र देवानीक, देवानीक के हीन, हीन के परिपात्र, परिपात्र के बलाहक, बलाहक के अर्क और अर्क के पुत्र रजनाभ हुए ॥ २॥ रजनाभ के खगण, खगण के विधृत, विधृत के हिरण्यनाभ, हिरण्यनाभ के पुष्प, पुष्प ध्रुव, के ध्रुव के स्यन्दन और स्यन्दन के पुत्र

अग्निवर्ण हुए ।३।। अग्निवर्ण के पुत्र शीघ्र हुए, वे अत्यन्त विक्रम वाले ही मेरे पिता थे। मैं उन्हीं शीघ्र का पुत्र मरु हूँ। कुछ लोग मुझे बुध और कुछ सुमित्र कहते हैं ।।४।। अब तक मैं कलाप ग्राम में निवास करता हुआ तपस्या में रत था। सत्यवती सूनु व्यास जी के मुख से मुझे आपके अवतार का प्रसंग ज्ञात हुआ और तब मैं कलि युग की एक लाख वर्ष तक प्रतीक्षा करने पश्चात् आपके समीप उपस्थित हुआ हूँ। क्योंकि आप परमात्मा का सामीप्य प्राप्त होने से करोड़ों जन्मों के पापों का नाश हो जाता है तथा धर्म-यश की वृद्धि और सभी कामनाओं की पूर्ति होती है ।।५-६।।

ज्ञातस्त्वाल्वयस्त्वच सूर्यवंशसमुद्भवः ।
द्वितीयः कोऽपरः श्रीमान्महापुरुषलक्षणः ।७।
इति कल्किवचः श्रुत्वा देवापिर्मधुराक्षराम् ।
वाणीं विनयसम्पन्नः प्रवक्तुमुपचक्रमे ।८।
प्रलयान्ते नाभिपद्मात्तवाभूच्चतुराननः ।
तदीयतनयादत्रेश्चन्द्रस्तस्मात्ततो बुधः ।९।
तस्मात्पुरूरवा जज्ञे ययातिर्नाहुषस्ततः :
देवयान्यां ययातिस्तु यदुं तुर्वसुमेव च ।१०।
शर्मिष्ठायां तथा द्रुह्युश्चानुं पूरुञ्च सत्तते ।
जनयामास भूतादिर्भूतानीव सिसृक्षया ।११।
पूरोर्ज्जन्मेजयस्तस्मात्प्रचिन्वानभवत्ततः ।
प्रवीरस्तन्मनस्युर्वै तस्माच्चाभयदोऽभवत् ।१२।
उरुक्षयाच्च त्र्यरुणिस्ततोऽभूत्पुष्करारुणिः ।
बृहत्क्षेत्रादभूद्धस्ती यन्नाम्ना हस्तिनापुरम् ।१३।

कल्कि बोले—तुम्हारी वंशावली सुनकर मैं यह जान गया कि तुम सूर्यवंश में उत्पन्न हुए हो। परन्तु तुम्हारे साथ यह महापुरुषों के लक्षणों से सम्पन्न एवं श्रीमान् पुरुष दूसरे कौन हैं? ।।७।। यह सुन कर देवापि ने विनय पूर्वक मधुर वाणी से निवेदन किया। वे बोले—

हे प्रभो ! प्रलय का अन्त होने पर आपके नाभिकमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई थी। उन ब्रह्माजी के पुत्र अत्रि हुए। अत्रि के चन्द्रमा, चन्द्रमा के बुध, बुध के पुरूरवा, पुरूरवा के नहुष और नहुष के पुत्र ययाति हुए। उन ययाति ने अपनी पत्नी देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वस नामक दो पुत्रों को जन्म दिया ॥६–१०॥ हे सत्पते ! उन्हीं ययाति ने शर्मिष्ठा नाम की पत्नी से द्रह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये। जैसे सृष्टिकाल में भूतादि के द्वारा पंचभूतों की उत्पत्ति होती है, वैसे ही ययाति से इन पाँच पुत्रों की उत्पत्ति हुई ॥११॥ पुरु का पुत्र जन्मेजय हुआ, जन्मेजय के प्रचिन्वान्, प्रचिन्वान् के प्रवीर, प्रवीर के मनस्यु, मनस्यु के अभयदा अभयदा के उरुक्षय उनके त्र्यरुणि, त्र्यरुणि के पुष्करारुणि, पुष्करारुणि के बृहत्क्षेत्र और बृहत्क्षेत्र, के पुत्र हस्ती हुए। इन हस्ती नामक राजा के नाम पर ही हस्तिनापुर नामक नगर की स्थापना हुई ॥१२–१३॥

अजमीढोऽहिमीढश्च पुरमीढस्तु तत्सुताः।
कजमीढादभूदृक्षस्तस्मात्संवरणात्कुरु ।१४।
कुरोः परिक्षित्सुधनुर्जन्हूर्निषध एव च।
सुहोत्रोऽभूत्सुधनुषश्च्यवनाच्च ततः कृती ।१५।
ततो बृहद्रथस्तस्मात्कुशाग्राद्वृषभोऽभवत्।
ततः सत्यजितः पुत्रः पुष्पवान्नहुषस्ततः ।१४।
बृहद्रथान्यभार्य्यायां जरासन्धःपरन्तपः।
सहदेवस्ततस्मात्सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः ।१७।
सुरथाद्विदूरथस्तस्मात्सार्वभौमोऽभवत्ततः।
जयसेनाद्रथानीकोऽभूद्युतायुश्च कोपनः ।१८।

हस्ती के तीन पुत्र हुए। उनके नाम अजमीढ़, अहिमीढ़ और पुरुमीढ़ हुए। अजमीढ़ के पुत्र ऋक्ष, ऋक्ष के संवरण और संवरण के पुत्र कुरु हुए ।१४। कुरु के पुत्र परीक्षित, परीक्षित के सुधनु, जन्हु और निषध—यह तीन पुत्र हुए। सुधनु के पुत्र सुहोत्र और सुहोत्र के पुत्र

च्यवन हुए ।१५। च्यवन के वृहद्रथ, वृहद्रथ के कुशाग्र, कुशाग्र के ऋषभ, ऋषभ के सत्यजीत, सत्यजीत के पुष्पवान तथा पुष्पवान् के पुत्र नहुष हुए ।१६। बृहद्रथ की द्वितीय पत्नी के गर्भ से शत्रु-पीडक जरासन्ध हुए। जरासन्ध के सहदेव, सहदेव के सोमापि और सोमापि के पुत्र श्रुतश्रवा हुए ।१७। श्रुतश्रवा के पुत्र सुरथ हुए। सुरथ के विदूरथ, विदूरथ के सार्वभौम, सार्वभौम के जयसेन, जयसेन के रथानीक और रथानीक के पुत्र क्रोधी स्वभाव के युतायु हुए ।१८।

तस्माद्देवातिथिस्तस्मादृक्षरतस्माद्दिलीपकः।
तस्मात्प्रतीपकस्तस्य देवापिरहमोश्वर ! ।१९।
राज्यं शान्तनवे दत्वा तपस्येकधिया चिरम् ।
कलापग्राममासाद्य त्वां दिदृक्षुरिहागतः ।२०।
मरुणाऽनेन मुनिभिरेभिः प्राप्य पदाम्बुजम् ।
तव कालकरालास्याद्यास्याम्यात्मवतां पदम् ।२१।
तयोरेवं वचः श्रुत्वा कल्कि; कमललोचनः ।
प्रहस्य मरुदेवापी समाश्वास्य समब्रवीत् ।२२।
युवां परमधर्म्मज्ञौ राजानौ विदितावुभौ ।
मदादेशकरौ भूत्वा निजराज्यं भरिष्यथः ।२३।

युतायु के पुत्र देवातिथि हुए। देवातिथि के ऋक्ष, ऋक्ष के दिलीप और दिलीप के पुत्र प्रतीपक हुए। हे प्रभो! मैं उन्हीं प्रतीपक का पुत्र देवापि हूँ ।१९। मैंने शान्तनु को अपने राज्य पर आसीन किया और स्वयं कलाप ग्राम में रह कर एकचित्त हो तपस्या करता था। अब आपके दर्शन की कामना से ही यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ।२०। मैंने मरु और मुनिवरों के सहित यहाँ आकर आपके चरणारबिन्द को प्राप्त किया है। इसके फल स्वरूप मैं काल के कराल गाल में गिरने से बच गया, आत्म तत्वज्ञों का पद हमें मिल जायगा ।२१। मरु और देवापि की बातों को सुन कर पद्माक्ष कल्किजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने आश्वासन भरे शब्दों में उनसे कहा। कल्कि बोले—मैं जान गया कि

आप दोनों परम धर्मज्ञ राजा हैं। इस समय आप मेरे आदेश को मान कर राज्य ग्रहण कर उसका परिपालन करो ।२२-२३।

मरो त्वामभिषेक्ष्यामि निजयोध्यापुरेऽधुना ।
हत्वा म्लेच्छानधर्मिष्ठान्प्रजाभूतविहिंसकान् ।२४।
देवापे तव राज्ये त्वां हस्तिनापुरपत्तने ।
अभिषेक्ष्यामि राजये हत्वा पुक्कसकान्रणे ।२५।
मथुरायामहं स्थित्वा हरिष्यामि तु वा भयम् ।
शय्याकर्णानुष्ट्रमुखानेकजङ्घान्विनोदरान् ।२६।
हत्वा कृतं युगं कृत्वा पालयिष्याम्यहं प्रजाः ।
तपोवेशं व्रतं त्यक्त्वा समारुह्य रथोत्तमम् ।२७।
युवां शस्त्रास्त्रकुशलौ सेनागणपरिच्छदौ ।
भूत्वा महारथौ लोके मया सह चरिष्यथः ।२८।

हे मरो ! अब मैं प्रजाओं का पीडन करने वाले, जीव-हिंसक अधर्मी म्लेच्छों का संहार करके आपको अपनी राजधानी अयोध्या में अभिषिक्त करूँगा ।२४। हे देवापे ! हे राजर्षे ! युद्ध क्षेत्र में पुक्कसों को मार कर मैं आपकी राजधानी हस्तिनापुर के राज्य पर आपको अभिषिक्त करूँगा ।२५। मैं मथुरा नगरी में निवास करता हुआ तुम्हारे भय को नष्ट करूँगा तथा शय्याकरण, उष्ट्रमुख और एकजघ आदि को मार कर सत्युग की स्थापना और प्रजा की रक्षा करूँगा। तुम अभी इस तपस्वी वेश का त्यागन करो और श्रेष्ठ रथ पर आरोहण करो ।२६-२७। तुम सभी शस्त्रास्त्र विद्या में पारंगत एवं महारथी हो, अतः हमारे साथ ही विचरण करो ।२८।

विशाखयूपभूपालस्ततयां भिनयान्विताम् ।
विवाहे रुचिरापाङ्गीं सुन्दपीं त्वां प्रदास्यति ।२९।
साधो भूपाल लोकानां स्वस्तये कुरु मे वचः ।
रुचिराश्वसुतां शान्तां देवापे त्वं समुद्वह ।३०।
इत्याश्वासकथाः कल्केः श्रुत्वा तौ मुनिभिः सह ।
विस्मयाविष्टहृदयौ मेनाते हरिमीश्वरम् ।३१।
इति ब्रुवत्यभयदे आकाशात्सूर्यसन्निभौ ।

रथौ नानमणिव्रातघटितौ कामगौ पुरः ।
समायातौ ज्वलद्दिव्यशस्त्रास्त्रैः परिवारितौ ।३२।
ददृशुस्ते सदो मध्ये विश्वकर्म्मविनिर्मितौ ।
भूपा मुनिगणाः सभ्याः सहर्षाः किमितीरिताः ।३३।

हे मरो ! विशाखयूप नरेश अपनी परम शीलवती तथा रुचिरांगी कन्या को तुम्हें विवाह देगा। अतः तुम संसार का कल्याण करने के उद्देश्य से मेरे वचनों का पालन करो। हे देवापे ! तुम भी रुचिराश्व की शान्त नाम्नी सुपुत्री से विवाह कर लो ।।३०।। कल्किजी के यह आश्वासन युक्त वचन सुन कर मुनियों के सहित देवापि अत्यन्त विस्मित हुए और फिर सन्देह छोड़ कर यह विश्वास करने लगे कि कल्कि ही भगवान् विष्णु एवं साक्षात् ईश्वर हैं ।।३१।। कल्किजी ने जैसे ही यह अभयप्रद वचन कहे, वैसे ही आकाश मार्ग से स्वच्छा पूर्वक चलने वाले अनेक रत्नादि से निर्मित दो रथ अवतीर्ण हुए। सूर्य के समान तेजोमय उन रथों में उज्ज्वल दिव्य शस्त्रास्त्र भरे हुए थे ।।३२।। उस समय उपस्थित सभी मुनिगण और राजागण विश्वकर्मा द्वारा निर्मित रथों को उतरे हुए देख कर 'यह क्या' —'यह क्या' कहते हुए विस्मय एवं हर्ष प्रकट करने लगे ।।३३।।

युवामादित्यसोमेन्द्रयमवैश्रवणाङ्गजौ ।
राजानौ लोकरक्षार्थमाविर्भतौ विदन्त्यमी ।३४।
कालेनाच्छादिताकारौ मय सङ्गादिहोदितो ।
युशा रथावारुहतां शक्रदत्तं ममाज्ञया ।३५।
एवं वदति विश्वेशे पद्मनाथे सनातने ।
देवा ववर्षुः कुसुमैस्तुष्टुवुर्मुनयोऽग्रतः ।३६।
गङ्गावारिपरिक्लिन्नशिरोभूतिपरागवान् ।
शगैः पर्व्वतजासङ्गशिववत्पवनो ववौ ।३७।
तत्रायातः प्रमुदिततनुस्तप्तचामीकराभो
धर्म्मावासः सुरुचिरजटाचीरभृद्दण्डहस्तः :

लोकातीतो निजतनुमरुन्नाशिताऽधर्म्मसंघ-
स्तेजोराशिःसनकसदृशो मस्करी पुष्कराक्षः ।३८।

तभी कल्किजी ने कहा—यह सभी को विदित है कि तुम दोनों राजवंश में विश्व-रक्षा और पृथिवी के पालनार्थ उत्पन्न हुए हो। तुम्हारी उत्पत्ति सूर्य, चन्द्र, यम और कुबेर के अंश से हुई है ॥३४॥ अब तक तुम अपने रूप को छिपाये रहे हो। परन्तु अब, जब यहाँ मेरे पास आये हो तो मेरी आज्ञा से इन्द्र द्वारा भेजे गये इन रथों पर आरूढ़ हो जाओ ॥३५॥ पद्मापति कल्किजी के द्वारा उक्त वचन कहे जाने पर आकाश से देवताओं ने पुष्पवृष्टि और मुनियों ने स्तुति की ॥३६॥ मन्द वायु प्रवाहित होने लगा। शिवजी के जटा जाल से उन्मुक्त गंगा-जल के मिलन से विभूति भीग गई। मंद पवन ने उस विभूति के कण रूपी परागों को उड़ा कर पार्वती के अंगों में लगाते हुए कल्याण गुण की प्राप्ति की ॥३७॥ तभी सनक मुनि के समान अत्यन्त तेजस्वी, धर्म भवन रूप सुरुचिर जटाओं को धारण किये और हाथ में दण्ड लिये एक ब्रह्मचारी वहाँ आये। उनकी देह कान्ति तप्त स्वर्ण के समान चमचमा रही थी। मनोहर वस्त्रधारी उन कमललोचन दिव्य महापुरुष के मुख पर अक्षय भाव परिलक्षित हो रहा था। उनके तेजोमय शरीर का स्पर्श होते ही संसार के सम्पूर्ण पापों का क्षय हो रहा था ॥३८॥

—※—

तृतीयांश—

पंचम अध्याय

अथ कल्किः समालोक्य सदसाम्पतिभिः सह ।
समुत्थाय ववन्दे तं पाद्यार्घ्याचमनादिभिः ।१।
वृद्धं संवेश्य तं भिक्षु सर्वाश्रमनमस्कृतम् ।
पप्रच्छ को भवानत्र मम भाग्यादिहागतः ।२।
प्रायशो मानवा लोके लोकाना पारणेच्छया ।
चरन्ति सर्वसुहृदः पूर्णा विगतकल्मषाः ।३।
अहं कृतयुगं श्रीश तवादेशकरं परम् ।
तवाविर्भावविभवमीक्षणार्थमिहागतम् ।४।
निरुपाधिर्भवान्कालः सोपाधित्वमुपागतः ।
क्षणदण्डलवाद्यङ्गैर्मायया रचितं स्वया ।५।
पक्षाहोरात्रमासर्तु संवत्सरयुगादयः ।
तवेक्षया चरन्त्येते मनवश्च चतुर्दश ।६।

शुक बोल—उस ब्रह्मचारी को देखते ही भगवान् कल्कि ने अपने सभासदों के सहित उठ कर पाद्य, अर्घ्य और आचमन आदि से उनका पूजन किया ।१। सभी आश्रमों के द्वारा नमस्कार योग्य उन भिक्षु ब्रह्मचारी को आदर-पूर्वक बैठा कर कल्किजी ने प्रश्न किया—आप कौन हैं ? हमारे सौभाग्य से ही आपका यहाँ आगमन हुआ है ।२। पापों से परे रहने वाले जो सत्पुरुष सब के सुहृद है, वे लोक-कल्याणार्थ ही पृथिवी पर विचरण किये करते हैं ।३। भिक्षु ने कहा—हे श्रीपते ! मैं आपका आज्ञाकारी सत्युग हूँ । आपके अवतार का प्रत्यक्ष प्रभाव देखने के निमित्त ही यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ।४। आप निरुपाधि एवं

साक्षात् काल स्वरूप हैं। परन्तु क्षण, दण्ड और लवादि अंगों के द्वारा इस समय उपाधि सहित हो गए हैं। यह सम्पूर्ण विश्व आपकी ही माया से प्रकट हुआ है।५। आपकी ही सत्ता का अनुभव करते हुए यह पक्ष, दिवस, रात्रि, मास, ऋतु, संवत्सर, युगादि काल एवं चौदहों मनु-यह सभी नियमित रूप से विचरण करते हैं।६।

स्वायम्भुवस्तु प्रथमस्ततः स्वारोचिषो मनुः।
तृतीय उत्तमस्ताच्चतुर्थस्तामसः स्मृतः।७।
पञ्चमो रैवतः षष्टश्चाक्षुषः परिकीर्त्तितः।
वैवस्वतः सप्तमो वै ततः सावर्णिरष्टमः।८।
नवमो दक्षसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिकस्ततः।
दशमो धर्म्मसावर्णिरेकादशः स उच्यते।९।
रुद्रसावर्णिकस्तत्र मनुर्वै द्वादशः स्मृतः।
त्रयोदशमनुर्वेदसावर्णिर्लोकविश्रुतः।१०।
चतुर्दशेन्द्रसावर्णिरेते तव विभूतयः।
यान्त्यायान्ति प्रकाशन्ते नामरूपादिभेदत.११।
द्वादशाब्दसहस्रेण देवानाञ्च चतुर्युगम्।
चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं सहस्रगणितं मतम्।१२।
तावच्छतानि चत्वारि त्रीणि द्वे चैकमेव हि।
सन्ध्याक्रमेण तेषान्तु सन्ध्यांशोऽपि तथाविधः।१३।

पहले मनु स्वायंभुव, दूसरे स्वारोचिष, तीसरे उत्तम, चौथे तामस, पाँचवें रैवत. छठवें चाक्षुष, सातवें वैवस्वत, आठवें सावर्णिक, नवें दक्षसार्वाणि, दसवें ब्रह्मसावर्णि, ग्यारहवें धर्म सावर्णि, बारहवें रुद्र सावर्णि, तेरहवें वेद सावर्णि और चौदहवें इन्द्र सावर्णि-यह चौदहों मनु आपकी ही विभूति रूप है। यह सब अपने-अपने नाम रूपादि के भेद से चलते हुए प्रकाशित होते हैं।७-११। बारह हजार दिव्य वर्षों की एक चतुर्युगी होती है, जिसके अनुसार चार हजार दिव्य वर्षों का सत्युग, तीन हजार दिव्य वर्षों का त्रेता, दो हजार दिव्य वर्षों का द्वापर

और एक हजार दिव्य वर्षों का कलियुग होता है ।१३। इन चारों युगों का सध्याक्रम (संधिकाल) क्रमशः चार सौ, तीन सौ, दो सौ, और एक सौ वर्ष का होता है । इन चारों युगों की शेष संध्या का क्रम भी इसी प्रकार समझना चाहिये ।१३।

एकसप्ततिकं तत्र युगं भुङ्क्ते मनुर्भुवि ।
मनूनामपि सर्वेषामेव परिणतिर्भवेत् ।
दिवा प्रजापतेस्तत्तु निशा सा परिकीर्त्तिता ।१४
अहोरात्रश्च पक्षस्ते माससवत्सरर्त्तवः ।
सदुगाधिकृतः कालो ब्रह्मणो जन्ममृत्युकृत ।१५।
शतसंवत्सरे ब्रह्मा लयं प्राप्नोति हि त्वयि ।
लयान्ते त्वन्नाभिमध्यादुत्थितः सृजति प्रभुः ।१६।
तत्र कृतयुगान्तेऽहं कालं सद्धर्म्मपालकम् ।
कृतकृत्याः प्रजा यत्र तन्नाम्ना मां कृतं विदुः ।१७।
इति तद्वच आश्रुत्व कल्किर्निजजनावृतः ।
प्रहर्षमतुलं लब्धा श्रुत्वा तद्वचनामृतम् ।१८।
अवहित्थामुपालक्ष्य युगस्याह जनान्हितान् ।
योद्धुकामः कलेः पुर्यां हृष्टो विशसने प्रभुः ।१९,
गजरथतुरगान्नरांश्च योधान्कनकविचित्रविभूषणा-
चिताङ्गान् । धृतविविधवरास्त्रशस्त्रपूगान्युधि निपु-
णान्गणयध्वमानयध्वम् ।२०।

प्रत्येक मनु इकहत्तर चतुर्युगी तक पृथिवी को भोगते है । इसी प्रकार सब मनु बदलते रहते हैं । चौदहवे मनु जितने समय तक पृथिवी का भोग करते हैं, उतना समय ब्रह्मा का एक दिवस होता है । इतने ही परिमाण की ब्रह्मा की एक रात्रि होती ।१४। इसी प्रकार दिवस-रात्रि, पक्ष, मास, संवत्सर और ऋतु आदि की उपाधि से ब्रह्माजी की जन्म-मृत्यु आदि का विधान होता है ।१५। ब्रह्मा अपनी सौ वर्ष की आयु पूर्ण होने पर वह स्वयं में लय हो जाते हैं। फिर

जव प्रलय काल बीत जाता है तब आपके नाभि-कमल से उनका पुन: उद्भव होता है ।१६। मैं उक्त काल का अंश रूप ही कृतयुग हूँ। मेरे द्वारा श्रेष्ठ धर्म पाला जाता है । मेरे द्वारा सम्पूर्ण प्रजा धर्म का अनुष्ठान करते हुए धन्य हो जाती है इसी लिए ज्ञानीजन मुझे कृतयुग कहते हैं ।१७। सत्ययुग के इस प्रकार के वचनों को सुन कर अपने जनों के सहित कल्किजी परम हर्षित हुए ।१८। कलियुग के नाश में समर्थ कल्किजी ने सत्ययुग को आया देख कर कलियुग के शासन में स्थित विशसन नामक नगरी में युद्ध करने की इच्छा करते हुए अपने अनुयायियों से बोले ।१६। हाथी पर आरूढ़ होकर युद्ध करने वाले, अश्व और रथ पर चढ़ कर युद्ध करने वाले तथा पदाति सैनिक जो देह पर अद्भुत स्वर्णाभूषण और शस्त्रास्त्रों के धारण करने वाले हैं, ऐसे युद्ध-कुशल वीरों की गणना करो ।२०।

—❀—

षष्ठ अध्याय

इति तौ मरुदेवापी श्रुत्वा कल्केर्वचः पुरः ।
कृतोद्वाहौ रथारूढ़ौः समायातौ महाभुजौ ।१।
नानायुधधरैः सैन्यैरावृतौ शूरमानिनौ ।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ दंशितौ बद्धहस्तकौ ।२।
काष्र्णायसशिरस्त्राणौ धनुर्द्धरधुरन्धरौ ।
अक्षौहिणीभिः षड्भिस्तु कम्पयन्तौ भुवं भरैः ।३।
विशाखयूपभूपस्तु गजलक्षैः समावृतः ।
अश्वैः सहस्रनियुतैः रथैः सप्तसहस्रकैः ।४।
पदातिभिर्द्विलक्षैश्च सन्नद्धैर्धृतकार्मुकैः ।
वातोद्धतोत्तरोष्णीषैः सर्वतः परिवारितः ।५ः
रुधिराश्वसहस्राणां पञ्चाशद्भिर्महारथैः ।
गजैर्दशशतैर्मत्तैर्नवलक्षैर्वृतो बभौ ।६।

सूतजी बोले—कल्किजी की आज्ञा से मरु और देवापि ने विवाह कर लिया और वे दोनों महाबाहु दिव्य रथों पर आरूढ़ हुए वहाँ आ पहुंचे ।१। अपने महाबली होने का अभिमान रखने वाले वे दोनों वीर अपने देह को सुरक्षित किये हुए और अंगुलियों में त्राण धारण किये हुए थे। अस्त्रशस्त्रों से भले प्रकार सुसज्जित उन वीरों के साथ अगणित सेना थी ।२। वे अपने शिरों पर काष्र्ण्य वर्ण का शिरस्त्राण धारण किये थे तथा सर्व श्रेष्ठ धनुष बाणों से सज्जित अपनी छः अक्षौ-

हिणी सेना से पृथिवी को कम्पित कर रहे थे ।३। विशाखयूप-नरेश भी अपनी एक लाख हाथी, एक करोड़ घोड़ों और सात हजार रथों से सम्पन्न सेना के साथ थे ।४। उनके साथ दो लाख पैदल सैनिक धनुष बाणों से सुसज्जित थे । वायु के झोंकों से उनके सफे और दुकूल हिल रहे थे ।५। इनके अतिरिक्त पचास हजार लाल वर्ण के अश्व, दस हजार मदमत्त गज एवं अनेकों महारथी तथा नौ लाख पदाति थे ।६।

अक्षौहिणीभिर्दशभिः कल्किः परपुरञ्जयः ।
समावृतस्तथा देवैरेवमिन्द्रो दिवि स्वराट् ।७।
भ्रातृपुत्रसुहृद्भिश्च मुदितः सैनिकैर्वृतः ।
ययौ दिग्विजयाकाङ्क्षी जगतामीश्वरः प्रभुः ।८।
काले तस्मिन्द्विजो भूत्वा धर्म्मः परिजनैः सह ।
समाजगाम कलिना बलिनापि निराकृतः । ९।
ऋतं प्रसादभयं सुखं मुदमुथ स्वयम् ।
योभमर्थी ततोऽदर्पं स्मृति क्षेमं प्रतिश्रयम् ।१०।
नरनारायणौ चोभौ हरेरंशौ तपोव्रतौ ।
धर्म्मस्त्वेतान्समादाय पुत्रान्स्त्रीश्चागतस्त्वरन् ।११।
श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः
बुद्धिर्मेधा तितिक्षा च ह्रीर्मूर्तिर्धर्म्मपालका। ।१२।
एतास्तेन सहायता निजबन्धुगणैः सह ।
कल्किमालोकितं तत्र निजकार्य्यं निवेदितुम् ।१३।

शत्रु-पुरों के विजेता कल्किजी स्वर्ग में सुशोभित सुरपति इन्द्र के समान दस अक्षौहिणी सेना के साथ अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए ।७। इस प्रकार भाई, पुत्र, सुहृद और सैन्य-समूह से सम्पन्न होकर जगदीश्वर कल्किजी ने दिग्विजय की इच्छा से प्रस्थान किया ।८। तभी कलियुग के द्वारा निग्रह किया हुआ धर्म ब्राह्मण वेश में वहां उपस्थित हुआ ।९। ऋत, प्रसाद, अभय, सुख, प्रसन्नता, योग, अर्थ, अदर्प, स्मृति, क्षेम और प्रतिश्रय नामक उसके सेवक साथ थे ।१०। भगवान् विष्णु

के अंश रूप तपोनिष्ठ नर-नारायण को तथा अपने स्त्री पुत्रादि को साथ लेकर धर्म शीघ्रता पूर्वक वहाँ आ गया ।११। श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री आदि धर्म की रक्षा में तत्पर यह सभी साकार रूप में अपने बांधवों से युक्त होकर कल्किजी के दर्शनार्थ और स्वकार्य निवेदनार्थ वहां उपस्थित हुए ।१२-१३।

कल्किर्द्विजं समासाद्य पूजयित्वा यथाविधि ।
प्रोवाच विनयापन्नः कस्त्वं कस्मादिहागतः ।१४।
स्त्रीभिः पुत्रैश्च सहितः क्षीणपुण्य इव ग्रहः ।
कस्य वा विषयाद्राज्ञस्तत्त्वं वद तावतः ।१५।
पुत्राः स्त्रियश्च ते दीना हीनस्वबलपौरुषाः ।
वैष्णवाः साधवो यद्वत्पाखण्डैश्च तिरस्कृताः ।१६।
कल्केरिति वचः श्रुत्वा धर्म्मः शर्म्म निजं स्मरन् ।
प्रोवाच कमलानाथमनाथस्त्वतिकातरः ।१७।
पुत्रैः स्त्रीभिर्निजजनैः कृताञ्जलिपुटैर्हरिम् ।
स्तुत्वा नत्वा पूजयित्वा मुदितं तं दयापरम् ।१८।
शृणु कल्के ममाख्यानं धर्मोऽहं ब्रह्मरूपिणः ।
तव वक्ष. स्थलाज्जातः कामदः सर्वदेहिनाम् ।१९।

भगवान् कल्कि ने ब्राह्मण को देखते ही विनय पूर्वक एवं विधिवत् उसका पूजन किया और बोले—आप कौन हैं ? कहाँ से आगमन हुआ ? ।१४। क्षीण पुण्य मनुष्य के समान आप अपने स्त्री पुत्रादि के सहित किस राज्य से यहां आये हैं, यह सब मुझे यथार्थ रूप में बताइये ।१५। जैसे वैष्णव साधु पाखण्ड के पराजित हो जाते हैं, वैसे ही आप बल-पौरुष से हीन होकर स्त्री पुत्रादि के सहित अत्यन्त कातर क्यों हो रहे हैं ? ।१६। अत्यन्त कातर और अनाथ रूप में आया हुआ धर्म पद्मापति कल्किजी के वचन सुन कर अपने कल्याणार्थ निवेदन करने लगा ।१७। उसने अपने अनुगामियों के सहित हाथ जोड़े और आनन्द-धाम

तथा दयावन्त प्रभु का पूजन कर प्रणाम और स्तुति करने लगा ।१।८
धर्म बोला—हे प्रभो ! मैं अपना वृत्तान्त निवेदन करता हूँ, इसे सुनिये ! मैं ब्रह्मस्वरूप धर्म आपके वक्ष स्थल से उत्पन्न हुआ हूँ। मेरे द्वारा सभी प्राणियों के कार्यों की सिद्धि होती है ।१९।

देवानामग्रणीर्हव्यकव्यानां कामधुग्विभुः ।
तवाज्ञया चराम्येव साधुकीर्त्तिकृदन्वहम् ।२०।
सोऽहं कालेन वलिना बालनापि निराकृतः ।
शककाम्वोजशबरैः सर्वैरावासवासिना ।२१।
अधुना तेऽखिलाधार ! पादमूलमुपागताः ।
यथा संसारकालाग्निसंतप्ताः साधवोऽर्द्दिता, ।२२।
इति वाग्भिरपूर्वाभिर्धर्म्मेण परितोषितः ।
कल्किः कल्कहरः श्रीमानाह संहर्षयञ्छनैः ।२३।
धर्म्म कृतायुग पश्य नरु चण्डांशुवशजम् ।
मां जानासि यथा जातं धातृप्रार्थितविग्रहम् ।२४।
कोटाकैर्बौद्धदलनमिति मत्वा सुखी भव ।
अवैष्णवानामन्येषां तवोपद्रवकारिणाम् ।
जिघांसुर्यामि सेजाभिश्चर गां त्वं निर्भयः ।२५।

देवताओं में प्रथम गणना योग्य में यज्ञांश रूप हव्य-कव्य के अंश का अधिकारी हूँ ! मैं यज्ञ फल प्रदान करके साधुजन का अभीष्ट पूर्ण करता हूँ । आपकी आज्ञा से मैं सदैव साधुओं का कार्य सिद्ध करता हुआ घूमता हूँ ।२०। इस समय शक, कम्बोज, शबर आदि कलियुग के शासन में रहते हैं। कालक्रम के कारण मैं उस बलवान् कलि से ही हारा हुआ हूँ ।२१। हे अखिलाधार ! इस समय साधुजन विश्वरूपी कालाग्नि से संतप्त एवं पीडित हैं। इसी लिए मैं आपके चरणों की शरण में उपस्थित हुआ हूँ ।२२। धर्म के इन अपूर्व वचनों को सुन कर पाप हारी कल्कि जी सब के लिए प्रसन्न करने वाले वचन कहने लगे ।२३। उन्होंने कहा—हे धर्म ! इधर देखो, सत्यग का आगमन हो चुका

है। यह मरु नामक सूर्यवंशी नरेश हैं। तुम्हें यह विदित ही है कि मैंने ब्रह्माजी द्वारा प्रार्थित होकर ही यह देह धारण किया है ।२४। कीटक में बौद्धों का दलन किया और जो तुम्हारे प्रति अधिक उपद्रव करने में तत्पर रहते हैं तथा जो वैष्णव नहीं है, उन्हें नष्ट करने के लिए मैं सेना सहित विचार कर रहा हूँ। अब तुम भी भय-रहित होकर पृथिवी पर गतिशील रहो ।२५।

का भीतिस्ते क्व मोहोऽस्ति यज्ञदानतपोव्रतैः।
सहितैः संचर विभो ! मयि सत्ये व्युपस्थिते ।२६।
अहं यामि त्वयागच्छ स्वपुत्रैर्बान्धवैः सह।
दिशां जयार्थं त्वं शत्रुनिग्रहार्थं जनात्प्रिय ।२७।
इति कल्केर्वचः श्रुत्वा धर्मः परमहर्षितः।
गन्तुं कृतमतिस्तेन आधिपत्यममुं स्मरन् ।२८।
सिद्धश्रमे निजनानवस्थाप्य स्त्रियश्च ताः ।२९।
सन्नद्धः साधुसत्कारर्वेदब्रह्ममहारथः।
नानाशास्त्रान्वेषणेषु संकल्पवरकार्मुकः ।३०।
सप्तस्वराश्वो भूदेवसारथिर्वन्हिराश्रयः
क्रियःभेदबलोपेतः प्रवयौधर्म्मनायकः ।३१।

हे धर्म ! मैं स्वयं उपस्थित हूँ, सत्युग भी आ ही चुका है, तब तुम भयभीत क्यों हो ? तुम व्यर्थ मोहित क्यों हो रहे हो ? अब तुम यज्ञ, दान और व्रत के सहित पृथिवी पर स्वच्छन्द विचरण करो ।२६। हे जगत्प्रिय ! तुम अपने पुत्र एवं बाँधवों सहित शत्रुओं के निग्रह और दिग्विजय के उद्देश्य से प्रस्थान करो। मैं भी तुम्हारा साथ दूँगा ।२७। कल्किजी के यह वचन सुन कर धर्म अत्यन्त आनन्दित हुआ और अपने अधिपत्य का स्मरण करता हुआ, कल्किजी के साथ प्रस्थान में तत्पर हुआ ।२८। उस समय उसने अपनी स्त्री को सिद्धाश्रम में स्थित किया ।२९। धर्म का युद्ध-वेश साधु-सत्कार था। वेद और ब्रह्म महारथ के रूप में साकार हुए तथा विविध शास्त्रों के अन्वेषण ने धनुष का रूप धारण किया ।३०। वेद के सात स्वर उसके रथ के अश्व हुए, ब्राह्मण

सारथि, अग्नि आसन रूप आश्रय हुआ । इस प्रकार धर्म रूप नायक क्रियानुष्ठान रूपी महाबल से समन्वित होकर चल दिया ।३१ ।

यज्ञदानतपः पात्रैर्यमैश्च नियमैर्वृतः ।
खशकाम्बोजकान्सर्वाञ्छबरान्बर्बरापि ।३२।
जेतुं कल्किर्ययौ यत्र कलेरावासमीप्सितम् ।
भूतवासबलोपेतं सारमेयवराकुलम् ।।३३।।
गोमांसपूतिगन्धाढ्यं काकोलूकशिवावृतम् ।
स्त्रीणां दुद्यू तकलहविवादव्यसनाश्रयम् ।३४।
घोरं जगद्भयकरं कामिनीस्वामिनं गृहम् ।
कलिः श्रुत्वोद्यमं कल्केः पुत्रौत्रवृतः क्रुधा ।३५।
पुराद्विशसनात्प्रायात्प्रेचकाक्षरथोपरि :
धर्मः कलिं समालोक्य ऋषिभिः परिवारितः ।३६।
युयुधे तेन सहसा कल्किवाक्यप्रचोदितः ।
ऋतेन दम्भः संग्रामे प्रसादो लोभमाह्वयत् ।३७।

इस प्रकार यज्ञ, दान, तप, यम, नियम आदि से सम्पन्न हुए भगवान् कल्कि खश, कम्बोज, शबर तथा बर्बर आदि म्लेच्छों की विजय कामना से कलि के आवास वाले स्थान में पहुंचे । वहां भूतों का दृढ़ आवास होने से उस स्थान में सब ओर श्वान भूँकते थे । ३२–३३ । इस स्थान में गो मांस की दुर्गंध आ रही थी । कौओं और उल्लुओं से पूर्ण तथा द्यूत का आश्रय एव स्त्रियों के विवाद रूपी क्लेश इसमें भरा हुआ था ।३४। संसार के लिए भयप्रद यह नगरी भयं कर प्रतीत होती थी । यहाँ के पुरुष स्त्रियों की आज्ञा के अनुवर्ती थे । वहाँ का अधीश्वर कलि जी का आक्रमण सुन कर अपने पुत्र-पौत्रादि के सहित उल्लू की ध्वजा वाले रथ पर आरूढ़ होकर विशसनपुरी से बाहर आया । उस कलि को देख कर भगवान् कल्कि की आज्ञानुसार ऋषियों के सहित धर्म ने उसके साथ संग्राम प्रारम्भ किया । दंभ से ऋत और लोभ से प्रसाद भिड़ गया ।३५–३७।

समयादभयं क्रोधो भयं सुखमुपाययौ ।
निरयो मुदमासाद्य युयुधे विविधायुधैः ।३८।
आधिर्योगेन च व्याधिः क्षेमेण च बलीयसा ।
प्रश्रयेण तथा ग्लानिर्जरा स्मृतिमुपाह्वयत् ।३९।
एवं वृत्तो महाघोरो युद्धः परमदारुणः ।
तं द्रष्टुमागता देवा ब्रह्माद्याः खे विभूतिभिः ।४०।
मरुः खशैश्च काम्बोजैर्युयुधे भीमविक्रमैः ।
देवापिः समरे चौनैर्बर्बरैस्तद्गणैरपि ।४१।
विशाखयूपभूपालः पुलिन्दैः श्वपचैः सह ।
युयुधे त्रिविधैः शस्त्रैरस्त्रैर्दिव्यैर्महाप्रभैः ।४२।
कल्किः कोकविकोकाभ्यां वाहिनीभिर्वरायुधैः ।
तौ तु कोकविकोकौ च ब्रह्मणो वरदर्पितौ ।४३।

क्रोध के साथ अभय और भय के साथ सुख का युद्ध होने लगा। निरय ने प्रीति के पास आकर उस पर शस्त्रास्त्रों से प्रहार किये ।३८। आधि से योग का, व्याधि से क्षेम का, ग्लानि से प्रश्रय का और जरा से स्मृति का संग्राम होने लगा ।३९। इस प्रकार अत्यन्त घोर एवं दारुण संग्राम उपस्थित हो गया। ब्रह्मादि देवगण अपनी-अपनी विभूतियों के सहित नभमण्डल में स्थित होकर युद्ध देखने लगे ।४०। भीषण पराक्रमी खश और कम्बोजों से मरु का युद्ध हुआ। देवापि ने चौन और बर्बरों की सेना से संग्राम किया ।४१। विशाखयूप नरेश पुलिन्द और श्वपचादि से महा पराक्रमी विविध अपने दिव्यास्त्रों के सहित भिड़े हुए थे ।४२। कोक-विकोक के साथ स्वयं भगवान् कल्कि श्रेष्ठ शस्त्रास्त्र लेकर सेना सहित युद्ध में तत्पर हुए। यह कोक–विकोक ब्रह्मा जी से वर प्राप्त करने के कारण अत्यन्त अहंकारी हो गए थे ।४३।

भ्रातरौ दानवश्रेष्ठौ मत्तौ युद्धविशारदौ ।
एकरूपौ महासत्वौ देवानां भयवर्द्धनौ ।४४।
पदातिकौ गदाहस्तौ वज्राङ्गौ जयिनौ दिशाम् ।

शुम्भैः परिवृतौ मृत्युजितावेकत्र योधनात् ।४५।
ताभ्यां स युयुधे कल्किः सेनागणसमन्वितः :
शुभानां कल्किसैन्यानां समरस्तुमुलोऽभवत् ।४६।
ह्रेषितैर्बृंहितैर्दन्तशब्दैष्टङ्कारनादितैः ।
शूरोत्क्रुष्ठैर्बाहुवेगैः संशब्दस्तलताडनैः ।४७।
संपूरिता दिशः सर्वा लोका नो शर्म्म लेभिरे ।
देवाश्च भयसंत्रस्ता दिवि व्यस्तपथा ययुः ।४८।
पाशैर्दण्डैः खड्गशक्त्यृष्टिशूलैर्गदाघातैर्बाणपातैश्च घोरैः ।
युद्धे शूराश्छिन्नबाह्वङ्घ्रिमध्याः पेतुः संख्ये शतशः कोटिशश्च

दैत्यों में श्रेष्ठ यह दोनों भाई घोर युद्ध में प्रवीण, अत्यन्त बली और देवताओं को भयभीत करने में समर्थ थे। इन दोनों का रूप एक-सा था ।४४। यह दोनों दिग्विजयी, वज्र जैसे कठोर शरीर वाले थे। दोनों मिल कर मृत्यु को भी युद्ध में जीत लेने में समर्थ थे। अपनी बलवती सेना के सहित यह दोनों गदा धारण कर पैदल ही युद्ध में तत्पर हुए ।४५। इन कोक-विकोक से साथ कल्कि जी का घोर संग्राम हो रहा था, उनकी सेना के प्रमुख वीर भयंकर युद्ध कर रहे थे ।४६। अश्वों का हींसना, हाथियों की चिंघाड़ तथा दान्तों का शब्द, धनुषों की टंकार, वीरों के भुजाघात आदि से भयप्रद भीषण शब्द होने लगा ।४७। उस शब्द से दशों दिशाएँ गूँज उठी। कोई भी जीव भय-रहित नहीं था। देवता भी डर के कारण गगन मण्डल से उल्टे-सीधे मार्गों से भागने लगे ।४८। पाश, दण्ड, खड्ग, शक्ति, शूल, गदा तथा भयंकर बाणों के आघात से करोड़ों शूरों के हाथ, पैर, कटि आदि विभिन्न अंग कट-कट कर गिर रहे थे, जिनसे युद्ध भूमि आच्छादित होने लगी थी ।४९।

—❀—

तृतीयांश—

सप्तम अध्याय

एवं प्रवृत्ते संग्रामे धर्मः परमकोपनः ।
कृतेन सहितो घोरं युयुधे कलिना सहः ।१।
कलिर्दमित्रबाणौघैर्धर्मस्यापि कृतस्य च ।
पराभूतः पुरीं प्रायात्त्यक्त्वागर्दभवाहनम् ।२।
विच्छिन्नपेचकरथः स्रवद्रक्ताङ्गसञ्चयः ।
छुच्छुर्गन्धः करालास्यः स्त्रीस्वामिकमगाद्गृहम् ।३।
दम्भः सम्भोगरहितोद्धृतबाणगणाहतः ।
व्याकुलः स्वकुलांगारो निःसारः प्राविशद्गृहम् ।४।
लोभः प्रसादाभिहतो गदया भिन्नमस्तकः ।
सारमेयरथं छिन्नं त्यक्त्वागाद्रुधिरं वमन् ।५।
अभयेन जितः क्रोधः कषायीकृतलोचनः ।
गन्धाखुवाहं विच्छिन्नं त्यक्त्वा विशमन गतः ।६।

सूत जी ने कहा—इस प्रकार भयंकर युद्ध होता देख कर सत्युग सहित धर्म ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक कलि से युद्ध प्रारम्भ किया ।१। तब धर्म और सत्युग की भीषण बाण-वर्षा को न सह कर हारा हुआ कलि अपने वाहन गधे को वहीं छोड़ कर भागता हुआ अपनी पुरी में घुस गया ।२। उल्लू की ध्वजा वाला उसका रथ चकनाचूर हो गया । उसके देह से रक्त बहने लगा, जिससे छछून्दर की गन्ध निकल रही थी । मुख पर भयानकता आ गई थी । इस अवस्था को प्राप्त हुआ कलि अपनी स्वामिनी नारी के भवन में प्रविष्ट हुआ ।३। इस प्रकार बाण वर्षा से आहत एवं व्याकुल हुआ कलि दम्भ-संभोगादि से रहित होकर

अपने कुल के अंगार रूप से सार-हीन होता हुआ अपने गृह में जा पहुँचा ।४। उधर प्रसाद द्वारा पदाघात को प्राप्त हुए लोभ का शिर कट गया। कुत्तों से युक्त उसका रथ छिन्न भिन्न हो गया। तब वह उसे छोड़ कर रक्त वमन करता हुआ रण क्षेत्र से भाग खड़ा हुआ ।५। अभय से युद्ध करता हुआ क्रोध भी हार गया। उसके छ नेत्रों में लाली छाई थी। चूहों से युक्त दुर्गंध पूर्ण अपने छिन्न-भिन्न रथ को वहीं पड़ा छोड़ कर वह भी विशसनपुरी में जा घुसा ।६।

भयं सुखतलाघाताद्गतासुर्यपतद्भुवि ।
निरयो मुदमुष्टिभ्यां पीडितो यममाययौ ७।
आधिव्याध्यादयः सर्वे त्यक्त्वा वाहमुपाद्रवन् ।
नानादेशान्भयोद्विग्न कृतवाणप्रपीडिताः ।८।
धर्मः कृतेन सहितो गत्वा विशसनं कलेः ।
नगरं बाणदहनैर्ददाह कलिना सह ।९।
कलिर्विप्लुष्टसर्वाङ्गो मृतदारो मृतप्रजः ।
जगामैको रुदन्दीनो वर्षान्तरमलक्षितः ।१०।
मरुस्तु शककाम्बोजाञ्जघ्नेदिव्यास्त्रतेजसा ।
देवापिः शबरांश्चोलान्र्बर्बरांस्तद्गणानपि ।११।
दिव्यास्त्रशस्त्रसम्पातैरर्दयामास वोर्यवान् ।
विशाखयूपभूपालः पुलिन्दान्पुक्कसानपि ।१२।

सुख के तलाघात से आहत हुआ भय प्राण त्याग कर धराशायी हुआ। प्रीति के मुष्टि प्रहार से पीडित हुआ निरय भी तुरन्त ही यमालय को चला गया ।७। सत्युग के बाणों से आहत हुई आधि-व्याधि अपने वाहनों का परित्याग करके इधर-उधर भाग गईं ।८। इसके पश्चात् सत्युग को साथ लेकर धर्म कलि की राजधानी विनशन में प्रविष्ट हुआ और उसने कलि के सहित सम्पूर्ण नगर को अपनी बाणाग्नि से जला दिया ।९। कलि के सभी अंग जल गये। उसकी संतति और पत्नी भी मरण को प्राप्त हुई और वह स्वयं रोता हुआ अप्रकट रूप

से अन्य वर्ष में पलायन कर गया।१०। अपने दिव्यास्त्रों के तेज से राजा मरु ने भी शक और कम्बोजों का संहार कर दिया तथा राजा देवापि ने चोल और बर्बरों को मृत्यु के घाट उतार दिया।११। महाबली विशाखयूप नरेश ने अपने दिव्य शस्त्रास्त्रों के द्वारा पुलिन्द और युक्कसों को नष्ट किया।१२।

जघानविमलप्रज्ञः खड्गपातेन भूरिणा।
नानास्त्रशस्त्रवर्षैस्ते योधा नेशुरनेकधा।१३।
कल्किः कोकविकोकाभ्यां गदापाणिर्युधां पतिः।
युयुधे विन्यासविज्ञो लोकानां जनयन्भयम्।१४।
वृकासुरस्य पुत्रौ तौ नप्तारौ शकुनेर्हरः।
तयोः कल्किः स युयुधे मधुकैटभयोर्यथा।१५।
तयोर्गदा प्रहारेण चूर्णितांगस्त तत्पतेः।
कराच्च्युतापतद्भूमौ दृष्ट्वोचुरित्यहो जनाः।१६।
ततः पुनः क्रुधा विष्णुर्जगज्जिष्णुर्महाभुजः।
भल्लकेन शिरस्तस्य विकोकस्याच्छिनत्प्रभुः।१७।
मृतो विकोकः कोकस्य दर्शनादुत्थितो बली।
तद्दृष्ट्वा विस्मिता देवाः कल्किश्च परवीरहा।१८।

उन श्रेष्ठ बुद्धि वाले विशाखयूप–नरेश ने निरन्तर अपने खड्ग एवं अनेकानेक शस्त्रास्त्रों के द्वारा शत्रुओं को विनष्ट किया। इस प्रकार पर-पक्ष के बहुत सारे वीर मृत्यु को प्राप्त हुए।१३। गदा–कुशल कल्कि जी गदा लिये हुए ही कोक विकोक से संग्राम कर रहे थे, जिससे सब लोक भयभीत हो रहे थे।१४।

वे दोनों भाई शकुनि के पौत्र और वृकासुर के पुत्र थे। पुराकाल में जैसे विष्णु का मधु कैटभ से युद्ध हुआ था, वैसे ही इन दोनों के साथ कल्कि जी घोर संग्राम कर रहे थे।१५। तभी कोक-विकोक के गदाघात से कल्किजी का देह चूर्ण जैसा हो गया। उनके हाथ से गदा छूट गई। यह दृश्य सभी उपस्थित व्यक्ति आश्चर्य पूर्वक देख

रहे थे ।१६। फिर संसार विजेता महाबाहु कल्कि जी ने क्रोध में भर कर भल्लास्त्र के द्वारा विकोक का शिर-छेदन कर दिया ।१७। महाबली विकोक मृत्यु को प्राप्त हो गया था । परन्तु जैसे ही उसके भाई कोक ने उसे देखा वैसे ही वह पुनर्जीवित हो गया । यह देखा कर सभी देव-गण और स्वयं कल्कि जी भी आश्चर्य करने लगे ।१८।

प्रतिकर्त्तुर्गदापाणेः कोकस्याप्यच्छिनच्छिरः ।
मृतः कोको विकोकस्य दृष्टिपातात्समुत्थितः ।१९।
पुनस्तौ मिलितौ तेन युयुधाते महाबलौ ।
कामरूपधरौ वीरौ कालमृत्यू इवापरौ ।२०।
खड्गचर्म्मधरौ कल्किं प्रहरन्तौ पुनः पुनः ।
कल्किः क्रुधा तयोस्तद्वद्बाणेन शिरसी हते ।२१।
पुनर्लग्ने समालोक्य हरिश्चिन्तापरोऽभवत् ।
विसत्त्वत्वमथालोक्य तुरगस्तावताडयत् ।२२।
कालकल्पौ दुराधर्षौ तुरगेणार्दितौ भृशम् ।
कल्केस्त जघ्नतुर्बाणैरमर्षाताम्रलोचनौ ।२३।
तयोर्भुजान्तरं सोऽश्वः क्रुधा समदशद्भृशम् ।
तौ तु प्रभिन्नास्थिभुजौ विशस्ताङ्गदकार्मुकौ :
पुच्छ जगृहतुः सप्तेर्गोपुच्छ बालकाविव ।।२४।

फिर कल्कि जी ने विकोक को पुनर्जीवित करने वाले गदापाणि कोक का ही रच्छेद कर दिया । इस प्रकार कोक मर गया, परन्तु जैसे ही उसे विकोक ने देखा, वैसे ही वह भी पुनर्जीवित हो उठा ।१९। तब इच्छानुसार रूप धारण में समर्थ महाबली कोक-विकोक दोनों मिल कर कल्किजी के साथ दूसरे काल के समान घोर युद्ध करने लगे ।२०। वह खड्ग और ढाल धरण कर बारम्बार कल्किजी पर आघात करने लगे । तब कल्किजी ने अत्यन्त क्रोधित होकर उन दोनों के ही अपने बाणों से मस्तक उड़ा दिये ।२१। परन्तु, जब दोनों के ही मस्तक अपने-अपने धड़ में स्वय जुड़ गये, तब तो कल्कि जी को बड़ी चिन्ता हुई । फिर वे कोक-विकोक द्वारा अपने पर प्रहार होते देख कर स्वयं भी

उन पर घोर प्रहार करने लगे ।२२। युद्ध में दुर्धर्ष कोक-विकोक कल्कि जी अश्वों द्वारा किये गये आघात से अत्यन्त आहत होकर क्रोधित हो उठे और रक्त वर्ण नेत्र करके कल्कि जी पर भीषण बाण-वर्षा में तत्पर हुए ।२३। तब कल्कि जी के अश्व ने अत्यन्त क्रोध पूर्वक कोक-विकोक के भुजमूल छिन्न कर दिये, उनकी भुजाओं की हड्डियों क चूर्ण हो गया। धनुष भी बाहुओं के सहित कट कर गिर गये तब जैसे कोई शिशु की पूंछ पकड़ लेता है, वैसे ही उन्होंने अश्व की पूछ को पकड़ लिया ।२४।

धृतपुच्छौ तु तौ ज्ञात्वा सप्तिः परमकोपनः ।
पश्चात्पद्भ्यां दृढ जघ्ने तयोर्वक्षसि वज्रवत ।२५।
त्यक्तपुच्छौ मूर्च्छितौ तौ तत्क्षणात्पुनरुत्थितौ ।
पुरतः कल्किमालोक्य बभाषाते स्फुटाक्षरौ ।
ततो ब्रह्मा तमभ्येत्त कृताञ्जलिपुटः शनै ।
प्रवाच कल्कि नैवामू शस्त्रास्त्रैर्वधतर्हत ।२७।
कराघातादेवककाले उभयोर्निर्मितो वधः ।
उभयोर्दर्शनादेव नोभयोर्मरण क्वचित् ।
विदित्वेति कुरुष्वात्मन्युभपश्चानयोर्वधम् ।२८।
इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा त्यक्तशस्त्रास्त्रवाहनः ।
तयोः प्रहरतोः स्वैर कल्किर्दानवयोः क्रुधा ।
मुष्टिभ्यां वज्रकल्पाभ्यां बभञ्ज शिरसी तयोः ।२९।
तो तत्र भग्नमस्तिष्कौ भग्नश्रृङ्गागाविव ।
पेततुर्दिवि देवाना भयदौ भुवि बाधकौ ।३०।

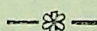
जैसे ही उन्होंने अश्व की पूछ पकड़ी वैसे ही अश्व ने अत्यन्त क्रोधित होकर अपने पिछले पैरों के द्वारा कोक-विकोक के वृक्षस्थल में वज्र के समान प्रहार किये ।२५। जिससे वे दोनों राक्षस अश्व की पूंछ को छोड़ कर पृथ्वी पर गिरते हुए मूर्च्छित हो गये। परन्तु, उन्हें तुरन्त ही चेत हो गया और कल्कि जी को सामने देख कर युद्ध के

निमित्त पुनः ललकारने लगे ।२३। तभी ब्रह्मा जी वहां आये और कल्किजी से हाथ जोड़ कर बोले हे प्रभो ! यह कोक-विकोक शास्त्रास्त्रों से मृत्यु को प्राप्त नहीं हो सकते ।२७। इन दोनों को एक समय में ही थप्पड़ मार कर इनका वध कर दीजिये । क्योंकि जब तक यह दोनों परस्पर एक दूसरे को देखेंगे, तब इनकी मृत्यु सम्भव नहीं है । अतः आप इसी प्रकार इनको मारिये ।२८। ब्रह्माजीके वचन सुन करकल्किजीने शस्त्रास्त्र और वाहन का परित्याग कर दिया और दोनों दानवों के मध्य पहुँच कर दोनों हाथों से एक साथ उन दोनों के वज्र के समान मुष्टिका-प्रहार किया, जिससे उनका मस्तक चूर्ण हो गया ।२६। देवताओं के लिए भयप्रद और सब जीवों का अनिष्ट करने में तत्पर वे दोनों दानव मस्तकों के चूर्ण होने से टूट कर गिरते हुए पर्वत-शिखरों के समान धरती पर आ गिरे ।३०।

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
ननृतुर्जगुस्तुष्टुबुश्च मुनयः सिद्धचारणाः ।
देवाश्च कुसुमासारैर्ववर्षु र्हर्षमानसाः ।३१।
दिवि दुन्दुभयो नेदु प्रसन्नाश्चाभवन्दिशः ।
साश्वान्महारथान्साक्षादहनद्दिव्यसायकैः ।
प्राज्ञः शतसहस्राणां योधनाँ रणमूर्द्धनि ।
क्षय निन्ये सुमन्त्रस्तु रथिनां पञ्चविंशतिः ।३३।
एवमन्ये गार्गभर्ग्यविशालाद्या महारथन् ।
निजघ्नुः समरे क्रुद्धा निषादान्म्लेच्छवर्बरान् ।३४।
एवं विजित्य तान्सर्व्वान्कल्किर्मूपगणैः सह ।
शय्याकर्णैश्च भल्लाटनगरज्जेतुमाययौ ।३५।
नानावर्द्यैर्लोकसंघैर्वरास्त्रैर्नानावस्त्रैर्भूषणैर्भूषिताङ्गैः
नानावहैश्चामरैर्वीज्यमानैर्यातोयोद्धुं कल्किरत्युग्रसेनः ।३७

यह देख कर अत्यन्त आश्चर्य में भरे गन्धर्व और अप्सराऐं

नृत्य-गान में तत्पर हुए तथा देवता, मुनिगण, सिद्धगण और चारणादि प्रयत्न हृदय से पुष्प बरसाने लगे ।३१। कोक-विकोक का संहार हुआ देख कर कवि ने उत्साह पूर्वक अपने दैत्य शत्रु-पक्ष के दस हजार महा-रथियों को नष्ट कर दिया ।६२। प्राज्ञ के द्वारा एक लाख वीर सैनिकों और सुतन्त्रक के द्वारा पच्चीस रथी मृत्यु को प्राप्त हुए ।६६। इसी प्रकार गर्ग्य, भर्ग्य और विशालादि ने भी निषाद, म्लेच्छ और बर्वरों का क्रोध पूर्वक संहार कर दिया ।३४। इस प्रकार विजय को प्राप्त हुए कल्किजी अपनी विशाल सेना के सहित युद्ध के निमित्त आगे बढ़े। उस समय अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। श्रेष्ठ शस्त्रास्त्र धारी वीर उनके साथ-साथ चल रहे थे। अनेक प्रकार के वाहन उस सेना में आ गये थे। सब ओर मे कल्किजी पर चमर ढोरे जा रहे थे ।३५-३६।



तृतीयांश—

अष्टम अध्याय

सेनागणैः परिवृतः कल्किर्नारायणः प्रभु ।
भल्लाटनगर प्रायात्खड्ग धृक्सप्तिवाहन; ।१।
स भल्लाटेश्वरो योगी ज्ञात्वा विष्णु जगत्पतिम् ।
निजसेनागणैः पूर्णो योद्धुकामो हरि ययौ ।२।
स हर्षोत्पुलकः श्रीमान्दीघङ्गिः कृष्णाभावनः ।
शशिध्वजो महातेजा गजायुतबलः सुधी ६।
तस्य पत्नी महादेवी विष्णुव्रतपरायणा ।
सुशान्ता स्वामिनं प्राह कल्किना योद्धुमुद्यम् ।४।
नाथ कान्त जगन्नाथं सर्वान्तर्यामिनं प्रभुम् ।
कल्कि नारायण साक्षात्कथं त्वं पहरिष्यसि ।५।
सुशान्ते परमो धर्म्म; पृजापतिविनिर्मितः ।
युद्धे पृहारः । सर्वत्र गुरौ शिष्ये हरेरिव ।६।

सूत जी बोले—तदनन्तर अपने अश्व पर आरूढ़ हुए कल्कि जी खड्ग धारण किये हुए, सेना के सहित भल्लाट नगर में पहुँचे ।१। योगिराज भल्लाट नरेश ने कल्कि जी को साक्षात् जगदीश्वर विष्णु जाना और वह उनसे युद्ध करने के लिए सेना सहित नगर से बाहर चले ।२। उस समय वह दीर्घांग, श्रीमान्, कृष्ण भक्त, महाबली एव महा तेजस्वी राजा शशिध्वज हर्ष से पुलकित हो रहे थे ।३। उन राजा की पत्नी विष्णु व्रत-परायण महादेवी सुशान्ता थीं । उसने जब अपने पति को कल्कि जी से युद्ध के लिए जाने को उद्यत देखा तब वह कहने लगी ।४। हे नाथ ! हे स्वामिन् ! कल्कि जी तो साक्षात् जगन्नाथ विष्णु

और सर्वान्तरयामी है। आप उन पर प्रहार कैसे कर सकेंगे ? ।५। शशिध्वज बोले—हे सुशान्ते ! प्रजपति ब्रह्माजी ने जो धर्म निश्चित किया है, उसके अनुसार युद्धेच्छुक गुरु शिष्य अथवा नारायण ही क्यों न हों, उन सब पर प्रहार करना चाहिए ।६।

जीवतो राजभोगः स्यान्मृतः स्वर्गे प्रमोदते ।
युद्धे जयो वा मृत्युर्वा क्षत्रियाणां सुखावहः ।७।
देवत्वं भूपतित्वं वा विषयाविष्टकामिनाम् ।
उन्मदानां भवेदेव न हरेः पादसेविनाम् ।८।
त्वं सेवकः स चापीशस्त्वं निष्कामः स चाप्रभः ।
युवयोर्युद्धमिलनं कथं मोहाद्भविष्यति ।९।
द्वन्द्वा तीते यदि द्वन्द्वमीश्वरे सेवक तथा ।
देहावेशाल्लीलयैव सा सेवा स्यात्तथा मम ।१०।
देहावेशादीश्वरस्य कमाद्य दैहिका गुणाः ।
मायाङ्ग यदि जायन्ते विषयाश्च न किं तथा ।११।
ब्रह्मतो ब्रह्मतेस्य शरीरित्वे शरीरिता ।
सेवकस्याभेददृशस्त्वेवं जन्मलयोदयाः ।१२।

यदि युद्ध भूमि से सकुशल लौट आवे तो वह अखण्ड राज्य का भोगने वाला होता हैं और यदि मृत्यु हो जाय तो स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इस प्रकार क्षत्रियों के लिए विजय और मरण दोनों में ही सुख की उपलब्धि है ।७। सुशान्ता ने कहा-हे नाथ ! कामी अथवा विषया-सक्त पुरुषों के लिए ही युद्ध में विजय अखण्ड राज्य के देने वाली और मृत्यु देवत्व प्रदान करने वाली होती है। परन्तु हरि-चरणों के सेवकों को उससे क्या प्रयोजन है ? ।८। आप हरि-सेवक है। वह ईश्वर आप निष्काम को फल प्रदान नहीं करेंगे। तब आप दोनों में मोह पूर्वक युद्ध कैसे संभव है ? ।९। शशिध्वज बोले-परम पुरुष परमात्मा तो सुख दुःख रूपी सब द्वन्दों से परे है। परन्तु उनके देह धारण कर लेने पर उन ईश्वर और सेवक में युद्ध होने लगे तो उसे

सेवा-स्वरूप विलास लीला मात्र ही समझना चाहिये ।१०। ईश्वर के अवतार धारण करने पर कामादि माया अश रूप दैहिक गुणों का समन्वित होना भी अनिवार्य है । जब कामादि विषयों का आरोपित होना देह-धर्म ही है, तो उनके शरीर में भी वह क्यों नहीं व्याप्त होंगे ?।११। पूर्ण ब्रह्मभाव सम्पन्न ईश्वर ब्रह्म कहे जाते है और जब वह शरीर धारण कर लेते है तब उन्हें शरीरिता कहते है । सेवक की भेद दृष्टि के लय होने अर्थात् अभेद-ज्ञात की उपलब्धि होने पर उसका जन्म लय और उदय भी उसी प्रकार सम्भव है ।१२।

सेव्यसेवकता विष्णोर्भाया सेवेति कीर्तिता :
द्वैतातस्य चेष्टैषा त्रिवर्गजनिका सताम् ।१३।
अतोऽह कल्किना योद्धुं यामि कान्ते स्वसेनथा ।
त्वंतं पूचय कान्तेऽद्य कमलापतिमोश्वरम् ।१४।
कृतार्थाऽह त्वय विष्णुसेवासंमिलितात्मना ।
स्वामिन्निह परत्रापि वैष्णावो प्रथिता गतिः ।१५।
इति तस्या वल्गुवाग्भि; प्रणातायाः शशिध्वजः ।
आत्मान वैष्णव मेने साश्रुनेत्रा हरिं स्मरम् ।१६।
तामालिङ्गय प्रमुदितः शुरबंहुभिरावृतः ।
वदन्नाम स्मरनूरुा वैष्णावैर्योद्धुमयपौ ।१७।
गत्वा तु कल्किसेनायां विद्राव्य महती चमूम् ।
शय्याकर्णागिर्णैर्वीरैः सन्द्वैरुद्यतायुधैः ।१८।

सेव्य-सेवक भाव ही सेवा है। यह कार्य विष्णु-माया का ही हैं। इस द्वैताद्वैत चेष्टा के द्वारा ही सत्कर्मी पुरुष त्रिवर्ग को प्राप्त कर लेते हैं ।१३। हे कान्ते ! यही कारण है कि मैं अपनी सेना के सहित कल्किजी से युद्ध करने के लिए प्रस्थान कर रहा है । हे प्रिये ! इधर तुम कमलापति भगवान् विष्णु का पूजन करो ।१४। सुशान्ता ने कहा — हे नाथ ! आप विष्णु-सेवा द्वारा उन्हीं में लीन हो गये इससे मैं भी धन्य हो गई हूँ इहलोक और परलोक में भगवान् विष्णु की सेवा के

अतिरिक्त अन्य कोई गति नहीं ।१५। सुशान्ता के यह विनम्र वचन सुन कर राजा के नेत्रों में हर्षाश्रु छा गये और वे अपने को परम वैष्णव मानते हुए भगवान् विष्णु का स्मरण करने लगे ।१६। उन्होने अपनी प्रिय पत्नी को हृदय से लगा लिया और फिर अपने वीर वैष्णव चल दिये ।१७। उन्होने कल्कि-सेना में प्रविष्ट होकर उनकी विशाल-सेना को द्रवित कर दिया ! उस समय महाबली शय्या-कर्णगण आयुधों से सुसज्जित हुए उनसे युद्ध में तत्पर हुए ।१८।

शशिध्वजसुत: श्रीमान्सूर्यकेतुर्महाबल: ।
मरुभूपेन ययधे वैष्णवो धन्विनाँ वर: १९।
तस्यानुजो वृहत्केतु: कान्त: कोकिलनिस्वन: ।
देवपिना स य्युधे गदायुद्ध विशारद: ।२०।
विशाखयूपस्तुभूपस्तु शशिध्वजनृपेण च ।
रुधिराश्वो धनुर्धारी लघुहस्त; प्रतापवान् ।
रजस्यनेन युयुधे भर्ग्य: शान्तेन धन्विना ।२२।
शूलै प्रासैर्गदाघातैर्बाणाशक्त्यष्टितोमरैः ।
भल्लै: खड्गैर्भुशुण्डीभि: कुन्तै: समभवद्रण: ।२३।
पताकाभिर्ध्वजैञ्चिह्नैस्तोमरैश्छत्रचामरै:
प्रोद्धूतधूलिपटलैरन्धकारो महानभूत ।२४।

महावली, धनुर्धारी एव परम वैष्णव राज-पुत्र सूर्य केतु राजा मरु से युद्ध करने लगा ।१९। सूर्यकेतु का छोटा भाई वृहत्केतु कोकिल के समान मधुरवाणी वाला और अत्यन्त कमनीय होते हुए भी गदा युद्ध. में पारगत था, वह राजा देवापि के साथ सग्राम तत्पर हुआ ।२०। हाथियों से सम्पन्न और विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सुसज्ति विशाखयुप-नरेश राजा शशिध्वज से युद्ध करने लगे ।२१। लाल अश्व पर आरोहण किये हुए हस्त लाघव सम्पन्न धनुर्धारी एव प्रातापी भर्ग्य धूलिमयी पृथ्वी पर धनुर्धारी शान्त से युद्ध में भिड़ गया ।२२। इस

प्रकार रणक्षेत्र में सब ओर से शूल, प्रास, गदा, वाण, शक्ति, यष्टि तोमर, भाले, खड्ग, भुशुंडी और कुन्त आदि अस्त्र-शस्त्र चलने लगे ।२३। उस समय छत्र, चमर, ध्वजा, पताका आदि की छाया और बहुत धूल उड़ने से रणभूमि में अन्धकार छा गया ।२४।

गगनेऽजुधना देवाः केवा वासं न चक्रिरे ।
गन्धर्वैः साधुसन्दर्भैर्गायनैरमृतायनैं ।२५।
द्रष्टु समागताः स लोकाः समरमद्भुतम् ।
शखदुन्दुभिसन्नादैराफोटैर्बृंहितैरिप ।२३।
ह्रेषितर्योधनोत्कुष्टैर्लोकात्रमूका इभवन् ।
रथिनो रथिभिः साकं पदात्राश्च पदातिभः ।२७।
हया हयैरिभाश्चेभैः समरोऽमरदानवे ।
यथामवत्स तु घनो यमराष्ट्रविवर्द्धनः ।२८।
शशिध्वजचमूनाथैः कल्किसेनाधिपः सह ।
नियेतुः सैनिका भूमौ छिन्नाबाव्हङ्घ्रिकन्धराः ।२९।
धावन्तोऽतिव्रुवन्तश्च विकुर्वन्तोऽसृगुक्षिताः ।
उपर्युपरि संच्छन्ना नजाश्वरथमर्दिताः ।३०।

गगन मण्डल में स्थित हुए देवगण इस संग्राम को देख रहे थे । गंधर्व भी अमृत-ध्वनि में गाते हुए उस युद्ध को देखने के लिए आ गये थे ।२५। सभी लोक उस अद्भुत संग्राम देखने के उद्देश्य से वहाँ आ गये थे । शंख और नक्कारे बज रहे थे । परस्पर धौल मारने से, हाथियों की चिघाड़ से, अश्वों के हिनहिनाने से तथा शस्त्रास्त्रों के टकराने से जो शब्दों निकल रहे थे, उनके मिलन से रणभूमि गूंज रही थी । सभी लोक गूक जैसे लग रहे थे, क्योंकि किसी को किसी की बात सुनाई नही देती थी, रथी रथी से, पैदल पैदल से, घुड़सवार घुड़सवार से भिड़ रहे थे । देवासुर-सग्राम के समान भीषण यह युद्ध यमराष्ट्र की वृद्धि कर रहा था ।२६-२८। कल्किजी के सेनापतियों से भिड़े हुए शशिध्वज के सेनापति एवं वीरगण शिर कटा कर पृथ्वी पर गिर रहे थे ।२९।

आहत होकर कोई भाग रहा है, कोई चीत्कार कर रहा है, कोई आर्त्त-नाद कर रहा है, किसी पर रक्त की धार पड़ रही है, कोई एक-दूसरे से गुँथे हुए ही पृथिवी पर गिर रहे हैं तथा कोई हाथी या अश्व के पावों अथवा रथों के पहियों से ही कुचले जा रहे हैं ।३०।

निपेतुः प्रधने वीराः कोटिकोटिसहस्रशः ।
भूते सानन्दसन्दोहाः स्रवन्तो रुधिरोदकम् ।।३१।।
उष्णीषहंसाः संच्छिन्न गजरोधोरथल्पवाः ।
करोरुमीनाभरणमसिकाच्चानवालुकाः ३२
एवं प्रवृत्ताः संग्रामे नद्यः सद्योऽतिदारुणाः ।
सूर्यकेतुस्तु मरुणा सहितो युयुधे बली ।।३३।।
कालकल्पो दुराधर्षो मरुं बाणैरताडयत् ।
मरुस्तु तत्र दशभिर्मार्गणैरर्दयद्भृशम् ।।३४।।
मरुबाणाहतो वीराः सूर्यकेतुरमर्षितः ।
जघान तुरगान्कोत्पापदोद्घातेन तद्रथम् ।।३५।।
चूर्णयित्वाऽथ तेनापि तस्य वक्षस्यताडयत् ।
गदाघातेन तेनापि मरुर्मूर्च्छामवापह ।।३६।।

इस प्रकार, इस युद्ध में हजारों करोड़ वीर नाश को प्राप्त हुए। रणक्षेत्र में रक्त की नदी बह चली। इस नदी के प्रवाह को देख कर भूत-पिशाचादि अत्यन्त आनन्दित हुए।३१। इस लोहित नदी में बहती हुई पगड़ियां सरोवरों में सुशोभित हंस के समान प्रतीत होती थीं। उसमें गिरे हुए हाथी ऐसे लगते थे जैसे टापू हों। रथ उसमें नावों के समान तैरने लगे और कटे हुए हाथ-पांव मच्छ जैसे लगने लगे। उसमें गिरे हुए खड्ग ऐसे लगते थे मानों स्वर्णिम रेती चमक रही हो।३२। इस प्रकार रणक्षेत्र में यह अत्यन्त दारुण नदी बहने लगी। सूर्यकेतु मरु के साथ युद्ध कर रहा था।३३। काल के समान विकट सूर्यकेतु के बाणों से मरु आहत हो गये तब मरु ने भी दश बाणों से सूर्यकेतु को आहत कर दिया।३४। मरु के बाणों से आहत हुए सूर्यकेतु ने मरु के सभी अश्व

मार डाले और पदाघात से रथ तोड़ डाला। फिर मरु के हृदय पर भीषण गदाघात किया, जिससे वह मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े।३५-३६।

सारथिस्तमपोवाह रथेनान्येन धर्म्मवित्।
बृहत्केतुश्च देवापिं बाणैः प्राच्छादयद्बली ॥३७॥
धनुर्विकृष्य तरसा नीहारेण यथा रविम्।
स तु बाणमयं वर्षं परिवार्य निजायुधैः ॥३८॥
बृहत्केतुं दृढ़ं जघ्ने कङ्क पत्रैः शिलाशितैः।
भिन्नं शूलमथालोक्य धनुर्गृह्य पतत्रिभिः ॥३९॥
शितधारैः स्वर्णं पुंखैर्गार्द्ध्रपत्रैरयोमुखैः।
देवापिमाशुगैर्जघ्ने बृहत्केतुः ससैनिकम् ॥४०॥
देवापिस्तद्धनुर्दिव्य चिच्छेद निशितैः शरैः।
छिन्नधन्वा बृहत्केतुः खड्गपाणिर्जिघांसया ॥४१॥

तब मरु का धर्मवित् सारथि उन्हें उठा कर अन्य रथमें लें गया। उधर महाबली बृहत्केतु ने देवापि पर बाण-वर्षा की।३७। जैसे सूर्य कुहरे से आच्छादित हो जाता है, वैसे ही बाणों से आच्छादित देवापि ने तुरन्त धनुष लेकर शत्रु की बाण वर्षा को अपनी बाण वर्षा से काट दिया।३८। बृहत्केतु ने शान चढ़े हुए बाणों से अपने शूल को भी नष्ट हुआ देख कर पुनः धनुष उठाया और उस पर स्वर्ण जटित, गृद्ध पंख के समान तथा लोह-मुख वाले तीक्ष्ण बाण चढ़ा कर देवापि पर सैन्य सहित भीषण प्रहार किये।३९-४०। परन्तु बृहत्केतु के उस दिव्य धनुष को देवापि ने अपने तीक्ष्ण बाणों से काट दिया। तब देवापि को मारने के विचार से बृहत्केतु ने हाथ में खड्ग ग्रहण किया।४१।

देवापेः सारथिं साश्वं जघ्ने शूरो महामृधे।
स देवापिर्धनुस्त्यक्त्वा तलेनाहत्य तं रिपुम् ॥४२॥
भुजयोरन्तरानीय निष्पिपेष स निर्दयः।
तं द्वयष्ठवर्णं निष्क्रान्तं मूर्च्छितं शत्रुणार्द्दितम् ॥४३॥

अनुजं वीक्ष्य देवापिमूर्ध्नि सूर्यध्वजोऽवधीत् ।
मुष्टिना वज्रपातेन सोऽपतन्मूर्च्छितो भुवि ।
मूर्च्छितस्य रिपुः क्रोधासेनागणमताडयत ।।४४।।
शशिध्वजः सर्वजगन्निवासं कल्किं पुरस्तादभिसूर्यवर्च्चसम
श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणं ।
बृहद्भुजं चारुकिरीटभूषिणम् ।४१।
नानामणिव्रातचिताङ्गशोभया निरस्तलोकेक्षणहृत्तमोमयम्
विशाखयूपादिभिरावृतं प्रभुं ददर्श धर्मेण कृतेन पूजितम् ।।४६

फिर उस घोर युद्ध में बृहत्केतु ने देवापि के घोड़ों और सारथि को मार डाला। तब देवापि ने भी धनुष छोड़ कर शत्रु पर हथेली का प्रहार किया ।४२। फिर उसे दोनों भुजाओं में दबा कर मर्दन करने लगा। उस समय अट्ठाईस वर्षीय वह राजपुत्र बृहत्केतु पीड़ित होता हुआ मूर्च्छित हो गया ।४३। अपने छोटे भाई की ऐसी दशा देखकर सूर्यकेतु ने देवापि के मस्तक पर वज्र के समान मुष्टिका-प्रहार किया, इससे देवापि मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। तब शत्रु को मूर्च्छित जान कर सूर्यकेतु उसकी सेना पर प्रहार करने लगा ।४४। इधर राजा शशिध्वज ने उस रणक्षेत्र में सूर्य के समान तेजोमय, विश्वाधार, कमलाक्ष, पीताम्बर धारी, विशाल भुजा वाले और सुरम्य किरीट से सुशोभित कल्किजी को अपने सामने देखा ।४५। अनेक मणियों से सुसज्जित अङ्ग वाले, प्राणियों के नेत्रों और हृदयों के अन्धकार को नष्ट करने वाले कल्किजी के सब ओर विशाखयूप नरेश जैसे अनेक राजागण नत-मस्तक खड़े हैं तथा सत्य और धर्म उनका पूजन कर रहे हैं ।४६।

●●●

तृतीयांश—

नवम अध्याय

हृदि ध्यानास्पदं रूपं कल्केर्दृष्ट्वा शशिध्वजः ।
पूर्णं खड्गधरं चारुतुरगारूढमब्रवीत् ॥१॥
धनुर्बाणधरं चारु-विभूषणवराङ्गकम् ।
पापतापविनयाशार्थमुद्यतं जगतां परम् ॥२॥
प्राह तं परमात्मानं हृष्टरोमा शशिध्वजः ।
एह्येहि पुण्डरीकाक्ष ! प्रहारं कुरु मे हृदि ॥३॥
अथवात्मन् बाणभिया तमोऽन्धे हृदि मे विश ।
निर्गुणस्य गुणज्ञत्वमद्वै तस्यास्त्रताडनम् ॥४॥
निष्कामस्य जयोद्योगसहायं यस्य सैनिकम् ।
लोकाः पश्यन्तु युद्धे मे द्वैरथे परमात्मनः ॥५॥
परबुद्धिर्यदि दृढं प्रहर्त्ता विभवे त्वयि ।
शिवविष्णोर्भेदकृते लोकं यास्यामि संयुगे ॥६॥

सूतजी ने कहा—हे ऋषियो ! कल्किजी का हृदय में ध्यान के योग्य, सुन्दर, खड्गधारी एवं तुरंगारूढ़ पूर्ण स्वरूप देख कर शशिध्वज ने विचार किया ।१। धनुर्बाणधारी सुन्दर आभूषणों से विभूषित जगदीश्वर भगवान् कल्कि का अवतार संसार के पाप-ताप के निवारणार्थ हुआ है ।२। राजा शशिध्वज ने पुलकित शरीर से परब्रह्म कल्किजी के प्रति निवेदन किया—हे पुण्डरीकाक्ष ! आइये, मेरे हृदय पर प्रहार कीजिये ।३। हे परमात्मन् ! मेरे बाणों की मार से बचने के लिए मेरे तमाच्छादित हृदय में आकर छिप जाओ । जो निर्गुण होकर भी गुणों के ज्ञाता हैं, जो अद्वैत होकर भी अस्त्र प्रहार में तत्पर हैं तथा जो निष्काम होकर भी विजय की इच्छा से सैन्य-संहार कर रहे हैं मैं उन्हीं

भगवान् के साथ द्वैरथ युद्ध में तत्पर हो रहा हूँ। सभी लोक इसका अवलोकन करें।४-५। मैं आप विभु पर प्रहार करूँगा। परन्तु प्रहार करते समय भी यदि मैं आपको ब्रह्म से भिन्न समझने लगूँ तो शिव और विष्णु में भेद जानने वाले को जिस लोक की प्राप्ति होती है, मुझे उसी लोक की प्राप्ति हो।६।

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा अक्रोधः क्रुद्धवद्विभुः।
बाणैरताडयत्संख्यं धृतायुधमरिंदमम् ॥७॥
शशिध्वजस्तत्प्रहारमगणय्य वरायुधैः।
तं जघ्ने बाणवर्षेण धाराभिरिव पर्वतम् ॥८॥
तद्बाणवर्षभिन्नान्तः कल्किः परमकोपनः।
दिव्यैः शस्त्रास्त्रसंघातैस्तयोर्युद्धमवर्त्तत ॥९॥
ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रैर्वायव्यस्य च पार्वतैः।
आग्नेयस्य च पार्ज्जन्यैः पन्नगस्य च गारुडैः ॥१०॥
एवं नानाविधैरस्त्रैरन्योन्यमभिजघ्नतुः।
लोका; संपाला सत्रस्ता युगान्तमिव मेनिरे ॥११॥
देवा बाणाग्निसंत्रस्ता अगमन्खगमाः किल।
ततोऽतिवितथोद्योगौ वासुदेवशशिध्वजौ ॥१२॥
निरस्त्रौ बाहुयुद्धेन युयुधाते परस्परम्।
पदाघातैस्तलाघातैर्मुष्टिप्रहरणैस्तथा ॥१३॥

राजा के इन वचनों को सुन कर क्रोध से परे कल्किजी क्रोधित हो उठे। यह देख कर आयुधधारी एवं अरिमर्दन राजा शशिध्वज ने उन पर बाण-प्रहार प्रारम्भ किया।७। जब राजा ने अपने उस प्रहार को निष्फल हुआ देखा तो वह पर्वत पर वर्षणशील मेघ के समान घोर बाणों की वर्षा करने लगे।८। उस बाण-वर्षा से कल्किजी का शरीर आहत हो गया। तब वे अत्यन्त क्रोध करके आगे बढ़े। इस प्रकार दोनों में घोर युद्ध होने लगा।९। ब्रह्मास्त्र के द्वारा ब्रह्मास्त्र काटने लगे। पार्वतास्त्र से वायव्यास्त्र, मेघास्त्र से आग्नेयास्त्र और गारुडास्त्र से

सर्पास्त्र नष्ट होने लगे ।१०। इस प्रकार विविध भाँति के दिव्यास्त्रों के द्वारा वे दोनों भीषण प्रहारमें तन्मय थे । इससे लोक और लोकपाल सभी यह समझते हुए कि कहीं आज ही प्रलय न हो जाय, अत्यन्त भयभीत हुए ।११। बाणाग्नि को देख कर युद्ध देखने के लिए गगन मण्डल में एकत्र हुए देवता भयभीत हो गये । दिव्यास्त्रों को व्यर्थ हुए देख कर कल्किजी और राजा शशिध्वज दोनों बाहु युद्ध के निमित्त अस्त्र त्याग कर उतर पड़े । फिर पदाघात. करतलाघात और मुष्टिका-प्रहार से युद्ध होने लगा ।१२-१३ ।

नियुद्धकुशलौ वारौ मुमुदाते परस्परम् ।
वराहोद्धृतशब्देन तं तलेनाहनद्धरिः ।१४।
स मूर्च्छितो नृपः कोपात्समुत्थाय च तत्क्षणा त् ।
मुष्टिभ्यां वज्रकल्पाभ्यामवधत्कल्किमोजसा ।
स कल्किस्तत्प्रहारेण पपात भुवि मूर्च्छितः ।।१५।।
धर्म्मः कृतश्च ता तं दृष्ट्वा मूर्च्छितं जगदीश्वरम् ।
समागतौ तमानेतुः कक्षे तौ जगृहे नृपः ।।१६।।
कल्कि वक्षस्युपादाय लब्धार्त प्रययौ गृहम् ।
युद्धेन नृपाणामन्येषां पुत्रौ दृष्ट्व सुदुर्ज्जयौ ।।१७।।

दोनों ही रणविद्या में अत्यन्त कुशल थे और परस्पर एक दूसरे के कौशल को देखते हुए प्रसन्न हो रहे थे । सृष्टि के आरम्भ में पृथिवी का उद्धार करने के लिए वाराह भगवान् ने जैसा शब्द किया था, कल्किजी द्वारा किये गये करतलाघात से वैसा ही भीषण शब्द हुआ ।१। उस आघात से राजा शशिध्वज मूर्च्छा को प्राप्त हो गए । फिर तुरन्त ही सचेत होकर उन्होंने कल्किजी पर वज्र के समान मुष्टि प्रहार किया, जिससे कल्किजी अचेत होकर पृथिवी पर लेट गये ।१५। तब जगत्पति कल्किजी को मूर्च्छित देख कर धर्म और सत्युग वहाँ आकर उन्हें ले जाने लगे । परन्तु राजा शशिध्वज ने उन दोनों को काँख में दबा लिया ।१६। और कल्किजी को अङ्क में उठा कर कृत कृत्य होते हुए

उन्हें अपने घर ले गये और सोचने लगे कि मेरे दोनों पुत्रों को भी युद्ध में कोई राजा जीत नहीं सकता है ।१७।

कल्किं सुराधिपपतिं प्रधने विजित्य धर्म्मं कृतञ्च ।
निजकक्षयुगे निधाय । हर्षोल्लसद्धृदय उत्पुलकः ।
प्रमाथी गत्वा गृहं हरिगृहे ददृशे सुशान्ताम् ॥१८॥
दृष्ट्वाव तस्याः सुललितमुखं वैष्णवीनाञ्च मध्ये
गायन्तीनां हरिगुणकथारतामथ प्राह राजा ।
देवादानां विनयवचसा शम्भले जन्मनावा ।
विद्यालाभं परिणयविधिं म्लेच्छपाषण्डनाशम् ॥१९॥
कल्किः स्वयं हृदि समायमिहागोऽद्धा मूर्च्छिच्छ-
लेन तव सेवनीक्षणार्थम् । धर्म्मं कृतञ्च मम कक्षा-
युगे सुशान्ते ! कान्ते विलोकय समर्च्चय संविधेहि ॥२०॥
इति नृपवचसाविनोदपूर्णा हरिकृत धर्म्मं यु.तं प्रणम्य नाथम्
सह निजसखिभिर्ननर्त्त रामा हरिगुणकीर्त्तनवर्त्तना विलज्जा।

इस प्रकार देवराज इन्द्र के भी स्वामी कल्किजी को हरा कर और धर्म तथा सत्युग को काँख दवा कर राजा शशिध्वज प्रसन्न हृदय से सेनाओं का मर्दन करता हुआ अपने घर को गया और वहाँ उसने अपनी भार्या सुशान्ता को विष्णु मन्दिर में स्थित पाया ।१८। उसके चारों ओर वैष्णवी नारियाँ बैठ कर विष्णु-गुण-गान में तन्मय थीं । राजा ने सुशान्ता का सुन्दर मुख देखते हुए कहा—हे सुशान्ते ! देवताओं की प्रार्थना पर जो शम्भल ग्राम में अवतीर्ण हुए हैं और जिन्होंने विद्या प्राप्त कर म्लेच्छों और पाखंडियों को नष्ट कर दिया है, वही हृदयों में विहार करने वाले कल्कि भगवान अपनी माया द्वारा मूर्च्छा रूपी छल से आवृत होकर तुम्हारी शक्ति की परीक्षा लेने के निमित्त यहाँ पधारे हैं । मेरी काँखों में यह धर्म और सत्युग दोनों दबे हुए हैं, तुम इनका पूजन करो ।१९-२०। राजा के यह विनोदपूर्ण वचन सुन कर रानी बड़ी प्रसन्न हुई और धर्म तथा सत्युग के सहित कल्किजी को उसने प्रणाम किया । फिर लज्जा को छोड़ कर सखियों के सहित हरि नाम संकीर्त्तन और नृत्य करने में तत्पर हुई ।२१।

तृतीयांश —

दशम अध्याय

जयहरेऽमराधीशसेवितं तव पदाम्बुजं । भूरिभूषणम्
कुरू ममाग्रतः साधुसत्कृतं त्यज महामते ! मोहमात्मनः ।।१।।

तव वपुर्जगद्रूपसम्पदा विरचितं सतां मानसे स्थितम् ।
रतिपतेर्मनोमोहदायकं कुरु विचेष्टितं कामलम्पटम् ।।२।।

तव यशो जगच्छोकनाशन मृदुकथामृतप्रीतिदायकम् ।
स्मितसुधोक्षितं चन्द्रवन्मुखं तवकरोत्वलं लोकमङ्गलम् ।।३।।

मम पतिस्त्वयं सर्वदुर्जयो यदि तवाप्रियं कर्मणाचरेत् ।
जहि तदात्मनः शत्रुमुद्यतं कुरु कृपां न चेदीदृगीश्वरः ।।४।।

महदहंयुतं पञ्चमात्रया प्रकृतिजायया निर्म्मितं वपुः ।
तव निरीक्षणाल्लीलया जगत्स्थितिलयोदयं ब्रह्मकल्पितम् ।५।

सुशान्ता बोली—हे हरे ! आपकी जय हो ! महामते ! अब आप अपने इस महोच्छन्न भाव को त्याग कर इन्द्र से भी सेवित, सुन्दर आभूषणों से विभूषित तथा साधुओं के द्वारा सत्कारित अपने चरणारविन्द मेरे समक्ष कीजिये ।१। जगत् की श्रेष्ठ सम्पदा से विरचित तथा साधुओं के हृदय में विद्यमान रहने वाला आपका यह देह कामदेव को भी मोहित करने वाला है । अब आप हमारी कामना पूर्ण कीजिये ।२। आपके यशगान से जगत् के शोक नष्ट होते हैं, आपके मुस्कान सुधा सम्पन्न चन्द्र वदन से निकली हुई मधुर वाणी सब को प्रसन्न करती है । हे प्रभो ! आपका यह मुख लोककल्याण के करने

वाला है ।३। मेरे सर्व दुर्जय पति के द्वारा यदि आपका कोई अपराध बन पड़ा हो तो भी इनके प्रति शत्रु-भाव न रख कर इन पर कृपा करिये, अन्यथा कोई आपको कृपामय ईश्वर नहीं कहेगा ।४। आपकी पत्नी प्रकृति महत्तत्व, अहंकार और पंचतन्मात्र के द्वारा देह रचती है। आपके ही निरीक्षण में लीला से ही ब्रह्म कल्पित विश्व में सृष्टि, स्थिति और लय का क्रम चलता है ।५।

भूविषन्मरुद्वारितेजसां राशिभिः शरीरेन्द्रयाश्रितैः ।।
त्रिगुणया स्वया मायया विभो कुरु कृपां भक्तसेवनार्थिनाम्
तव गुणालयं नाम पावनं कलिमलापहं कीर्तयन्ति ये।
भवभयक्षयं तापतापिता मुहुरहो जनाः संसरन्ति नो ।।७।।
तव जन्म सतां मानवर्द्धनं निजकुलक्षयं देवपालकम् ।
कृतयुगार्पकं धर्म्मपूरकं कलिकुलान्तकं शन्तनोतु मे ।।८।।
मम गृहं पतिपुत्रनप्तृकं गजरथैर्ध्वजैश्चामरैर्धनैः ।
मणिवरासनं सत्कृतिं विना तव पदाब्जयोः शोभयन्ति किम्
तव जगद्वपुः सुन्दरस्मितं मुखमनिन्दितं सुन्दरारवम् ।
यदि नमे प्रियं वल्गुचेष्टिते परिकरोत्यहो मृत्युरस्त्विह ।।१०।।

हे देव ! पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्व से युक्त यह पंच भूतात्मक शरीर इन्द्रियों के आश्रित रहते हैं। अपनी त्रिगुणात्मिका माया से अपने भक्तों पर कृपा कीजिये ।६। हे प्रभो ! आपके नाम गुण-कीर्तन से कलियुग के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। आपका वह नाम अनन्त गुणों से युक्त और भवभय का नाश करने वाला है, जो संसार ताप से पीड़ित प्राणी उसका स्मरण करते हैं, उनका जन्म-मरण रूप बंधन कट जाता है ।७। आपका यह अवतार साधुओं का मान बर्द्धक, कलिकुल नाशक, देवताओं का पालक, धर्म पूरक तथा सत्युग का पुनः स्थापक है। आपके इस अवतार से हमारा कल्याण हो ।८। मेरे घर में पति, पुत्र, पौत्र, गज, रथ, ध्वज, चमर, धन और मणि जटित श्रेष्ठ आसनादि सब कुछ वर्तमान हैं। परन्तु आपके

चरणारविन्दों के पूजन किये बिना उनकी शोभा नहीं हो सकती ।६। हे जगद्रूप ! सुन्दर मुस्कान से सुशोभित, मधुर वाणी से विभूषित, सुरम्य चेष्टा से युक्त आपका यह मुख यदि हमारा प्रिय नहीं करना चहेगा तो हमारी तत्काल मृत्यु ही हो जायगी ।१०।

हयचरभयहरकरहरशरणखरतरवरदशबलमदन ।
जयहतपरभरभववरनशनशशधरशतसमरसभरवदन ।।११।।
इति तस्याः सुशान्ताया गीतेन परितोषितः ।
उत्तस्थौ रणशय्यायाः कल्कियुद्धस्थवीरवत् ।।१२।।
सुशान्तां पुरतो दृष्ट्वा कृतं वामे तु दक्षिणे ।
धर्मं शशिध्वजं पश्चात्प्राहोति व्रीडिताननः ।।१३।।
का त्वं पद्मपलाशाक्षि ! मम सेवार्थमुद्यता ।
कान्ते शशिध्वजः शूरो मम पश्चादुपस्थितः ।।१४।।
हे धर्म्म ! हे कृतयग ! कथमत्रागता वयम् ।
रणाङ्गण विहायास्याः शत्रोरन्तः पुरे वद ।।१५।।

आप आश्वारोही सब को अभय देते हुए विचरते हैं ? आपके तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से जो वीर पुरुष युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होते हैं, उनका आप ही प्रतिपालन करते हैं। आपके मुख मण्डल पर सैंकड़ों चन्द्रमाओं की आभा चमकती है। शिव और ब्रह्मा भी सदा आपके आश्रय की याचना करते रहते हैं ।११। सुशान्ता द्वारा किये गये इस प्रकार के विनय-गान से सन्तुष्ट होकर कल्किजी उसी प्रकार उठ पड़े, जिस प्रकार रणक्षेत्र में मूर्च्छित वीर उठ जाता है ।१२। उन्होंने अपने सामने रानी शान्ता को, वाम पार्श्व में सत्युग और दक्षिण पार्श्व में धर्म को और अपने पीछे राजा शशिध्वज को खड़े देखा तो लज्जा से मुख नीचा करके बोले ।१३। हे कमलपत्र जैसे नेत्र वाली ! तुम कौन हो और मेरी सेवा में क्यों तत्पर हुई हो ? यह बलवान् राजा शशिध्वज मेरे पीछे क्यों उपस्थित है ? ।१४। हे धर्म ! हे सत्युग ! हम युद्ध क्षेत्र

को छोड़ कर शत्रु के अन्तःपुर में क्यों आ गये यह? सब मुझे बताओ ।१५।

शत्रुपत्न्यः कथं साधु सेवन्ते मामरिं मुदा ।
शशिध्वजः शूरमानी मूर्च्छितं हन्ति नो कथम् ॥१६॥
पाताले दिवि भूमौ वा नरनागसुराऽसुराः ।
नारायणस्य ते कल्के केवा सेवां न कुर्वते ॥१७॥
यत्सेवकानां जगतां मित्राणां दर्शनादपि ।
निवर्तन्ते शत्रुभावस्तस्य साक्षात्कुतो रिपुः ॥१८
त्वया सार्द्धं मम पतिः शत्रुभावेन संयुगे ।
यदि योग्यस्तदानेतुं किं समर्थो निजाजयम् ॥१०॥
तव दासो मम स्वामी अहं दासी निजा तव ।
आवयोः संप्रसादाय आगतोऽसि महाभुज ॥२०॥

मुझे शत्रु की यह शत्रु–पत्नियाँ प्रसन्न होती हुई क्यों परिचर्या कर रही हैं? जब मैं मूर्च्छित हो गया था, तब इन शूर एवं मानी राजा शशिध्वज ने मेरा संहार क्यों नहीं कर दिया? ।१६। रानी बोली—पाताल, स्वर्ग अथवा पृथिवी पर, नाग, सुर और असुर में ऐसा कौन है जो भगवान् कल्कि की सेवा नहीं करता? ।१७। संसार जिनका सेवक और मित्र है तथा जिनके दर्शन मात्र से शत्रु भाव नष्ट हो जाता है, क्या उनका कोई प्रत्यक्ष रूप से कभी शत्रु हो सकता है? ।१८। मेरे पति यदि आपके प्रति शत्रु-भाव रख कर आपसे युद्ध करते तो क्या वह आपको अपने घर में इस प्रकार ले आते? ।१९। हे महाभुज! मेरे पति आपके दास हैं, इसलिए मैं भी आपकी दासी हूँ। इस प्रकार हम पर प्रसन्न होकर ही आप स्वयं यहाँ पधारे हैं।२०।

अहं तवैतयोर्भक्तया नामरूपानुकीर्तनात् ।
कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कलिक्षव ॥२१॥
अधुनाहं कृतयुगं तव दासस्य दर्शनात् ।
त्वमोश्वरो जगत्पूज्यसेवकस्यास्य तेजसा ॥२२॥

दण्डयं मां दण्डय विभो योद्धृ-त्वादुद्यतायुधम् ।
येन कामादिरागेणत्वयात्मन्यपि वैरिता ।।२३।।

इति कल्किर्वचस्तेषां निशम्य हसिताननः ।
त्वया जितोऽस्मीति नृपं पुनः पुनरुवाच ह ।।२४।।

ततः शशिध्वजो राज युद्धादाहूय पुत्रकान् ।
सुशान्ताया मतिं बुद्धा रमां प्रादात्सकल्कये ।।२५।।

धर्म ने कहा—हे कलि का नाश करने वाले कल्किजी ! यह राजा-रानी दम्पति जिस प्रकार आपकी भक्ति करते हुए आपका नाम-संकीर्त्तन एवं स्तोत्र करते हैं, उसे देख कर मैं कृतार्थ हो गया—कृतार्थ हो गया ।२१। सत्युग बोला—हे प्रभो ! आज आपके इस सेवक का दर्शन पाकर तो अवश्य ही मेरा सत्युग नाम यथार्थ हो गया । इस सेवक ने अपने तेज से आपको भी जगत्पूज्यत्व और ईश्वरत्व से परिपूर्ण कर दिया ।२२। राजा शशिध्वज बोले—हे जगदीश्वर ! मैंने काम क्रोध आदि विषयों के वशीभूत होकर ही आप ईश्वर एवं साक्षात् अपने आत्मा के प्रति शत्रुता करके आपके देह पर अस्त्र प्रहार किया है ।२३। राजा के वचन सुन कर कल्किजी ने मुसकराते हुए बारम्बार कहा—हे राजन् ! आपने मुझे सब प्रकार जीत लिया है ।२४। इसके पश्चात् राजा शशिध्वज ने रणभूमि से अपने पुत्रों को वापिस बुला लिया और फिर रानी सुशान्ता की प्रेरणा से अपनी रमा नाम की कन्या कल्किजी को प्रदान कर दी ।२५।

तदैत्य मरुदेवापी शशिध्वजसमाहृतौ ।
विशाखयूपभूपश्च रुधिराश्वश्च संयुगात् ।।२६।।

शयाकर्णनृपेणापि भल्लाटं पुरमाययुः ।
सेनागणैरसंख्यातैः सा पुरी मर्द्दिताभवत् ।।२७।।

गजाश्वरथसंबाधैः पत्तिच्छत्ररथध्वजैः ।
कल्किनापि रमायाश्च विवाहोत्सवसम्पदाम् ।।२८।।

द्रष्टुं समीयुस्त्वरिता हर्षात्सबलवाहनाः ।
शंखभेरी मृदङ्गानां वादित्राणाञ्च निस्वनैः ॥२६॥

नृत्यगीतविधानैश्च पुरस्त्रीकृतङ्गलैः ।
विवाहो रमयाकल्केरभूदतिसुखावहः ।३०।

उस अवसर पर मरु, देवापि, विशाखयूपनरेश और रुचिराश्व आदि सभी कल्कि-पक्ष के राजागण शशिध्वज द्वारा आमंत्रित किये गये। वे सब राजा शय्याकरण को साथ लेकर रणभूमि से भल्लाट नगरी में आ पहुँचे। उस समय असंख्य कल्कि-सेना के पाँवों से वह नगरी मर्दिता हो गई।२६-२७। गज, अश्व, रथ, पदाति, छत्र और रथ की ध्वजाएँ आदि सभी से सुशोभित विवाह मण्डप में कल्किजी और रमा का विवाहोत्सव सम्पन्न हुआ।२८। हर्ष से प्रफुल्लित हुए सभी व्यक्ति अपने दल-बल और वाहनों के सहित उस उत्सव को देखने के लिए वहाँ आये। राजकुमारी रमा का विवाह शंख, भेरी, मृदंग आदि वाद्यों की सुमधुर ध्वनि और पुर-नारियों के श्रेष्ठ मङ्गलाचारों तथा नृत्य-गीतादि के सानन्द सम्पन्न हुआ।२९-३०।

नृपा नानाविधैर्भोज्यैः पूजिता विविशुः सभाम् ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चावरजातयः ॥३१॥

विचित्रभोगाभरणाः कल्किं द्रष्टुमुपाविशन् ।
तस्यां सभायां शुशुभे कल्किः कमललोचनः ॥३२॥

नक्षत्रगणमध्यस्थः पूर्णः शशधरो यथा ।
रेजे राजगणाधीशो लोकान्सर्वान्विमोहयन् ।६६।

रमापतिं कल्किमवेक्ष्य भूपः सभागतं पद्मदलायतेक्षणम् ।
जामातरं भक्तियुतेन कर्मणा विबुध्य मध्ये निषसाद तत्रह ।३४

विविध प्रकार भोज्य एवं पान-पदार्थों से सत्कार प्राप्त करते हुए राजागण सभा में प्रविष्ट हुए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि

सभी वर्ण के लोग अद्भुत आभूषणों और विविध प्रकार की भोग—सामग्रियों को प्राप्त करके उस सभा में सुशोभित कल्किजी के सब ओर बैठ कर शोभा को प्राप्त होने लगे ।३१-३२। जैसे तारागण के मध्य पूर्ण चन्द्र की अत्यन्त शोभा होती है, वैसे ही सब लोगों के मध्य में सुशोभित राजाओं के भी स्वामी कल्किजी सब लोकों को मोहित करने लगे ।३३। पद्म पलाश जैसे नेत्र वाले कल्किजी ने सभा में उपस्थित राजाओं आदि के समक्ष रमा का पाणिग्रहण किया। उस समय राजा शशिध्वज भी कल्किजी को जामाता-भाव से देखते हुए भक्ति-युक्त हृदय से सभा में अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए ।३४।



तृतीयांश—

एकादश अध्याय

तत्राहुस्ते सभामध्ये वैष्णवं तं शशिध्वजम् ।
मुनिभिः कथिताशेष-भक्तिव्यासक्तविग्रहम् ।।१।।

सुशान्ताश्च कृतेनापि धर्मेण विधियुताम् । २।।
युवां नारायणास्यास्य कल्केः श्वशुरतां गतौ ।

वयं नृपा इमे लोका ऋषयो ब्राह्मणाश्च ये ।।३।।
प्रेक्ष्य भक्तिवितानं वां हरौ विस्मितमानसाः ।
पृच्छामस्त्वामियं भक्तिः क्व लब्धा परमात्मनः ।।४।।
कस्य वा शिक्षिता राजन् ! किंवा नैसर्गिकी तव ।
श्रोतुमिच्छामहे राजन् ! त्रिजगज्जनपावनीम् ।
कथां भागवती त्वत्तः संसाराश्रमनाशिनीम् ।।५।।

सूतजी ने कहा—मुनियों के द्वारा अशेष कहे गए भक्तिमय देह वाले, विष्णु भक्त, धर्म और सत्युग के साथ स्थित एवं रानी सुशान्ता के सहित शोभायमान् राजा शशिध्वज की ओर देखते हुए आगत राजा आदि व्यक्तियों ने कहा। १-२। राजागण बोले—अब आप साक्षात् नारायण के अवतार भगवान् कल्कि के श्वसुर-पद को प्राप्त हुए हैं। परन्तु हम सब राजागण, ऋषिगण और विप्रगण तथा अन्यान्य सभी उपस्थितजन आपकी भक्ति को ऐसे विस्तृत रूप में देख कर अत्यन्त आश्चर्य को प्राप्त हुए हैं। हम आपसे यह पूछते है कि परमात्मा की

यह शक्ति आपको किस प्रकार उपलब्ध हो सकी ? ।३४। हे राजन् ! इस भक्ति की क्या आपने किसी से शिक्षा प्राप्त की है ? अथवा यह भक्ति आप में स्वाभाविक रूप से ही उत्पन्न हो गई है ? हें राजन् ! आपकी इस भगद्भक्ति का कारण सुनने की हमें जिज्ञासा है। क्योंकि भगवद्भक्ति की यह कथा संसार के आवागमन को नाश करने वाली है ।५।

स्त्रीपुंसोवयोएस्तत्तच्छ्रुणुतामोघविक्रमाः ।
वृत्तं यज्जन्मकर्मादि स्मृति तद्भक्तिलक्षणम् ॥६॥
पुरा युगसहस्रान्ते गृध्रोऽहं पूतिमांसभुक् ।
गृध्रीयं मे प्रियारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ॥७॥
चचार कामं सर्वत्र वनोपवनसंकुले ।
मृतानां पूतिमांसौघैः प्राणिना वृत्तिकल्पकौ ॥८॥
एकादा लुब्धकः क्रूरो लुलोभ पिशिताशिनौ ।
आवां वीक्ष्य गृहे पुष्टं गृध्रं तत्राप्ययोजयत् ॥९॥
तं वीक्ष्य जातविश्रम्भौ क्षुधया परिपोडितौ ।
स्त्रीपुंसौ पतितौ तत्र मांसलोभितचेतसौ ॥१०॥

इस पर राजा शशिध्वज बोले—हे राजाओ ! हम दोनों पति-पत्नी के जो जन्म, कर्म आदि हैं तथा जिस प्रकार हम को भगवद्भक्ति का स्मरण हुआ, वह सब आप सुनिये ।६। एक सहस्र युग पहले की बात है—मैं मांसाहारी गृद्ध था और मेरी यह प्रिया सुशान्ता मेरी पत्नी गृद्धिनी थी । हम दोनों एक विशाल वृक्ष पर नीड़ बना कर उसमें रहते थे ।७। वन-उपवन आदि स्थानों में हमारी इच्छानुसार अबाध गति थी । उस समय हम मरे हुए प्राणियों के दुर्गंधित माँस से अपना जीवन-निर्वाह किया करते थे ।८। एक दिन एक क्रूर व्याध ने हमें देख लिया और लोभवश हमें पकड़ने के लिए उसने अपने पालित गृद्ध को हमारे समक्ष छोड़ दिया ।९। मैं क्षुधा से व्याकुल था, तभी मैंने उसे देखा माँस के लोभ से हम स्त्री-पुरुष दोनों ही उस पर झपट पड़े ।१०।

बद्धावावां बीक्ष्य तदा हर्षादागत्य लुब्धकः ।
जग्राह कण्ठे तरसा चञ्च्वाग्रावातपीडितः ॥११॥

आवां गृहीत्वा गण्डक्या: शिलायां सलिलान्ति के ।
मस्तिष्कं चूर्णयामास लुब्धक: पिशिताशनः ।।१२।।
चक्राङ्कितशिलागङ्गामरणादपि तत्क्षणात ।
ज्योतिर्मयविमानेन सद्यो भूत्वा चतुर्भुजौ ।।१३
प्राप्तौ वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
तत्र स्थित्वा युगशतं ब्रह्मणो लोकमागतौ ।१४।
ब्रह्मलोके पञ्चशतं युगानामुपभुज्य वै ।
देवलोके कालवशाद्गतं युगचतु:शतम् ।।१५।।

व्याध ने हम दोनों को अपने जाल में बँधा हुआ देखा तो वह प्रसन्न होता हुआ शीघ्रता से हमारे पास आया और उसने हमारे कण्ठ पकड़ लिये। तब हम भी उस पर अपनी चोंचों से आघात करने लगे ।११ तदनन्तर माँस के लोभी उस व्याध ने हम दोनों को पकड़ कर गंडकी में स्थिति एक शिला पर पछाड़-पछाड़ कर हमारे मस्तकों को चूर्ण कर डाला।१२। गङ्गा का किनारा और चक्रांकित शिला—मरण काल में इन दोनों क।सान्निध्यता के प्रभाव से हम उसी समय चतुर्भुज रूप हो गये और तेजस्वी विमान में चढ़ कर सब लोकों के द्वारा नमस्कृत वैकुण्ठ लोक में जा पहुँचे। वहाँ सौ युगों तक निवास करने के पश्चात् हमको ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुई ।१३-१४। उस ब्रह्मलोक में पाँच सौ युगों तक सुख भोगने के पश्चात् काल के वश में पड़ कर देवलोक में गये और चार सौ युगों तक वहाँ सुख भोगते रहे ।१५।

ततो भुवि नृपास्तावद्बद्धसूनुरहं स्मरन् ।
हरेनुगृहं लोक शालग्रामशिलाश्रमम् ।।१६।।
जातिस्मरत्वं गण्डक्या: कि तस्या: कथयाम्यहम् ।
यज्जलस्पर्शमात्रेण महात्म्यं महदभुद्‌तम् ।।१७।।
चक्रांकितशिलास्पर्शमरणस्येदृशं फलम् ।
न जाने वासुदेवस्य सेवया किं भविष्यिति ।।१८।।
इत्यावांहरिपूजासु सर्षविह्वलचेतसौ ।

नृत्यन्तावगायन्तौ विलुठन्तौ स्थिताविह ॥१९॥
कल्केर्नारायणांशस्य अवतार: कलिक्षय: ।
पुरा विदितवीर्यस्य पृष्टो ब्रह्ममुखाच्छ्रुत: ॥२०॥

हे राजागण ! फिर अब हम इस मर्त्यलोक में उत्पन्न हुए हैं। परन्तु हमें शालग्राम शिला का वह स्थान और भगवान् विष्णु की कृपा का अभी तक स्मरण है ।१६। क्योंकि गण्डकी नदी के तट पर मरण होने पर जन्मों की स्मृति कभी नष्ट नहीं होती । यह अद्भुत माहात्म्य उस नदी के जल-स्पर्श का ही है ।१७। यदि उस चक्रांकित शिला के स्पर्श मात्र से मृत्यु के पश्चात् ऐसा शुभ फल होता है, तो भगवान् वासुदेव की सेवा के फल का तो कहना ही क्या है ? ।१८। यही सोचते हुए हम कभी हरि-पूजन में अपने चित्त को एकाग्र करते हैं, कभी हर्ष से विह्वल होकर नृत्य करने लगते हैं, कभी उनका गुण-गान करते और भक्ति भाव में मग्न हो जाते हैं ।१९। यह समाचार हमें श्री ब्रह्माजी द्वारा पहिले ही मिल गया था कि कलियुग का क्षय करने के लिए भगवान् नारायण का अंशावतार होगा । इस प्रकार हम इनके पराक्रम को भले प्रकार जानते हैं ।२०।

इति राजसभायां स: श्रावयित्वा निजा: कथा: ।
ददौ गजानामयुतमश्वानां लक्षमादरात् ॥२१
रथानां षट्सहस्रन्तु ददौ पूर्णस्य भक्तित: ।
दासीनां युवतीनाञ्च रमानाथाय षट्शतम् ॥२२॥
रत्नानि च महार्घाणि दत्त्वा राजा शशिध्वज: ।
मेने कृतार्थमात्मानं स्वजनैर्बान्धवै: सह ॥२३॥
सभासद इतिश्रुत्वा पूर्वजन्मोदिता: कथा: ।
विस्मयाविष्टमनस: पूर्णं तं मेनिरे नृपम् ।२४।
कल्कि स्तुवन्तो ध्यायन्तो प्रशंसन्त जगज्जना: ।
पुनस्तमाहूराजानं लक्षणं भक्तिभक्तयो: ।२५।

इस प्रकार उस सभा में अपना पूर्व प्रसंग कह कर राजा शशिध्वज ने भक्ति-भाव पूर्वक कल्किजी को दस सहस्र गज, एक लाख अश्व,

छः सहस्र रथ, छः सौ युवती दासियाँ तथा असंख्य रत्नादि प्रदान करके अपने स्वजनों और बांधवों के सहित अपने को धन्य माना ।२१-२३। राजा शशिध्वज के मुख से उनके पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुन कर सभी सभासद् आश्चर्य चकित होकर उन्हें पूर्ण समझने लगे ।२४। फिर वहाँ उपस्थित सभी जन कल्किजी का भक्तिपूर्वक ध्यान करने लगे । फिर उन्होंने भक्तों के लक्षण विषयक प्रश्न राजा शशिध्वज से किया ।२५।

भक्तिकाम्यद्भगवतः को वा भक्तो विधानवित् ।
किं करोति किमश्नाति क्वा वसति वक्ति किम् ।२६।
एतान्वर्णय राजेन्द्र ! सर्वं त्वं वेत्सि सादरात् ।
जातिस्मरत्वात्कृष्णस्य जगतां पावनेच्छया ।२७।
इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रफुल्लवदनो नृपः ।
साधुवादैः समामन्त्र्य तानाह ब्रह्मणोदितम् ।२८।
पुरा ब्रह्मसभामध्ये महर्षिगणसंकुले ।
सनकोनारदं प्राह भवद्भिर्यास्त्विहोदिताः ।२०।
तेषामनुग्रहेणाह तत्रोषित्वा श्रुताः कथाः ।
यास्ताः संकथयामीह शृणुध्वं पापनाशनाः ।३०।

राजागण बोले—भगवद्भक्ति क्या है ? विधान के जानने वाला भक्त कौन कहा जाता है ? भक्त का कार्य क्या है ? वह क्या खाता, क्या वार्तालाप करता और कहाँ रहता है ? ।२६। हे राजेन्द्र ! आपको सब कुछ विदित है, इस लिए आप कृपया आदरपूर्वक सब बात हमें बतावें । उनकी बात सुन कर राजा शशिध्वज ने हर्षित मुख से उन्हें साधुवाद दिया । फिर जाति स्मरण होने के कारण श्री कृष्ण चरित्र द्वारा संसार को पवित्र करने के उद्देश्य से उन्होंने वह सब कहना आरम्भ किया, जो उन्होंने ब्रह्माजी के मुख से सुना था ।२७-२८। शशिध्वज बोले पुराकाल की बात है—ब्रह्माजी की सभा के मध्य महर्षिगण विराजमान थे, उसी अवसर पर जो कुछ सनकादि ने नारदजी से पूछा था, वही आपको बताता हूँ ।२६। उस समय मैं भी वहाँ उपस्थित था, इसलिए

उनकी कृपा से मैंने उस सब प्रसंग को सुना था। हे पापनाशन उपस्थित सज्जनो ! जो बात मैंने सुनी थी। वही कहता हूँ, आप लोग सुनिये ।३०।

का भक्तिः संसृतिहरा हरौ लोकनमस्कृता ।
तामादौ वर्णय मुने नारदावहिता वयम् ।३१।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि संयम्य परया धिया ।
गुरावपि न्यसेद्देहं लोकतन्त्रविचक्षणः ।३२।
गुरौ प्रसन्ने भगवान्प्रसीदति हरिः स्वयम् ।
प्रणवाग्निप्रियामध्ये मवर्णं तन्निदेशतः ।३३।
स्मरेदनन्यया बुध्या देशिकः सुसमाहितः ।
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ।३४।
पूजयित्वा वासुदेवपादपद्मं समाहितः ।
सर्वाङ्गसुन्दरं रम्यं स्मद्धृत्पद्मामध्यगम् ।३५।

सनक ने कहा—हे मुने ! हे नारद ! किस प्रकार की हरि-भक्ति से जन्म नहीं लेना होता तथा कौन-सी भक्ति प्रशंसा के योग्य है। आप उसी को पहले कहिये। हम सुनने के इच्छुक हैं ।३१। नारद बोले—लोकतन्त्र के ज्ञाता साधक को श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा पाँचों ज्ञानेन्द्रिय और छठवें मन का निग्रह करते हुए ज्ञाना-श्रय पूर्वक गुरु के चरणों में अपना शरीर अर्पण कर देना चाहिये ।३२। क्योंकि गुरु के प्रसन्न होने पर भगवान् श्रीहरि भी प्रसन्न होते हैं। प्रथम प्रणवाग्नि प्रिया के मध्य में ॐ, का अनन्य हृदय से स्मरण करे। फिर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय आदि तथा स्नान और वस्त्राभूषणों से युक्त होकर सावधान चित्त से नारायण के चरणारविन्दों का पूजन करे। तदनन्तर हृत्पद्म के मध्य में प्रतिष्ठित सुरम्य और सर्वांग सुन्दर श्रीहरि के स्वरूप का चिन्तन करे ।३३-३५।

एवं ध्यात्वा वाक्यनोबुीन्द्रियगणैः सह ।
आत्मानमर्पयेद्विद्वान्हरावेकान्तभाववित् ।३६।

अङ्गानि देवास्त्वेषान्तु नामानि विदितान्युत ।
विष्णोः कल्केरनन्तस्य तान्येवान्यन्न विद्यते ।३७।
सेव्यः कृष्ण सेवकोऽहमन्ये तस्यात्ममूर्त्तयः ।
अविद्योपाधयो ज्ञानद्वदन्ति प्रभावदयः ।३८।
भक्तस्यापि हरौ द्वैतं सेव्यसेवकवत्तदा ।
नान्याद्विना तमित्येव क्वच किञ्चन विद्यते ।३९।
भक्तः स्मरति तं विष्णुं तन्नामानि च गायति ।
तत्कर्माणि करोत्येव तदानन्दसुखोदयः ।४०।

इस प्रकार ध्यान करने के पश्चात् वाणी, मन, बुद्धि और इन्द्रियों के सहित स्वयं को श्रीहरि में समर्पित कर दे ।३६। भगवान् कल्कि परमदेव एवं अनन्त स्वरूप भगवान् विष्णु के अंग हैं । जो सब नाम आपको विदित हैं, वह भगवान् श्रीहरि के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं ।३७। भगवान् श्री कृष्ण सेव्य और मैं उनका सेवक हूँ तथा संसार भर के सभी प्राणी उन्हीं के मूर्त्त रूप हैं । ज्ञानियों का कहना है कि अविद्यारूपी उपाधि के वश में पड़ कर ही यह सब उत्पन्न होते हैं ।३८। भक्तों के निमित्त सेव्य-सेवक भाव रूप द्वैत का आविर्भाव होता है। इस प्रकार श्रीहरि के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है ।३९। उन्हीं भगवान् विष्णु का भक्त सदा स्मरण करता, नाम-गुण कीर्त्तन करता तथा सभी कर्म उनके ही निमित्त किया करता है । इसी कारण उसके लिए आनन्द और सुख की उत्पत्ति होती है ।४०।

नृत्यत्युद्धतवद्रौति हसति प्रैति तन्मनाः ।
विलुंठत्यात्मविस्मृत्या न वेत्ति कियदन्तरम् ।४१।
एवंविधा भगवतो भक्तिरव्यभिचारिणी ।
पुनाति सहसा लोकान्सदेवासुरमानुषान् ।४२।
भक्तिः सा प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मसम्पत्प्रकाशिता ।
शिवविष्णुब्रह्मरूपा वेदाद्यानां वरापि वा ।४३।
भक्ताः सत्वगुणाध्यासाद्रजसेन्द्रियलालसाः ।

तमसा घोरसंकल्पा भजन्ति द्ववैतदृग्जनाः ।४४।
सत्वान्निर्गुणतोमति रजसा विषयस्पृहा ।
तमसा नरकं यान्ति संसाराद्वैतधर्मिणि ।४५।

वह विह्वल होकर नाचता, रोता हँसता और तन्मयतापूर्वक विचरण करता है। वह स्वयं को भूल कर भक्ति-भाव में ही डूब जाता है और हरि के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं जानता ।४१। यही भगवान् की अव्यभिचारिणी भक्ति है, इसी के प्रभाव से देवता, दैत्य और मनुष्य आदि की सम्पूर्ण सृष्टि सहसा पवित्रता को प्राप्त होती है ।४२। नित्या प्रकृति अथवा ब्रह्म की सम्पदा ही भक्ति रूप में प्रकट होती है। वही भक्ति वेदादि में श्रेष्ठ एवं शिव, विष्णु और ब्रह्मा स्वरूपिणी हैं ।४३। सत्वगुण के अध्यास से युक्त द्वैत के जानने वाले मनुष्य इन्द्रिय व्यापार की इच्छा वाले होते हैं और जो तमोगुण से युक्त हैं वे घोर कार्यों का संकल्प किया करते हैं ।४४। द्वैत ज्ञान से युक्त ज्ञानीजन सत्वगुण के व्याप्त होने पर निर्गुणता को प्राप्त होते हैं तथा रजोगुण के व्याप्त होने पर विषयों में लग जाते हैं और यदि तमोगुण की अधिकता होती है तो वे पुरुष नरक को प्राप्त होते हैं ।४५।

उच्छिष्टमवशिष्टं वा पथ्यं पूतमभीप्सितम् ।
भक्तानां भोजनं विष्णोर्नैवेद्यं सात्विकं मतम् ।४६।
इन्द्रियप्रीतिजननं शुक्रशोणितवर्द्धनम् ।
भोजनं राजसं शुद्धमायुरारोग्यवर्द्धनम् ।४७
अतः परं तामसानां कट्वम्लोष्णविदाहिकम् ।
पूतिपर्युषितं ज्ञेयं भोजनं तामसप्रियम् ।।४८।।
सात्विकानां वने वासो ग्रामे वासस्तु राजसः ।
तामसं द्यूतमद्यादिसदनं परिकीर्तितम् ।।४९।।
न दाता स हरिः किञ्चित्सवेकस्तु न याचकः ।
तथापि परमा प्रीतिस्तयोः किमिति शाश्वती ।।५०।।

इत्येयद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्गुणकथनं सनको विबुध्य भक्त्या
सविनयवचनैः सुरर्षिवर्यं परिणुत्वेन्द्रपुरं जगाम शुद्धः ॥५१॥

भगवान् का शेष बचा हुआ उच्छिष्ट (प्रसाद) तथा इच्छित नैवेद्य ही पवित्र पथ्य स्वरूप है। भक्तों को इसी सात्विक आहार का भोजन करना चाहिये (अर्थात् भोज्य सामग्री भगवान् को अर्पण करके ही प्रसाद रूप में सेवन करनी चाहिए) ।४६। जो भोजन इन्द्रियों को सन्तुष्ट करने वाला, वीर्य एवं रक्त वर्द्धक तथा परमायु के देने वाला एवं आरोग्यप्रद है, ऐसा शुद्ध भोजन राजसी कहा जाता है ।४७। कड़ुवा, खट्टा, जलन करने वाला, दुर्गन्ध युक्त तथा वासी भोजन तामसी मनुष्यों को प्रिय है ।४८। सतोगुणी पुरुष वन में निवास करते हैं, रजोगुणी मनुष्य ग्राम में और तमोगुणी द्यूत खेलने के अथवा मद्य पीने के स्थान में रहते हैं ।४९। भगवान् स्वयं अपना हाथ उठा कर किसी को कुछ प्रदान नहीं करते, और न सेवक ही उनसे कुछ याचना करता है। फिर भी उनमें परस्पर सदा ही परम प्रीति रहती है, यह कैसी विचित्र बात है ? ।५०। पवित्र मन वाले सनक भक्तिपूर्वक नारदजी के द्वारा भगवान् विष्णु का गुण-कथन सुन कर विनम्र वचनों से देवर्षिवर नारदजी की स्तुति और नमस्कार कर देवलोक को चले गये ।५१।



तृतीयांश—

द्वादश अध्याय

एतद्वः कथितं भूपाः कथनीयोरुकर्मणः ।
कथा भक्तस्य भक्तेश्च किमन्यत्कथयाम्यहम् ।१।
त्वं राजन्वैष्णवश्रेष्ठः सर्वसत्वहिते रतः ।
तवावेशः कथ युद्धरङ्गे हिंसादिकर्मणि ।।२।।
प्रायशः साधवो लोके जीवानां हितकारिणः ।
प्राणबुद्धिधनैर्वाग्भिः सर्वेषां विषयात्मनाम् ।।३।।
द्वैतप्रकाशिनी या तु प्रकृतिः कामरूपिणी
सा सूते त्रिजगत्कृत्स्नं वेदांश्च त्रिगुणात्मिका ।।४।।
ते वेदास्त्रिजगद्धर्मशासना धर्मनाशनाः ।
भक्तिप्रवर्तका लोके कामिनां विषयैषिणाम ।।५।।
वात्स्यायनादिमुनयो मनवो वेदपारगाः ।
वहन्ति बलिमीशस्य वेदवाक्यानुशासिताः ।।६।।
वयं तदनुगाः कर्म धर्म निष्ठा रणप्रियाः ।
जिघांसन्त जिघांसामो वेदार्थकृतनिश्चयाः ।।७।।

राजा शशिध्वज बोले—हे राजाओ ! जिनके असाधारण कर्म कीर्तन के योग्य हैं, उन भक्तों और भक्ति का महात्म्य मैंने कह दिया है । अब और क्या कहूँ ? ।१। राजा बोले—हे राजन् ! आप सब जीवों के कल्याण करने में तत्पर तथा वैष्णव श्रेष्ठ हैं । फिर आप हिंसादि दोषों से युक्त युद्ध करने में क्यों प्रवृत्त होगये थे ।२। प्रायः साधुजन

विषयासक्त जीवों का हित-साधन करने के कार्य में अपने प्राण, बुद्धि, धन तथा वाणी आदि सब कुछ लगा देते हैं ।३। शशिध्वज बोले— त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही द्वैतभाव को प्रकाशित करती है। सभी वेदों और तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाली यह प्रकृति कामरूपिणी है ।४। तीनों लोकों में वेद ही धर्म की व्यवस्था द्वारा अधर्म का नाश करते हुए विषयासक्त कामियों में भी भक्ति का प्रवर्त्तन करते हैं ।५। वेदों के ज्ञाता वात्स्यायन आदि मुनिगणों और मनुओं ने वेदाणी के शासन को मानते हुए परमात्मा के हेतु बलि प्रदान की थी ।६। हम भी उन्हीं का अनुगमन करते धर्म पूर्वक युद्ध में तत्पर होते और वैदिक शिक्षा के अनुसार ही युद्ध में आततायियों का संहार कर डालते हैं ।७।

अवध्यस्य वधे यावांस्तावान्वध्यस्य रक्षणे ।
इत्याह भगवान्व्यासः सर्ववेदाथतत्परः ॥८॥

प्रयाश्चित्तं न तत्रास्ति तत्राधर्मः प्रवर्त्तते ।
अतोऽत्र वाहिनीं हत्वा भवतां युधि दुर्जयाम् ॥९॥

धर्मं कृतश्च कल्किन्तु समानीयागता वयम् ।
एषा भक्तिर्मम मता तवाभिप्रेतमीरय ॥१०॥

अहं तदनुवक्ष्यामि वेदावाक्यानुसारतः ।
यदि विष्णुः स सर्वत्र तदा कं हन्ति को हतः ॥११॥

हन्ता विष्णुर्हतो विष्णुर्वधः कस्यास्ति तत्र चेत् ।
युद्धयज्ञादिषु वधे न वधो वेदशाशासमात् ।१२।
इति गायन्ति मुनयो मनवश्च चतुर्दश ।

इत्थं युद्धैश्च यज्ञैश्च भजामो विष्णुमीश्वरम् ।१३।
अतो भागवतीं मायामाश्रित्य विधिना यजन् ।
सेव्यसेवकभावेन सुखी भवति नान्यथा ।१४।

सर्व वेदार्थ के ज्ञानी भगवान् वेद व्यासजी का कथन है कि जो पाप अवध्य के मारने में है वही वध योग्य का वध का न करने में भी

है ।८। इस प्रकार का आचरण न करना अधर्म है । उसका कोई प्राय-श्चित्त भी नहीं है । इसीलिए मैं रणभूमि में दुर्जय सेना के वध में तत्पर होकर धर्म, सत्युग और कल्किजी को यहाँ ले आया । मेरे मत में यही वास्तविक भक्ति है । इस विषय में आपका अभिप्राय जो हो, वह बताइये ।९-१०। इसके अतिरिक्त मैं वेद-वाणी के अनुसार ही कहता हूँ कि भगवान् विष्णु सर्व-व्यापी हैं । यदि यह यथार्थ है तो फिर कौन किसी को मारता है और कौन मरता है ? ।११। जब मारने वाले विष्णु हैं, और मरने वाले भी विष्णु ही हैं, तो किसका वध हो सकता है ? फिर वेद की ही व्यवस्था है कि युद्ध आदि कर्मों में जो वध होता है, वह वध नहीं माना जाता ।१२। यही बात चौदह मनुओं और मुनियों ने भी कही है । हम भी इसी के अनुसार यज्ञों और युद्धों के द्वारा भगवान् विष्णु का पूजन किया करते हैं ।१३। इस प्रकार भगवती माया के आश्रय में स्थित हुआ साधक विधिवत् सेव्य-सेवक भाव से भगवान् का यजन करके सुखी होता है, अन्य कोई विधि सुख-प्राप्त करने की नहीं है ।१४।

निमेर्भूपस्य भूपाल ! गुरोः शापान्मृतस्य च ।
तादृशे भोगायतने विरागः कथमुच्यताम् ।१५।

शिष्यशापाद्वशिष्ठस्य देहावाप्तिमृतस्य च ।
श्रूयते किल मुक्तानां जन्म भक्तविमुक्तता ।१६।

अतो भागवती माया दुर्बोध्याविजितात्मनाम् ।
विमोहयति संसारे नानात्वादिन्द्रजालवत् ।१७।

इति तेषां वचो भूयः श्रुत्वा राजा शशिध्वजः
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो भक्तिप्रवणया धिया ।१८।

बहूनां जन्मनामन्ते तीर्थक्षेत्रादियोगतः
दैवाद्भवेत्साधुसंगस्तस्मादीश्वरदर्शनम् ।१९।

ततः सालोक्यताम्प्राप्य भजन्त्यादृतचेतसः ।
भुक्त्वा भोगाननुपमान्भक्तो भवति संसृतौ ।२०।

रजोजुषः कर्मपराः हरिपूजापराः सदा ।
तन्नामानि प्रगायन्ति तद्रूपस्मरणोत्सुकाः ।२१।

राजा बोले—हे भूपते ! गुरु वसिष्ठ के शापवश राजा निमि ने देह छोड़ा था । परन्तु आपके इस भोगमय देह में वैराग्य की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? जब यज्ञान्त में देवताओं ने उनकी रक्षा करते हुए उस देह में प्रवेश करने की आज्ञा की, तब भी वे अपने छोड़े हुए देह में प्रविष्ट होने में सहमत न हुए, इसका क्या कारण था ? ।१५। सुना जाता है कि शिष्य के शाप से गुरु वसिष्ठ ने देह त्याग कर पुनः देह को प्राप्त कर लिया । परन्तु, भक्त तो मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, तब वह उस विमुक्तता को छोड़ कर जन्म किस प्रकार धारण करे ? ।१६। इस प्रकार भगवद् माया के वर्णन में ज्ञानीजन भी अपने को असमर्थ पाते हैं । क्योंकि वह माया इन्द्रजाल के समान समस्त लोक में विस्तीर्ण होती हुई जीवों को विमोहित करती रहती है ।१७। वक्ता श्रेष्ठ राजा शशिध्वज उनके वचन सुन कर भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हुए बोले ।१८। उन्होंने कहा—तीर्थ, क्षेत्रादि के योग को प्राप्त हुआ प्राणी जन्म जन्मान्तरों में भगवत्कृपा से साधु संग को पाता है और उसी साधु संग के प्रभाव से उसे ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं ।१९। फिर वह सालोक्य पद को प्राप्त होकर हर्षित हृदय से हरि-भजन में तत्पर होता है । इस प्रकार भोग्य वस्तुओं का उपभोग करता हुआ वह मनुष्य लोक में भक्त हो जाता है ।२०। रजोगुणी पुरुष अपने कर्म द्वारा सदा हरिपूजा-परायण रहते तथा उनके नाम और रूपादि का स्मरण करने में सदा उत्सुक रहते हैं ।२१।

अवतारानुकरणपर्वव्रतमहोत्सवाः ।
भगवद्भक्तिपूजाढ्याः परमानन्दसंप्लुताः ।२२।

अतो मोक्षं न वांछन्ति दृष्टमुक्तिफलोदयाः ।
मुक्त्वालभन्ते जन्मानि हरिभावप्रकाशकाः ।२३।

हरिरूपा: क्षेत्रतीर्थपावना धर्मतत्परा: ।
सारासारविद: सेव्यसेवका द्वैतविग्रहा: ।२४।

यथावतार: कृष्णस्य तथा तत्सेविनामिह ।
एव निमेर्निमिषता लीला भक्तस्य लोचने ।२६।

मुक्तस्यापि वष्ठिस्य शरीरभजनादर: ।
एतद्व: कथितं भूपा माहात्म्यं भक्तिभक्तयो: ।२६।

सद्य: पापहरं पुंसा हरिभक्तिविवर्द्धनम् ।
सर्वेन्द्रियस्थदेवानामानन्दसुखसञ्चयम् ।
कामरागादिदोषघ्नं मायामोहनिवारणम् ।२७।
नानाशास्त्रपुराणवेदविमलव्याख्यामृताम्भोनिधिं
संमथ्यातिचिरं त्रिलोकमुनयो व्यासादयो भावुका: ।
कृष्णे भावमनन्तमेवममलं हैयङ्गवनं नवं
लब्ध्वा संमृतिनाशनं त्रिभुवने श्रीकृष्णतुल्यायते ।२८।

वे श्रीहरि के अवतार का सदा अनुकरण करने वाले होते हैं। पर्वकाल में व्रत, पूजन, भक्ति आदि में तत्पर रहते हुए भी परमानन्द में लिप्त रहते हैं।२२। वे सभी भक्तजन भोग फल को प्रत्यक्ष प्रकट होता देख कर मोक्ष की कामना नहीं करते और भोगों को भोगते हुए जन्म प्राप्त करके भी सदा हरिभाव को प्रकाशित करते रहते हैं।२३। भक्त-जन हरिस्वरूप और क्षेत्र तथा तीर्थों के पवित्र करने वाले, सार और असार के ज्ञाता, धर्मानुष्ठान में तत्पर रहते हुए सेव्य-सेवक रूप में निवास करते हैं।२४। भगवान श्रीकृष्ण के अवतार लेने के समान ही उनके सेवक भी समय-समय पर अवतार ग्रहण करते रहते हैं। इसी लिए तो निमि का भक्तों के नेत्रों पर निमेष रूप से निवास है, इसे भगवान की ही लीला समझना चाहिए।२५। गुरु वसिष्ठ ने मुक्त होकर भी जो पुन: देह धारण किया, वह भी इसी कारण से किया था। हे राजाओ ! इस प्रकार भक्ति और भक्त का यह माहात्म्य मैंने आपके

प्रति कहा है ।२६। इसके सुनने से ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं, मन में हरि-भक्ति की वृद्धि होती और इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता भी सुखी होते हैं। काम और रागादि सभी दोष तथा माया-मोह का नाश होता है ।२७। तीनों लोकों के ज्ञाता मुनियों ने वेद पुराणादि शास्त्रों के अमृत रूपी सार का मंजन करके यह अत्यन्त पवित्र एवं मंगल रूप श्रीकृष्ण भक्ति को प्राप्त किया है। यह भव-बन्धन को नष्ट करने वाली है। उन मुनियों को इस प्रकार का फल पाते देख कर उनको भगवान श्रीकृष्ण के समान ही माना गया है ।२८।



तृतीयांश—

त्रयोदश अध्याय

इति भूतः सभायां स कथयित्वा निजाः कथाः ।
शशिध्वजः प्रीतमनाः प्राह कल्किं कृताञ्जलिः ।१।
त्वंहि नाथ त्रिलोकेश एतेभूपास्त्वदाश्रयाः
मां तथा विद्धि राजन त्वन्निदेशकर हरे ।२।
तपस्तप्तुं यामि कामं हरिद्वारं मुनिप्रियम् ।
एते मत्पुत्रपौत्राश्च पालनीयास्त्वदाश्रयाः ।३।
ममापि कामं जानासि पुरा जाम्बवतो यथा ।
निधनं द्विविदस्यापि तदा सर्वं सुरेश्वर ।४।
इत्युक्त्वा गन्तुमुद्युक्तं भार्यया सहितं नृपम् ।
लज्जयाधोमुखं कल्किं प्राहुर्भूपाः किमित्युत ।५।

सूतजी बोले—सभा में उपस्थित सब जनों के समक्ष इस प्रकार अपना वृत्तान्त कहने के उपरान्त राजा शशिध्वज ने हाथ जोड़ कर कल्कि जी से कहा ।१। राजा बोले—हे हरे ! हे त्रिलोकेश ! यह सभी राजागण आपके आश्रय में स्थित हैं। आप इन सबको और मुझे भी अपनी आज्ञा के पालन में तत्पर समझिये ।२। अब मैं ऋषियों के लिए प्रिय हरिद्वार के लिए तपस्या हेतु गमन करूँगा। मेरे यह पुत्र-पौत्रादि सब आपके ही आश्रित हैं और आपके द्वारा ही प्रतिपालन करने योग्य हैं ।३। हे सुरेश्वर ! आप मेरे अभिप्राय को भले प्रकार जानते हैं। अपने पूर्व अवतार में आपने जाम्बवन्त और द्विविद आदि जिन वानरोंका वध किया

था वह भी आपको स्मरण है ।४। यह कह कर राजा शशिध्वज अपनी पत्नी सुशान्ता सहित प्रस्थान के लिए उद्यत हुए। उस समय कल्किजी ने अपना मुख लज्जा से झुका लिया। यह देख कर राजागण उसे जानने की इच्छा से बोले ।५।

हे नाथ किमनेनोक्तं यच्छ्रुत्वा त्वमधोमुखः ।
कथं तद्ब्रूहि कामं नः किं नः शाधि संशयात् ।६।
अमुं पृच्छत वो भूपा युष्माकं संशयच्छिदम्
शशिध्वजं महाप्राज्ञं मद्भक्तिकृतनिश्चयम् ।७।
इति कल्केर्वचः श्रुत्वा ते भूपाः प्रोक्तकारिणः ।
राजानं तं पुनः प्रहुः संशयापन्नमानसाः ।८।
किं त्वया कथितं राजञ्छशिध्वज महामते ।
कथं कल्किस्तद्वदिद श्रुत्वैवाभूदधोमुखः ।९।
पुरा रामावतारेण लक्ष्मणादिन्द्रजिद्वधम्
लक्षञ्चलक्ष्य द्विविदा राक्षसत्वात्सदारुणात्।१०।

राजाओं ने कहा—हे नाथ ! राजा शशिध्वज ने ऐसी क्या बात आपसे कही थी, जिसे सुन कर आपने लज्जा से अपना मुख नीचा कर लिया था। यह हमारे प्रति कह कर हमारा सन्देह दूर करिये ।६। कल्किजी बोले—हे राजाओ ! आप उन्हीं महाराज शशिध्वज से ही इस विषय में प्रश्न करिये। क्योंकि वे परम ज्ञानी और मुझमें अनन्य भक्ति रखने वाले हैं। वे ही आपके सन्देह को नष्ट करेंगे ।७। यह सुनकर सभी राजागण संशययुक्त हृदय से राजा शशिध्वज से प्रश्न करने लगे। उन्होंने कहा—हे राजन् ! हे महामते ! हे महाराज शशिध्वज ! आपने अभी ऐसी कौन-सी बात कल्किजी के प्रति कही थी, जिसे सुन कर वे लज्जावनत मुख वाले हो गये थे ।८-९। शशिध्वज बोले—हे राजागण ! पुरा काल में जब रामावतार हुआ था, तब लक्ष्मणजी के द्वारा वध को प्राप्त हुए इन्द्रजीत मेघनाद की राक्षस भाव से मुक्ति हो गई थी ।१०।

अग्न्यागारे ब्रह्मवीरवधेनैकाहिकोज्वरः ।
मोक्षमणस्य शरीरेण प्रविष्टो मोहकारकः ।११।
त व्याकुलमभिप्रेक्ष्य द्विविदो भिषजां वरः ।
अश्विवंशेन संजातः स्वापयामास लक्ष्मणम् ।१२।
लिखित्वा रामभद्रस्य सज्ञापत्रीमतन्द्रितः ।
लक्ष्मणं दर्शयामास ऊद्ध्र्वस्तिष्ठन्महाभुजः ।१३।
लक्ष्मणो वीक्ष्य तां पत्रीं विज्वरो बलवानभूत् ।
स ततो द्विविदं प्राह वरं वरय वानर ।१४।
द्विविदस्तचः श्रुत्वा लक्ष्मणं प्रहि हृष्टवत्
त्वत्तो मरणं प्रार्थ्यं वानरत्वाश्च मोचनम् ।१५।

उस समय अग्निशाला में ब्राह्मण की हत्या करने के पाप-स्वरूप लक्ष्मणजी के शरीर में एकाहिक ज्वर घुस गया, जिससे उन्हें मोहादि उपद्रवों ने घेर लिया ।११। उस समय अश्विनीकुमार के वंश में उत्पन्न हुए भिषग्वर द्विविद वानर ने लक्ष्मणजी को ज्वर की पीड़ा से व्याकुल देख कर एक मन्त्र बतलाया ।१२। इस मन्त्र को लिख कर भगवान् श्रीराम के सामने ही एक ऊँचे स्थान पर टाक कर लक्ष्मणजी को दिखाया गया ।१३। इस मन्त्र को देखते ही लक्ष्मणजी का ज्वर नष्ट हो गया और उनमें शक्ति आ गई। फिर लक्ष्मणजी ने द्विविद नामक उस वानर से कहा—हे वानर ! आप वर माँगिये ।१४। तब द्विविद ने अत्यन्त हर्षित होकर कहा कि मेरी आपसे ही यही प्रार्थना है कि वानर भाव से मुक्त होने के उपाय स्वरूप मेरा मरण आपके ही द्वारा हो ।१५।

पुनस्तं लक्ष्मणः प्राह मम जन्मान्तरे तव ।
मोचनं भविता कीश बलरामशरीरिणः ।१६।

समुद्रस्योत्तारे तीरे द्विविदो नाम वानरः ।
ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति लिखनं यस्तु पश्यति ।१७।

इति मन्त्राक्षरं द्वारि लिखित्वा तालपत्रके ।
यस्तु पश्यति तस्यापि नश्यत्यैकाहिकज्वरः ।१८।

इति तस्य वरं लब्ध्वा चिरायुः सुस्थवानरः ।
बलरामास्त्रभिन्नात्मा मोक्षमापाकुतोभयम् ।१९।
तथा क्षेत्रे सूतपुत्रो निहतो लोमहर्षणः ।
बलरामास्त्रयुक्तात्मा नैमिषेऽभूत्स्ववाञ्छया ।२०।

तब लक्ष्मणजी ने उसे आश्वासन दिया कि अगले जन्म में जब मैं बल्देवावतार लूँगा, तब तुम मेरे हाथ से मृत्यु को प्राप्त होकर वानर भाव से मुक्त हो जाओगे ।१६। "समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः" यही वह मन्त्र है, जिसे लिखा हुआ देखने पर ऐकाहिक ज्वर नष्ट होजाता है ।१७। इस मन्त्र को द्वार पर अथवा ताल । पत्र पर लिख कर देखना चाहिये तब ऐकाहिक ज्वर का नाश होना सम्भव है ।१८। लक्ष्मणजी से इस प्रकार वर को प्राप्त हुआ वह द्विविद नामक वानर स्वस्थ शरीर से बहुत काल जीवित रहा और बलदेवजी का अवतार होने पर उनके अस्त्र से मृत्यु को प्राप्त होकर अभयात्मिका मुक्ति को प्राप्त हो गया ।१९। इसी प्रकार अपनी इच्छा से सूत पुत्र लोमहर्षण भी नैमिषारण्य में बलदेव जी के अस्त्र से ही मारे गये ।२०।

जाम्बवांश्च पुरा भूपा वामनत्वं गते हरौ :
तस्याप्यूर्द्ध्वंगत पादं तत्र चक्रे प्रदक्षिणम् ।२१।
मनोजवं तं निरीक्ष्य वामनः प्राह विस्मितः ।
मत्तो वृणु वरं काममृक्षाधीश महाबल ।२२।

इति तं हृष्टवदनो ब्रह्मांशो जाम्बवान्मुदा ।
प्राह भो चक्रदहनान्मम मृत्युर्भविष्यति ।२३।
इत्युक्ते वामनः प्राहकृष्णजन्मनि मे तव ।
मोक्षश्चक्रेण संभिन्नशिरसः संभविष्यति ।२४।
मम कृष्णावतारे तु सूर्यभक्तस्य भूपतेः ।
सत्राजितस्तु मण्यर्थे दुर्वादः समजायत ।२५।

हे राजाओ ! वामनावतार में वामनजी ने जब तीन पग में ही तीनों लोकों को नाप लिया, तब उनके ऊर्ध्वलोक में रखे हुए चरण की

जाम्ववंत ने प्रदक्षिण की थी ।२१। उस समय उस जाम्बवान् को मन के समान द्रुत वेग वाला देख कर वामनजी अत्यन्त आश्चर्य चकित होकर बोले—हे ऋक्षाधीश ! तुम महाबली हो, मुझसे इच्छित वर माँगो ।२२। यह सुन कर हर्षित मन हुए ब्रह्मांश रूप जाम्बवान् ने कहा कि हे प्रभो ! मेरी मृत्यु आपके चक्र से हो, यही वर प्रदान कीजिये ।२३। जाम्बवान् के वचन सुन कर वामनजी ने कहा—कृष्णावतार में मेरे चक्र से तुम्हारा शिर कटेगा और तुम मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे ।२४। तदनन्तर कृष्णावतार हुआ । उस समय मैं सूर्य का भक्त सत्राजित् नामक एक राजा हुआ था । तब एक मणि के कारण दुर्वाद उत्पन्न हो गया ।२५।

प्रसेनस्य मम भ्रातुर्वधस्तु मणिहेतुकः ।
सिंहात्तस्यापि मण्यर्थे वधो जाम्बवता कृतः ।२६।
दुर्वादभयभीतस्य कृष्णस्यामिततेजसः ।
मण्यन्वेषणचित्तस्य ऋक्षेणाभूद्रणो बिले ।२७।
स निजेशं परिज्ञाय बच्चक्रग्रस्तबन्धनम् ।
मुक्तो बभूव सहसा कृष्णं पश्यन्सलक्ष्मणम् ।२७।
नवदूर्वादलश्यामं दृष्ट्वा प्रादान्निजात्मजाम् ।
तदा जाम्बवतीं कन्यां प्रगृह्य मणिना सह ।२६।
द्वारकां पुरमागत्य सभायां मामुपाह्वयत् ।
आहूय मह्यं प्रददौ मणि मुनिगणार्च्चितम् ।३०।

प्रसेन नामक मेरा अनुज था । उसे एक सिंह ने मणि के लिए मार डाला । फिर वह सिंह भी उसी मणि के कारण जाम्बवान् के द्वारा वध को प्राप्त हुआ ।२६। उधर कलंक के भय से अमित तेज वाले भगवान् श्रीकृष्ण उस मणि की खोज करने लगे, तभी एक गिरि-गुहा में जाम्बवान् के साथ उनका घोर युद्ध हुआ ।२७। तभी जाम्बवान् अपने स्वामी को पहचान गया । भगवान् के चक्र से उसका शिर कट

गया । लक्ष्मण सहित भगवान् का दर्शन करते हुए जाम्बवान् की मोक्ष की प्राप्ति हुई ।२८। तब उस ऋक्षराज ने अपने प्रभु की श्यामल मूर्ति का दर्शन करते हुए उन्हें अपनी पुत्री जाम्बवती के सहित वह मणि भेंट कर दी ।२९। फिर श्रीकृष्ण ने द्वारका की राज सभा में आकर मुझे वहाँ बुलाया और महर्षियों के द्वारा पूजित वह मणि उन्होंने मुझे दे दी ।३०।

सोऽहं तां लज्जया तेन मणिना कन्यकां स्वकाम् ।
विवाहेन ददावस्मै लावण्याज्जगृहे मणिम् ।३१।
ता सत्यभामामादाय मणि मय्यर्प्य स प्रभुः ।
द्वारकामागत्य पुनर्गजाह्वयमगाद्विभुः ।३२।
गते कृष्णे मां निहत्य शतधन्वाग्रहीन्मणिम् ।
अतोऽहमिह जानामि पूर्वजन्मनि यत्कृतम् ।३३।
मिथ्याभिशापात्कृष्णस्य नैवाभून्मोचनं मम ।
अतोऽहं कल्किरूपाय कृष्णाय परमात्मने ।
दत्त्वा रमां सत्यभामारूपिणीं यामि सद्गतिम् ।३४।

यह देख कर मैं अत्यन्त लज्जित हुआ और मैंने अपनी सत्यभामा नाम की कन्या के सहित वह मणि श्रीकृष्ण को ही दे दी । उन दोनों के लावण्य से आकर्षित होकर उन्होंने उन्हें ग्रहण कर लिया ।३१। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने मणि मेरे पास रख दी और स्वयं सत्यभामा को साथ लेकर द्वारका से हस्तिनापुर को चले गये ।३२। श्रीकृष्ण के चले जाने पर शतधन्वा नामक एक राजा ने मणि के निमित्त मेरा वध कर दिया और मणि को ले लिया । इस प्रकार इन कल्किजी ने अपने पूर्वावतार में जो किया, उस सब को मैं भले प्रकार जानता हूँ ।३३। श्रीकृष्ण को मैंने झूँठा कलंक लगाया था, इसी पाप से उस जन्म में मैं मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सका । यही कारण हैं कि इस जन्म में अपनी रमा रूपिणी सत्यभामा को कल्कि रूप कृष्ण को देकर मैं सद्गति को प्राप्त करूँगा ।३४।

सुदर्शनास्त्रघातेन मरणं मम कांक्षितम् ।
मरणोऽभूदिति ज्ञात्वा रणे वाञ्छामि मोचनम् ।३५।
इत्यसौ जगतामीशः कल्किः श्वशुरघातनम् ।
श्रुत्वैवाधोमुखस्तस्थौ ह्रिया धर्मभिया प्रभुः ।३६।
अत्याश्चर्यमपूर्वमुत्तममिदं श्रुत्वा नृपा विस्मिता
लोकाः संसदि हर्षिता मुनिगणाः कल्केर्गुणाकर्षिताः ।
आख्यानं परमादरेण सुखदं धन्यं यशस्यं परं
श्रीमद्भूपशशिध्वजेरितवजो मोक्षप्रदं चाभवन् ।३७।

यह जान कर कि युद्धस्थल में मरने से मोक्ष की प्राप्ति संभव है, मैंने यह अभिलाषा की थी कि कल्किजी के सुदर्शन चक्र-प्रहार से मेरा मरण हो जायगा ।३५। जगदीश्वर भगवान् कल्कि ने अपने श्वसुर का इस प्रकार मारा जाना स्मरण करके ही धर्मभय और लज्ज से अपना मुख झुका लिया था ।३५। इस अत्यन्त विस्मय युक्त, अपूर्व और श्रेष्ठ उपाख्यान को सुन कर राजागण विस्मित हो उठे तथा सभी सभासद् आनन्द विभोर हुए । कल्किजी के गुणों के प्रति मुनिगण भी आकर्षित हो रहे थे । राजा शशिध्वज के कहे हुए इस उपाख्यान के सुनने वाला प्राणी सुखी, धन्य और यशस्वी होकर अन्त में मोक्ष को प्राप्त करता है, उसका कभी पुनर्जन्म नहीं होता ।३७।



चतुर्दश अध्याय

ततः कल्किर्महातेजाः श्वशुरं तं शशिध्वजम् ।
समामन्त्र्य वचश्चित्रैः सह भूपैर्ययौ हरिः ।१।
शशिध्वजो वरं लब्ध्वा यथाकामं महेश्वरीम् ।
स्तुत्वा मायां त्यक्तमायः सप्रियः प्रययौ वनम् ।२।
कल्किः सेनागणैः सार्द्धं प्रययौ काञ्चनी पुरीम् ।
गिरिदुर्गावृतां गुप्तां भोगिभिर्विषवर्षिभिः ।३।
विदार्य दुर्गं सगणः कल्किः परपुरञ्जयः ।
छित्वा विषायुधान्बाणैस्तां पुरीं ददृशोऽच्युतः ।४।
मणिकाञ्चनचित्राढ्यां नागकन्यागणावृताम् ।
हरिचन्दनवृक्षाढयां मनुजैः परिवर्ज्जिताम् ।५।

सूतजी बोले—फिर अत्यन्त तेज वाले कल्किजी ने अपने अद्‌भुत वचनों के द्वारा अपने श्वसुर राजा शशिध्वज को सन्तुष्ट किया और राजाओं के सहित उठ कर चले गये ।१। राजा शशिध्वज भी इच्छानुसार वर प्राप्त करके, महेश्वरी माया का स्तव करते हुए अपनी पत्नी सहित विषय–बन्धन से मुक्त होकर वन को गये ।२। इधर कल्किजी ने पर्वत रूपी दुर्ग से आवृत्त काञ्चनीपुरी को प्रस्थान किया इस पुरी की रक्षा विष-वर्षक सर्प करते हैं ।३। शत्रुओं के पुर के विजेता कल्किजी अपनी सेना सहित आगे बढ़े और उस कठिन दुर्ग को तोड़ कर तथा विष-वर्षक सर्पों को मार कर पुरी में प्रविष्ट हुए ।४। वहाँ उन्होंने देखा कि वह नगरी सर्वत्र मणियों और स्वर्ण से युक्त है तथा सब ओर नाग

कन्याएँ छाई हुई हैं। वह पुरी स्थान स्थान पर कल्पवृक्षों से सुशोभित हो रही है। वहाँ मनुष्य तो नाम को भी नहीं हैं।५।

विलोक्य कल्किः प्रहसन्प्राह भूपान्किमित्यहो।
सर्पस्येयं पुरी रम्या नराणां भयदायिनी।
नागनारीगणाकीर्णा किं यास्यामो वदन्त्विह।६।

इतिकर्तव्यताव्यग्रं रमानाथं हरिं प्रभुम्।
भूपांस्तदनुरूपांश्च खे वागाहाशरीरिणी।७।

विलोक्य नेमां सेनाभिः प्रवेष्टुं भोस्त्वमर्हसि।
त्वां विनान्ये मरिष्यन्ति विषकन्यादृशादपि।८।

आकाशवाणीमकर्ण्य कल्किः शुकसहायकृत्।
ययावेकः खड्गधरस्तुरगेण त्वरान्वितः।९।

गत्वा तां ददृशे वीरो धीरणा धैर्यनाशिनीम्।
रूपेणालक्ष्य लक्ष्मीशं प्राह प्रहसिताननाः।१०।

यह देख कर हँसते हुए कल्किजी ने राजाओं से कहा—हे राजन् यह सर्पपुरी कैसी आश्चर्यमयी एवं मनुष्यों के लिए अत्यन्त भयावनी है। इसमें नागकन्यों का ही निवास है। अब कहिए कि इसमें प्रवेश करें अथवा नहीं?।६। रमानाथ कल्किजी और सब राजागण भी यह निश्चय नहीं कर पाये कि क्या करना चाहिये, इसलिए अत्यन्त चिंतित हुये। तब आकाशवाणी सुनाई दी।७। इस पुरी में सेना-सहित प्रविष्ट नहीं होना चाहिए। क्योंकि जैसे ही पुरी निवासिनी विष-कन्याओं की दृष्टि पड़ेगी, वैसे ही नष्ट हो जाओगे।८। आकाशवाणी का निर्देश सुन कर कल्किजी एकाकी ही खड्ग लेकर घोड़े पर चढ़े और शुक को साथ लेकर चल दिये।९। कुछ आगे जाने पर उन्हें एक अपूर्व कन्या दिखाई दी, जिसे देखते ही ज्ञानी जन भी धैर्य छोड़ देते हैं। वह कन्या अपूर्व रूप वाले कल्किजी को देख कर हँसती हुई बोली।१०।

संसारेऽस्मिन्म नयनोर्वीक्षणक्षीणदेहा
लोका भूपा: कति कति गता मृत्युमत्युग्रवीर्या: ।
साहं दीनासुरसुरन प्रेक्षण प्रेमहीना
ते नेत्राब्जद्वयरससुधाप्लाविता त्वां नमामि ।११।
क्वाहं विषेक्षणादीना क्वामृतेक्षणसङ्गम: ।
भवेऽस्मिन्भाग्यहीनाया: केनाहो तपसा कृत: ।१२।
कासि कन्यासि सुश्रोणि कस्मादेषा गतिस्तव ।
ब्रूहि मां कर्मणा केन विषनेत्रं तवाभवत् ।१३।
चित्रग्रीवस्य भार्याहं गन्धर्वस्य महामते ।
सुलोचनेति विख्याता पत्युरत्यन्तकामदा ।१४।
एकदाहं विमानेन पत्या पीठेन सङ्गता ।
गन्धमादनकुञ्जेषु रेमे कामकलाकुला ।१५।

विषकन्या ने कहा—इस संसार में अत्यन्त पराक्रमी अनेक राजागण तथा अन्यान्य मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। इस लिए मैं अत्यन्त दु:खित हूँ। देवता, दैत्य और मनुष्य किसी के साथ भी मेरा परिणय संभव नहीं है। मैं आपके अमृत के समान दृष्टि प्रवाह में बहती हुई आपको नमस्कार कर रही हूँ।११। मैं मन्द भाग्य वाली और विष-दृष्टि से युक्त हूँ और आपकी दृष्टि अमृतमयी है। मैं किस तपस्या के प्रभाव से आपका दर्शन प्राप्त कर सकी हूँ।१२। कल्किजी ने कहा—हे सुश्रोणि ! तुम कौन एवं किसकी कन्या हो ? तुम इस अवस्था को किस प्रकार प्राप्त हुई हो ? किस कर्म-दोष से तुम्हें यह विष-दृष्टि मिली है।१३। विषकन्या ने कहा—हे महामते ! चित्रग्रीव नामक जो गन्धर्व हैं मैं उनकी पत्नी सुलोचना हूँ। मेरे द्वारा मेरे पति का मन अत्यन्त आनन्दित रहता था।१४। एक समय की बात है—जब मैं अपने पति के साथ विमानारूढ़ होकर गन्धमादन पर्वत के एक कुन्ज में शिला पर बैठ कर विहार-रत हो गई।१५।

तत्र यक्षमुनिं दृष्ट्वा विकृताकारमातुरम्।१६।
रूपयौवनगर्वेण कटाक्षेणाहसं मदात् ।१६।

सोपालम्भं मुनिः श्रुत्वा वचनं च ममाप्रियम् ।
शशाप मां क्रुधा तत्र तेनाहं विषदर्शना ।१७।
निक्षिप्ताह सर्पपुरे काञ्चन्यां नागिनीगणे ।
पतिहीना दैवहीना चरामि विषवर्षिणी ।१८।
न जाने केन तपसा भवद्दृष्टिपथं गता ।
त्यक्तशापामृताक्षाहं पतिलोकं व्रजाम्यतः ।१९।
अहो तेषामस्तु शापः प्रसादो मा सतामिह ।
पत्युः शापदृषेर्मोक्षात्तव पादाब्जदर्शनम् ।२०।

उस समय मैं अपने रूप यौवन के गर्व से अत्यन्त मदोन्मत्त हो रही थी । वहाँ विकट शरीर वाले यक्षमुनि को देख कर मैं उन पर कटाक्ष करती हुई, उनकी हँसी उड़ाने लगी ।१६। मेरे मुख से अपने प्रति अपमानजनक वचन सुन कर मुनि क्रोधित हो उठे और उन्होंने मुझे जो शाप दिया, उससे मैं तुरन्त विषदृष्टि को प्राप्त हो गई ।१७। तब मुझे इस कांचनीपुरी में नागनियों के मध्य डाल दिया गया । तभी से मेरी दृष्टि विष की वर्षा किया करती हे । इस प्रकार मैं अभागी पति से हीन होकर यहाँ एकाकी विचरती हूँ ।१८। मुझे ज्ञात नहीं कि अपनी किस तपस्या के फल से मैं आपकी दृष्टि के सामने आ गई हूँ । आपके दर्शन से मैं शाप-मुक्त होकर अमृतवर्षिणी दृष्टि से सम्पन्न हो गई हूँ । अब मैं अपने पति के पास गमन करती हूँ ।१९। अहा ! साधुओं के प्रसन्न होने की अपेक्षा तो शाप देना भी श्रेष्ठ है क्योंकि शाप के कारण ही तो मोक्ष स्वरूप आपके चरणाम्बुज का दर्शन प्राप्त हो सका है ।२०।

इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्गं विमानेनार्कवर्चसा ।
कल्किस्तु तत्पुराधीशं नृपं चक्रे महामतिम् ।२१।
अमर्षस्तत्सुतो धीमान् सहस्रो नाम तत्सुतः ।
सहस्रतः सुतश्चासीद्राजा विश्रुतवानसि ।२२।
बृहन्नलानां भूपानां सभूता यस्य वंशजाः ।

तं मनुं भूपशार्दूल नानामुनिगणैर्वृतः ।२३।
अयोध्यायां चाभिषिच्य मथुरामगमद्धरिः ।
तस्यां भूप सूर्यकेतुभिषिच्य महाप्रभम् ।२४।

यह कह कर वह विषकन्या सूर्य जैसे तेजस्वी विमान पर चढ़ कर स्वर्ग को गई । कल्किजी ने महामति नामक एक राजा को उस पुरी के राज्य पर अभिषिक्त किया ।२१। उस राजा महामति का पुत्र अमर्ष हुआ । अमर्ष का पुत्र धीमान् सहस्र और सहस्र का पुत्र अत्यन्त प्रसिद्ध राजा असि हुआ ।।२२। उसी राजा के वंश में बृहन्नल राजाओं की उत्पत्ति हुई । नृपशार्दूल मनु को अयोध्या का राज्य देकर अनेक मुनियों के सहित कल्किजी मथुरा पहुंचे और उन्होंने अत्यन्त प्रभा से सम्पन्न सूर्यकेतु को मथुरा के राज्य पर विधिवत् अभिषिक्त किया ।२३-२४।

भूप चक्रे ततो गत्वा देवापिं वारणावते ।
अरिस्थलं वृकस्थल माकन्दञ्च गजाह्वयम् ।२५।
पञ्चदेशेश्वर कृत्वा हरिः शम्भलमाययौ ।
शौम्भं पौंड्र पुलिन्दञ्च सुराष्ट्रं मगधन्तथा ।
कविप्राज्ञसुमन्तेभ्यः प्रददौ भ्रातृवत्सलः ।२६।
कीकटं मध्यकर्णाटध्रमोड्रं कलिङ्गकम् ।
अङ्गं वङ्गं स्वगोत्रेभ्यः प्रददौ जगदीश्वरः ।२७।
स्वयं शम्भलमध्यस्थः कङ्केन कलापकान् ।
देश विशाखयूपाय प्रादात्कल्किः प्रतापवान् ।२८।
चोलबर्बरकर्वाख्यान्द्वारकादेशमध्यगान् ।
पुत्रेभ्यः प्रददौ कल्किः कृतवर्म्मपुरस्कृतान् ।२९।

यात्रा करते हुए कल्किजी ने देवापि को राज्य देकर उन्हें अरिस्थल, वृकस्थल, माकन्द, हस्तिनापुर और वारणावत-इन पाँच देप्रशों का अधिपति बनाया और फिर शम्भल ग्राम के लिए चल पड़े ।

फिर भ्रातृवत्सल कल्किजी ने कवि, प्राज्ञ और सुमन्त्र को शौम्भ, पौण्ड्र, पुलिन्द और मगध देशका राज्य दिया ।२५-२६। फिर जगदीश्वर कल्किजी ने अपने गोत्र बांधवों को कीकट, मध्यकर्णाटक, आन्ध्र, उड्र कलिंग, अङ्ग और बंगादि देश प्रदान किये ।२७। फिर स्वयं शम्भल में रह कर विशाखयूप-नरेश को कंकक और कपाल प्रदेशों का राजा बनाया ।२८। तदनन्तर उन्होंने कृतवर्म्म आदि पुत्रों को द्वारका देश के मध्य में स्थित चोल, बर्बर तथा कर्ब आदि प्रदेशों का राज्य प्रदान किया ।२९।

पित्रे धनानि रत्नानि ददौ परमभक्तितः ।
प्रजाः समाश्वास्य हरिः शम्भलग्रामवासिनः ।३०।
पद्मया रमया कल्किर्गृहस्थो मुमुदे भृशम् ।
धर्मश्चतुष्पादभवत्कृतपूर्णं जगत्रयम् ।३१।
देवा यथोक्तफलदाश्चरन्ति भुवि सर्वतः ।
सर्वशस्या वसुमती हृष्टपुष्टजनावृता ।
शाठ्याचौर्य्यानृतैर्हीना आधिव्याधिविवर्ज्जिता ।३२।
विप्रा वेदविदः सुमङ्गलयुता नार्यस्तु चार्य्यव्रतैः ।
पूजाहोमपराः पतिव्रतधरा यागोद्यता क्षत्रियाः ।
वैश्या वस्तुषु धर्मतो विनिमयैः श्रीविष्णुपूजापराः ।
शूद्रास्तु द्विजसेवनाद्धरिकथालापाः सपर्यापराः ।३३।

फिर भगवान् कल्किजी अपने पिताको अत्यन्त भक्तिपूर्वक धन-रत्न आदि भेंट करके और शम्भल ग्राम के निवासियों को सन्तुष्ट करके रमा और पद्मा के साथ गृहस्थाश्रम के सुख भोगने लगे । तब तक धर्म के चारों चरणों सम्पन्न हुए तीनों लोकों में सत्युग का आविर्भाव हो गया ।३०-३१। भक्तों को इच्छित फल प्रदान करते हुए देवगण सम्पूर्ण पृथिवी पर विचरण करने लगे । धरा के सब धान्यों से परिपूर्ण होने के कारण सभी प्राणी हृष्ट-पुष्ट हो गए । शाठ्य, चौर्य, अनृत, आधि,

व्याधि आदि सभी दुःख भूमण्डल से अदृश्य हो गये ।३२। ब्राह्मण वेदपाटी हुए, स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म के पालन पूर्वक धर्मानुष्ठान में लगीं। सर्वत्र पूजन और होम होने लगे। क्षत्रिय भी यज्ञादि शुभ कर्मों में उद्यत हुए। विष्णु-पूजन में रत रहते हुए वैश्य गण भी वस्तु विनिमय का धर्म पूर्वक व्यापार करने लगे। शूद्रगण द्विज सेवा-परायण हुए। सभी प्राणी भगवान् का गुण कीर्तन, श्रवण और उपासना में तत्पर रहते हुए जीवनचर्या चलाने लगे ।३३।



तृतीयांश—

पंचदश अध्याय

शशिध्वजो महाराजः स्पुतत्वा मायां गतः कुतः।
का वा मायास्तुतिः सूत वद तत्वविदां वर।
या त्वत्कथा विष्णुकथ वक्तव्या सा विशुद्धये ।१।
श्रृणुध्वं मुनयः सर्वे मार्कण्डेयाय पृच्छते।
शुकः प्राह विशुद्धात्मा मायास्तवमनुत्तमम् ।२।
तच्छृणुष्व प्रवक्ष्यामि यथाधीत यथाश्रुतम् ।
सर्वकामप्रदं नृणां पापतापविनाशनम् ।६।
भल्लाटनगरं त्यक्त्वा विष्णुभक्तः शशिध्वजः।
आत्मसंसारमोक्षाय मायास्तवमलं जगौ ।४।
ओं ह्लींकारां सत्वसारां विशुद्धां ब्रह्मादीनां मातरं वेदबोध्याम्
तन्वीं स्वाहां भूततन्मात्रकक्षाँ वन्देवन्द्या देवगन्धर्वसिद्धैः ।५।

शौनक जी बोले—हे सूतजी! भगवती माया की स्तुति करके महाराज शशिध्वज कहाँ गये? हे तत्त्वज्ञानियों में श्रेष्ठ! माया की स्तुति के विषय में बताइये। माया और विष्णु की कथा में कोई भेद नहीं होने से पुनीत होने के उद्देश्य से उस स्तव को हमारे प्रति कहिये ।१। सूत जी ने कहा—हे ऋषियों! मर्कण्डेयजी, के पूछने पर शुकदेव जी ने जो श्रेष्ठ माया-स्तोत्र कहा था, वही तुम्हारे प्रति कहता हूँ, सुनिये ।२। जिस माया-स्तव को मैंने सुना और पढ़ा है, जो सुनने से सब की कामनाएँ पूर्ण करने वाला और पाप-ताप का नाशक है, उस

माया स्तव को सुनो ।३। शुकदेव जी बोले—विष्णु भक्त महाराज शशिध्वज ने जब अपने भल्लाटनगर को छोड़ कर संसार से विमुख होने के उद्देश्य से माया-स्तव किया ।४। शशिध्वज बोले—हे, ह्रींकार मयी, सत्यसार रूपिणी, विशुद्धा मायादेवी ! आप ब्रह्मादि देवताओं की जननी हैं। वेद भी आपकी महिमा का बखान करते हैं। समस्त भूतगण और तन्मात्राएँ आपकी कोख में स्थित रहते हैं। आप देव, गंधर्व और सिद्धगणों से वन्दित, सूक्ष्म स्वरूप तथा स्वाहा रूपिणी हैं, मैं आपकी वन्दना करता हूँ ।५।

लोकातीतां द्वैतभूतां समीडे भूतैर्भव्यां व्याससामासिकाद्यैः
विद्वद्गीतां कालकल्लोललोलां लीलापाङ्गक्षिप्तसंसारदुर्गाम् ।३।
पूर्णां प्राप्यां द्वैतलभ्यां शरण्यामाद्ये शेषे मध्यतो या विभाति
नानारूपैर्देवतिर्यङ्मनुष्यैस्तामाधारां ब्रह्मरूपां नमामि ।७।
यस्या भासा त्रिजगद्भाति भूतैर्न भात्येतत्तदभावे विधातुः ।
कालोदैवंकर्म चोपाधयो ये तस्यां भाषा ताँ विशिष्टां नमामि
भूमौ गन्धो रसताप्सु प्रतिष्ठा रूप तेजस्येव वायौ स्पृशत्वम् ।
खे शब्दो वा यच्चिदाभास्ति नाना
मताभ्येतांविश्वरूपां नमामि ।६।
सावित्री त्वं ब्रह्मरूपा भवानी भूतेशस्य श्रीपतेः श्रीस्वरूपा ।
शचीशक्रस्यापि नाकेश्वरस्य पत्नी श्रेष्ठा भासि माये जगत्सु

माप लोकों से परे, द्वैतभूता, भव्या तथा व्यासादि ऋषियों के द्वारा वन्दिता हैं। भगवान् विष्णु भी आपका स्तोत्र करते हैं। आप काल की लहरों में लहराती रहती हैं। सभी जीव आपकी विलास लीला में पड़ते हैं। ऐसी आप संसार दुर्ग से तारने वाली को नमस्कार करता हूँ ।६। सृष्टि के आदि, मध्य और लय काल में आप ही स्थित रहती हो। आप सब की आश्रयदाता को पूर्ण भाव या द्वैतभाव से ही पाया जा सकता है। देवता, तिर्यक् और मनुष्यादि योनियों में आप ही वभक्त होकर प्रकाशित है। आप संसार की आश्रयभूता एवं ब्रह्म-

स्वरूपिणी को नमस्कार है ।७। आपकी महिमा से ही यह त्रिलोकी पंचभूतात्मिका रूप से प्रकाशित है। काल, दैव, कर्म, उपाधि आदि कोई भी विधाता द्वारा निश्चित भाव आपके प्रकाश के बिना प्रकाशित नहीं हो सकता। ऐसी आप प्रभावती को मेरा नमस्कार है ।८। आप ही पृथिवी में गन्ध, जल में रस, तेज में रूप, वायु में स्पर्श और आकाश में शब्द रूप से विविध रूपों में प्रतिष्ठित रहती हैं। आप जगत् में व्याप्त विश्वरूपिणी को नमस्कार है ।९। आप ही ब्रह्मरूपा सावित्री हैं, भगवान् विष्णु की लक्ष्मी, शंकर की भवानी तथा देवराज इन्द्र की शची हैं। हे माये ! सम्पूर्ण विश्व में आप इसी प्रकार व्याप्त हो रही हैं ।१०।

बाल्ये बाला युवती यौवने त्वंत्वार्धक्ये या स्थविरा कालकल्या
नानाकारैर्यागयोगैरुपास्या ज्ञानातीता कामरूपा विभासि ।११
वरेण्या त्वं वरदां लोकसिद्धयासाध्वीधन्या लोकमान्या सुकन्या
चण्डी दुर्गा कालिका कालिकाख्या ; नानदेशे
रूपवेशैर्विभासि ।१२।
तव चरणसरोजं देवि ! देवादिवन्द्यं यदि हृदयसरोजे ।
भावयन्तीह भक्त श्रुतियुगकुहरे वा संश्रुतं
धर्म्मसम्पज्जनयति जगदाद्ये सर्वसिद्धश्च तेषाम् ।१३।
मायास्तवमिदं पुण्यं शुकदेवेन भाषितम् ।
मार्कण्डेयादवाप्यापि सिद्ध लेभे शशिध्वजः ।१४।
कोकामुखे तपस्तप्त्वा हरिं ध्यात्वा वनान्तरे ।
सुदर्शनेन निहतो वैकुण्ठं शरणं ययौ ।१५।

आप शैशवावस्था में बाला, यौवनावस्था में युवती और वृद्धावस्था में वृद्धा रूप वाली रहती हैं। आप ही काल से कल्पित, ज्ञानातीता और कामरूपा है। आप विभिन्न रूपों में प्रकाशित होने वाली ईश्वरा का यज्ञ और योग के द्वारा पूजन किया जाता है। मैं आपकी वन्दना करती हूं ।११। हे वरेण्या ! आप ही उपासकों को वरदात्री और सिद्धि के देने वाली हैं। आप लोकों के द्वारा मान्या, साध्वी, एवं सब प्रकार से धन्या हैं। आप ही श्रेष्ठ कन्या, चण्डी, दुर्गा, कालिका आदि विभिन्न

रूपों से अनेक देशों में प्रकाशित रहती हैं ।१२। हे संसार की आदि रूपा देवि ! यदि कोई अपने हृदय में देवताओं आदि से वन्दित आपके चरणारविन्दों का भक्ति भाव पूर्वक ध्यान और आपका नाम-श्रवण करता है, तो उसे धर्म रूपी ऐश्वर्य और सम्पूर्ण सिद्धियों की प्राप्ति होती है ।१३। यह पवित्र माया-स्तव शुकदेव जी द्वारा कहा गया था। राजा शशिध्वज ने इसे मार्कण्डेयजी से प्राप्त करके सिद्धि-लाभ किया ।१४। वन में स्थित कोकामुख नामक स्थान में तपस्या करते हुए राजा शशिध्वज सुदर्शन चक्र से निहत होकर वैकुण्ठ को प्राप्त हुए ।१५।



षोडश अध्याय

एतद्वः कथितं विप्राः शशिध्वजविमोक्षणम् ।
कल्के: कथामप्रतिमां शृण्वन्तु विबुधर्षभाः ।१।
वेदो धर्म्म. कृतयुगं देवलोकश्चराचराः ।
हृष्टः पुष्टाः सुसंतुष्टाः कल्कौ राजनि चाभवन् ।२।
नानादेवादिलिङ्गेषु भूषणैर्भूषितेषु च ।
इन्द्रजालिकवद्वृत्तिकल्पकाः पूजका जनाः ।३।
न सन्ति मायामोहाढ्याः पाखण्डाः साधुवञ्चकाः ।
तिलकाञ्चितसर्वाङ्गाः कल्कौ राजनि कुत्रचित् ।४।
शम्भले वसतस्तस्य पद्मया रमया सह ।
प्राह विष्णुयशाः पुत्रं देवान्यष्टुं जगद्धितान् ।५।

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार राजा शशिध्वज को मोक्ष प्राप्ति का प्रसंग मैंने आपको सुनाया । अब कल्किजी के विचित्र आख्यान को पुनः कहता हूँ, इसे सुनिये ।१। जब भगवान् कल्किजी राज्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए, तब वेद, धर्म, सत्युग, देवगण और चराचर युक्त विश्व हृष्ट, एवं संतुष्ट हो गया ।२। पूर्व युग में पूजा करने वाले मनुष्य देव मूर्तियों को विभिन्न प्रकार के वस्त्रालंकारों से अलकृत करके इन्द्रजाल के समान रहस्य-कल्पना किया करते थे ।३। अब वह माया मोह से आवृत्त साधु वंचक पाखण्ड समाप्त हो गया । कल्किजी के

राज्य में सभी मनुष्य सर्वांग में तिलक लगाने लगे ।४। पद्म और रमा के साथ जब कल्किजी शम्भल ग्राम में सुख पूर्वक निवास कर रहे थे, तभी एक दिन उनके पिता विष्णुयशजी ने अपने पुत्र से देवताओं को सन्तुष्ट करने वाले यज्ञ का अनुष्ठान करने को कहा ।५।

तच्छ्रुत्वा प्राह पितरं कल्किः परमहर्षितः ।
विनयावनतो भूत्वा धर्मकामार्थसिद्धये ।६।
राजसूयैर्वाजपेयैरश्वमेधैर्महामखैः ।
नानायागैः कर्मतन्त्रैरीजे क्रतुपतिं हरिम् ।७।
गंगायमुनयोर्मध्ये स्नात्वावभृथमादरात् ।
कृपरामवसिष्ठाद्यैर्व्यास धौम्यकृतव्रणैः ।
अश्वत्थाममधुच्छन्दोमन्दपालैर्महात्मनः ।८।
दक्षिणाभिः समभ्यर्च्य ब्राह्मणान्वेदपारगान् ।९।
चव्यैश्चोष्यैश्च पेयैश्च पूगशष्कुलियावकैः ।
भोजयामास विधिवत्सर्वकर्मसमृद्धिभिः ।१०।

पिता के वचन सुन कर हर्षित हुए कल्किजी ने विनय पूर्वक कहा—धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि के प्रयोजन से मैं कर्म तन्त्र विहित राजसूय, वाजपेय और अश्वमेधादि महायज्ञों के अनुष्ठान द्वारा भगवान् विष्णु को प्रसन्न करूँगा ।६-७। फिर कल्किजी ने कृपाचार्य, परशुराम, वसिष्ठ, व्यास, धौम्य, अकृतव्रण अश्वत्थामा, मधुच्छन्द तथा मन्दपाल आदि महात्मा महर्षियों और वेदज्ञानियों को आमन्त्रित कर उनका पूजन किया। तदनन्तर गङ्गा-यमुना के मध्य में स्थित यज्ञ में दीक्षित होकर उन्होंने स्नान किया और दक्षिणा दी ।८-९। फिर उन्होंने अनेक प्रकार के चव्य, चोष्य, पेय, पूय, शष्कुलि और यावक आदि भोज्य पदार्थों के द्वारा उन ब्राह्मणों को श्रेष्ठ भोजन कराया ।१०।

यत्र वह्निर्धृतः पाके वरुणो जलदो मरुत् ।११।
परिवेष्टा द्विजान्कामैः सन्नाद्यैरतोषयत् ।

वाद्यैर्नृत्यैश्च गीतैश्च पितृयज्ञमहोत्सवैः१२।
कल्किः कमलपत्राक्ष प्रहर्षः प्रददौ वसु ।
स्त्रीबालस्थविरादिभ्यः सर्वेभ्यश्च यथोचितम् ।१३।
रम्भा तालधरां नन्दी हूहूर्गायति नृत्यति ।
दत्त्वा दानानि पात्रेभ्योब्राह्मणेभ्यः स ईश्वरः ।१४।
उवास तीरे गंगायाः पितृवाक्यानुमोदितः ।
समायां विष्णुयशसः पूर्वराजकथाः प्रियाः ।१५।
कथयन्तो हसन्तश्च हर्षयन्तो द्विजा बुधाः ।
तत्रागतस्तुम्बुरुणानारदः सुरपूजितः ।१६।

यज्ञ का भले प्रकार परिपाक हुआ । अग्नि ने पाक किया, वरुण ने जल प्रदान किया और वायु परोसने लगा । पद्माक्ष कल्किजी ने इस प्रकार श्रेष्ठ अन्नादि, नृत्य, वाद्य, गीतादि से उत्सव करते हुए सब के आनन्द की वृद्धि की । बालक, स्त्री, वृद्ध आदि सब को धन से यथोचित सत्कृत किया ।११-१३। रम्भादि नाचने लगीं, नन्दी ताल देने लगे, हुई गन्धर्व ने गीत गाया, उस समय ब्राह्मणों और सत्पात्रों को धन प्रदान करने के पश्चात् कल्किजी अपने पिता की अनुमति से गङ्गा-त पर रहने लगे । विष्णुयश की विद्वत्सभा में विद्वान् विप्रगण राजाओं को सन्तोष देने वाली कथाएँ कहने लगे । इस प्रकार जब सभी ज्ञानी-जन एवं द्विजजन आनन्द में निमग्न थे, तभी राजा तुम्बरु और देवताओं द्वारा पूजित नारदजी वहाँ आये ।१४-१६ ।

तं पूजयामास मुदा पित्रा सह यथाविधि ।
तौ संपूज्य विष्णुयशाः प्रोवाच विनयान्वितः ।
नारदं वैष्णवं प्रीत्या वीणापाणि महामुनिम् ।१७।
अहो भाग्यमहो भाग्यं मम जन्मशतार्जितम् ।
भवद्विधानां पूर्णानां यन्मे मोक्षाय दर्शनम् ।१८।
अद्याग्नयश्च सुहुतास्तृप्ताश्च पितरः परम् ।

देवाश्च परिसन्तुष्टास्तवावेक्षणपूजनात् ।१६।
यत्पूजायां भवेत्पूज्यो विष्णुर्यन्मम दर्शनम् ।
पापसघ स्पर्शनाच्च किमहो साधुसङ्गतः ।२०।
साधूनां हृदयं धर्मो वाचो देवाः सनातनाः ।
कर्मक्षयाणि कर्माणि यतः साधुर्हरिः स्वयम् ।२१।

उस अवसर पर प्रफुल्लित हृदय वाले विष्णुयश जी ने उन दोनों का विधिवत् पूजन किया और फिर उन्होंने वीणापाणि विष्णु भक्त नारदजी से विनय पूर्वक कहा ।१७। विष्णुयश बोले—मेरा अहो-भाग्य है । सौ जन्मों से संचित पुन्य के प्रभाव से ही आप परम पूर्ण पुरुषों के दर्शन मेरे मोक्ष के उद्देश्य से ही प्राप्त हुए हैं ।१८। आपके दर्शन और पूजन के होने से हमारे पितरों की भी तृप्ति हो गई तथा अग्नि में दी हुई आहुत के सफल होने से देवगण भी सन्तुष्ट हो गए हैं ।१६। जिनके पूजन में भगवान् विष्णु का पूजन निहित है, उनके दर्शन मात्र से ही पुनर्जन्म का नाश हो जाता है । उनके स्पर्श मात्र से पापों के पुन्ज भी समूल मिट जाते हैं । ऐसे साधुओं का संग भी अद्भुत ही है ।२०। साधुओं का हृदय धर्म, वाणी सनातनदेव और कर्म ही कर्म को क्षीण करते हैं । इस प्रकार साधु ही साक्षात् हरि हैं ।२१।

मन्ये न भौतिको देहो वैष्णवस्य जगत्त्रये ।
यथावतारे कृष्णस्य सतो दुष्टथिविग्रहे ।२२।
पृच्छामि त्वामतो ब्रह्मन्मायासंसारवारिधौ ।
नौकायां विष्णुभक्त्या च कर्णधारोऽसि पारकृत् ।२३।
केनाहं यातनागारान्निर्वाणपदमुत्तमम् ।
लप्स्यामीह जगद्बन्धो कर्मणा शर्म तद्वद ।२४।
अहो बलवती माया सर्वाश्चर्यमयी शुभा
पितर मातरं विष्णुर्नैव मुञ्चति कर्हिचित् ।२५।
पूर्णो नारायणो यस्य सुतः कल्किर्जगत्पतिः

तं विहाय विष्णुयशा मत्तो मुक्तिमभीप्सतिः ।२६।

दुष्टों को दण्ड देने वाला श्रीकृष्णावतार जिस प्रकार भौतिक देह से युक्त नहीं है, वैसे ही तीनों लोकों में विष्णु भक्तों के शरीर भी पचभूत से युक्त प्रतीत नहीं होते ।२२। हे ब्रह्मन् ! इस माया मय संसार सागर में आप ही विष्णुभक्ति रूपिणी नौका के द्वारा पार कराने वाले हैं । इसी लिये मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ ।२३। हे विश्वबन्धो ! आप मुझे यह बताने की कृपा करिये कि मैं इस संसार रूपी यातनागार से मुक्त होकर श्रेष्ठ निर्वाणपद को किस कर्म के द्वारा प्राप्त कर सकता हूँ ? ।२४, नारदजी ने कहा—अहो ! यह माया कैसी आश्चर्यमयी, उज्वला और बलवती है, जिसके प्रभाव से स्वयं भगवान् भी अपने पिता माता को मुक्त नहीं करा पाते ।२५। जिन विष्णुयशजी के पुत्र साक्षात् भगवान् जगत्पति कल्कि हैं,वे मुझसे मोक्ष की कामना व्यक्त करतेहैं।२६।

विविच्येत्थं ब्रह्मसुतः प्राह ब्रह्मयशः सुतम् ।
विविक्ते विष्णुयशसं ब्रह्मसम्पद्विवर्द्धनम् ।२७।
देहावसाने जीवं सा दृष्ट्वा देहावलम्बनम् ।
मायाह कर्तुमिच्छन्तं यन्मे तच्छृणु मोक्षदम् ।२८।
विन्ध्याद्रौ रमणी भूत्वा मायोवाच यथेच्छया ।२९।
अहं माया मया त्यक्तः कथंजीवतुमिच्छसि ।३०।
नाहं जीवाम्यहं माये कायेऽस्मिञ्जीवनाश्रये
अहमित्यन्यथाबुद्धिर्विना देहं कथं भवेत् ।३१।
देहबन्धे यथाश्लेपास्तथ बुद्धिः कथं तव ।
मायाधीनां विना चेष्टां ते कुतो वद ।३२।

ब्रह्मसुवन नारदजी ने यह सोच कर ब्रह्मज्ञान देने के विचार से विष्णुयशजी से कहा ।२७। नारदजी बोले—जब देह के नष्ट होने पर पुनः देह का आश्रय प्राप्त करने की जीव ने कामना की तब माया ने जो कुछ कहा था, उसे सुनो ! इसके सुनने से ही मोक्ष मिल जाता है ।२८। उन भगवती माया ने विंध्याचल पर स्वेच्छा से नारी रूप धारण करके

कहा ।२९। माया बोली—मैं माया हूँ। जब मैंने तुम्हारा त्याग कर दिया है, तब तुम पुनर्जीवन प्राप्त करने की इच्छा क्यों करते हो ? ।३०। इस पर जीव ने कहा—हे माये ! मैं तो जीवन की इच्छा नहीं करता, परन्तु जीवन का आश्रय शरीर ही है। अहं रूपी अभिमान के बिना देह धारण ही किस प्रकार संभव है ? ।३१। माया बोली देह धारण पर पर जो भेद ज्ञान होता है, तब तुम्हारी बुद्धि उस प्रकार की क्यों होती है ? जब चेष्टा माया के बिना सम्भव नहीं, तब माया रहित तुम्हारी चेष्टा किस प्रकार होती है ? ।३२।

मां विना प्राज्ञता माये प्रकाशविषयस्पृहा
मायया जीवति मरश्चेष्टते हतचेतनः ।
निःसारः सारवद्भाति गजभुक्तकपित्थवत् ।३४।
मम संसर्गजाता त्वं नानानामस्वरूपिणी ।
मां विनिन्दसि किं मूढे स्वैरिणी स्वामिनं यथा ।३५।
ममाभावे तवाभावः प्रोद्यत्सूर्ये तमो यथा ।
मामावर्य विभासि त्वं रविनवघनो यथा ।३६।
लीलाबीजकुशूलासि मम माये जगन्मये :
नाद्यन्ते मध्यतो भासि नानात्वादिन्द्रिजालवत् ।३७।

जीव ने कहा—हे माये ! तुम्हारी प्राज्ञता मेरे बिना प्रकाशित नहीं हो सकती और न फिर विषय में स्पृहा ही सम्भव है ।३३। माया बोली—जीव का जीवन धारण माया से ही हो सकता है। माया से रहित जीव हाथी द्वारा भक्षित कपित्थ फल के समान सारहीन होता है ।३४। जीव बोला—हे मूढ़े ! तूने हमारे ही संसर्ग से उत्पन्न होकर नाना प्रकार के नाम और रूप धारण कर लिये हैं। स्वामी की निन्दा करने वाली स्वैरिणी नारी के समान तू हमारी निन्दा क्यों कर रही है ? ।३५। जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार का अभाव हो जाता है, वैसे ही मेरे अभाव में तेरा भी अभाव निहित है। जैसे सूर्य को आवृत्त करता

हुआ मेघ शोभा पाता ।, वैसे ही तुम भी मुझे ढक कर शोभा को प्राप्त होती हो ।३६। हे माये ! तुम लीला रूपी बीज की भुसी के समान हो । अनेकत्व की कारण रूपा भी तुम्हीं हो तथा संसार के आदि, अन्त और लय में इन्द्रजाल की भांति सुशोभित होती हो ।३७।

एवं निर्विषयं नित्यं मनोव्यापारवर्जितम् ।
अभौतिकमजीवञ्च शरीरं वीक्ष्य सा त्यजत् ।३८।
त्यक्त्वा मां सा ददौ शापमिति लोके तवाप्रिय ।
न स्थितिर्भवता काष्ठकुड्योपम कथञ्चन ।३९।
सा माया तव पुत्रस्य कल्केर्विश्वात्मनः प्रभोः ।
तां विज्ञाय यथाकामं चर गां हरिभावनः ।४०।
निराशो निर्ममः शान्तः सर्वभोगेषु निस्पृहः ।
विष्णौ जगदिदं ज्ञात्वा विष्णुर्जगति वासकृत् ।
आत्मनात्मानमावेश्य सर्वतो विरतो भव ।४१।
एव तं विष्णुयशसमामन्त्र्य च मुनीश्वरौ ।
कल्कि प्रदक्षिणीकृत्य जग्मतुः कपिलाश्रमम् ।४२।

इस प्रकार निर्विषय, मानसिक व्यापार और अभौतिक जवीन से परे उस शरीरधारी को देख कर माया ने उसका त्याग कर दिया ।३८। उस समय माया ने मेरा त्याग करते हुए यह शाप दिया कि हे जीव ! तू अप्रिय है : तू काठ की भीत के समान निश्चेष्ट एवं लोक में सर्वथा स्थिति-हीन होगा ।३९। नारदजी बोले—हे प्रभो ! तुम्हारे पुत्र विश्वात्म कल्किजी ने ही इस माया को उत्पन्न किया था । तुम उस माया के तत्व को जानते हुए भगवान् विष्णु के ध्यान में रत रहते हुए स्वेच्छापूर्वक भ्रमण करो ।४०। जब तुम आशा और ममता को त्याग कर और सभी भोगों से परे होकर शान्त चित्त हो जाओगे, तब तुम्हें इसका ज्ञान होगा कि यह विश्व भगवान् विष्णु के विराट् प्रभाव में प्रतिष्ठित है तथा भगवान् विष्णु इस लक्षित जगत् में व्याप्त हैं । इस प्रकार के ज्ञान से जीवात्मा और परमात्मा में अभेद मानते हुए सभी

कामनाओं से मुक्त हो जाओ ।४१। इस प्रकार विष्णुयशजी को ज्ञान देकर और कल्किजी की प्रदक्षिणा कर दोनों मुनीश्वरों ने कपिलाश्रम के लिए प्रस्थान किया ।४२।

नारदेरितमाकर्ण्य कल्कि सुतमनुत्तमम् ।
नारायणं जगन्नाथं वनं विष्णुयशा ययौ ।४३।
गत्वा बदरिकारण्यं तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ।
जीवं बृहति संयोज्य पूर्णस्तत्याजय भौतिकम् ।४४।
मृतं स्वामिनमालिङ्गय सुमतिः स्नेहविक्लवा ।
विवेश दहनं साध्वी सुवेर्शैदिवि संस्तुता ।।४५।।
कल्किः श्रुत्वा मुनिमुखात्पित्रोर्निर्वाणमीश्वरः ।
सवाष्पनयन स्नेहात्तयोः समकरोत्क्रियाम् ।।४६।।
पद्मया रमया कल्किः शम्भले सुरवाञ्छिते ।
चकार राज्यं धर्मात्मा लोकवेदपुरस्कृतः ।४७।
महेन्द्रशिखराप्रामस्तीर्थपर्यटनाहृतः ।
प्रायात्कल्केर्दर्शनार्थं शम्भलं तीर्थकृत् ।४८।

विष्णुयशजी ने देवर्षि नारद के मुख से यह सुन कर और जान कर कि मेरे पुत्र ही भगवान् नारायण जगदीश्वर हैं, स्वयं वन के लिए प्रस्थान किया ।४३। वह वहाँ से चल कर बदरिकाश्रम पहुँचे और वहाँ घोर तप करके अपने आत्मा को ब्रह्म में सयुक्त कर दिया तथा पंच-भूतात्मक देह को छोड़ कर पूर्ण स्वरूप हो गए ।४४। अपने पति की मृत्यु हुई सुन कर सुमति स्नेह से विह्वल होकर अपने पति के साथ चिता में प्रविष्ट हो गई । उस समय श्रेष्ठ वस्त्र भूषण को धारण किये हुए देवलोक स्थित देवगण उनकी स्तुति करने लगे ।४५। कल्किजी ने मुनियों के मुख से अपने माता-पिता का महाप्रयाण सुन कर स्नेह-जल से परिपूर्ण नेत्रों के सहित उनका श्राद्धादि कर्म किया ।४६। फिर लोका चार और धर्माचार में स्थित कल्किजी देवताओं द्वारा कामना किये हुए शम्भल ग्राम में रमा और पद्मा के सहित राज्य करने लगे ।४७। तीर्था-

टन में संलग्न परशुरामजी महेन्द्र पर्वत के शिखर से उतरते हुए कल्कि जी के दर्शनार्थ शम्भल ग्राम में पधारे ।४८।

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय पद्मया रमया सह ।
कल्किः प्रहर्षो विधिवत्पूजाञ्चक्रे विधानवित् ।४६।
नानारसैर्गुणमयैर्भोजायित्वा विचित्रिते ।
पर्यङ्केऽनकवस्त्राढ्ये शाययित्वा मुदं ययौ ५०।
तं भुक्तवन्तं विश्रान्तं पादसंवाहनैर्गुरुम् ।
संतोष्य विनयापन्नः कल्किर्मधरमब्रवीत ।५१।
तव प्रसादात्सिद्धं मे गुरौ त्रैवर्गिकश्च यत् ।
शशिध्वजतनयायास्तु शृणु राम निवेदितम् ।५२।
इति पतिवचनं निशम्य राम निजहृदयेप्सितपुत्रलाभमिष्टम् ।
व्रतजपनियमैर्यमैश्च कैर्वा मम भवतीह मुदाह जामदग्न्यम् ५३

उन्हें देखते ही पद्मा और रमा के सहित कल्किजी अपने सिंह-सन से उठ पड़े और विधि विधान सहित हर्षित मन से उनका पूजन करने लगे ।४६। विभिन्न रसों से युक्त अन्नादि का उन्हें भोजन कराके सुन्दर वस्त्रों से ढकी हुई अद्भुत शय्या पर उन्हें शयन कराया ।५०। जिस समय गुरुवर परशुरामजी विश्राम कर रहे थे, उसी समय कल्किजी उनके चरण दाबते हुए विनय पूर्वक मधुर वाणी से कहने लगे ।५१। हे गुरो ! आपकी कृपा से मेरे धर्म, अर्थ और काम-इन तीनों वर्ग की सिद्धि हो चुकी है । इस समय राजा शशिध्वज को पुत्री रमा आपसे एक निवेदन करना चाहती है, उसे सुनने की कृपा करें ।५२। पति के वचन सुन कर हर्षित हृदय से रमा ने परशुरामजी से प्रश्न किया—व्रत, जप, नियम आदि में ऐसा कौन-सा अनुष्ठान है, जिसके द्वारा मुझे इच्छित पुत्र की प्राप्ति हो सकती है ? ।५३।

●●●

तृतीयांश—

सप्तदश अध्याय

जामदग्न्य: समाकर्ण्य रमांतां पुत्रगर्द्धिजीम् ।
कल्केरभिमतं बुद्ध्वाकारयद्रुक्मिणीव्रतम ।१।
व्रतेन तेन च रमा पुत्राढ्या सुभगा सती ।
सर्वभोगेन संयुक्ता बभूव स्थिरयौवना ।२।
विधानं ब्रूहि मे सूत व्रतस्यास्य च यत्फलम्
पुरा केन कृतं धर्म्यं रुक्मिणीव्रतमुत्तमम् ।३।
शृणु ब्रह्मन् राजपुत्री शर्म्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।
अवगाह्य सरोनीरं सोमं हरमपश्यत ।४।
सा सखीभि: परिवृता देवयान्या च संगता ।
शम्भुर्भीदया समुत्थाय पर्यधुर्वसनं द्रुतम् ।५।

सूतजी बोले—हे ऋषियो! रमा को पुत्र की अभिलाषिणी जान कर और कल्किजी के अभिप्राय को समझ कर परशुरामजी ने उसे रुक्मिणी व्रत का उपदेश किया।१। उस व्रत के प्रभाव से शशिध्वज पुत्री रमा पुत्रवती, सौभाग्य सम्पन्ना, सर्व भोगों से परिपूर्ण एव स्थिर यौवन हो गई।२। शौनकजी ने कहा—हे सूतजी! उस रुक्मिणी व्रत का विधान और फल मुझे बताइये और साथ ही यह भी कहिये कि इस अत्यन्त उत्तम व्रत को पहिले किस ने किया था?।३। सूतजी ने कहा—हे ब्रह्मन्! आपने जो पूछा है, वही कहता हूँ, सुनिये। दैत्यपति वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा थी। एक दिन वह सरोवर के जल में घुस कर विहार रत हुई थी, तभी उसने पार्वती सहित भगवान् शंकर को वहाँ देखा

।४। तब शर्मिष्ठा, देवयानी और अन्यान्य सखियाँ सभी भयभीत होकर सरोवर से निकल कर तट पर आ गई और अपने-अपने वस्त्रों को धारण करने लगी ।५।

तत्र शुक्रस्य कन्याया वस्त्रवत्ययमात्मनः ।
संलक्ष्य कुपिता प्राह वसनं त्यज भिक्षुकि ।६।
इति दानवकन्या सां दासीभिः परिवारिता ।
तां तस्या वाससा बद्ध्वा कूपे क्षिप्त्वा गता गृहम् ।७।
तां मग्नां रुदतीं कूपे जलार्थी नहुषात्मजः ।
करे स्पृश्य समुद्धृत्य प्राह का त्वं वरानने ।८।
सा शुक्रपुत्री वसनं परिधाय ह्रिया भिया ।
शर्म्मिष्ठायाः कृतं सर्वं प्राह राजानमीक्षती ।९।
ययातिस्तदभिप्रायं ज्ञात्वानुव्रज्य शोभनम् ।
आश्वास्य तां ययो गेहं तस्याः परिणयादृतः ।१०।

तभी शीघ्रता और विह्वलता के कारण दैत्यगुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी ने भूल से शर्मिष्ठा के वस्त्र धारण कर लिये। यह देख कर शर्मिष्ठा क्रोधित होकर बोली—अरी भिक्षुकी ! तू मेरे वस्त्रों को उतार दे ।३। इसके पश्चात उस दैत्यराज पुत्री शर्मिष्ठा ने देवयानी को वस्त्रों से बाँध कर एक कुए में डाल दिया और दासियों के सहित घर चली गई ।७। कूप में गिरी हुई देवानी रुदन करने लगी, तभी नहुष-पुत्र राजा ययाति जल पीनेकी इच्छासे उस कूप पर पहुँचे। उन्होंने देव-यानी का हाथ पकड़ कर कूपसे निकला और बोले—हे वरानने ! तुम कौन हो-यह बताओ ।८। शुक्रपुत्री देवयानी ने राजा की ओर लज्जा और भय से देखते हुए शीघ्रता पूर्वक वस्त्र पहिने और शर्मिष्ठा ने जो कुछ किया था वह सब उन्हें कह सुनाया ।९। देवयानी के अभिप्राय को जान कर राजा ययाति ने उसका पाणिग्रहण करने की अभिलाषा प्रकट की और फिर कुछ दूर तक उसके साथ-साथ चलते हुए, उसे हर प्रकारका आश्वा-सन देकर अपने घर को चले गये ।१०।

सा गत्वा भवनं शुक्रं प्राह शर्म्मिष्ठया कृतम् ।
तच्छ्रुत्वा कुपितं विप्र वृषपर्वाह सान्त्वयन् ।११।
दण्डयं मां दण्डय विभो कोपो यद्यस्ति ते मयि ।
शर्म्मिष्ठां वाप्यपकृतां कुरु यन्मनसेप्सितम् ।१२।
राजानं प्रणतं पादे पितुर्दृष्ट्वा रुषाब्रवीत् ।
देवयानो त्वियं कन्या मम दासो भवत्विति ।१३।
समानीय तदा राजा दास्ये तां विनियुज्य सः ।
ययौ निजगृहं ज्ञानो दैवं परमकं स्मरन् ।१४।
ततः शुक्रस्तमानीय ययातिं प्रतिलोमकम् ।
तस्मै ददौ तां विधिवद्देवयानीं तया सह ।१५।

इधर देवयानी ने अपने घर पहुँच कर शुक्राचार्यजी को शर्मिष्ठा की सब करतूत सुनाई, जिससे वे अत्यंत क्रोधित हुए । तब दैत्यराज वृषपर्वा ने उन्हें सान्त्वना दी ।११। वह बोला—हे विभो ! यदि आप मुझ पर कुपित हों तो मुझे दंड दीजिए अथवा अपकार करने वाली शर्मिष्ठा को दण्ड देना चाहें तो उसे दडित करिये ।१२। दैत्यपति वृषपर्वा को अपने पिता के चरणों में पड़ा हुआ देख कर देवयानी ने उससे कहा—हे राजन् आपकी पुत्री शर्मिष्ठा मेरी दासी बने ।१३। यह सुन कर दैवगति को प्रबल मानते हुए दैत्यराज ने शर्मिष्ठा को बुला कर उसे देवयानी की दासी बना दिया और फिर अपने घर को चला गया ।१४। फिर शुक्राचार्य ने राजा ययाति को विधि विधान सहित अपनी पुत्री देवयानी का कन्यादान कर दिया । उसके साथ उसकी दासी शर्मिष्ठा भी प्रदान कर दी गई ।१५।

दत्वा प्राह नृपं विप्रोऽप्येनां राजसुतां यदि ।
शयने ह्वयसे सद्यो जरा त्वामुपभोक्ष्यति ।१६।
शुक्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा राजा तां वरवर्णिनीम् ।
अदृश्यां स्थापयामास देवयान्यनुगा भिया १७।
सा शर्म्मिष्ठा राजपुत्री दुःखशोकभयाकुला ।

नित्यं दासीशताकीर्णा देवयानीन्तु सेवते ।१८।
एकादा सा वनगता रुदती जान्हवीतटे ।
विश्वामित्रं मुनिं सा तं ददृशे स्त्रीभिरावृतम् ।१९।
व्रतिनं पुण्यगन्धाभिः सुरूपाभि' सुवासितम् ।
कारयन्तं व्रतं माल्यधूपदीपोपहारकैः ।२०।

राजसुता शर्मिष्ठा को देते हुए शुक्राचार्य ने राजा ययाति से कहा कि हे राजन् ! यदि इसे कभी अपने शयनागार में बुलाएँगे तो उसी समय वृद्ध हो जाएँगे ।१६। शुक्राचार्य के वचनों से भय को प्राप्त हुए राजा ययाति ने अत्यन्त रूपवती शर्मिष्ठा को ले जाकर ऐसे स्थान में रख दिया, जहाँ पर उनकी दृष्टि भी न पड़ सके ।१७। अत्यन्त ही दुःखिता, शोक और भय से व्याकुला राजपुत्री शर्मिष्ठा सैकड़ों दासियों के साथ देवयानी की सेवा में तत्पर रहती थी ।१८। एक दिन वह शर्मिष्ठा जाह्नवी के तीर पर बैठी हुई रो रही थी, तभी उसकी दृष्टि स्त्रियों से घिरे हुए विश्वामित्र पर पड़ी ।१९। वे व्रती महर्षि विश्वामित्र सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित हो रहे थे । अनेक सुन्दर नारियाँ उनके चारों ओर बैठी हुई थीं । धूप, दीप, माला तथा अनेक प्रकार के उपहारों के द्वारा विश्वामित्र उन स्त्रियों से व्रत-अनुष्ठान करा रहे थे ।२०।

निर्माय्याष्ठदलं पद्मं वेदिकायां सुचिन्हितम् ।
रम्भापोतैश्चतुर्भिस्तु चतुष्कोणं विराजितम् ।२१।
वाससा निर्मितगृहे स्वर्णपट्टैर्विचित्रिते ।
निर्मितं श्रीवासुदेवं नानारत्नविघट्टितम् ।२२।
पौरुषेण च सूक्तेन नानागन्धोदकैः शुभैः ।
पञ्चमृतैः पञ्चगव्यैर्यथामन्त्रैर्द्विजेरितैः ।२३।
स्नापयित्वा भद्रपीठे कर्णिकायां प्रपूजयेत् ।
स्नामयित्वा भद्रपीठे कर्णिकायां प्रपूजयेत् ।
पञ्चभिर्दशभिर्वापि षोडशैरुपचारकैः ।२४।

पाद्यमध्वश्रमहरं शीतल सुमनोहरम् ।
परमानन्दजनकं गृहाण परमेश्वर ।२५।

उन्होंने वेदी पर अष्टदल कमल बनाया और वेदी के चार कोणों में कदली वृक्ष स्थापित किये ।२१। वस्त्रों से बने हुए मण्डप में एक स्वर्ण निर्मित आसन पर भगवान् वसुदेवकी विविध रत्नालङ्कारोंसे अलंकृत प्रतिमा प्रतिष्ठित थी ।२२। उन्होंने पुरुष सूक्त का पाठ करते हुए विभिन्न सुगन्धों से युक्त जल, पञ्चामृत, पञ्चगव्य आदि सिद्ध किया और ब्राह्मणों के द्वारा उच्चारण किये हुए मन्त्र से भद्रपीठा स्थित कर्णिका पर भगवान् श्रीवासुदेव को विराजमान किया। फिर सोलह पन्द्रह अथवा दश उपचारों से उनका पूजन किया ।२३-२४। हे परमेश्वर । आपका श्रम दूर करने के निमित्त यह परमान्नद का देने वाला सुन्दर पाद्य निवेदित है। इसे स्वीकार कीजिये ।२५।

दूर्वाचन्दनगन्धाढ्यमर्घ्यं युक्तं प्रयत्नत. ।
गृहाण रुक्मिणीनाथ प्रसन्नस्य मम प्रभो।२६।
नानातीर्थोद्भवं वारि सुगन्धि सुमनोहरम् ।
गृहाणाचमनीयं त्वं श्रीनिवास श्रिया सह ।२७।
नानाकुसुमगन्धाढ्यं सूत्रग्रथितमुत्तमम् ।
वक्षः शोभाकरं चारु माल्यं नय सुरेश्वर ।२८।
तन्तुसन्तानसन्धारचितं बन्धनं हरे ।
गृहाणावरणं शुद्धं निरावरण सप्रिय ।२९
यज्ञसूत्रमिद देव ! प्रजापतिविनिर्मितम् ।
गृहाण वासुदेव त्वं रुक्मिण्या रमया सह ।३०।

हे रुक्मिणी नाथ ? हे वासुदेव प्रभो ! दूर्वा से युक्त यह चन्दन-चर्चित अर्घ्य यत्न पूर्वक स्थापित किया है, इसे प्रसन्न होकर स्वीकार कीजिये ।२३। हे श्रीनिवास ! यह अनेक तीर्थों का पवित्र जल संग्रहीत है। आप इस सुरम्य जलको आच मनीय द्वारा लक्ष्मीजी के सहित ग्रहण कीजिये ।२७। हे सुरेश्वर ! यह माला अनेक प्रकार के पुष्पों से निर्मित

हुई है इसके द्वारा आपके वक्षस्थल की शोभावृद्धि होगी । इस श्रेष्ठ माला को आप ग्रहण कीजिये ।२८। हे हरे ! आपको आवृत्त करने में कोई भी समर्थ नहीं है । आप अपनी प्रिया लक्ष्मी जी के सहित इस सूत्र-संधान द्वारा निर्मित शुद्ध वस्त्रावरण को स्वीकार कीजिये ।२९। हे देव ! यह सूत्र प्रजापति द्वारा निर्मित हुआ है इसे आप अपनी पत्नी रुक्मिणीजी के सहित ग्रहण कीजिये ३०।

नानारत्नसमायुक्तं स्वर्णमुक्ताविघट्टितम्
प्रियया सह देवेश गृहाणाभरणं मम ।३१।
दधिक्षीरगुडान्नादिपूपलड्डुकखण्डकान् ।
गृहाण रुक्मिणीनाथ सनाथं कुरु मां प्रभो ।३२।
कर्पूरागुरुगन्धाढ्यं परमानन्ददायकम् ।
धूपं गृहाण वरद वैदर्भ्या प्रियया सह ।३३।
भक्तानां गेहशक्तानां संसारध्वान्तानाशनम् ।
दीपमालोकय विभो ! जगदालोकनादर ।३४।
श्यामसुन्दर ! पद्माक्ष ! पीताम्बर ! चतुर्भुज ! ।
प्रपन्नं पाहि देवेश रुक्मिण्या सहिताच्युत ।३५।

हे देवेश ! हे प्रभो ! विभिन्न प्रकार के रत्नों से युक्त एवं स्वर्ण द्वारा निर्मित इन आभूषणों को आप अपनी प्रिया लक्ष्मीजी के सहित ग्रहण कीजिये ।३१। हे रुक्मिणीनाथ ! यह दधि,दुग्ध,गुड़, अन्न, पुआ लड्डू एवं शर्करादि को ग्रहण करके मुझे सनाथ कीजिये ।३२। हे वरद ! परमानन्द के देने वाली इस कर्पूर और अगर युक्त गन्ध को आप अपनी प्रिया के सहित स्वीकार कीजिये ।३३। हे विभो ! आप संस-कामी भक्तों के अन्धकार को नष्ट करने वाले हैं और आदर सहित जगत् को अपने प्रकाश से आलोकित कर रहे हैं, इस दीपक का अवलोकन कीजिये ।३४। हे श्यामसुन्दर ! हे कमलाक्ष ! हे पीताम्बरधारी चतुर्भुज ! हे देवेश ! आप रुक्मिणीजी के सहित प्रसन्न होते हुए हमारी रक्षा कीजिये ।३५।

इति तासां व्रतं दृष्ट्वा मुनिं नत्वा सुदुःखिता ।
शर्म्मिष्ठा मिष्ठवचना कृताञ्जलिरुवाच ताः ।३६।
राजपुत्रीं दुर्भगां मां स्वामिना परिवर्जिताम्
त्रातुमर्हथ हे देव्यो व्रतेनानेन कर्मणा ।३७।
श्रुत्वा तु ता वचस्तस्याः कारुण्याच्च कियत्कियत् ।
पूजोपकरणं दत्त्वा कारयामासुरादरात् ।३८।
व्रतं कृत्वा तु शर्मिष्ठा लब्ध्वा स्वामिनमीश्वरम् ।
सूत्वा पुत्रान्सुसन्तुष्टा समभूत्स्थिरयौवना ।३९।
सीता चाशोकवनिकामध्ये सरमया सह।
व्रतं कृत्वा पतिं लेभेरामं राक्षसनाशनम् ।४०।

स्त्रियों को इस प्रकार व्रत करते हुए देख कर शर्मिष्ठा ने मुनि को प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर बोली ।३३। शर्ष्ठिा ने कहा—हे देवियो ! मैं अत्यंत अभागी राज पुत्री हूँ । भाग्य के दोष से ही पति-संग-हीना हूँ । यह व्रत किस प्रकार किया जाता है, मुझे यह बता कर मेरी रक्षा करिये ।३७। शर्मिष्ठा के वचन सुन कर उन स्त्रियों को दया आ गई और उन्होंने कुछ पूजन सामग्री उसे देकर उससे आदर पूर्वक व्रत कराया ।३८। इस व्रत को करके शर्मिष्ठा भी अपने प्रिय पति को प्राप्त होकर पुत्रवती और स्थिर यौवना होकर संतुष्ट हो गई ।३९। सीता और सरमा ने भी अशोक वाटिका में इस व्रत का अनुष्ठान किया था उसी के पुण्य-फल से सीताजी राक्षस-सहारक भगवान् राम से मिल सकी थीं ।४०।

वृहदश्वप्रसादेन कृत्वेमं द्रौपदी व्रतम् ।
पतियुक्ता दुःखमुक्ता वभूव स्थिर यौवना ।४१।
तथा रमा सिते पक्षे वैशाखे द्वादशीदिने ।
जामदग्न्याद्व्रतं चक्रे पूर्णं वर्षचतुष्टयम् ।४२।
पट्टसूत्रं करे वद्ध्वा भोजयित्व द्विजान्ब ।
भुक्त्वा हविष्यं क्षीराक्तं सुमृष्टं स्वामिना सह ।४३।

बुभुजे पृथिवीं सर्वामपूर्वां स्वजनैवृंता ।
सा पुत्रौसुषुवे साध्वी मेघमालबलाहकौ ।४४।
देवानामुपकर्त्तारौ यज्ञदानतपोव्रतैः ।
महोत्साहौ महावीर्यौ सुभगौ कल्किसम्मतौ ।४५।
व्रतवरमिति कृत्वा सर्वसम्पत्समृद्धया भवति विदितनत्त्रा पूजिता पूर्ण कामा । हरिचरणसरोजद्व‌ंद्वभक्त्यैकताना व्रजति गतिमपूर्वां ब्रह्मविज्ञैरगम्याम् ।४६।

वृहदश्व की प्रेरणा से द्रौपदी ने इस व्रत को किया था और वह भी दुःख से मुक्त होती हुई पतिमुक्त और स्थिर यौवना हो गई ।४१। इसके पश्चात् रमा ने परशुरामजी के निर्देशन में वैशाख शुक्ला द्वादशी के दिन इस रुक्मिणी व्रत का अनुष्ठान प्रारम्भ किया और चार वर्ष व्यतीत होने पर उसका समापन किया ।४१। रेशमी सूत्र हाथ में बाँधते हुये रमाने ब्राह्मणों को भोजन कराया और क्षीरयुक्त श्रेष्ठ हविष्यान्न का अपने स्वामी सहित आहार किया । इससे वह स्वजनों से परिपूर्ण होकर पृथिवी का अखण्ड सुख भोगने लगी । उसके मेघमाल और बलाहक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ।४४। वे दोनों देवताओं के उपकारी, यज्ञ-दान और तपोव्रत में निरत रहने वाले, अत्यंत उत्साही, महापराक्रमी सौभाग्यवान् तथा कल्किजी की आज्ञा में चलने वाले थे ।४५। इस व्रत को करने वालों को सब प्रकार सुख, सम्पत्ति और समृद्धि की प्राप्ति होती है । उनकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं । ब्रह्मज्ञान और हरिचरणों में प्रीति उत्पन्न होती है, तथा वे श्रेष्ठ गति को प्राप्त होते हैं ।४६।



तृतीयांश—

अष्टदश अध्याय

एतद्वः कथितं विप्रा व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
अतः परं कल्किकृतं कर्म्म यच्छृणुत द्विजा ।१।
शम्भले वसतस्तस्य सहस्रपरिवत्सराः ।
व्यतीता भ्रातृपुत्रस्वज्ञातिसम्बन्धिभिः सह ।२।
शम्भले शुशुभे श्रेणी सभापणकचत्वरैः ।
पताकाध्वजचित्राढ्यैर्यथेन्द्रस्यामरावती ।३।
यत्राष्टषष्टितीर्थानां सम्भवः शम्भलेऽभवत् ।
मृत्योर्मोक्षः क्षितौ कल्केरकल्करय पदाश्रयात् ।४।
वनोपवनसन्ताननाना कुसुम संकुलैः ।
शोभितं शम्भलं ग्रामं मन्ये मोक्षपदं भुवि ।५।

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो ! तीनों लोक में प्रसिद्ध इस रुक्मिणी व्रत को मैंने आपके प्रति कहा है । इसके पश्चात् कल्किजी ने जो कार्य किये थे, उन्हें कहता हूँ, सुनिये ।१। इस प्रकार कल्किजी अपने भाई, पुत्र, बांधव और स्वजनों के साथ एक हजार वर्ष तक शम्भल ग्राम में निवास करते रहे ।२। उस समय वह शम्भल पुरी ध्वजा-पताकादि से विभूषित हुई सब प्रकार इन्द्र की अमरावती के समान शोभामयी प्रतीत होती थी ।३। शम्भल ग्राम में उस काल अड़सठ तीर्थ एकत्रित हो गए थे निष्कलंक कल्किजी की महिमा से शम्भल ग्राम में मृत्यु होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती थी ।४। वहाँ के वन-उपवन आदि अनेक प्रकारके सुन्दर पुष्पों

से परिपूर्ण और रमणीय हो रहे थे। तथा शम्भल ग्राम संसार में मोक्ष के देने वाला माना जाने लगा था ।५।

तत्र कल्किः पूरस्त्रीणा नयनानन्दवद्र्धनः ।
पद्मया रमया कामं रराम जगतीपतिः ।६।
सुराधिपप्रदत्तेन कामगेन रथेन वै ।
नदीप्रवंतकुञ्जेषु द्वीपेषु परया मुदा ।७।
रममाणो विशन्पद्मारमाद्याभीरमापतिः ८
पद्मामुखामोदसरोजशोधुवासोपभोगी सुविलासवासः ।
प्रभूतनीलेन्द्रमणिप्रकाशे गहाविशे प्रविवेवेश कल्किः ।६।
पद्मा तु पद्माशतरूतरूपा रमा च पीयूषलकाविलासा ।
प्रति प्रविष्टं गिरिगह्वरे ते नारीसहस्तकुलिते त्वगाताम् १०
पद्मा पतिं प्रेक्ष्यगु हानिविष्टं रन्तुं मनोज्ञा प्रविवेश पश्चात्
रमाबलायूथसमन्विता तत्पश्चाद्गता कल्किमहोग्रकामा

नगर निवासिनी नारियों के नयनों की आनन्द-वृद्धि करने वाले कल्किजी पद्मा औररमा के साथ शंभल ग्राम में निवास करते हुए विहार करने लगे ।३। वे मुदित मन से इन्द्र द्वारा दिये हुए रथ पर आरूढ़ होकर नदी, पर्वत, कुन्ज और द्वीप में पद्मा और रमा प्रभृति नारियों के साथ विहार करते रहे ।७-८। एक समय की बात है—पद्मा के मुख मोद के पद्म-गन्ध का उपभोग करने वाले कल्किजी पर्वत की एक गुफा में प्रविष्ट हुए जो कि अनेक नीलेन्द मणियाँ की आभा से प्रकाशित हो रही थी ।६। उनके साथ सहस्र सखियों के सहित पद्म और पीयूषकला जैसी विलासिनी रमा भी उस गुफा में गई ।१०। अपने स्वामी कल्किजी को उस गिरिगुहा में घुसते हुए देख कर मनोहारिणी पद्मा भी उनके पीछे-पीछे गई तथा रमा ने भी विहार की इच्छा से स्त्री यूथों के सहित पीछे से प्रवेश किया ।११।

तत्रेन्द्रनीलोत्पलगह्वरान्ले कान्ताभिरात्म प्रतिमाभिरीशम् ।
कल्किश्च दृष्ट्वा नवनीरदाभं ततः स्थितं प्रस्तरवन्मुमोह ।१२

रमा सखीभिः प्रमदाभिरार्त्ता विलोकयन्ती दिशमाकुलाक्षी
पद्माति पद्माशतशोभमाना विषण्णचित्ता न बसौस्म चार्त्ता
भूमौ लिखन्ती निजकज्जलेन कल्कि शुकं तं कुचकुंकुमेन ।
कस्तूरिकाभिस्तु तदग्रमग्रे निर्म्माय चालिङ्क्य ननाम भावात्
रमा कलालापपरा स्तुवन्ती कामार्द्दिता तं हृदये निधाये
ध्यात्वा निजालङ्करणैः प्रपूज्य तस्थौ विषण्णा करुणावसन्ना
क्षणात्सचाय परोद रामा कलापिनः कण्ठनिभं स्वनाथम् ।
हृदोपगूढं न पुनः प्रलभ्भ कामार्द्दितेत्याह हरे प्रसीद ।१६।

नीलेन्द्र मणिमय उस गिरिगुहा में पहुँच कर पद्मा ने देखा कि मेघ के समान कान्ति वाले कल्किजी अपने जैसे सुन्दर रूप वाली नारियों के साथ गुफा के मध्य बैठे हुए हैं । यह देख कर पद्मा अत्यत आश्चर्य के साथ मोहित होकर निश्चेष्ट पाषाण के समान पृथ्वी पर बैठ गई ।१२। सखियों के सहित रमा भी उस दृश्य को देख कर विस्मय से सब ओर देखने लगी । शत पद्माओं के समान रूप वाली नारियों को देख कर पद्मा तो दुःख और शोकित हो ही रही थी ।१३। वह अपने नेत्र के काजल से पृथिवी को रँगने लगी । वह कुंकुम और कस्तूरी से भूमि को सुगंधित करती हुई, उस पर गिर गई ।१४। कामवती रमा भी अपने हृदय में कल्किजी का ध्यान करने लगी और हृदय-पुष्पों के द्वारा उनका पूजन करके शोक और दुःख से व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर गई ।१५। क्षण भर के उपरान्त सचेत हुई रमा रोने लगी और अपने हृदय को कल्किजी के आलिंगन से रहित पाकर कह उठी—हे हरे ! प्रसन्न होइये ।१६।

पद्मापि निम्मृ च्य निजाङ्गभूषाश्चकार धूलीपटले विलासम्
कण्टश्च कस्तूरिनयापि नीलं कामं निहन्तुं शिवतामुपेत्य १७
कलावतीनां कलयाकलय क्षीणानां हरिरार्त्तबन्धुः ।
ताः सादरेणात्मपतिं मनोज्ञाः करेणबो यूथपतिं यदेयुः ।
सानन्दभावा विपदाननुवृत्ता वनेषु रामाः परिपूर्णकामा ।१९

वैभ्राजके चैत्ररये सुपुष्पे सुनन्दने मन्दरकन्दरान्ते ।
रेमे स रामाभिरुदारतेजा रथेन भास्वत्खगमेन कल्कि: २०

पद्मा ने भी सब श्रृंगार त्याग दिया और धूल में लेट गई । उस समय उसका कस्तूरी युक्त नील वर्ण हुआ कण्ठ कामदेव को भस्म करने वाले शिवजी के समान लगने लगा ।१७। तभी उन कातर नेत्र वाली विलासिनी प्रियाओं की इच्छा पूर्ण करने के लिए आर्तजनों के बंधु कल्किजी उनके मध्य में प्रकट हुए ।१८। यूथपति हाथी के पास जिस प्रकार हथनियां जाती हैं, वैसे ही कल्किजी के समीप वे सभी नारियाँ हर्षित हृदय होकर आगईं । वे हृदय के सन्ताप को छोड़ कर पूर्ण कामा हो गईं ।१६। फिर उदार चरित्र वाले एवं तेजस्वी कल्किजी श्रेष्ठ गगनगामी रथ पर पद्मा, रमा आदि नारियों के साथ आरूढ़ होकर पुष्पों से परिपूर्ण वैभ्राजक, चैत्ररथ और नन्दन वन में जाकर विहार-रत हुए ।२०।

ततः सरोवरं त्वरा स्त्रियो ययुः क्लमज्वराः ।
प्रियेण तेन कल्किना वनान्तरे विहारिणा ।२१।
सरः प्रविश्य पद्मया विमोह रूपया तया ।
जलं ददुर्वराङ्गनाः करेणवो यथा गजम् ।२२।
इति ह युवतिलीला लोकनाथः स कल्किः ।
प्रिययुवतिपरीतः पद्मया रामयाद्यः ।२३।
निजरमणविनोदैः शिक्षयँल्लोकवर्गान्
जयति विबुधभर्त्ता शम्भले वासुदेवः ।२४।
ये शृण्वन्ति वदन्ति भावचतुरा ध्यायन्ति सन्तः सदा
कल्केः श्रीपुरुषोत्तमस्य चरितं कर्णामृतं सादराः ।
तेषां नो सुखयत्ययं मुररिपोर्दास्यभिलाषं विना
संसारः परिमोचनश्च परमानन्दामृताम्भोनिधेः ।२५।

फिर वे श्रमासक्त नारियाँ विहार करने वाले कल्किजी के साथ सरोवर के तीर पर जा पहुंची । जैसे हथिनियाँ यूथपति हाथी के शरीर

पर जल डालती हैं, वैसे ही वे सब स्त्रियां अद्‌भुत रूप वाली पद्‌मा के सहित कल्किजी के देह पर जल की वर्षा करने लगीं ।२१-२२। जो कल्किजी युवतियों के साथ लीला करने में निपुण तथा अपनी प्रिया रमा आदि नारियों के साथ विनोद युक्त विहार करने वाले हैं एवं जो कल्किजी देवताओं के भी ईश्वर, आदि पुरुष और जगदीश्वर हैं, उन शम्भल ग्राम निवासी भगवान् वासुदेव की जय हो ।२३-२४। पुरुषोत्तम कल्किजी के इस कानों को अमृत के समान प्रिय लगने वाले चरित्र को जो कोई आदर पूर्वक सुनेंगे, कीर्तन या ध्यान करेंगे, उन दास्य भाव की कामना वाले सत्पुरुषों के हृदय में भगवान् की प्रीति के अतिरिक्त अन्य किसी की प्रीति या कामना उत्पन्न नहीं होगी । वे यही अनुभव करेंगे कि संसार मोक्ष के अतिरिक्त अन्य कोई परमानन्द नहीं ।२५।



ऊनविंश अध्याय

ततो देवगणा सर्वे ब्रह्मणाः सहिता रथैः ।
स्वैः स्वैर्गणैः परिवृताः कल्कि द्रष्टुमुपाययुः ।१।
महर्षयः सगन्धर्वाः किन्नराश्चाप्सरोगणा. ।
समाजग्मुः प्रमुदिताः शम्भल सुरपूजितम् ।२।
तत्र गत्वा सभामध्ये कल्कि कमललोचनम् ।
तेजोनिधिं प्रपन्नानां जनानामभयप्रदम् ।३।
नीलजीमूतसंकाशं दीर्घपीवरबाहुकम् ।
किरीटेनार्कवर्णेन स्थिरविद्युन्निभेन तम् ।४।
शोभमानं द्युमणिना कुण्डलेनाभिशोभिना ।
सहर्षालापविकसद्वदन स्मितशोभिनम् ।५।

सूतजी बोले—इसके अनन्तर एक समय सब देवता और ब्रह्मा संयुक्त होकर अपने अपने गणों के सहित रथों पर चढ़ कर कल्किजी के दर्शनार्थ आये ।१। महर्षिगण. गंधर्वगण, किन्नरगण तथा अप्सरागण सभी अत्यंत मुदित हृदय से उस सुरपूजित शंभल ग्राम में एकत्र हुए ।२। फिर सब कल्किजी की सभा में गये और वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि कमललोचन भगवान् कल्किजी शरणागतों को अभयदाता रूप से विराजमान हैं ।३। उनकी कान्ति नील मेघ समान थी, दीर्घ और सुपुष्ट भुजाएँ हैं, उनका मस्तक स्थिर विद्युत अथवा सूर्य के समान तेजोमय किरीट से सुशोभित है ।४। उनका मुख मंडल सूर्य के समान प्रकाश करने वाले

कुण्डलों से सुशोभित है उनका मुखारविन्द मधुर मुसकान और हर्षालाप से अत्यंत शोभा को प्राप्त हो रहा है ।५।

कृपाकटाक्षविक्षेपपरिक्षिप्तविपक्षकम् ।
तारहारोल्लसद्वक्षश्चन्द्रकान्तमणिश्रिया ।६।
कुमुद्वतीमोदवहं स्फुरच्छक्रायुधाम्बरम् ।
सर्वदानन्दसन्दोहरसोल्लसितविग्रहम् ।७।
नानामणिगणोद्योतदीपितं रूपमद्भुतम् ।
ददृशुर्देवगन्धर्वा ये चान्ये समुपागताः।८।
भक्त्या परमया युक्ताः परमानन्दविग्रहम् ।
कल्किं कमलपत्राक्षं तुष्टुवुः परमादरात्'।९।
जयाशेषसंक्लेशकक्षप्रकीर्णानलोद्दाममंकीर्णाहीश
देवेश विश्वेश भूतेश भावः । तवानन्त चान्तःस्थितोऽङ्घ्रिप्तरत्न
प्रभाभातपादाजितानन्तशक्ते ।१०।

शत्रु भी उनके कृपा-कटाक्ष-विक्षेप से अनुग्रह को प्राप्त होते हैं । वक्षस्थल पर चन्द्रकान्त मणि की कुमुदिनी को प्रसन्न करने वाली ज्योति से संयुक्त हार सुशोभित है, वस्त्र इन्द्र-धनुष के समान विविध रंगों में शोभा को बढ़ा रहे हैं । आनन्द रस के कारण हृदय उल्लसित हो रहा है ।६-७। देवता गंधर्वादि सभी आगन्तुकोंको कल्किजी का अनेक मणियों से सशोभित एवं तेजस्वी रूप इस प्रकार अत्यंत अद्भुत दिखाई दिया ।८। तब वे सभी परम भक्ति भाव से आदर पूर्वक उन परमानन्द विग्रह कमल लोचन कल्किजी की स्तुति करने लगे ।९। देवताओं ने कहा—हे देवेश ! हे विश्वेश्वर ! हे भूतेश्वर ! हे प्रभो ! आप सभी भावों से युक्त एवं अनन्त हैं । आपके प्रचण्ड अग्नि रूप के किंचित् स्पर्श से भी इस संसार भर के क्लेश-पुंज भस्म हो जाते हैं । कान्ति की राशि से सम्पन्न आपके चरणों से लोक प्रकाशित है । हे अनन्तशक्ते ! आपकी जय हो ।१०।

प्रकाशीकृताशेषलोकत्रयात्र वक्षः स्थले भास्वत्कभौस्तु
श्याम मेघौघराजच्छरीरद्विजाधीशतुञ्जनन त्राहि
विष्णो स दाराः वयं त्वां प्रसन्ना सशेषः ।११।

यद्यस्त्यनुग्रहोऽस्याकं व्रज वैकुण्ठमीश्वर ।
त्यक्त्वाशासितभूखण्डं सत्यधर्माविरोधतः ।१२।
कल्किस्तेषामिति वचः श्रुत्वा परमहर्षितः ।
पात्रात्रैः परिवृतश्चकार गमने मतिम् ।१३।
पुत्रानाहूय चतुरो महाबलपराक्रमान् ।
राज्ये निक्षिप्य सहसा धर्मिष्ठाप्रकृतिप्रियान् ।१४।
ततः प्रजाः ममाहूय कथयित्व निजः कथाः ।
प्राह तान्निजनिर्याणं देवानामुषरोधतः ।१५।

हे प्रभो ! आपके श्याम वर्ण वाले वक्षस्थल में अत्तन्त ज्योति सम्पन्ना कौस्तुभमाणी सुशोभित है। उस मणि के रश्मिजाल से तीनों लोक प्रकाशित हो रहे है इससे ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेघमाल के मध्य पूर्ण चन्द्र प्रतिष्ठित हो। हे नाथ ! हम सब विपत्ति में पड़े हुऐ हैं और अपने नारी, पुत्र, स्वजनादि के सहित आपकी शरण में आते हैं। हे प्रभो ! हम पर प्रसन्न होकर हमारी रक्षा कीजिये ।११। हे नाथ ! अब यह पृथ्वी सत्य और धर्म से अविरोध पूर्वक शासित है। यदि आपकी हम पर कृपा है तो अब इसे त्याग कर वैकुण्ठ के लिए प्रस्थान कीजिये ।१२। देवाताओं के इन वचनों को सुन कर कल्किजी अत्यंत प्रसन्न हुए और वे अपने सुपात्र मित्रों के सहित वैकुण्ठ गमन की इच्छा करने लगे ।१३। तब उन्होंने प्रजा वत्सल, महाबली एवं धार्मिक अपने चारों पुत्रों को बुला कर तुरन्त ही राज्याभिषेक कर दिया ।१४। फिर उन्होंने सम्पूर्ण प्रजा को बुला कर अपना वृत्तान्त कहते हुए उसे सूचित कर दिया कि अब हमें देवताओं के अनुरोध पर वैकुण्ठ धाम के लिए जाना है ।१५।

तच्छ्रुत्वा ताः प्रजाः सर्वा रुरुदुर्विस्महान्विताः ।
तं प्राहुः प्रणता पुत्रा यथा पितरमीश्वरम् ।१६।
भो नाथ सर्वधर्मज्ञ नास्मान्त्यक्तुमिहार्हसि
यत्र त्वं तत्र तु वयं यामः प्रणतवत्सल ।१७।
प्रिया गृहा धनान्यत्र पुत्राः प्राणास्तवानुगाः ।
परत्रेह विशोकाय ज्ञात्वा त्वां यज्ञपूरुषम् ।१८।

इति तद्वचनं श्रुत्वा सान्त्वयित्वा सदुक्तिभिः ।
प्रययौ क्लिन्नहृदयः पत्नीभ्यां सहितो वनम् ।१९।
हिमालयं मुनिगणैराकीर्णं जान्हवीजलैः ।
परिपूर्णं देवगणैः सेवित मनसः प्रियम् ।२०।

गत्वा विष्णुः सुरगणैर्वृतश्चाश्चतुर्भुजः ।
उषित्वा जान्हवीतीरे सस्मारात्मानमात्मना ।२१।

यह सुनकर सम्पूर्ण प्रजा अत्यन्त विस्मयमें पड़कर रुदन करने लगी। जैसे पुत्र पिता से निवेदन करता है, वैसे वह प्रणाम करके उनसे बोली ।१६। प्रजा ने कहा—हे नाथ ! आप सभी धर्मों के जानने वाले हैं। आप प्रणतपाल को हम सब का परित्याग नहीं करना चाहिये। हे नाथ ! हम आपके साथ चलेंगे ।१७। इस जगत् में सभी को अपना धन, सन्तान और घर ही अत्यन्त प्रिय है। आप यज्ञ पुरुष सभी के दुःख और शोक का शमन करने में समर्थ हैं। यह जान कर हमारे प्राण भी आपका अनुगमन करने के लिए इच्छुक हैं ।१८। प्रजा के यह वचन सुन कर कल्किजी ने उन्हें श्रेष्ठ उपदेश देकर सान्त्वना प्रदान की और खेद-युक्त मन से अपनी दोनों पत्नियों को साथ लेकर वन के लिए चल दिये ।१९। वे गंगाजल से सम्पन्न, देवताओं और मुनियों से उपासित हृदय को आनन्द देने वाले हिमालय पर्वत पर पहुँच कर देवताओं के मध्य विराजमान हुए और चतुर्भुज विष्णु स्वरूप धारण करके अपने रूप का स्मरण करने लगे ।२०-२१।

पूर्णज्योतिर्मयः साक्षी परमात्मा पुरातनः ।
बभौ सूर्यसहस्राणा तेजोराशिसमद्युतिः ।२२।
शंखचक्रगदापद्मशार्ङ्गाद्यैः समभिष्टुतः ।
नानालङ्करणानाञ्च समलङ्करणाकृतिः ।२३
ववृषुस्तं सुराः पुष्पैः कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ।
सुगन्धि कुसुमासारैर्देवदुन्दुभिनिःस्वनैः ।२४।
तुष्टुवुर्मुहुः सर्वे लोकाः सस्थाणुजंगमाः ।
दृष्ट्वा रूपमरूपस्य निर्याणे वैष्णवं पदम् ।२५।
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं पत्युः कल्केर्महात्मनः ।
रमा पद्मा च दहनं प्रविश्य तमवापतुः ।२६।

तब वे पूर्ण ज्योतिमान् सर्वसाक्षी स्वरूप,सनातन पुरुष परमात्मा कल्किजी सहस्रों सूर्य के समान तेज से प्रकाशित हो रहे थे ।२२। विविध अलंकारों से युक्त वे स्वयं भी अलंकार के समान प्रकाशित हो रहे थे । शंख, चक्र, गदा, पद्म और शार्ङ्ग धनुष आदि समन्वित उनका वर्ण विग्रह पूजित होने लगा ।२३। उनके वक्षस्थल पर कौस्तुभमणि सुशोभित थी । देवगण उन पर पुष्पवृष्टि कर रहे थे और सब ओर दुंदुभियां बज रही थीं ।२४। जब वे कल्किजी विष्णुपद में प्रविष्ट हुए, तब उन अरूप जगदीश्वर के रूप-दर्शन से सभी जीव मोह को प्राप्त हो गए ।२५। अपने पति कल्किजी के इस अद्भुत रूप को देख कर रमा और पद्मा अग्नि में प्रविष्ट होकर उसमें लीन होगई ।२६।

धर्मः कृतयुगं कल्केराज्ञया पृथिवीतले ।
नि.सपत्नौ सुसुखिनौ भूलोकं चेरतुश्चिरम् २७।
देवापिश्च मरुः कामं कल्केरादेशकारिणौ ।
प्रजाः संपालयन्तौ तु भुवं जुगुपतुः प्रभू ।२८।
विशाखयूपभूपालः कल्केर्निर्याणमीदृशम् ।
श्रुत्वा स्वपुत्रं विषये नृपं कृत्वा गतो वनम् ।२९।

अन्ये नृपतयो ये च कल्केर्विरहकर्षिताः ।
तद्ध्यायन्तो जजन्तश्च विरक्ताः स्युर्नृपासने ।३०।
इति कल्केरनन्तस्य कथा भुवनपावनीम् ।
कथयित्वा शुकः प्रायान्नरनारायणाश्रमम् ।३१।
मार्कण्डेयादयो ये च मुनयः प्रशमायनाः ।
श्रुत्वानुभावं कल्केस्ते तं ध्यायन्तो जगुर्यशः ।३२

भगवान् कल्किजी की आज्ञा के अनुसार धर्म और सत्युग भार्या-विहीन रह कर सुख पूर्वक भूमंडल पर चिरकाल तक विचरण करते रहे ।२७ देवापि और मरु—यह दोनों राजा कल्किजी के आदेशा-नुसार प्रजा-पालन एवं पृथिवी के रक्षण में तत्पर हुए ।२८। भगवान् कल्किजी का गमन सुन कर विशाखयूप-नरेश भी अपने पुत्र को राज्य देकर वन में चले गये ।२९। अन्यान्य राजागण भी कल्किजी के वियोग को सहन न कर सके। उन्होंने अपने-अपने राज्य का त्याग कर दिया और कल्किजी के रूप का ध्यान करते हुए उन्हीं का नाम जपने लगे ।३०। अनन्त प्रभु कल्किजी की इस लोक पावनी कथा का वर्णन करने के पश्चात शुकदेवजी ने नर-नारायण को प्रस्थान किया ।३१। शान्त चित्त वाले मार्कण्डेय आदि मुनिगण भगवान् कल्किजी के इस माहा-त्म्य को श्रवण कर उनका ध्यान करते हुए यशोगान में तत्पर हुए ।३२।

यस्यानुशासनाद्भूमौ नाधर्मिष्ठाप्रजाजनाः ।
नाल्पायुषो दरिद्राश्च न पाखण्डा न हैतुकाः ।३३
नाधयो व्याधयः क्लेशा देवभूतात्मसम्भवाः ।
निर्मत्सराः सदानन्दा बभूवुर्जीवजातयः ।३४।
इत्येतत्कथितं कल्केरवतारं महोदयम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं परम् ।३५।
शोकसन्तापपापघ्नं कलिव्याकुलनाशनम् ।
सुखदं मोक्षदं लोके वांछितार्थफलप्रदम् ।३६।

तावच्छस्त्रप्रदीपानां प्रकाशो भुवि रोचते।
भाति भानुः पुराणाख्यो यावल्लोकेऽति कामधुक् ।३७।
श्रुत्वं तद्भृगुवशजो मुनिगणैः साकं सहर्षो वशी
ज्ञात्वा सूतममेयबोधविदितं श्रीलोमहर्षात्मजम् ।
श्रीकल्केरवतारवाक्यममल भक्तिप्रदे श्रीहरेः
शुश्रूषुः पुनराह साधुवचसा गंगास्तवं सत्कृतः ।३८।

जिनके शासनकाल में इस पृथिवी पर कोई भी धर्म-हीन अल्पायुष्य, दरिद्री, पाखण्डी तथा कपट पूर्ण आचरण वाला व्यक्ति नहीं रहा और सभी प्राणी आधि-व्याधि से रहित, क्लेश-रहित और मात्सर्य-रहित होकर देवताओं के समान सुखी हो गए, उन्हीं के अवतरण का का यह प्रसंग कहा गया है। इसके श्रवण मात्र से धन, यश और आयु की वृद्धि होती और परमानन्द की प्राप्ति होती है तथा अन्तकाल में स्वर्ग की उपलब्धि हो जाती है।३३-३५। यह कथा सुनने से शोक, सन्ताप और पाप को नष्ट करती है। कलियुग के उद्वेगों का शमन मोक्ष एवं वांछित फल देने में वह समर्थ है।३६। इच्छित फल को दाता पुराण रूपी सूर्य को उदय जब तक संसार में नहीं होता, तभी तक अन्यान्य-शास्त्र दीपक माला का प्रकाश टिक पाता है।३७। भृगुवंश में उत्पन्न मुनिगण शौनकादि ऋषियों ने इस भक्ति रस से परिपूर्ण कल्कि कथा के श्रवण से अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया। वे जान गये कि लोम-हर्षण के पुत्र सूतजी ज्ञान में इस प्रकार प्रवृत हैं। मुनियों के हृदय में हरि कथा सुनने की इच्छा पुनः जागृत हुई और उन्होंने आदर सहित गंगास्तोत्र के विषय में सूतजी से प्रश्न किया।३८।

तृतीयांश—

विंश अध्याय

हे सूत ! सर्वधर्मज्ञ यत्त्वया कथित पुरा ।
गंगा स्तुत्वा समायाता मुनयः कल्किसन्निधिम् ।१।
स्तवं तं वद गंगायाः सर्वपापप्रणाशनम् ।
मोक्षदं शुभदं भक्त्या शृण्वतां पठतामिह ।२।
शृणुध्वमृषयः सर्वे गंगास्तव मनुत्तमम् ।
शोकमोहरं पुंसामृषिभिः परिकीर्त्तितम् ।३।
इयं सुरतरंगिणी भवनवारिधेस्तारिणी ।
स्तुता हरिपदाम्बुजादुपगता जगत्संसदः ।
सुमेरुशिखरामरप्रियजला मलक्षालनी ।
प्रसन्नवदना शुभा भवभयस्य विद्राविणी ।४।
भगीरथमथानुगा सुरकरीन्द्रदर्पापहा
महेशमुकुटप्रभा गिरिशिरः पताकासिता ।
सुरासुरनरोरगैजभवाच्युतैः संस्तुता
विमुक्तिफलशालिनी कलुषनाशिनी राजते ।५।

शौनकजी बोले—हे सूतजी ! आप सभी धर्मों के जानने वाले हैं। आपने कहा था कि मुनिगण गङ्गाजी का स्तवन करके कल्किजी के पास पहुँचे थे, तो वह स्तव कौन-सा है, जिसके भक्ति-सहित पढ़ने या सुनने से मोक्ष रूपी मङ्गल की प्राप्ति होती है और सभी पापों का नाश होता है। उसे हमारे प्रति कहिये ।१-२। है सूतजी ने कहा—हे मुनियों ! उस

और मोह के नाशक अत्यंत श्रेष्ठ ऋषि प्रणीत गंगा-स्तोत्र को आपके प्रति कहता हूँ, सुनिये ।३। ऋषियों ने कहा—यह सुरतरंगिणी संसार समुद्र से पार करने वाली भगवान् विष्णु के चरणारविन्दों से उद्भुत होकर भूमंडल पर प्रवाहित हुई । यह भवभय विनाशिनी, पाप नाशिनी, सुमेरु शिखर वासिनी, अमृत जल वाली, प्रसन्नवदना भगवती गंगाजी शुभप्रदायिनी एवं सर्व पूजिता हैं।४। यह भगवती राजा भगीरथ के पीछे-पीछे पृथिवी पर चलीं । इन्होंने ऐरावत का गर्व खंडन किया । यह शिवजी के मस्तक में मुकुट की प्रभा रूप से शोभामयी और हिमालय की श्वेत पताका के समान हैं । सभी देवता, दैत्य, मनुष्य और नाग आदि इनके यश का सदा गान करते रहते हैं । यह पापनाशिनी एवं मोक्षदायिनी हैं ।५।

पितामहकमन्डलुप्रभवमुक्तिबीजालता
श्रुतिस्मृतिगणस्तुता द्विजकुलालवालावृता ।
सुमेरुशिखराभिदा निपतिता त्रिलोकावृता ।
सुधर्मफलशालिनी सुखपलाशिनी राजते ।६।
चरद्विहगमालिनी सगरवंशमुक्तिप्रदा
मुनींद्रवरनन्दिनी दिवि मता च मन्दाकिनी ।
सदा दुरितनाशिनी विमलवारिसंदर्शन-
प्रणामगुणकीर्त्तनादिष जगत्सु संराजते ।७।
महाभिधसुताङ्गना हिमगिरीशकूटस्तनी
सफेनजलहासिनी सितमरालसंचारिणी ।
चलल्लहरिसत्करा वरसरोजमालाधरा
रसोल्लसितगामिनी जलधिकामिनी राजते ।८।

इस मुक्ति रूपी बीजलताका प्रादुर्भाव ब्रह्मा जी के कमण्डलुमे हुआ है । द्विजगण इसके आँल-वाल रूप और सुधर्म इसको फल है । यह सुख रूप किसलयों से परिपूर्ण लता सुमेरु पर्वत का भेदन करके प्रगट हो गई । तीनों लोकों में व्याप्त गंगाजी का यह स्तोत्र श्रुति, स्मृति

आदि सभी धर्म शास्त्रों से सम्मत है ।६। सगरवंश को मोक्ष देने वाली यह जान्हवी, देवताओं के लिए मन्दाकिनी स्वरूपा तथा सदैव मंगल के देने वाली है । प्रणाम पूर्वक इनका गुणगान करने और इनके निर्मल जल का दर्शन करने से ही सन्सार में सुख की प्राप्ति होती है ।७। हिमालय के शिखर रूपी वक्ष वाली यह भगवती महाराज शान्तनु की रानी हुई थीं । इनका फेनों से युक्त जल ही हास है तथा श्वेत वर्ण वाले हंस जिनकी गति, खिले हुए कमलोंकीपंक्ति जिनकी माला तथा तरंगही जिनके हाथ हैं, ऐसी रसवती वह गंगा प्रमुदित गति से समुद्र से मिलने के लिए बढ़ी चली जा रही है ।८।

क्वाचित्कलकलस्वना क्वचिदधीरयादोगणाः
क्वचिन्मुनिगणैः स्तुता क्वचिदनन्तसंपूजिता ।
क्वचिद्रविकरोज्त्रला क्वचिदुदग्रपाताकुला
क्वविज्जनविगाहिता जयति भीष्ममातासती ।९।
स एव कुशलो जनः प्रणमतीह भागीरथीं
स एव तपसां निधिर्जपति जाह्नवीमादरात् ।
स एव पुरुषोत्तमः स्मरति साधु मन्दाकिनीं
स एव विजयी प्रभुः सुरतरंगिणीं सेवते ।१०।
तवामल जलातितं खगशृगालमीनक्षतं
चलल्लहरि लोलितं रुचिर तीर जम्बालितम् ।
कदानिजवपुर्मुदा सुरनरोरगैः संस्तुतोऽ-
प्यहं त्रिपथगामिनि ! प्रियमतीव पश्यास्यदो ।११।

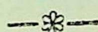
जिनकी कहीं मुनिगण स्तुति करते हैं, तो कहीं अनन्त भगवान् द्वारा पूजी जाती हैं । जिनके जल में कहीं विकराल जीव विचर रहे हैं, कहीं जिनका जल कल कल-गान कर रहा है, वही जल कहीं भीषण नाद करता हुआ पतित हो रहा है, उस पर कहीं सूर्य रश्मियाँ पड़ कर उसे प्रकाशमय कर रही हैं और कहीं उस जल में मनुष्य स्नान कर रहे हैं । ऐसी इन भीष्म की माता सती गंगाजी की जय हो ।९। इन भगवती

गंगा को प्रणाम करने वाले पुरुष कुशल हैं। इनके नाम का जप करने वाले मनुष्य ही वास्तव में तपस्वी हैं। इनका स्मरण करने वाले प्राणी ही श्रेष्ठ हैं। इनकी उपासना करने वाले जीव ही सब को जीतने में समर्थ तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के स्वामी हैं।१०। हे देवि ! हे त्रिपथगे ! आपके निर्मल जल मे हमारा शरीर कब भासित होगा ? इस देह के मृत होने पर पक्षी और श्रृगाल आदि कब इसे नोचेंगे और फिर कब यह आपकी चंचल तरंगों में उछलता हुआ तट पर स्थित शिवाओं से कब सजेगा ? हे माता ! मैं स्वर्ग लोक को कब प्राप्त कर सकूँगा और सुर, नर नाग कब मेरा स्तव करेंगे ? इस प्रकार का अपना सौभाग्य में कब देख सकूँगा ? ११।

त्वत्तीरे वसतिं तवामलजलस्नानं तव प्रेक्षणं
त्वन्नामस्मरणं तवोदयकथासंलापनं पावनम्।
गंगे मे तव सेवनैकनिपुणोऽप्यानन्दितश्चादृतः
स्तुत्वा त्वद्गतपातको भुवि कदा शान्तश्चरिष्याम्यहम्।१२।
इत्येतदृषिभिः प्रोक्तं गतास्तवमनुत्तमम्।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं पठनाच्छ्रवणादपि।१३।
सर्वपापहरं पुंसां बलमायुर्विवर्द्धनम्।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने गंगासान्निध्यता भवेत्।१४।
इत्येतद्भार्गवाख्यानं शुकदेवान्मया श्रुतम्।
पठितं श्रावितं चात्र पुण्यं धन्यं यशस्करम्।१५।
अवतारं महाविष्णोः कल्केः परममद्भुतम्।
पठतां शृण्वतां भक्त्या सर्वाशुभविनाशनम्।१६।

हे गंगे ! आपके तट पर वास करता हुआ और आपके निर्मल जल में स्नान करता हुआ मैं कब आपके दर्शन करूँगा ? कब आपका नाम स्मरण करता हुआ आपके अवतरण की पुनीत गाथा का गान करूँगा ? आपकी सेवा करने के फल रूप में मेरे हृदय में आपकी भक्ति

का सञ्चार कब होगा ? मेरे द्वारा किये हुए पाप कब नष्ट होंगे ? कब मैं शान्त चित्त से पृथिवी पर विचरण करता हुआ आदर को प्राप्त हूँगा ? ।१२। इस ऋषि प्रोक्त गंगा-स्तव का इस प्रकार पाठ किया गया । इसके पढ़ने और सुनने से यश-लाभ होता तथा आयु की वृद्धि होती है ।१३। इस स्तोत्र का प्रात: मध्याह्न और सायं—तीनों काल पाठ करने से गंगा जी का सान्निध्य प्राप्त होकर सब पापों का क्षय तथा बल और आयु की वृद्धि होती है ।१४। इस भार्गवाख्यान का मैंने शुकदेवजी से श्रवण किया था । यह पढ़ने और सुनने से पुण्यप्रद तथा धन और यश के बढ़ाने वाला है ।१५। भगवान् कल्कि के अवतार विषयक अद्भुत उपाख्यान का भक्ति सहित पाठ अथवा श्रवण करने पर सब प्रकार के अमंगलों का का नाश हो जाता है ।१६।



तृतीयांश—

एकविंश अध्याय

अत्रापि शुकसम्वादो मार्कण्डेयेन धीमता।
अधर्मवंशकथनं कलेर्विवरणं ततः ।१।
देवानांब्रह्मसदन प्रयाणं गोभुवा सह।
ब्रह्मणो वचनाद्विष्णोर्जन्म विष्णुयशोगृहे ।२।
सुमत्यांस्वांशकैर्भ्रातृचतुर्भिः शम्भले पुरे।
पितुः पुत्रेण सम्वादस्तथोपनयनं हरेः ।३।
पुत्रेण सह संवासो वेदाध्ययनमुत्तमम्।
शस्त्रास्त्राणां परिज्ञानं शिवसंदर्शनं ततः ।४।
कल्केः स्तवं शिवपुरो वरलाभः शुकापनम्।
शम्भलागमनं चक्रे ज्ञातिभ्यो वरकीतनम् ।५।

सूतजी बोले—इस पुराण में प्रथम मार्कण्डेयजी और शुकदेवजी का सम्वाद वर्णन हुआ है। फिर अधर्म के वन्श का वर्णन और कल्किजी का प्रसंग आया है। इसके अनन्तर गोरूप धारिणी पृथिवी के देवताओं के साथ ब्रह्मलोक गमन और विष्णुयशजी के घर कल्किजी के जन्म लेने की कथा कही गई। तत्पश्चात् भगवान विष्णु के अन्श से चारों भाइयों के शम्भल ग्राम में अवतरित होने का उपाख्यान, पिता-पुत्र-संवाद और कल्किजी के उपनयन संस्कार का विवरण है ।१ ३। फिर पिता पुत्री का साथ साथ रहना, कल्किजी का वेद शास्त्रों तथा शस्त्रास्त्र की शिक्षा पाने की और भगवान् शंकर के दर्शन होने की कथा कही गई है ।४। तदनन्तर कल्किजी द्वारा शंकर-स्ततव और वर प्राप्त करना और शिवजी

५०६ + ३२ = ५३८

द्वारा प्रदत्त शुक के सहित उनका शंभल ग्राम को लौटना तथा जाति बंधुओं से वर प्राप्ति का वर्णन किया गया है ।५।

वशाखयूपभूपेन निजसर्वात्मवर्णनम् ।
महाभाग्याद्ब्राह्मणानां शुकस्यागमनं ततः ।६।
कल्किना शुकसम्वादः सिंहलाख्यानमुत्तमम् ।
शिवदत्तवरा पद्मा तस्या भूपस्वयं वरे ।७।
दर्शनाद्भूपसंघानां स्त्रीभावपरिकीर्त्तनम् ।
तस्यां विषादः कल्केस्तु विवाहार्थं समुद्यमः ।८।
शुकप्रस्थापनं दौत्ये तथा तस्यापि दर्शनम् ।
शुकपद्मापरिचयः श्रीविष्णुः पूजनादिकम् ।९।
पादादिदेहध्यानञ्च केशान्तं परिवर्णितम् ।
शुकभूषणदानञ्च पुनः शुकसमागमः ।१०।

फिर विशाखयूप नरेशके प्रति कल्किजी द्वाराअपने स्वरूपका और ब्राह्मण—माहात्म्य का वर्णन करना तथा शुक के आगमनकी कथा कही गई है ।३। फिर कल्कि-शुक संवाद, शुक द्वारा सिंहल द्वीप वर्णन, शिव द्वारा पद्मा को वर प्राप्ति का प्रसंग पद्मा के स्वयंवर में आये हुए राजाओं को स्त्रीत्व प्राप्ति का वर्णन तथा पद्मा के संताप की चर्चा और विवाह के लिए कल्किजी के उद्यम की कथा कही गई है ।७-८। शुक का दूत-भाव से प्रस्थान, पद्मा और शुक की भेंट तथा दोनों के परिचय का प्रसंग और विष्णु भगवान् के पूजन की कथा हैं ।९। तदुपरान्त चरण से केश पर्यन्त, भगवान् के ध्यान करने का प्रसंग, शुक को आभूषण-दान और शुक का कल्किजी के पास लौटना—यह कथा वर्णित हुई है ।१०।

कल्केः पद्माविवाहार्थं गमनं दर्शनं तयोः ।
जलक्रीडाप्रसङ्गेन विवाहस्तदनन्तरम् ।११।
पुंस्त्वप्राप्तिश्च भूपानां कल्केदर्शनमात्रतः ।
अनन्तागमनं राज्ञा सम्वादस्तेन संसदि ।१२।

षण्डत्वादात्मनो जन्म कर्म चात्र शिवस्तवः।
मृते पितरि तद्विष्णोः क्षेत्रे माया प्रदर्शनम् ।१३।
अत्राख्यानमनन्तस्य ज्ञानवैराग्यवैभवम् ।
राज्ञां प्रयाणं क केश्च पद्मया सह शम्भले ।१४।
विश्वकर्मविधानञ्च वसतिः पद्मया सह ।
ज्ञातिभ्रातृसुहृत्पुत्रैः सेनाभिर्बद्धनिग्रहः ।१५।

तदनन्तर विवाह के उद्देश्य से कल्किजी का गमन, जल क्रीडा के प्रसंग द्वारा कल्किजी और पद्मा का पारस्परिक परिचय और इनके विवाह का प्रसंग कहा गया है ।११। फिर स्त्रीत्व को प्राप्त हुए राजागण का कल्कि-दर्शन से पुनः पुरुषत्व की प्राप्ति, अनन्त मुनि का सभा में आगमन और राजाओं से सम्वाद की कथा का वर्णन है ।१२। षण्ड रूप से अनन्त मुनि के जन्म का वर्णन, शिवजी की स्तुति और अनन्त मुनि के पिता के परलोक-गमन के पश्चात् विष्णु क्षेत्र में भगवती माया के दर्शन का प्रसंग कहा गया है ।१३। तदनन्तर अनन्त का आख्यान, ज्ञान एवं वैराग्य-रूप ऐश्वर्य का प्रसंग, फिर राजाओं का प्रयाण और पद्मा सहित कल्किजी के शम्भल-गमन की कथा कही है ।१४। फिर विश्वकर्मा द्वारा शम्भलपुरी का निर्माण और उसमें पद्मा, जाति-बांधव, भ्रात गण, सुहृद्जन, पुत्रादि तथा सेना के सहित कल्किजी का निवास और बौद्धों के निग्रह की कथा वर्णन की गई है ।१५।

कथितश्चात्र तेषाञ्चा स्त्रीणां संयोधनाश्रयः ।
नतऽत्रो बालखिल्यानां मुनीनां रवानिवेदनम् ।१६।
सपुत्रायाः कुथोदर्या वधश्चात्र प्रकीर्त्तितः ।
हरिद्वारगतस्यापि कल्केर्मुनिसमागमः ।१७।
सूर्यवंशस्य कथनं सोमस्य च विधानतः ।
श्रीरामचरितं चारुसूर्यवंशानुवर्णने ।१८।
देवापेश्च मरो सगो युद्धायात्र प्रकीर्तितः ।

महाघोरवनेकोक विकोकविनिपातनम् ।१९।
भल्लाटगमनं तत्र शय्याकर्णादिभिः सह ।
युद्धं शशिध्वजेनात्र सुशान्ता भक्तिकीर्तनम् ।२०।

तदुपरान्त बौद्धों की नारियों का रणक्षेत्र में युद्ध के उद्देश्य से आगमन, बालखिल्य मुनियों का आगमन और अपने वृत्तान्त का वर्णन ।१३। फिर कुथोदरी नाम की राक्षसी का अपने पुत्र के सहित मारा जाना तथा हरिद्वार में कल्किजी से मुनियों का मिलना कहा गया है ।१७। फिर सूर्यवंश और चंद्रवंश का वर्णन तथा सूर्यवंश के प्रसंग में भगवान् श्री राम का चरित्र-वर्णन हुआ है ।१८। फिर मरु और देवापि का युद्ध के लिए आगमन, अत्यन्त विकराल कोक-विकोक का वध, कल्किजी की भल्लाट नगर-यात्रा, शय्याकरण आदि से युद्ध, शशिध्वज-कल्किजी का संग्राम और सुशांता द्वारा भक्ति एवं कीर्तन की कथा कही गई है ।१९-२०।

युद्धे कल्केरानयन धर्मस्य च कृतस्य च ।
सुशान्तायाः स्तवस्तत्र रमोद्वाहस्तु कल्किना ।२१।
सभायां पूर्वकथनं निजगृध्रत्वकारणम् ।
मोक्षः शशिध्वजस्यात्र भक्तिप्रार्थयितुर्विभोः ।२२।
विषकन्यामोचनञ्च नृपाणामभिषेचनम् ।
मायास्तवः शम्भलेषु नानायज्ञादि साधनम् ।
नारदाद्विष्णुयशसो मोक्षश्चात्र प्रकीर्तितः ।
कृतधर्म प्रवृत्तिश्च रुक्मिणी व्रतकीर्तनम् ।२४।
ततो विहारः कल्केश्च पुत्रपौत्रादि सम्भवः ।
कथितो देवगन्धर्वगणागमनमत्रहि ।२५।

फिर युद्ध क्षेत्र से कल्किजी, धर्म और सत्युग का शशिध्वज द्वारा अपने घर लाना, रानी सुशान्ता द्वारा कल्किजी का स्तव और कल्कि-रमा विवाह का प्रसंग कहा गया है ।२१। फिर राजा शशिध्वज

का अपने पूर्व-जन्मों का वृत्तान्त-कथन, शुद्ध देह प्राप्ति का प्रसंग, कल्किजी के प्रति भक्ति का निवेदन और और राजा शशिध्वज को मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन हुआ है।२२। विषकन्या का उद्धार, राजाओं का राज्याभिषेक, भगवती माया का स्तव तथा शम्भल ग्राम में विविध यज्ञों का अनुष्ठान।२३। तदनन्तर विष्णुयशजी का नारदजी से मोक्ष-विषयक प्रश्न, लोक में सतयुग का स्थापन और रुक्मिणी व्रत का प्रसंग।२४। फिर कल्किजी का विहार-वर्णन, पुत्र-पौत्रादि की उत्पत्ति और देवताओं तथा गंधर्वों के शम्भल ग्राम में आगमन की कथा कही गई है।२५।

ततो वैकुण्ठगमनं विष्णोः कल्केरिहोदितम्।
शुकप्रस्थान मुचितं कथयित्वा कथाः शुभाः।२६।
गंगास्तोत्रमिह प्रोक्तं पुराणे मुनिसंसतम्।
जगतामानन्दकरं पुराणं पंच लक्षणम्।२७।
चतुर्वर्ग प्रदं कल्कि पुराणं परिकीर्तितम्।
प्रलयान्ते हरिमुखान्निः सृतं लोक विस्तृतम्।२८।
अहोव्यासेन कथितं द्विजरूपेणभूतले।
विष्णोः कल्केर्भगवतः प्रभावं परमाद्भुतम्।२९।
येभक्त्यात्र पुराणसारममल श्रीविष्णु भावाप्लुत।
शृण्वन्तीह वदन्ति वदन्ति साधुसदसि क्षेत्रे सुतीर्थाश्रमे।
दत्वाग्रां तुरगंज गजवर स्वर्णं द्विजायादरात्
वस्त्रालङ्करणैः प्रपूज्यविधिवन्मुक्तास्त एवोत्तमाः।३०।

फिर कल्किजी के वैकुण्ठ-गमन का वर्णन करके शुकदेव जी का कथा समाप्त करके चले जाना कहा गया है।२६। फिर इस पुराण में मुनियों द्वारा कथित गंगास्तोत्र का वर्णन हुआ है। संसार को आनन्द देने वाला यह पुराण पांच लक्षणों से सम्पन्न है।२७। यह कल्कि पुराण, कीर्तन करने से, चतुर्वर्ग के देने वाला है। प्रलय के अन्त

में यह भगवान् श्रीहरि के मुख से निसृत होकर संसार में विस्तार को को प्राप्त हुआ है ।२८।

फिर इस पुराण को ब्राह्मण रूप में पृथिवी पर अवतरित होकर भगवान् वेदव्यासजी ने कहा । इसमें कल्कि स्वरूप भगवान् विष्णु के अत्यन्त अद्भुत प्रभाव का वर्णन किया गया है ।२९। सभी पुराणों के सार रूप इस कल्कि पुराण का जो साधुजन भगवान् विष्णु के भक्ति भाव में मग्न होकर किसी आश्रम या पुण्यतीर्थ में स्थित होकर वस्त्रा भूषणों द्वारा ब्राह्मणों का सत्कार करते हुए तथा उन्हें गज, अश्व, गौ, आदि धन दान देते हुए श्रवण अथवा कीर्तन करेंगे उनको अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति हो जायगी ।३०।

श्रुत्वा विधानं विधिवद्ब्राह्मणो वेद पारगः ।
क्षत्रियो भूपतिर्वैश्यो धनीशूद्रो महान्भवेत् ।३१।
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां पठनाच्छ्रवणादपि ।३२।
इत्येतत्पुण्यमाख्यानं लोमहर्षण जो मुनिः ।
श्रावयित्वामुनीन्भक्त्या ययौ तीर्थाटनाद्दतः ।३३।
शौनकौ मुनिभिः सार्द्धं सूतमासन्त्र्यधर्मवित् ।
पुण्यारण्ये हरिं ध्यात्वा ब्रह्म प्राप सहर्षिभिः ।३४।
लोमहर्षणज सर्वपुराणज्ञं यतव्रतम् ।
व्यासशिष्यं मुनिवरं तं सूतं प्रणमाम्यहम् ।३५।

इस पुराण के विधी पूर्वक श्रवण करने वाला ब्राह्मण वेद में पारंगत होता है, क्षत्रिय को राज्य की प्राप्ति होती है, वैश्य धनी और शुद्र महान् हो जाता है ।६१। यदि पुत्र की कामना से इसका श्रवण करे तो पुत्र-लाभ, धन की इच्छा वाले को धन लाभ और विद्या के अभिलाषियों को विद्या की प्राप्ति होती है ।३२। लोमहर्षणसुत मुनिवर सूतजी ने भक्ति भाव सहित यह पुण्य आख्यान शौनकादि मुनियों को सुनाया

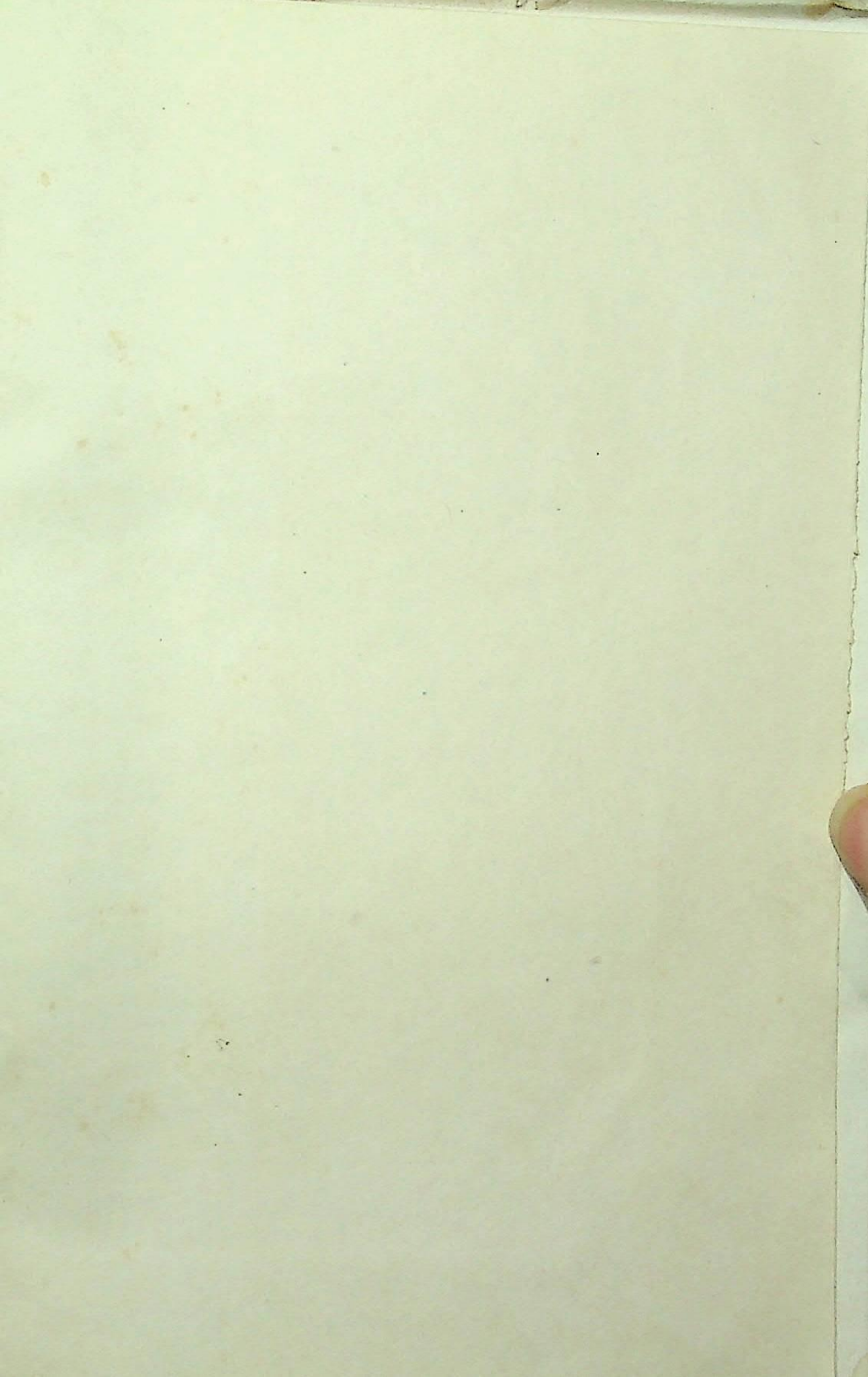
और फिर तीर्थाटन को चले गये ।३३। इसके पश्चात् मंत्रवित् एवं धर्म-ज्ञाता मुनिवर शौनकजी अन्यान्य मुनियों के सहित भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए ब्रह्म को प्राप्त हो गये ।३४। सर्वं पुराणों के ज्ञाता, व्यासजी के परम शिष्य, लोमहर्षणपुत्र उन मुनिश्रेष्ठ सूतजी को मैं प्रणाम करता हूँ ।६५।

आलोक्य सर्व शास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इममेव सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा । ३६।
वेद रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ।३७।
सजलजलददेहो वातवेगैकवाहः
करधृतकरवालः सर्वलोकैकपालः ।
कलिकुल वनहन्ता सत्यधर्म प्रणेता ।
कलयतुकुशलंवः कल्किरूपः सभूपः ।३८।

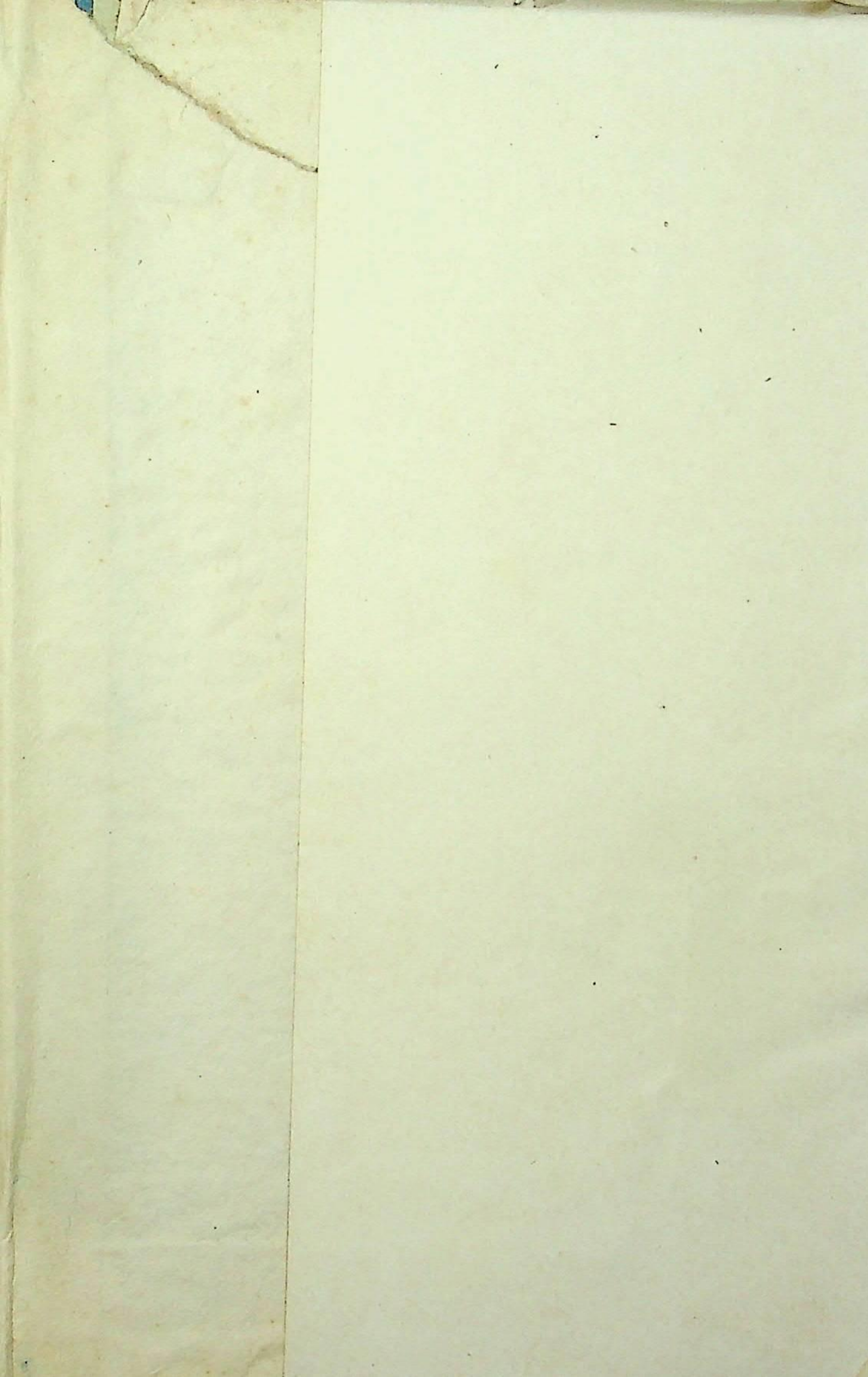
सभी शास्त्रों के अध्ययन और उन पर बारम्बार विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि सदैव भगवान् श्रीनारायण का ध्यान करना ही श्रेयस्कर है ।६३। क्योंकि वेद, पुराण, रामायण और महाभारत आदि सभी शास्त्रों ने अपने आदि, मध्यादि में सर्वत्र इन्हीं भव-वान् श्रीहरि का गुण-कीर्त्तन किया हैं ।३७। जलयुक्त मेघ जैसे वर्णं वाले वायु के समान वेग वाले अश्वारूढ़ होने वाले, हाथ में तलवार धारण करने वाले, सत्य- धर्म के प्रणेता, राजाओं के सहित निवास करने वाले कलियुग के परिवार रूपी वन का हनन करने वाले भगवान् कल्किजी हमारा कल्याण करें ।३८।

※ श्री कल्कि पुराण सम्पूर्ण ※

—❀—







भारतीय संस्कृति के श्रेठतम धर्मग्रन्थ

१– चारों वेद ८ जिल्दों में —		
ऋग्वेद ४ खण्ड	...	२७)
अथर्व वेद २ खण्ड	...	१३)५०
यजुर्वेद १ खण्ड	...	६)७५
सामवेद १ खण्ड	...	६)७५
२– १०८ उपनिषद (ज्ञान, ब्रह्म विद्या, साधना) (३ खन्ड)	...	२३)२५
३– षट् दर्शन (६ जिल्दों में)		
वेदान्त दर्शन	...	४)
साँख्य दर्शन	...	४)
योग दर्शन	...	४)
वैशेषिक दर्शन	...	४)
न्याय दर्शन	...	४)
मीमांसा दर्शन	...	५)
४– २० स्मृतियां २ खंड	...	१४)
५– शिव पुराण २ खंड	...	१४)
वायु पुराण २ खंड	...	१४)
विष्णु पुराण २ खंड	...	१४)
अग्नि पुराण २ खंड	...	१४)
मार्कण्डेय पुराण २ खण्ड	...	१४)
गरुड़ पुराण २ खण्ड	...	१४)
हरिवंश पुराण २ खण्ड	...	१४)
भविष्य पुराण २ खण्ड	...	१४)
पद्म पुराण: २ खण्ड	...	१४)
देवीभागवत पुराण: २ खण्ड	...	१४)
लिङ्ग पुराण २ खण्ड	...	१४)
कल्कि पुराण १ खण्ड	...	७)७५
६– विष्णु रहस्य	...	६)

संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, बरेली।